पानेपरभी ॥ ७४ ॥ पूर्वजन्मकी वासनाके बलसे ओंकारेश्वरहीको बहुत मानती थी । हे दमन ! स्वभावतः चंचल होनेपरभी महात्माजनका चित्त योगाभ्या ससे जिस भाँति स्थिर होजाताहै, तैसेही उस लिंगके सेवनसे उसकाभी मन स्थिर होगयाथा, उसे दिनमें क्षुधा, पिपासा और रात्रिमें निद्रा कातर नहीं बना सकतीथी ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ वह उस लिंगके दर्शन करनेमें निरालस्य मन रहती थी, रात्रिदिनमें उसकी आंखोंकी जितनीही पलकें पडती थीं ॥ ॥ ७७ ॥ वह साध्वी कन्या उतने समयको विघ्नही समझती थी, (वह शोचती थी कि) "लिंगदर्शनके बिना जितना मेरा समय निमेष गिरनेमें व्यर्थ बीतगया उसका प्रायश्चित्त कैसे होसकताहै ? ॥ ७८ ॥ वह कन्या इसी प्रकारकी चिन्ता करतीहुई ओंकारेश्वरका सेवन करतीरही, वह (कभी)

प्राग्जन्मवासनायोगादोंकारंबह्वमंस्तवै ॥ स्वभावचंचलंचेतस्तस्यास्तल्लिंगसेवनात् ॥ ७५ ॥ दमनस्थैर्यमगमद्योगेनेवमहात्मनः ॥ नदिवाबाधयांचक्रेक्षुत्तृण्निद्राक्षपासुताम् ॥ ७६ ॥ अतंद्रितमनाआसीत्सातल्लिंगनिरीक्षणे ॥ अक्ष्णोर्निमेषायावंतस्तस्याआसन्दिवानिशम् ॥ ७७ ॥ तावत्कालस्तयासाध्व्यामहान्विघ्नोऽनुमीयते ॥ निमेषांतरितःकालोयोयोव्यर्थोगतोमम ॥ लिंगानवेक्षणात्तत्रप्रायश्चितंकथंभवेत् ॥ ७८ ॥ इतिसंचिंतयंत्येवसेवांतत्त्याजनोंकृतेः ॥ जलाभिलाषिणीसातुलिंगनामामृतंपिबेत् ॥ ७९ ॥ नान्यद्दिदृक्षिणी तस्याअक्षिणीश्रुतिगेअपि ॥ विहायलिंगमोंकारंहृद्विहायःस्थितंसताम् ॥ ८० ॥ तस्याःशब्दग्रहौनान्यशब्दग्रहणतत्परौ ॥ अतीवनिपुणौजातौतत्सन्माल्यकरौकरौ ॥ ८१ ॥ नान्यत्रचरणौतस्याश्चरतःसुखवांछया ॥ त्यक्त्वोंकाराजिरक्षोणींक्षुण्णांनिर्वाणपद्मया ॥ ८२ ॥ ओंकारंप्रणवंसारंपरंब्रह्मप्रकाशकम् ॥ शब्दब्रह्मत्रयीरूपंनादबिंदुकलालयम् ॥ ८३ ॥

जलकी तृषा लगनेपर लिंगहीके नामामृतको पीलेतीथी ॥ ७९ ॥ उसकी कानोंतक फैलीहुई (बडी बडी) आंखें, सज्जनोंके हृदयाकाशवासी ओंकारेश्वरको छोडकर दूसरी ओर कभी जातीही नहींथीं ॥ ८० ॥ उसके कानोंमें दूसरे शब्द पडतेही न थे, उसके दोनों हाथ ओंकारेश्वरकी माला गूँथनेमें बडेही पक्के होगयेथे ॥ ८१ ॥ उसके चरण युगलभी मोक्षलक्ष्मीसे शोभित ओंकारेश्वरके आंगनको त्यागकर अन्यत्र कहींभी सुखकी इच्छासे नहीं विचरतेथे ॥ ८२ ॥ ब्रह्मप्रकाशक, प्रणववाच्य, परमसार, (स्थिर) त्रिवेदस्वरूप, शब्दब्रह्म, नादबिंदु और कलाके आश्रय ॥ ८३ ॥

सदक्षर, आदि स्वरूप, विश्वरूप, कार्यकारणात्मक,वरेण्य,वरप्रद, वर (सर्वश्रेष्ठ) शाश्वत, शांत, ईश्वर॥८४॥सर्वलोगोंके एकमात्र जनक,सब किसीके पालक, सबीलोगोंके संहारक एवं समस्त लोकोंसे वंदित ॥८५॥ आदिअन्तसे हीन, नित्य, शिव, शंकर, अव्यय, अद्वितीय त्रिगुणातीत, भक्तहृदयवासी, ॥८६॥ निरुपाधि, निराकार, निर्विकार, निरंजन, निर्मल, निरहंकार, निष्प्रपंच, निजोदय (स्वप्रकाश) ॥ ८७ ॥ स्वात्माराम, अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, सर्वस्वदाता, सर्वसुखास्पद, सब कुछ ओंकारेश्वरही हैं ॥ ८८ ॥ यही बात उसकी जिह्वा रातदिन कहा करतीथी, और कभी दूसरे किसीका नामभी नहीं

सदक्षरंचादिरूपंविश्वरूपंपरावरम् ॥ वरंवरेण्यंवरदंशाश्वतंशांतमीश्वरम् ॥ ८४ ॥ सर्वलोकैकजनकंसर्वलोकैकरक्षकम् ॥ सर्वलोकैक संहर्तृसर्वलोकैकवंदितम् ॥८५॥ आद्यंतरहितंनित्यंशिवंशंकरमव्ययम्॥ एकंगुणत्रयातीतंभक्तस्वांतकृतास्पदम् ॥ ८६ ॥ निरुपाधिंनि राकारंनिर्विकारंनिरंजनम् ॥ निर्मलंनिरहंकारंनिष्प्रपंचंनिजोदयम् ॥८७॥ स्वात्माराममनंतंचसर्वगंसर्वदर्शिनम् ॥ सर्वदंसर्वभोक्तारंसर्वं सर्वसुखास्पदम् ॥ ८८ ॥ वागिंद्रियंतदीयंचप्रोच्चरत्तदहर्निशम् ॥ नामांतरंनगृह्णातिकचिदन्यस्यकस्यचित् ॥ ८९ ॥ एतन्नामाक्षररसं रसयंतीदिवानिशम् ॥ रसनानैवजानातितस्याअन्यद्रसांतरम् ॥ ९० ॥ संमार्जनंरंगमालाःप्रासादंपरितःसदा ॥ विदध्यान्माधवीतत्रत थार्चापात्रशोधनम् ॥ ९१ ॥ तत्रपाशुपतायेवैप्रणवेशार्चनेरताः ॥ तांश्वशुश्रूषयेन्नित्यंपितृबुद्ध्यातिभक्तितः ॥ ९२ ॥ वैशाखस्यचतुर्द श्यामेकदासातुमाधवी ॥ रात्रौजागरणंकृत्वादिवोपवसनान्विता ॥ ९३ ॥ यात्रामिलितभक्तेषुप्रातर्यातेषुसर्वतः ॥ संमार्जनादिकंकृत्वा लिंगमभ्यर्च्यहर्षतः ॥ ९४ ॥

लेतीथी ॥ ८९ ॥ उसकी रसना अहर्निश ओंकारेश्वरहीके नामाक्षरका रस चीखा करती थी, और दूसरे रसोंको तो जानतीभी नहींथी ॥ ९० ॥ माधवी वहांपर प्रतिदिन मंदिरके चारोंओर झार बोहार देती और चित्रकारी बनाती एवं पूजाके पात्रों (पुजहाई) को मांज धो देतीथी ॥ ९१ ॥ उस स्थानपर ओंकारेश्वरकी पूजा करनेवाले (पुजारी) जो पाशुपत लोग रहतेथे, वह कन्या पिताकी बुद्धिसे भक्तिपूर्वक उन लोगोंकी शुश्रूषा करतीथी ॥ ॥ ९२ ॥ एकवार वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशीके दिन उपवास और रात्रिमें जागरण करके वह माधवी ॥ ९३ ॥ प्रातःकाल जबकि यात्राके लिये

इकठ्ठे हुए भक्तलोग इधर उधर चलेगये तब बडे हर्षके साथ मंदिरको झाड बोहारकर लिंगकी पूजाकरनेके उपरान्त॥९४॥ मधुर गीतको गाती और भक्तिके आवेशमें आकर नाचती एवं ओंकारेश्वरलिंगका ध्यान करतीहुई उसी लिंगमें लीन होगई ॥ ९५ ॥ हमलोगोंके प्रधान आचार्य तपस्वियोंके देखतेही देखते वह महाबुद्धिमती कन्या इसी पार्थिव शरीरसे आकाशमें भरीहुई जो ज्योति उसलिंगसे निकली उसीमें ज्योतीरूप होगई ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ आजतक उस क्षेत्रके निवासी लोग, वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशीको बडे उत्सवके साथ वहां (पर ओंकारेश्वर) की यात्रा करते हैं ॥९८॥ वहांपर (उक्त) चतुर्दशीके दिन उपवास और जागरणकरनेसे चाहे कहींपर मरे परन्तु (अन्तसमयमें) परम ज्ञान उत्पन्न होजाताहै ॥९९॥ ब्रह्मांडके भीतर सर्वत्रके जितनेही

गायंतीमधुरंगीतंनृत्यंतीनिजलीलया॥ध्यायंतीलिंगमोंकारंतत्रलिंगेलयंययौ ॥९५॥ अनेनैवशरीरेणपार्थिवेनमहामतिः॥ अस्मदाचार्यमुख्यानांपश्यतांचतपस्विनाम् ॥ ९६ ॥ प्रादुर्बभूवयल्लिंगाज्ज्योतिर्जटिलितांबरम् ॥ तत्रज्योतिषिसाबालाज्योतिर्मय्यपिसाप्यभूत् ॥ ॥ ९७ ॥ राधशुक्लचतुर्दश्यामद्यापिक्षेत्रवासिनः॥ तत्रयात्रांप्रकुर्वंतिमहोत्सवपुरःसराः ॥ ९८ ॥ तत्रजागरणंकृत्वाचतुर्दश्यामुपोषिताः॥ प्राप्नुवंतिपरंज्ञानंयत्रकुत्रापिवैमृताः ॥ ९९ ॥ ब्रह्मांडोदरमध्येतुयानितीर्थानिसर्वतः ॥ तानिवैशाखभूतायामायांत्योंकृतिदर्शने ॥ १०० ॥ लिंगाग्रेश्रीमुखीनाम्नीगुहास्तिपरमोत्तमा ॥ पातालस्यचतद्वारंतत्रसिद्धावसंतिहि ॥ १ ॥ तिष्ठेयुःपंचरात्रंयेगुहायांतत्रसुव्रताः॥ तेनागकन्याःपश्यंतिब्रूयुस्ताश्चशुभाशुभम् ॥ २ ॥ कंदरोत्तरदिग्भागेतत्रकूपोरसादकः ॥ आषण्मासंचतत्पीत्वापिबेद्ब्रह्मरसायनम् ॥ ३ ॥

तीर्थ हैं वे सब वैशाखकी शुक्लाचतुर्दशीको ओंकारेश्वरके दर्शनार्थ (काशीमें) आते हैं शिवपुराणमेंभी यह बात पाई गईहै, यथा "ब्रह्माण्डोदर मध्ये तु यानि तीर्थानि सुव्रते। वाराणस्यां गमिष्यंति वैशाखस्य चतुर्दशीम्" ॥ १०० ॥ लिंगके सन्मुखही श्रीमुखीनाम्नी परमोत्तम गुफा है जो पाताल (जाने) का द्वारहै; उसमें सिद्धलोग रहतेहैं ॥ १ ॥ जो लोग उत्तमव्रत धारणकरके पांचरात उस गुहामें वास करते हैं उनको नागोंकी कन्यायें दिखाई पडतीहैं और वे सब शुभाशुभ (कर्मों) को कह देतीहैं ॥ २ ॥ उस गुहाके उत्तरभागमें एक रसोदक नाम कूप है, छः मास पर्यंत उसका जल पीनेसे साक्षात

ब्रह्मरसायन पानकरनेका स्वाद मिलनेलगताहै ॥ ३॥ वहींपर नादकी उत्पत्तिका स्थान नादेश्वर नामक लिंग वर्तमान है, जिसके दर्शनसे समस्त नादात्मक विश्व (उसका) श्रवण गोचर होनेलगताहै ॥ ४ ॥ वहांपर गंगा और वरणाके जलसे परिपूर्ण मत्स्योदरीतीर्थमें स्नानकरके मनुष्य कृतकृत्य होजाताहै और उसे फिर कभी (कहींपर) शोक नहीं करना पडता ॥ ५ ॥ ओंकारेश्वरके (असंख्य) सेवक लोग इसी पार्थिवशरीरसे दिव्यरूप होकर तुरत परम सिद्धिको प्राप्त होगये हैं ॥ ६ ॥ (प्रथमतो) समस्त ब्रह्माण्डभरमें अविमुक्तक्षेत्र सबसे प्रधान है, उसमेंभी मत्स्योदरीके तीरपर ओंकारेश्वरका स्थान तो औरभी श्रेष्ठहै ॥ ७ ॥ ओहो !! जिन लोगोंने काशीमें ओंकारेश्वरको न प्रणामही किया न पूजनही किया, वे सब (अपनी) माताकी

तत्रनादेश्वरंलिंगंदृष्ट्वानादनिदानभूः ॥ सर्वनादात्मकंविश्वंतच्छ्रोत्रगोचरीभवेत् ॥ ४ ॥ तत्रमत्स्योदरींस्नात्वास्वर्धुनींवरुणाप्लुताम् ॥ कृतकृत्योभवेज्जंतुर्नैवशोचतिकुत्रचित् ॥ ५ ॥ असंख्याताग्रताःसिद्धिमोंकारेश्वरसेवकाः ॥ पार्थिवेनैवदेहेनदिव्यभूतेनतत्क्षणात् ॥ ६ ॥ अविमुक्तंपरंक्षेत्रंब्रह्मांडादपिसर्वतः ॥ ततोपिपरओंकारउक्तोमत्स्योदरीतटे ॥ ७ ॥ प्रणवेशोंऽगयैःकाश्यांननतोनापिचार्चितः ॥ किमर्थंतेसमुत्पन्नामातृतारुण्यहारिणः ॥ ८ ॥ यदाप्रभृतिविश्वेशोमंदरादागतोऽभवत् ॥ तस्मिन्नानंदगहनेतदाप्रभृतिसत्तम ॥ ९ ॥ सर्वाण्यायतनान्याशुसाब्धीनिसगिरीण्यपि ॥ सनदीनिसतीर्थानिसद्वीपानियथुस्ततः ॥ ११० ॥ इदानींममभाग्येनस्मारितोहंत्वयामुने ॥ अहमप्यागमिष्यामियामःकाशींशनैःशनैः ॥ ११ ॥ एतेपिममशिष्यायेमहापाशुपतव्रताः ॥ काशींयियासवस्तेपियतःसर्वेमुमुक्षवः ॥ ॥ १२ ॥ अपिवार्धकमासाद्ययैःकाशीनैवशीलिता ॥ मानुषेदुर्लभेनष्टेकुतस्तेषांमहासुखम् ॥ १३ ॥

तरुनाई बिगाडनेके लिये क्यों उत्पन्न हुए ? ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तम ! जबसे भगवान् विश्वेश्वर मंदराचलसे आनन्दवनमें आये हैं तबसे ॥ ९ ॥ वहांपर समुद्र, पर्वत, नदी, तीर्थ, और द्वीपोंके सहित सबी (देवता) आयतन चलेगये हैं ॥ ११० ॥ हे मुने ! इस घडी तुमने मेरे भाग्यहीसे मुझे स्मरण करादिया, मैंभी आताहूं, धीरे धीरे काशीहीको चलूंगा ॥ ११ ॥ ये सब महापाशुपतव्रतधारी मेरे शिष्यलोगभी काशी चलनेके अभिलाषी हैं क्योंकि ये तो सभी कोई मोक्षार्थी ही ठहरे ॥१२॥ जिन लोगोंने वृद्धावस्थामेंभी काशीका सेवन नहीं किया, वे सब इस परम दुर्लभ मनुष्य जन्मके बीतजानेपर

फिर कहांसे महासुख पासकतेहैं? ॥ १३ ॥ जबतक इन्द्रियां विकल नहीं होजातीं, किंवा आयुष्यका क्षय नहीं होजाता, तबीतक शंकरका आनन्दकानन प्रयत्नपूर्वक सेवनीय है ॥ १४ ॥ जो लोग श्रीके मन्दिर महादेवके आनंदवनमें आश्रय लेलेते हैं उन सब महासुखके प्रधान अवलंबनरूप लोगोंको लक्ष्मी अचल होकर कभी छोडतीही नहीं है ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे पाशुपतश्रेष्ठ गर्गाचार्य इस रमणीय कथाको कहकर भरद्वाजनन्दन दमनके साथ वाराणसी पुरीमें जा पहुँचे ॥ १६ ॥ और वह धर्मात्मा दमनभी गर्गाचार्यके साथ श्रीमान् ओंकारेश्वरकी आराधना करके उसी लिंगमें लीन होगया ॥

यावन्नेंद्रियवैकल्यंयावन्नैवायुषःक्षयः ॥ तावत्सेव्यंप्रयत्नेनशंभोरानंदकाननम् ॥ १४ ॥ यआनंदंवनंशंभोःशिश्रियुःश्रीनिकेतनम् ॥ अचलाश्रीर्नमुंचेत्तान्महासौख्यैकशेवधीन् ॥ १५ ॥ इत्याख्यायकथांरम्यांगर्गःपाशुपतोत्तमः ॥ भारद्वाजेनसहितःप्रापवाराणसीं पुरीम् ॥ १६ ॥ दमनोपिहिधर्मात्मागर्गाचार्येणसंयुतः ॥ आराध्यश्रीमदोंकारंतस्मिँल्लिंगेलयंगतः ॥ १७ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इल्वलारेपरंस्थानमोंकारमविमुक्तके ॥ तत्रसिद्धिंपरांजग्मुःसाधकाबहुशोमुने ॥ १८ ॥ कलौकलुषचित्तानांपुरोनाख्येयमेवहि ॥ प्रणवेश्वरमाहात्म्यंनास्तिकानांविशेषतः ॥ १९ ॥ येनिंदंतिमहादेवंक्षेत्रंनिंदंतियेऽधियः ॥ पुराणंयेचनिंदंतितेसंभाष्यानकुत्रचित् ॥ १२० ॥ ओंकारसदृशंलिंगंनक्वचिज्जगतीतले ॥ इतिगौर्यैसमाख्यातंदेवदेवेननिश्चितम् ॥ १२१ ॥

॥ १७ ॥ स्कन्दने कहा—हे इल्वलरिपो ! अविमुक्तक्षेत्रमें ओंकारेश्वर एक प्रधानस्थान है, क्योंकि हे मुने ! वहांपर बहुतेरे साधकलोग परमसिद्धिको प्राप्त होचुके हैं ॥ १८ ॥ कलियुगमें पापहृदय और विशेषकरके नास्तिक लोगोंके आगे इस ओंकारेश्वरके माहात्म्यको कभी नहीं कहना चाहिए ॥ ॥ १९ ॥ जो बुद्धिहीनलोग महादेवकी निन्दा करें, किंवा क्षेत्रकी निन्दाकरें अथवा पुराणकी निन्दाकरें उनके साथ, कहींपर (कभी) बातचीत नहीं करनाचाहिए ॥ १२० ॥ भूतलमें ओंकारेश्वरके समान दूसरा कोईभी लिंग नहीं है,—यह बात निश्चितरूपसे महादेवने गौरीदेवीसे कही है ॥ १२१ ॥

मनुष्य तद्गतचित्त होकर इस अध्यायको श्रवणकरे तो सब पापोंसे विमुक्त होकर शिवलोकमें प्राप्तहोताहै ॥ १२२ ॥ दोहा—ओंकारेश्वरनामसे, रह्यो ग्राम जो ख्यात । हुक्कालेसन नाम धरि, वह महाल कहिजात ॥ १ ॥ यदपि जवन गन भग्नकरि, विनशायो तेहि नाम । पर अजहूं अति रम्यहै, ओंकारेश्वर धाम ॥२॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ अगस्त्य बोले—हे विशाख ! महापातक नाशिनी इस ओंकारेश्वरकी कथाके श्रवण करनेसे मेरी तो तृप्तिही नहीं होतीहै सो अब आप त्रिलोचनेश्वरलिंगकी कथा कीर्तन करें ॥ १ ॥ हे महाबुद्धे ! षण्मुख ! भगवान् महादेवने भगवतीसे फिर त्रिलोचनलिंगके प्रकट होनेकी कथा किस प्रकारसे कही थी ? ॥ २ ॥ स्कन्द कहनेलगे—हे मुने ! देवदेवने

इममध्यायमाकर्ण्यनरस्तद्गतमानसः ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यःशिवलोकमवाप्नुयात् ॥१२२॥ ॥ इतिश्रीस्कंदमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेओंकारमाहात्म्यंनामचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥ ॥छ॥ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ श्रुत्वोंकारकथामेतांमहापातकनाशिनीम् ॥ नतृप्तोस्मिविशाखाथब्रूहित्रैविष्टपींकथाम् ॥ १ ॥ कथंचकथितादेव्यैदेवदेवेनषण्मुख ॥ आविर्भूतिर्महाबुद्धेपुण्यात्रैलोचनीपरा ॥ २ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ आकर्णयमुनेवच्मिकथांश्रमनिवारिणीम् ॥ यथादेवेनकथितांत्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥३॥ विरजाख्यंहितत्पीठंतत्रलिंगंत्रिविष्टपम् ॥ तत्पीठदर्शनादेवविरजाजायतेनरः ॥ ४ ॥ तिस्रस्तुसंगतास्तत्रस्रोतस्विन्योघटोद्भव ॥ तिस्रःकल्मषहारिण्योदक्षिणेहित्रिलोचनात् ॥ ५ ॥ स्रोतोमूर्तिधराःसाक्षाल्लिंगस्नपनहेतवे ॥ सरस्वत्यथकालिंदीनर्मदाचातिशर्मदा ॥६॥ तिस्रोपिहित्रिसंध्यंताःसरितःकुंभपाणयः ॥ स्नपयंतिमहाधामलिंगंत्रैविष्टपंमहत् ॥ ७ ॥

त्रिलोचनकी उत्पत्तिके विषयमें जो श्रमनिवारिणी कथा कहीथी उसे मैं कहताहूं, श्रवण करो ॥ ३ ॥ (वह स्थान काशीमें) विरजापीठनामसे प्रसिद्धहै और वहांपर जो लिंग है, वह त्रिविष्टप कहाताहै, उस पीठके दर्शनहीसे मनुष्य रजोगुणसे रहित होजाताहै ॥ ४ ॥ हे घटोद्भव ! त्रिलोचनसे दक्षिणकी ओर तीन नदियां मिलीं हुईं हैं, और वे तीनोंही पातक हारिणी हैं ॥ ५ ॥ केवल उसी लिंगके स्नान करानेके लिए, सरस्वती; यमुना और परमशर्मदा नर्मदा ये तीनोंही साक्षात स्रोतकी मूर्ति धारण किये थीं ॥ ६ ॥ वे तीनोंही नदियां हाथमें कुंभ लेकर महाते जस्वी उस त्रिविष्टप महालिंगको त्रिकाल स्नान

कराती हैं ॥ ७ ॥ और उसी लिंगके तीन ओर उन तीनों नदियोंने अपने अपने नामानुसार तीन लिंगोंको स्थापित किया है, उन लिंगोंके दर्शन करनेसे लोगोंको उन नदियोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ त्रिविष्टपके दक्षिणभागमें सरस्वतीश्वर लिंगहै, जो दर्श स्पर्शसे जडताको दूरकर सारस्वत पदको देताहै ॥ ९ ॥ पश्चिमओर यमुनेश्वर लिंगहै, जो भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे पापी मनुष्योंकोभी यमलोकके भयको हटा देताहै ॥ १० ॥ एवं त्रिलोचनके पूर्व परम शर्म (कल्याण) प्रद नर्मदेश्वर लिंग है, जिसका पूजन करनेसे मनुष्योंको फिर गर्भवास नहीं होने पाता ॥ ११ ॥ त्रिविष्टपके समीपही पिलपिला तीर्थमें स्नान और त्रिलोचनालिंगका दर्शन करलेने पर फिर किस बातका शोच रहजाताहै ? ॥ १२ ॥ (कहांलों कहें) यदि मनुष्य त्रिविष्टप

लिंगानिपारिस्ताभिः स्वनाम्नास्थापितान्यपि ॥ तेषांसंदर्शनात्पुंसांतासांस्नानफलंभवेत् ॥ ८ ॥ सरस्वतीश्वरंलिंगंदक्षिणेनत्रिविष्टपात् ॥ सारस्वतंपदंदद्याद्दृष्टंस्पृष्टंचजाड्यहृत् ॥ ९ ॥ यमुनेशंप्रतीच्यांचनरैर्भक्त्यासमर्चितम् ॥ अपिकिल्बिषवद्भिश्चयमलोकनिवारणम् ॥ १० ॥ दृष्टंत्रिलोचनात्प्राच्यांनर्मदेशंसुशर्मदम् ॥ तल्लिंगार्चनतोनॄणांगर्भवासोनिषिध्यते ॥ ११ ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेत्रिविष्टपसमीपतः ॥ दृष्ट्वात्रिलोचनंलिंगंकिंभूयःपरिशोचति ॥ १२ ॥ त्रिविष्टपस्यलिंगस्यस्मरणादपिमानवः ॥ त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्याविचारणा ॥ १३ ॥ त्रिविष्टपस्यद्रष्टारः स्रष्टारःस्युर्नसंशयः ॥ कृतकृत्यास्तएवात्रतएवात्रमहाधियः ॥ १४ ॥ आनंदकाननेलिंगंप्रणतंयैस्त्रिविष्टपम् ॥ त्रिलोचनस्यनामापियैःश्रुतंशुद्धबुद्धिभिः ॥ १५ ॥ सप्तजन्मार्जितात्पापात्तेपूतानात्रसंशयः ॥ पृथिव्यांयानिलिंगानितेषुदृष्टेषुयत्फलम् ॥ १६ ॥ तत्स्यात्त्रिविष्टपेदृष्टेकाश्यांमन्येततोधिकम् ॥ काश्यांत्रिविष्टपेदृष्टेदृष्टंसर्वंत्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥

लिंगका स्मरणभी करसके तो वह त्रिविष्टप (स्वर्ग) का अधिपति होवे, इसमें कुछ विचार करना नहीं चाहिए ॥ १३ ॥ त्रिविष्टपके दर्शन करनेवाले निस्सन्देह ब्रह्मपदको प्राप्त होजाते हैं, एवं इस संसारमें वेही परम बुद्धिमान् और कृतकृत्य समझेजाते हैं ॥ १४ ॥ आनंदवनमें जिन लोगोंने त्रिविष्टप लिंगको प्रणाम किया, अथवा जिनःशुद्धबुद्धिमानोंने त्रिलोचनका नामभी सुनलिया ॥ १५ ॥ वे लोग जगत्में सात जन्मके संचित पापोंसे निस्सन्देह पवित्र होचुके ! पृथिवीपर जितनेही लिंगहैं उनके दर्शनसे जो फल होताहै ॥ १६ ॥ काशीमें त्रिविष्टप लिंगके दर्शन करलेनेसे मैं समझताहूं कि उससेभी

अधिक फल प्राप्त होताहै, (क्योंकि) काशीमें त्रिविष्टप लिंगके दर्शन करनेसे समग्र त्रिविष्टप (स्वर्ग) ही दृष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥ क्षणमात्रमें वह मनुष्य निष्पाप होजाता और उसे फिर कभी गर्भभागी नहीं होना पड़ता, जो उत्तरवाहिनी गंगाके जलमें पिलपिला तीर्थपर स्नान करताहै, उसे समग्र तीर्थस्नान और समस्त यज्ञस्नानका फल प्राप्त होताहै । जहाँपर परमपवित्र तीनोंही नदियां साक्षात् वास करतीहैं, वहांपर श्राद्ध कर सके तो गयामें श्राद्ध करनेका कौन प्रयोजन है ? पिलपिलातीर्थमें स्नान तथा पिंडदान एवं त्रिविष्टप लिंगका दर्शन करनेसे कोटितीर्थ करनेका फल प्राप्त होताहै । अन्य स्थानके उपार्जित पाप केवल काशीके दर्शनहींसे दूर होजातेहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ किन्तु काशीमें जो पाप कियाजाताहै वह तो पिशाचही बना देताहै,

क्षणान्निर्धूतपापोसौनपुनर्गर्भभाग्भवेत् ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वावभृथवान्सच ॥ १८ ॥ योवैपिलिपिलातीर्थेस्नात्वोत्तरवहांभसि ॥ सरित्त्रयंमहापुण्यंयत्रसाक्षाद्वसेत्सदा ॥ १९ ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वागयायांकिंकरिष्यति ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेकृत्वावैपिंडपातनम् ॥२०॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिंगंकोटितीर्थफलंलभेत् ॥ यदन्यत्रार्जितंपापंतत्काशीदर्शनाद्व्रजेत् ॥ २१ ॥ काश्यांतुयत्कृतंपापंतत्पैशाचपदप्रदम् ॥ प्रमादात्पातकंकृत्वाशंभोरानंदकानने ॥ २२ ॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिंगंतत्पापमपिहास्यति ॥ सर्वस्मिन्नपिभूपृष्ठेश्रेष्ठमानंदकाननम् ॥ २३ ॥ तत्रापिसर्वतीर्थानिततोप्योंकारभूमिका ॥ ओंकारादपिसल्लिंगान्मोक्षवर्त्मप्रकाशकात् ॥ २४ ॥ अतिश्रेष्ठतरंलिंगंश्रेयोरूपंत्रिलोचनम् ॥ ॥ २५ ॥ तेजस्विषुयथाभानुर्दृश्येषुचयथाशशी ॥ तथालिंगेषुसर्वेषुपरंलिंगंत्रिलोचनम् ॥ २६ ॥ त्रिलोचनार्चकानांसापदवीनदवीयसी ॥ परंनिर्वाणपद्मायामहासौख्यैकशेवधेः ॥ २७ ॥

(तब रहा यह कि) यदि शिवके आनंदकाननमें प्रमादवश कोई पातक होजावे तो ॥ २२ ॥ वह भी त्रिविष्टप लिंगके दर्शन करनेसे छूट जाताहै, समस्त भूमंडलमें आनन्दकाननही सबसे श्रेष्ठहै, ॥ २३ ॥ उसमें तीर्थस्थान और भी श्रेष्ठहैं, उन सबोंमेंभी ओंकारेश्वरका स्थान प्रधान है, मोक्षमार्गदर्शक ओंकारेश्वरमहालिंगसेभी ॥ २४ ॥ श्रेयोरूप त्रिलोचनलिंग अत्यंत श्रेष्ठतर है ॥ २५ ॥ जैसे तेजस्वियोंमें सूर्य, और दर्शनीयोंमें चन्द्रहैं, वैसेही सब लिंगोंमें त्रिलोचनलिंगभी प्रधान है॥२६॥असाधारण महासुखकी खानि निर्वाणलक्ष्मीकी परम पदवीभी त्रिलोचनके पूजकोंको कुछ दूर नहीं रहजाने पाती ॥२७॥

त्रिलोचनके एक बारकी पूजासे जो कल्याण प्राप्त होताहै, अन्य लिंगोंका जन्मभर पूजन करने परभी वह फल नहीं मिलसकता ॥ २८ ॥ जो महाबुद्धिमान् लोग काशीमें त्रिलोचन लिंगका अर्चन करतेहैं, वे सब मेरी प्रीतिके चाहनेवाले सबी त्रिलोकवासियोंके पूज्य हैं ॥ २९ ॥ मनुष्यगण, सब प्रकारसे संन्यास ले पाशुपतव्रतको धारणकर, फिरभी नियमोंसे च्युत होनेपर क्यों डरते हैं ? ॥ ३० ॥ जब कि महापातकावलीके संहारक मोक्षके कोशागार, पुण्योंकी राशि, त्रिविष्टप महालिंग विद्यमानही है ॥ ३१ ॥ एक बारभी त्रिलोचन महालिंगके पूजन करनेसे सैकडोंजन्मके बटोरे हुए सब (पुराने)

सकृत्त्रिलोचनार्चातोयच्छ्रेयःसमुपार्ज्यते॥ नतदाजन्मसंपूज्यलिंगान्यन्यानिलभ्यते॥ २८ ॥ काश्यांत्रिलोचनंलिंगंयेर्चयंतिमहाधियः ॥ तेर्च्यास्त्रिभुवनौकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥२९॥ कृत्वापिसर्वसंन्यासंकृत्वापाशुपतव्रतम्॥ नियमेभ्यःस्खलित्वापिकुतोबिभ्यतिमानवाः ॥ ३० ॥ विद्यमानेमहालिंगेमहापापौघहारिणि॥त्रिविष्टपेपुण्यराशौमोक्षनिक्षेपसद्मनि ॥३१॥ समभ्यर्च्यमहालिंगंसकृदेवत्रिलोचनम् ॥ मुच्यतेकलुषैःसर्वैरपिजन्मशतार्जितैः॥ ३२ ॥ ब्रह्महापिसुरापोवास्तेयीवागुरुतल्पगः ॥ तत्संयोग्यपिवावर्षंमहापापीप्रकीर्तितः॥ ३३ ॥ परदाररतश्चापिपरहिंसारतोपिवा ॥ परापवादशीलोपितथाविस्रंभघातकः ॥ ३४ ॥ कृतघ्नोपिभ्रूणहापिवृषलीपतिरेववा ॥ मातापितृगुरुत्यागीवह्निदोगरदोपिवा ॥ ३५ ॥ गोघ्नःस्त्रीघ्नोपिशूद्रघ्नःकन्यादूषयितापिच ॥ क्रूरोवापिशुनोवापिनिजधर्मपराङ्मुखः ॥ ३६ ॥ निंदको नास्तिकोवापिकूटसाक्ष्यप्रवादकः ॥ अभक्ष्यभक्षकोवापितथाऽविक्रेयविक्रयी ॥३७॥ इत्यादिपापशीलोपिमुक्त्वैकंशिवनिंदकम्॥ पापान्निष्कृतिमाप्नोतिनत्वालिंगंत्रिलोचनम् ॥ ३८ ॥

पाप छूटजाते हैं ॥ ३२ ॥ ब्रह्मघाती, मद्यप, (सुवर्णका) चोर, गुरुपत्नीगामी, एवं वर्षभरतक इन सबोंका संसर्ग करनेवाला ये सब महापापी कहेजाते हैं ॥ ३३ ॥ एवं परस्त्रीगामी, परहिंसक, परनिन्दक, विश्वासघाती ॥ ३४ ॥ कृतघ्न, भ्रूणहा, वृषली (शूद्रा) पति, माता, पिता, औरं गुरुका त्यागदेनेवाला, आग लगानेवाला, विष खिलानेवाला ॥ ३५ ॥ गोघाती, स्त्रीघाती, शूद्रघाती, कन्यादूषक, क्रूर, पिशुन, स्वधर्मविमुख, ॥ ३६ ॥ निन्दक, नास्तिक, कूटसाक्षी, अपवादक, अभोज्यभोजीएवं अविक्रेय–विक्रयी ॥३७॥ इन सब पापोंके करनेवाले मनुष्यभी त्रिलोचनलिंगको प्रणाम करके इन सब

पापोंसे छुटकारा पासकतेहैं पर एक शिवनिंदककी निष्कृति नहीं होती ॥ ३८ ॥ जो मूढजन शिवका निन्दक हो, अथवा शिवशास्त्रोंकी निन्दामें तत्पर रहे, उसका निस्तार शास्त्रमें कहींपर किसीने नहीं देखाहै ॥ ३९ ॥ जो महाधम शिवकी निन्दा करे उसे आत्मघाती, और त्रैलोक्यघाती, एवं बोलनेके अयोग्य समझना चाहिए ॥ ४० ॥ जो लोग शिवकी निंदा अथवा शिवभक्तोंकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र सूर्य हैं घोर नरकमें पडतेहैं ॥ ४१ ॥ काशीमें मोक्ष चाहनेवालोंको प्रयत्नपूर्वक शैवोंकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि उन लोगोंके पूजनसे निस्सन्देह शिव प्रसन्न होते हैं ॥ ४२ ॥ संसारमें समस्त

शिवनिंदारतोमूढःशिवशास्त्रविनिंदकः ॥ तस्यनोनिष्कृतिर्दृष्टाक्कापिशास्त्रेपिकेनचित् ॥३९॥ आत्मघातीसविज्ञेयःसदात्रैलोक्यघातकः॥ शिवनिंदांविधत्तेयःसोनाभाष्योऽधमाधमः ॥ ४० ॥ शिवनिंदारतायेचशिवभक्तजनेष्वपि ॥ तेयांतिनरकेघोरेयावच्चंद्रदिवाकरौ ॥४१ ॥ शैवाःपूज्याःप्रयत्नेनकाश्यांमोक्षमभीप्सुभिः ॥ तेष्वर्चितेष्वपिशिवःप्रीतोभवत्यसंशयः ॥ ४२ ॥ सर्वेषामिहपापानांप्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ निःशंकैरेववक्तव्यंप्रमाणज्ञैरिदंवचः ॥ ४३ ॥ पुरश्चरणकामश्चेद्भीतोसियदिपापतः ॥ मन्यसेयदिनःसत्यंवाक्यंशास्त्रप्रमाणतः ॥ ॥ ४४ ॥ ततःसर्वपरित्यज्यकृत्वामनसिनिश्चयम् ॥ आनंदकाननंयाहियत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ ४५ ॥ यत्रक्षेत्रप्रविष्टानांनराणांनिश्चितात्मनाम् ॥ नबाधतेऽघनिचयःप्राप्यतेचपरोवृषः ॥ ४६ ॥ तत्राद्यापिमहातीर्थेत्रिस्रोतस्यतिनिर्मले ॥ पुण्येपिलिपिलानाम्नित्रिसरित्परिसेविते ॥ ४७ ॥

पापोंका प्रायश्चित्त करनाहो तो प्रमाणज्ञोंको निःशंक होकर यही बात कहनी चाहिये कि ॥ ४३ ॥ "यदि पापसे भयभीत होकर प्रायश्चित्त किया चाहते हो, और हमारे वचनको यदि शास्त्रके प्रमाणसे सत्य मानतेहो तो ॥ ४४ ॥ सबको छोड मनमें दृढनिश्चय करके आनन्दकाननमें जहांपर स्वयं विश्वेश्वर विराजमान हैं चलेजाओ" ॥ ४५ ॥ जहांपर क्षेत्रमें प्रवेश करतेही विश्वासीलोगोंको पापपुंज कोई बाधा नहीं पहुँचा सकते और बडा धर्म प्राप्त होताहै ॥४६॥ वहांपर तीन नदियोंसे सेवित, अत्यंतनिर्मल, त्रिलोचनके दृष्टिपातसे महापापोंके दूर करदेनेवाले, परमपवित्र, त्रिस्रोत पिलपिलानामक

तीर्थमें गृह्योक्त विधिसे स्नान और पितरोंका तर्पण ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ एवं वित्तशाठ्यको छोडकर यथाशक्ति दान और त्रिविष्टपलिंगका दर्शन तथा परम भक्तिपूर्वक विविध गंध पंचामृत, माल्य, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, बहुतसे भूषण ॥ ४९ ॥ ५० ॥ घंटा, दर्पण चामर, विचित्र-ध्वजा पताका, इत्यादि पूजाके उपकरण द्रव्य, नृत्य, वाद्य, उत्तम गान, ॥५१॥ जप, प्रदक्षिणा, नमस्कार, और परिचारक (पुजारी) लोगोंको सहर्ष पारितोषिक दान इत्यादिके द्वारा विधिवत् पूजन करके ॥५२॥ "मैं निष्पाप होगया" ऐसा कहता हुआ ब्राह्मणोंसेभी कहवालेवे (बस) प्राज्ञजन ऐसा करनेसे आजभी क्षणभरमें

त्रिलोचनाक्षिविक्षेपपरिक्षिप्तमहैनासि ॥ स्नात्वागृह्योक्तविधिनातर्पणीयान्प्रतर्प्यच ॥ ४८ ॥ दत्त्वादेयंयथाशक्तिवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिंगंसमभ्यर्च्यातिभक्तितः ॥ ४९ ॥ गंधाद्यैर्विविधैर्माल्यैःपंचामृतपुरःसरैः ॥ धूपैर्दीपैःसनैवेद्यैर्वासोभिर्बहुभूषणैः ॥५०॥ पूजोपकरणैर्द्रव्यैर्घंटादर्पणचामरैः॥चित्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवाद्यसुगायनैः ॥ ५१ ॥ जपैःप्रदक्षिणाभिश्चनमस्कारैर्मुदायुतैः ॥ परिचारकसंतोषैःकृत्वेतिपरिपूजनम् ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणान्वाचयेत्पश्चान्निष्पापोहमितिब्रुवन् ॥ एवंकुर्वन्नरःप्राज्ञोनिरेनाजायतेक्षणात् ॥ ५३ ॥ ततः पंचनदेस्नात्वामणिकर्णीह्रदेततः ॥ ततोविश्वेशमभ्यर्च्यप्राप्नोतिसुकृतंमहत् ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्तमिदंप्रोक्तंमहापापविशोधनम् ॥ नास्तिकेनप्रवक्तव्यंकाशीमाहात्म्यनिंदके ॥ ५५ ॥ ददद्द्रव्यलोभेनप्रायश्चित्तमिदंशुभम् ॥ दातानरकमाप्नोतिसत्यंसत्यंघटोद्भव ॥ ५६ ॥ क्ष्मांप्रदक्षिणीकृत्ययत्फलंसम्यगाप्यते ॥ प्रदोषेतत्फलंकाश्यांसप्तकृत्वस्त्रिलोचने ॥ ५७ ॥ भुजंगमेखलंलिंगंकाश्यांदृष्ट्वात्रिविष्टपम् ॥ जन्मांतरेपिमुक्तःस्यादन्यत्रमरणेसति ॥ ५८ ॥

पापरहित होजाताहै ॥ ५३ ॥ तदनंतर पंचगंगामें फिर मणिकर्णिका कुंडमें स्नान और विश्वेश्वरका पूजन करे तो परम पुण्यका भागी होजावे ॥ ५४ ॥ यह महापातकशोधक प्रायश्चित्त कहागयाहै इसे काशीके माहात्म्यकी निन्दा करनेवाले तथा नास्तिकोंसे कभी नहीं कहना चाहिये ॥ ५५ ॥ हे घटयोने ! यदि धनके लोभसे (नास्तिकको) यह उत्तम प्रायश्चित्त बतादेवे तो दाता नरकगामी होताहै यह सर्वथा सत्यही सत्यहै ॥५६॥ संपूर्ण पृथिवीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो फल मिलताहै प्रदोषकी वेला काशीमें त्रिलोचनकी सात फेरी देनेसेभी वही फल प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ काशीपुरीमें सर्पकी मेखलासे भूषित

त्रिविष्टपलिंगका दर्शन करने पर यदि कहीं अन्यत्र मृत्यु होजावे तो फिर वह मनुष्य दूसरे जन्ममें मुक्त होजाताहै ॥ ५८ ॥ अन्यत्र सब लिंगोंमें विशेष पुण्यकाल होताहै, परन्तु त्रिविष्टपलिंगके विषयमें लोगोंका रातदिन सदैव पुण्यकाल बनारहताहै ॥ ५९ ॥ यद्यपि ओंकार इत्यादि लिंग बडेही पापनाशक हैं, परन्तु हे पार्वति ! त्रिलोचन लिंगकी शक्ति कुछ दूसरीही है ॥ ६० ॥ हे अपर्णे ! जिस कारणसे यह लिंग सब लिंगोंकी अपेक्षा परम उत्तमहै, उसे मैं कहताहूं, कानलगाकर सुनो ॥ ६१ ॥ पूर्वकालमें यह महालिंग मेरी योगावस्थाहीमें भुवस्तलसे सातों पातालोंको भेदकर सबके आगेही निकल आयाथा ॥६२॥ हे गौरि ! इसी लिंगमें अत्यंत गुप्तरूपसे स्थित होकर मैंने तुमको त्रिनेत्र दिया था जिससे तुम उत्तम दर्शन करने लगी थी ॥

अन्यत्रसर्वलिंगेषुपुण्यकालोविशिष्यते ॥ त्रिविष्टपेपुण्यकालःसदारात्रिंदिवंनृणाम् ॥५९॥ लिंगान्योंकारमुख्यानिसर्वपापप्रकृंत्यलम् ॥ परंत्रैलोचनीशक्तिःकाचिदन्यैवपार्वति ॥ ६० ॥ यतःसर्वेषुलिंगेषुलिंगमेतदनुत्तमम् ॥ तत्कारणंशृण्वपर्णेकर्णेकुरुवदाम्यहम् ॥ ६१ ॥ पुरामेयोगयुक्तस्यलिंगमेतद्भुवस्तलात् ॥ उद्भिद्यसप्तपातालंनिरगात्पुरतोमहत् ॥ ६२ ॥ अस्मिँल्लिंगेपुरागौरिसुगुप्तंतिष्ठतामया ॥ तुभ्यंनेत्रत्रयंदत्तंनिरैक्षिष्ठास्तथोत्तमम् ॥ ६३ ॥ तदाप्रभृतिदेवेशिलिंगमेतत्रिलोचनम् ॥ विष्टपत्रितयांतस्थैर्गीयतेज्ञानदृष्टिदम् ॥ ६४ ॥ त्रिलोचनस्ययेभक्तास्तेपिसर्वेत्रिलोचनाः ॥ ममपारिषदास्तेतुजीवन्मुक्तास्तएवहि ॥ ६५ ॥ त्रिलोचनस्यलिंगस्यमहिमानंनकश्चन ॥ सम्यग्वेत्तिमहेशानिमयैवपरिगोपितम् ॥६६॥ शुक्लराधतृतीयायांस्नात्वापैलिपिलेह्रदे ॥ उपोषणपराभक्त्यारात्रौजागरणान्विताः ॥६७॥ त्रिलोचनंपूजयित्वाप्रातःस्नात्वापितत्रवै ॥ पुनर्लिंगंसमभ्यर्च्यदत्त्वाधर्मघटानपि ॥ ६८ ॥

॥ ६३ ॥ हे देवेशि ! तबीसे त्रैलोक्यवासीगण ज्ञानदृष्टिके देनेवाले इस लिंगको त्रिलोचननामसे कहनेलगे ॥ ६४ ॥ जो लोग त्रिलोचनलिंगके भक्तहैं, वे सब स्वयं त्रिलोचन होकर मेरे पारिषद होजाते हैं, और जीवन्मुक्त बने रहते हैं ॥ ६५ ॥ हे महेश्वरि ! त्रिलोचनलिंगकी महिमाको मैंनेही छिपा रक्खाहै, इसीसे उसे कोईभी ठीक ठीक नहीं जान सकता ॥ ६६ ॥ वैशाखमासकी शुक्ला तृतीयाको पिलपिलाह्रदमें स्नानकर भक्तिभावसे उपवासी हो रात्रिमें जागरण कर ॥ ६७ ॥ त्रिलोचनलिंगकी पूजा करै प्रातःकाल फिर वहींपर नहाकर पुनः त्रिलोचनलिंगका पूजनकरे, तदनंतर हर्षपूर्वक पितरोंके उद्दे

शसे अन्न और दक्षिणाके साथ धर्मघटोंको दानकरे फिर शिवभक्तोंके सहित पारण करे ॥६८॥६९॥ हे देवि इस पुण्यके प्रभावसे लोग पार्थिव शरीरको त्यागकर अवश्य मेरे आगे चलनेवाले गण होजाते हैं ॥ ७० ॥ हे गौरि ! देवता, मनुष्य और नागलोग तबीतक संसारचक्रमें घूमते रहतेहैं, जबतक काशीमें त्रिलोचन लिंगका दर्शन नहीं कर पाते ॥ ७१ ॥ एक बारभी पिलपिलाहृदमें स्नान कर त्रिलोचनका दर्शन करसकें तो फिर कभी कोईभी प्राणी इस लोकमें माताका स्तनपान नहीं करने पाता ॥ ७२ ॥ हे भामिनि ! प्रतिमासकी अष्टमी और चतुर्दशीको समस्ततीर्थ भगवान् त्रिविष्टपके दर्शन करनेको

सान्नान्सदक्षिणान्देविपितॄननुदिश्यहर्षिताः ॥ विधायपारणंपश्चाच्छिवभक्तजनैःसह ॥ ६९ ॥ विसृज्यपार्थिवंदेहंतेनपुण्येननोदिताः ॥ भवंतिदेविनियतंगणाममपुरोगमाः ॥ ७० ॥ तावद्भ्रमंतिसंसारेदेवामर्त्यामहोरगाः ॥ गौरियावन्नपश्यंतिकाश्यांलिंगंत्रिलोचनम् ॥७१॥ सकृत्त्रिविष्टपंदृष्ट्वास्नात्वापैलिपिलेह्रदे ॥ नजातुमातुस्तनपोजायतेजंतुरत्रहि ॥ ७२ ॥ प्रतिमासंसदाष्टम्यांचतुर्दश्यांचभामिनि ॥ आयांतिसर्वतीर्थानिद्रष्टुंदेवंत्रिविष्टपम् ॥ ७३ ॥ त्रिविष्टपाद्दक्षिणतःस्नातःपैलिपिलेऽम्भसि ॥ तत्रसंध्यामुपास्यैकांराजसूयफलंलभेत् ॥ ७४ ॥ पादोदकाख्यस्तत्रैवकूपःपापविनाशकः ॥ प्राश्यतस्योदकंमर्त्योनमर्त्योजायतेपुनः ॥ ७५ ॥ तस्यलिंगस्यपार्श्वेतुसंतिलिंगान्यनेकशः ॥ कैवल्यदानितान्यत्रदर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ७६ ॥ तत्रशांतनवंलिंगंगंगातीरेप्रतिष्ठितम् ॥ तद्दृष्ट्वाशांतिमाप्नोतिनरःसंसारतापितः ॥ ७७ ॥ तद्दक्षिणेमहालिंगंमुनेभीष्मेशसंज्ञितम् ॥ कलिःकालश्चकामश्चबाधतेनतदीक्षणात् ॥ ७८ ॥

(वहां) आतेहैं ॥ ७३ ॥ त्रिविष्टपसे दक्षिण और पिलपिलाके जलमें नहाकर यदि एकभी सन्ध्या करलेवे तो राजसूययज्ञका फल होताहै ॥ ७४ ॥ वहींपर पादोदकनामक पापविनाशक एक कूपहै, उसका जल पीलेनेसे मनुष्य फिर कभी मर्त्यलोकमें नहीं जनमने पाता ॥ ७५ ॥ त्रिलोचनके पासमें औरभी बहुतसे लिंगहैं जो यहांपर दर्शन और स्पर्शन करनेसे मुक्तिको दे देतेहैं ॥ ७६ ॥ वहांही गंगाके तीरपर एक शांतनवनामक लिंग प्रतिष्ठित है, उसके दर्शनसे संसारसे तापित मनुष्यभी शांतिलाभ करताहै ॥ ७७ ॥ हे मुने ! उसके दक्षिण भागमें भीष्मेश्वरनामक महालिंगहै, उसके दर्शनसे कलिकाल,

और काम कोई भी बाधा नहीं पहुँचा सकता ॥ ७८ ॥ उससे पश्चिम ओर द्रोणेश्वर नामसे कीर्तित एक महालिंगहै जिस लिंगके पूजनसे द्रोणाचार्यने फिरसे ज्योतीरूपको धारण कियाथा ॥ ७९ ॥ उससे आगे (बढ़कर) परम पुण्यप्रद अश्वत्थामेश्वर लिंगहै, जिसके पूजन करनेसे द्रोणनन्दन कालसेभी नहीं डरतेहैं ॥ ८० ॥ द्रोणेश्वरसे वायुकोणपर वालखिल्येश्वरनामक एक प्रधान लिंगहै, श्रद्धापूर्वक उसका दर्शन करनेसे समस्त यज्ञोंका फल प्राप्त होताहै ॥ ॥८१॥ उसके बायीं ओर वाल्मीकेश्वरसंज्ञक (एक) लिंग विराजमानहै, मनुष्य उसका सम्यक् प्रकारसे दर्शन पातेही सब शोकोंसे रहित होजाताहै॥८२॥ हे कुम्भज ! यहांपर जो एक घटना होचुकीहै, उसे कहताहूं जैसा कि देवदेवने भगवतीसे त्रिविष्टपका माहात्म्य वर्णन किया था ॥ ८३ ॥ दोहा—रह्यो

तत्प्रतीच्यांमहालिंगंद्रोणेशइतिकीर्तितम् ॥ यल्लिंगपूजनाद्द्रोणोज्योतीरूपंपुनर्दधौ ॥ ७९ ॥ अश्वत्थामेश्वरंलिंगंतदग्रेचातिपुण्यदम् ॥ यदर्चनवशाद्द्रौणिर्नबिभेत्यपिकालतः ॥ ८० ॥ द्रोणेशाद्वायुदिग्भागेवालखिल्येश्वरंपरम् ॥ तल्लिंगंश्रद्धयाहष्ट्वासर्वक्रतुफलंलभेत् ॥ ॥ ८१ ॥ तद्वामेलिंगमालोक्यवाल्मीकेश्वरसंज्ञितम् ॥ तस्यसंदर्शनादेवविशोकोजायतेनरः ॥ ८२ ॥ अन्यच्चात्रैवयद्वृत्तंतद्ब्रवीमि घटोद्भव ॥ त्रिविष्टपस्यमाहात्म्यंदेव्यैदेवेनभाषितम् ॥ ८३ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंड उत्तरार्धे पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ शृणुष्वमैत्रावरुणेपुराकल्पेरथंतरे ॥ इतिहासइहासीद्यःपीठेविरज संज्ञिते ॥ १ ॥ त्रिलोचनस्यप्रासादेमणिमाणिक्यनिर्मिते ॥ नानाभंगिगवाक्षाढ्येरत्नसानाविवायते ॥ २ ॥ कदाचिदपिकल्पांतेद्योलो केभ्रंशतिक्षये ॥ प्रोत्तंभनंस्तंभइवदत्तोविश्वकृतास्वयम् ॥ ३ ॥

पूर्वमें स्थान यह, सब अन्नको हाट । काशीमें विख्यात वह, श्रीतिरलोचन घाट ॥ १ ॥ जदपि भई वसती वहां, खडँहर भरी उजाड़ । पै अजहूं सब पापको, देति मारिकै गाड़ ॥ २ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायां पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥ स्कन्द कहने लगे—हे मित्रावरुणतनय ! अगस्त्य ! इस विरजसंज्ञक (सिद्ध) पीठपर पूर्वकालके रथंतर कल्पमें जो बात हुईथी उसका इतिहास श्रवण करो ॥ १ ॥ त्रिलोचनका मन्दिर मणि और माणिक्योंसे निर्मित था, उसमें नानाभाँतिकी जालियां और झरोखे बने थे, वह मन्दिर सुमेरुके समान ऊंचा था ॥ २ ॥ मानो विश्वकर्ताने

आपही प्रलयकालमें कदाचित् स्वर्गलोकको अधःपातसे बँचानेके लिए उसे प्रोत्तंभन (चांड) का खम्भा लगा दियाहै ॥३॥ हे मुनिवर ! (जो शिवालय अपने ऊपरकी) वायुसे हिलती हुई पताकाओंके अग्रभागसे मानो इधर उधरसे घुसतेहुए पापवर्गको इस प्रकारसे निषेध कररहाहै ॥ ४ ॥ जिसके ऊपर चमकता हुआ सुवर्णकलश ऐसा शोभायमान होरहाथा मानो पूर्णिमाका चन्द्रमा खेदसे (थककर) मंदिरपर विश्राम कर रहाहै ॥ ५ ॥ उसी मन्दिरपर एक जोडा कपोत (कबूतर) अपना घर बनाकर रहता था, जो सबेरे साँझ और दोपहरके समयमेंभी नित्यही (उस शिवालयकी) प्रदक्षिणा करता रहताथा ॥ ६ ॥ प्रतिदिन उसके पंखोंके वायुसे मन्दिर पर इधर उधरसे उडकर लगीहुई चारोंओरकी धूर उधिरा जाती थी ॥ ७ ॥ उसके कानोंमें

मरुत्तरंगिताग्राभिःपताकाभिरितस्ततः ॥ सन्निवारयतीवेत्थमघौघान्विशतोमुने ॥ ४ ॥ देदीप्यमानसौवर्णकलशेनविराजिते ॥ पार्वणेनशशांकेनखेदादिवसमाश्रिते ॥ ५ ॥ तत्रपारावतद्वंद्वंवसेत्स्वैरंकृतालयम् ॥ प्रातःसायंचमध्याह्नेकुर्वन्नित्यंप्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥ उड्डीयमानंपरितःपक्षवातैरितस्ततः ॥ रजःप्रासादसंलग्नंदूरीकुर्वद्दिनेदिने ॥ ७ ॥ त्रिलोचनेतिसततंनामभक्तैरुदाहृतम् ॥ त्रिविष्टपेतिचतथा तयोःकर्णातिथीभवेत् ॥ ८ ॥ चतुर्विधानिवाद्यानिशंभुप्रीतिकराण्यलम् ॥ तयोःकर्णगुहांप्राप्यप्रतिशब्दंप्रतन्वते ॥ ९ ॥ मंगलारार्तिकज्योतिस्त्रिसंध्यंपक्षिणोस्तयोः ॥ नेत्रांतर्निविशन्नित्यंभक्तचेष्टांप्रदर्शयेत् ॥ १० ॥ प्राणयात्रांविहायापिकदाचित्स्थिरमानसौ ॥ नोड्डीयवांछितंयातःपश्यंतौकौतुकंखगौ ॥ ११ ॥ तत्रभक्तजनाकीर्णप्रासादंपरितोमुने ॥ तंडुलादिचरंतौतौकुर्वातेचप्रदक्षिणम् ॥ १२ ॥

भक्तोंके कहेहुए त्रिलोचन और त्रिविष्टप इत्यादि नाम बराबर सुनाई पडा करतेथे ॥ ८ ॥ महादेवके बड़ेही रुचिकर काँस्यतालादि चतुर्विध बाजन उस जोड़ेकेकानरूपी गुफामें जाकर प्रतिध्वनि करने लगते थे ॥ ९ ॥ उन पक्षियोंकी आंखोंमें मंगल आर्तिकी ज्योति नित्यही त्रिकाल प्रवेश करके भक्तोंकी पूजादि चेष्टाको देखातीरहती थी ॥ १० ॥ कभी कभी तो वे दोनोंही खग स्थिर चित्तसे बैठ ऐसा कौतुक देखने लगते थे कि खाना पीना छोड़कर वहांसे कहींभी नहीं उड़ते थे ॥ ११ ॥ हे महर्षे ! वहींपर मन्दिरके इधर उधर भक्तलोग जो कुछ अक्षत (चाउर) इत्यादि छींट देतेथे वे दोनों प्रदक्षिणा

करते हुए उसीको खालेते थे ॥ १२ ॥ हे विप्र ! वे दोनोंही अण्डज प्यास लगनेपर भगवान्‌के दक्षिणकी ओर गंगा, यमुना, सरस्वती और नर्मदा इन चारों नदियोंके सोतेका जल पीते और कभी कभी नहाते भी थे ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे त्रिलोचनके समीपहीमें विचरण करते हुए उन दोनोंही साधु स्वभाववाले पक्षियोंका बहुत समय बीतगया ॥ १४ ॥ तदनंतर एकबार एक श्येनपक्षी (बाज) ने क्रूरदृष्टिसे देवालयके मध्यमें झरोखाके भीतर सुखसे बैठेहुए उन दोनोंही (पक्षियों) को देखलिया ॥ १५ ॥ उस कपोतके जोडेको पकडलेनेकी इच्छासे वह बाज आकाशसे उतरकर झटपट एक दूसरे शिवालयमें जा घुसा ॥ १६ ॥ और वहांसे उनके निकलने पैठनेको देखनेलगा कि, ये दोनों पक्षी किस मार्गसे इस दुर्गमें जाते ॥ १७ ॥ और किधरसे

देवदक्षिणदिग्भागेचतुःस्रोतस्विनीजलम् ॥ तृषार्तौधयतोविप्रस्नातौजातुचिदंडजौ ॥ १३ ॥ तयोरित्थंविचरतोस्त्रिलोचनसमीपतः ॥ अगाद्बहुतिथःकालोद्विजयोःसाधुचेष्टयोः ॥ १४ ॥ अथदेवालयस्कंधेगवाक्षांतर्गतौचतौ ॥ श्येनेनकेनचिद्दृष्टौक्रूरदृष्ट्यासुखस्थितौ ॥ ॥ १५ ॥ तच्चपारावतद्वंद्वंश्येनःपरिजिघृक्षुकः ॥ अवतीर्यांबराद्‌दाशुप्रविष्टोन्यशिवालये ॥ १६ ॥ ततोविलोकयामासतदागमविनिर्गमौ ॥ केनमार्गेणविशतोदुर्गमेतौपतत्रिणौ ॥ १७ ॥ केनाध्वनाचनिर्यातःक्वकालेकुरुतश्चकिम् ॥ कथंयुगपदेतौमेग्राह्यौस्वैरंभविष्यतः ॥१८॥ मध्येदुर्गंप्रविष्टौचममवश्याविमौनयत् ॥ एकदृष्टिःक्षणंतस्थौश्येनइत्थंविचिंतयन् ॥ १९ ॥ अहोदुर्गबलंप्राज्ञाःशंसंत्येवेतिहेतुतः ॥ दुर्बलोप्याकलयितुंसहसारिर्नशक्यते ॥ २० ॥ करिणांतुसहस्रेणवराश्वानांनलक्षतः ॥ तत्कर्मसिद्धिर्नृपतेर्दुर्गेणैकेनयद्भवेत् ॥ २१ ॥ दुर्गस्थोनाभिभूयेतविपक्षःकेनचित्क्वचित् ॥ स्वतंत्रंयदिदुर्गंस्यादमर्मज्ञप्रकाशितम् ॥ २२ ॥

निकलते हैं ? फिर किसवेला क्या करते हैं ? और किस प्रकारसे एक साथही ये दोनों मेरे हाथ लगसकतेहैं ? ॥ १८ ॥ क्योंकि इस दुर्गके भीतर घुसे रहनेपर तो ये दोनों कभी मेरे वशमें नहीं आसकते वह बाज क्षणभर यही चिन्ता करताहुआ उसीओर दृष्टि लगाकर बैठारहा ॥ १९ ॥ अहो ! ! बुद्धिमान् लोग दुर्गबलकी बडाई बहुतही ठीक कहते हैं, क्योंकि दुर्गस्थ दुर्बलभी शत्रु सहसा नहीं दबालिया जासकता ॥ २० ॥ अकेले दुर्गहीसे राजाका जो काम सिद्ध होजाताहै वह काम सहस्रों हाथी अथवा लाखों बढियां घोडोंसेभी नहीं चलसकता ॥ २१ ॥ यदि दुर्ग स्वतंत्र और सबप्रकारसे गुप्तहो तो

तत्रस्थ शत्रु कभी किसीसे नहीं हार जासकताहै ॥ २२ ॥ वह बाज इसी भाँतिसे दुर्गबलकी प्रशंसा करताहुआ उन दोनोंही कपोतोंको निर्भय देख, क्रोधसे आंखें लालकरके आकाशमंडलमें चलागया ॥ २३ ॥ तत्पश्चात् केवल दुर्गहीकी बलवती चतुर कपोती अपने शत्रु बाज पक्षीको देखकर बडेबली अपने स्वामी कपोतसे कहनेलगी॥२४॥ कपोतीने कहा हे सर्वकाम सुखाकर ! प्रियतम! पारावत ! आपने इस प्रबल शत्रुबाजको देखा ? ॥ २५ ॥ कपोतीका वचन सुनकर उसका पति अहंकारके साथ कपोतीसे कहने लगा कि–" प्यारी ! तुम किस चिन्तामें पडीहो " ॥ २६ ॥ कबूतर बोला–हे सुभगे ! यहां पर क्या बहुतेरे गगनचारी नहीं पडेहैं ? और फिर इन देवालयोंमें क्या बहुतेरी चिडियायें नहींघुसाकरतींहैं? ॥२७॥ एवं प्रिये ! क्या कितनेही (लोग) हम

इतिदुर्गबलंशंसञ्श्येनोरोषारुणेक्षणः ॥ असाध्वसौकलरवौवीक्ष्ययातोनभोंगणम् ॥२३॥ अथपारावतीदक्षाविपक्षंप्रेक्ष्यपक्षिणम्॥ महाबलंदुर्गबलाप्राहपारावतंपतिम् ॥ २४ ॥ कलरव्युवाच ॥ ॥ प्रियपारावतप्राज्ञसर्वकामिसुखाव ॥ तवदृग्विषयंप्राप्तःश्येनोयंप्रबलोरिपुः ॥ ॥२५॥ सावज्ञंवाक्यमाकर्ण्यपारावत्याःसतत्पतिः ॥ पारावतीमुवाचेदंकाचिंतेतितवप्रिये ॥ २६ ॥ ॥ पारावतउवाच ॥ ॥ कतिनामनसंतीहसुभगेव्योमचारिणः ॥ कतिदेवालयेष्वेषुखगानोपविशंतिहि ॥ २७ ॥ कतिचैवनपश्यंतिनौसुखस्थाविहप्रिये ॥ तेभ्योयदीहभेतव्यंकुतोनौतत्सुखंप्रिये ॥ २८ ॥ रमस्वत्वंमयासार्धंत्यजचिंतामिमांशुभे ॥ अस्यश्येनवराकस्यगणनापिनमेहृदि ॥ २९ ॥ इत्थंपारावतवचःश्रुत्वापारावतीततः ॥ मौनमालंब्यसंतस्थेपत्युःपादार्पितेक्षणा ॥ ३० ॥ हितवर्त्मोपदिश्यापिप्रियप्रियचिकीर्षया ॥ साध्व्याजोषंसमास्थेयंकार्यंपत्युर्वचःसदा ॥ ३१ ॥

दोनों जनको यहांपर सुखसे रहते हुए नहीं देखते हैं ? यदि उन सबोंसे डरतेही रहना पडे तो प्यारी ! वह सुख हमलोगोंको कैसे होगा ? ॥ २८ ॥ हे सुन्दरि ! तुम मेरे साथ क्रीडाकरो, और इस चिन्ताको छोडदो, इस तुच्छ (बिचारे) बाजकी तो मेरे मनमें कुछ गिनतीही नहीं है ॥ २९ ॥ तब तो कपोतकी ऐसी बातें सुनकर वह कपोती पतिके चरणोंमें दृष्टि लगाकर चुपचाप बैठरही ॥ ३० ॥ क्योंकि पतिकी प्रिय चाहनेवाली पतिव्रता नारीको यही उचित है कि, हितमार्ग बताकर फिर चुपचाप बैठ रहे (अर्थात अनुचित बातकाभी खंडन न करे) और स्वयं सर्वदा पतिकी आज्ञाका

पालन करे ॥ ३१ ॥ फिर दूसरेदिन वह बाज वहां आकर जैसे मृत्युं गतायुको देखे वैसेही टकटकी लगाकर उनदोनोंहीको देखता रहा ॥ ३२ ॥ अनन्तर मन्दिरके चारोंओर चक्कर लगाता और घूमता हुआ वह बाज उन सबोंका निकलना पैठना देखकर आकाशमार्गसे उडगया ॥ ३३ ॥ बाजके आकाशमें उडजाने पर फिर उस कपोतीने अपने पतिसे कहा कि नाथ ! इस दुष्ट शत्रुको आपने देखा (न) ? ॥ ३४ ॥ उसकी बात सुनकर फिर कपोत बोला मुग्धे ! मैं तो गगनविहारीहूं यह भला मेरा क्या करसकताहै ? ॥ ३५ ॥ फिर यह मेरा दुर्गभीतो स्वर्गके तुल्यहै, इसमें शत्रुका कोई भय नहीं है, तब आकाशमंडलके विषयमें जो चालें मैं जानताहूं भला यह क्या जानेगा ? ॥ ३६ ॥ प्रडीन उड्डीन, संडीन, कांड, व्याड कपाटिका, स्रंसनी

अन्येद्युरप्यथायातःश्येनोपश्यत्सदंपती ॥ अपरिच्छिन्नयाहष्ट्यायथामृत्युर्गतायुषम् ॥ ३२ ॥ अथमंडलगत्यासप्रासादंपरितो भ्रमन् ॥ निरीक्ष्यतद्गतायातौयातोगगनमार्गतः ॥ ३३ ॥ गतेऽथनभसिश्येनेपुनःपारावतांगना ॥ प्रोवाचप्रेयसीनाथदृष्टोदुष्ट स्त्वयाऽहितः ॥ ३४ ॥ तस्यावाक्यंसमाकर्ण्यपुनःकलरवोब्रवीत् ॥ किंकरिष्यत्यसौमुग्धेममव्योमविहारिणः ॥ ३५ ॥ दुर्गंचस्वर्गतुल्यं मेयत्रनास्त्यरितोभयम् ॥ अयंनतागतीर्वेत्तियावेदाहंनभोंगणे ॥ ३६ ॥ प्रडीनोड्डीनसंडीनकांडव्याडकपाटिकाः ॥ स्रंसनीमंडलवती गतयोष्टावुदाहृताः ॥ ३७ ॥ यथैतास्विहकौशल्यंमयिपारावतिप्रिये ॥ गतिषुक्वापिकस्यापिपक्षिणोनतथांबरे ॥ ३८ ॥ सुखेनतिष्ठका चिंतामयिजीवतितेप्रिये ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वासास्थितामूकवत्सती ॥ ३९ ॥ अपरेद्युरपिश्येनस्तत्रभारशिलातले ॥ क्रियदंतरमासाद्यो पविष्टोऽतिप्रहृष्टवत् ॥ ४० ॥ आयामंतत्रसंस्थित्वातत्कुलायंविलोक्यच ॥ पुनर्विनिर्गतःश्येनःसापिभीताब्रवीत्पुनः ॥ ४१ ॥

और मंडलवती ये आठप्रकारकी गतियां कही गई हैं ॥ ३७ ॥ अयि प्रिये ! कपोति ! इन चालोंकी निपुणता जैसी मुझमें है, वैसी आकाशके भीतर दूसरे किसीभी पक्षीकी नहीं है ॥ ३८ ॥ प्यारी ! तुम सुखसे चलकर बैठो, मेरे जीतेजी यहाँ तुम किसकी चिन्ता कररहीहो,? उसकी बात सुनदर वह पतिव्रता कपोती गूंगेकी नाईं चुप होगई ॥ ३९ ॥ उसके अंतरे (दूसरे) दिन फिर वह बाज मन्दिरपर आकर एक बडेभारी पत्थरके नीचे दरारमें घुसकर बडी प्रसन्नतासे बैठारहा ॥ ४० ॥ पहर भरतक वहांपर बैठ उनका खोंता भलीभाँतिसे देखभालकर वह बाज फिर चलागया, तब फिर उस कपोतीने

भयभीत होकर कहा ॥ ४१ ॥ हे प्रिय ! (देखो आज) यह दुष्ट बहुत निकटमें आकर बडा हृष्टसा बैठा रहाहै, सो अबतो यह स्थान दुष्टकी दृष्टिद्वारा दूषित होजानेसे त्यागही देनेके योग्यहै ॥ ४२ ॥ फिरभी उसने बडे अहंकारके साथ कहदिया कि अरी प्यारी ! यह क्या करसकताहै ? मृगनैनियोंका तो यह स्वभावहीहै जो वे प्रायः करके बडीही डरपोंक होतीहैं ॥ ४३ ॥ दूसरे दिन फिर वह महाबली बाज वहांपर आपहुँचा, और उन दोनोंहीके सन्मुख दो पहरतक बैठारहा ॥ ४४ ॥ फिर उन सबोंका मार्ग आदि देखभालकर तुरतही चलताहुआ, उसके उडजानेपर पुनः उस (बिचारी) कपोतीने कहा ॥ ॥ ४५ ॥ नाथ ! यहांपर हमलोगोंकी मृत्यु निकट चली आतीहै, अतएव अब दूसरेही स्थानपर चलना उचितहै, जब इस दुष्टका आना जाना बन्द होजा

प्रियस्थानमिदंत्याज्यंदुष्टदृष्टिविदूषितम् ॥ असौक्रूरोतिनिकटमुपविष्टोऽतिहृष्टवत् ॥ ४२ ॥ सावज्ञंसपुनःप्राहकिंकरिष्यत्यसौप्रिये ॥ मृगाक्षीणांस्वभावोयंप्रायशोभीरुवृत्तयः ॥ ४३ ॥ इतरेद्युरपिप्राप्तःसचश्येनोमहाबलः ॥ तयोरभिमुखंतत्रस्थितोयामद्वयावधि ॥ ४४ ॥ पुनर्विलोक्यतद्वर्त्मशीघ्रंयातोयथागतम् ॥ गतेथशकुनौतस्मिन्साबभाषेविहंगमी ॥ ४५ ॥ नाथस्थानांतरंयावोमृत्युर्नौनिकटोत्रयत् ॥ पुनर्दुष्टेप्रणष्टेस्मिन्नावांस्यावःसुखंप्रिय ॥ ४६ ॥ प्रिययस्यसपक्षस्यगतिःसर्वत्रसिद्धिदा ॥ सकिंस्वदेशरागेणनाशंप्राप्नोतिबुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ सोपसर्गंनिजंदेशंत्यक्त्वायोन्यत्रनव्रजेत् ॥ सपंगुर्नाशमाप्नोतिकूलस्थितइवद्रुमः ॥ ४८ ॥ प्रियोदितंनिशम्येतिसभवित्रीदशार्दितः ॥ सरीढंपुनरप्याहप्रियेमाभैःखगात्ततः ॥ ४९ ॥

वेगा तब फिर हम दोनों यहांपर (आकर) सुखसे रहने लगेंगे ॥ ४६ ॥ हे प्रियतम ! जिस पक्षवालेकी गति सर्वत्रही सिद्धि देसके, भला वह बुद्धिमान् स्वदेशानुरागके कारण क्या (विपक्षके द्वारा) अपना नाश करवासकताहै ? ॥ ४७ ॥ जो कोई उपद्रवसे पूर्ण अपने देशको त्यागकर अन्यत्र पर नहीं चलाजाता, वह पंगुजन (लूला) नदीके तटस्थवृक्षकी नाई (शीघ्रही) विनष्ट होजाताहै । दोहा—विपति पूर्ण निज देशतजि, जो अन्यत्र न जाय । नदीतीरके वृक्ष सम, सो पंगुल विनसाय ॥ ४८ ॥ वह कपोत अपनी पत्नीका यह कथन सुनकर फिरभी गर्वके साथ होनहार वश कहने लगा—प्यारी उस

खग (बाज) से तुम मत डरो ॥ ४९ ॥ फिर दूसरे दिन वह बली बाज बड़े तड़केहीसे आकर साँझतक उसके द्वारपर बैठारहा ॥ ५० ॥ जब कि सूर्य अस्ताचलके शिखरपर चलेगये तब वहांसे उठा बाजके चलेजानेपर वह कपोती खोंतेसे बाहर निकसकर अपने स्वामीसे कहने लगी ॥ ५१ ॥ हे नाथ ! इसघड़ी वह कालरूप बाज दूर चलागया इससे अब यहांसे उड़ भागनेका यही समयहै, हे सुबुद्धे ! जबलों वह फिर यहाँ नहीं आजाता तबतक आप मुझेभी छोड़कर निकल जाइये ॥ ५२ ॥ क्योंकि संसारमें आपके जीते रहनेसे कोईभी वस्तु दुर्लभ नहींहै, (कारण यह कि आप पुरुषहैं आपके जीनेपर) स्त्री, मित्र, धन और घर ये सब फिरफिर होते रहेंगे ॥ ५३ ॥ यदि पुरुष, स्त्री और धन इत्यादिसे अपनी रक्षा करसके तो वह इसी

अथापरस्मिन्नहनिसश्येनःप्रातरेवहि ॥ तद्वारदेशमासाद्यसायंयावत्स्थितोबलः ॥ ५० ॥ अस्ताचलस्यशिखरंयातेभानौगतेखगे ॥ कुलायाद्वाह्यमागत्योवाचपारावतीपतिम् ॥ ५१ ॥ नाथनिर्गमनस्यायंकालःकालोऽतिदूरतः ॥ यावत्तावद्विनिर्याहित्यक्त्वामामपिसन्मते ॥ ५२ ॥ त्वयिजीवतिदुष्प्राप्यंनकिंचिज्जगतीतले ॥ पुनर्दाराःपुनर्मित्रंपुनर्वसुपुनर्गृहम् ॥ ५३ ॥ यद्यात्मारक्षितःपुंसादारैरपिधनैरपि ॥ तदासर्वंहरिश्चंद्रभूपेनेवेहलभ्यते ॥ ५४ ॥ अयमात्माप्रियोबंधुरयमात्मामहद्धनम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामयमात्मार्जकःपरः ॥ ५५ ॥ यावदात्मनिवैक्षेमंतावत्क्षेमंजगत्त्रये ॥ सोपिक्षेमःसुमतिनायशसासहवांछ्यते ॥ ५६ ॥ यशोहीनंतुयत्क्षेमंतत्क्षेमान्निधनंवरम् ॥ तद्यशःप्राप्यतेपुंभिर्नीतिमार्गप्रवर्तने ॥ ५७ ॥ अतोनीतिपथंश्रुत्वानाथस्थानादितोव्रज ॥ नगमिष्यसिचेत्प्रातस्ततोमेसंस्मरिष्यसि ॥ ५८ ॥

संसारमें राजा हरिश्चन्द्रकी नाईं सब कुछ फिरसे पासकताहै ॥ ५४ ॥ यह आत्माही प्यारा बंधु, और यही आत्मा बड़ा धनहै, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन सबका उपार्जन करनेवाला भी यही आत्माहै ॥ ५५ ॥ अपनेही कुशलसे त्रैलोक्यभरका कुशल समझाताहै, परन्तु बुद्धिमान् जन उस कुशलकोभी सुयशके साथ चाहतेहैं ॥ ५६ ॥ जिस कुशलमें यश न हो उससे तो मरजानाही अच्छाहै, एवं वह कुशलभी न्यायमार्गसे चलनेही पर मिलताहै ॥ ५७ ॥ अतएव, हे नाथ ! नीतिके अनुसार तो अब यहांसे चलदेनाही उचितहै, यदि आप यहांसे न उठजावेंगे, तो प्रातःकालही मेरी बातोंको स्मरण

करेंगे ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे परमबुद्धिमती पत्नीके वारंवार कहनेपर भी वह कपोत होनहार वश उस स्थानसे नहीं निकला ॥ (सच है होनहारकी बात ऐसीही होतीहै जैसा कि इस प्राचीन दोहेमें कहाहै—दोहा—"जैसी होय होतव्यता, तैसी उपजे बुद्धि । होनहार हृदये वसे, विसरि जाय सब सुद्धि)" ॥ ५९ ॥ हे महर्षे ! (इधर) दूसरे दिन फिर वह बलवान् बाज प्रातःकालहीसे कुछ भोजन (ले) कर उसके निकलनेका मार्ग रोक बैठा ॥ ६० ॥ और कुछ समयतक वहां वैठकर उस चतुरबाजने कबूतरसे कहा—अरे ! कपोत ! तूं तो बड़ाही पौरुषहीन है, तुझे धिक्कारहै !!! ॥ ६१ ॥ रे दुर्बुद्धे ! तू मेरे साथ लड़, किंवा मेरे कहनेसे बाहर निकल आ, नहीं तो अन्तमें भूखके मारे मरकर नरकगामी हो जावेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं

इत्युक्तोपिसवैप्रत्न्यापारावत्यासुमेधया ॥ ननिर्ययौप्रतिस्थानाद्भविव्याप्रतिवारितः ॥ ५९ ॥ अथोषसिसमागत्यश्येनेनबलिनातदा ॥ तन्निर्गमाध्वासंरुद्धःकिंचिद्भक्ष्यवतामुने ॥ ६० ॥ दिनानिकतिचित्तत्रस्थित्वाश्येनोमहामतिः ॥ पारावतमुवाचेदंधिक्त्वांपौरुषवर्जितम् ॥ ६१ ॥ किंवायुध्यस्वदुर्बुद्धेकिंवानिर्याहिमेगिरा ॥ क्षुधाक्षीणोमृतःपश्चान्निरयंयास्यसिध्रुवम् ॥ ६२ ॥ द्वौभवंतावहंचैकश्चलौजयपराजयौ ॥ स्थानार्थंयुध्यतःसत्त्वात्स्वर्गोवादुर्गमेववा ॥ ६३ ॥ पुरुषार्थंसमालंब्ययेयतंतेमहाधियः ॥ विधिरेवहिसाहाय्यंकुर्यात्तत्सत्त्वचोदितः ॥ ६४ ॥ इत्थंसश्येनसंप्रोक्तःपत्न्याप्युत्साहितःखगः ॥ अयुध्यत्तेनश्येनेनस्वदुर्गद्वारमाश्रितः ॥ ६५ ॥ क्षुधितस्तृषितःसोथश्येनेनबलिनाधृतः ॥ चरणेनदृढेनाशुचंच्वासापिधृताखगी ॥ ६६ ॥

है ॥ ६२ ॥ मैं तो अकेलाही हूं और तू जोडाहै, फिर जीत और हारका कोई ठिकानाभी नहीं, बडे पराक्रमसे स्थानके लिए युद्ध करनेवालेको दुर्गही मिलताहै कि स्वर्गही प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ जो बुद्धिमान् जन पारुषके सहारेसे उद्योग करते रहते हैं, उनके पराक्रमसे उत्साहित होकर स्वयं विधाताही उन लोगोंकी सहायता करताहै ॥ ६४ ॥ इस प्रकारसे उस बाजके ललकारने पर और पत्नीके उत्तेजना देनेपर ढाँढस बांधकर वह कपोत अपने दुर्गके द्वारपर उस बाजसे लडने लगा ॥ ६५ ॥ फिर क्या था—तुरत उस बली बाजने उस भूखे और प्यासे कपोतको अपने दृढचंगुलमें और कपोतीको चोंचमें

पकड लिया ॥ ६६ ॥ (बस) अनन्तर उन दोनोंहीको लेकर वह बाज बडी तेजीसे आकाशमें उडचला और अन्य पक्षियोंसे रहित निराला (सूनसान) स्थान भोजन करनेके लिये सोचने लगा ॥ ६७ ॥ उसी समय बुद्धिमती कपोतीने कपोतसे कहा कि,—हे नाथ ! आपने स्त्री समझकर मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया ॥ ६८ ॥ इसीसे आप इस दशामें आपडेहैं, मैं तो अबलाहीहूं फिर और क्या करसकतीहूं, पर प्यारे ! यदि आप अबभी मेरी एक बात मानजावें ॥ ६९ ॥ तो मैं आपका हित कहसकतीहूं, पर आप कुछ सोचने विचारनेके विनाही उसे करडालें, और मेरी एक बात मानलेनेसे आप स्त्रीके वशमें नहीं होजावेंगे ॥ ७० ॥ (हे नाथ !) जबतक यह बाज स्वस्थतापूर्वक किसी स्थान पर नहीं बैठता और मैं इसके चोंचमें पडीहूं इसीके

तावादायोड्डयांचक्रेश्येनोव्योमनिसत्वरम् ॥ चिंतयद्भक्षणस्थानमन्यपक्षिविवर्जितम् ॥ ६७ ॥ अथपत्न्याकलरवःप्रोक्तस्तत्रसुमेधया ॥ वचोवमानितंनाथत्वयामेस्त्रीतिबुद्धितः ॥ ६८ ॥ अतोऽवस्थामिमांप्राप्तःकिंकुर्यामबलायतः ॥ अधुनापिवचश्चैकंकरोषियदिमेप्रिय ॥ ॥ ६९ ॥ तदाहितंतेवक्ष्यामिकुरुचैवाविचारितम् ॥ ममैकवाक्यकरणात्स्त्रीजितोनभविष्यसि ॥ ७० ॥ यावदास्यगतास्म्यस्ययावत्स्व स्थोनभूमिगः ॥ तावदात्मविमुक्त्यैत्वमरेःपादंदृढंदश ॥ ७१ ॥ इतिपत्नीवचःश्रुत्वातथासकृतवान्खगः ॥ सपीडितोदृढंपादेश्येनश्चीत्कृ तवान्बहु ॥ ७२ ॥ तेनचीत्करणेनाथमुक्तासाम्रुखसंपुटात् ॥ पादांगुलिश्लथत्वेनसोपिपारावतोऽपतत् ॥ ७३ ॥ विपद्यपिचनप्राज्ञैःसंत्या ज्यःक्वचिदुद्यमः ॥ क्वचचंचुपुटस्तस्यक्वचतत्पादपीडनम् ॥ ७४ ॥

बीचमें आप अपने छुटकाराके लिये इसे पैरमें बलपूर्वक काटिये ॥ ७१ ॥ पत्नीकी बात सुनकर उस कपोतने वैसाही किया तबतो वह बाज पैरमें बडी कठोरताके साथ बहुत काटेजानेपर चींचीं करने लगा ॥ ७२ ॥ इतनेमें जो उसका मुख खुला त्योंही कपोती निकलगई, और चंगुलके ढीला पडजानेसे वह कबूतरभी गिरपडा ॥ ७३ ॥ बुद्धिमान्लोगोंको विपत्ति पडने परभी कभी उद्योग नहीं छोडना चाहिये, क्योंकि (देखो) वह कपोतका जोडा शत्रुके मुखमें पडकरभी उसके पैरोंको काटकर वैसे बली शत्रुसे अपनेको विचित्ररीतिसे छोडाले सका, सच है—यदि कोई दुर्बलभी उद्योग करे तो भाग्य उसे अवश्यही

फल देदेताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ अतएव भाग्यानुसारही उद्यम सदैव फलताहै, इससे पंडितलोग विपत्तिमेंभी उद्योगहीकी बडाई गाते हैं ॥ ७६ ॥ इस प्रकारसे वे दोनों कबूतर मृत्युके मुखसे बँचकर कालानुसार सरयूके तीरपर मुक्तिक्षेत्र अयोध्यापुरीमें जहांके मरनेवाले प्राणियोंको काशी अवश्य प्राप्त होती है (वहां जाकर) मृत्यको प्राप्त हुए, उनमें कपोत मंदारदामका पुत्र परिमलालयनामक विद्याधर हुआ, ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ वह कुमारावस्थाहीमें अनेक विद्याओंका ज्ञाता और कलाकौशलोंका पात्र और परमशिवभक्त होगया ॥ ७९ ॥ उसने जितेन्द्रिय चित्त होकर यह दृढनियम ठान लियाथा कि, मैं नित्यही एकपत्नी व्रत करूंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ८० ॥ (लोकमें) परस्त्री पर आसक्त होनेसे, आयुष्य, यश, सुख, बल, और स्वर्गकी गति

क्वचिद्द्वयोस्तथाभूतादरेमोक्षणमद्भुतम् ॥ दुर्बलेप्युद्यमवतिफलंभाग्यंयतोऽर्पयेत् ॥ ७५ ॥ तस्माद्भाग्यानुसारेणफलत्येवसदोद्यमः ॥ प्रशंसंत्युद्यमंचातोविपद्यपिमनीषिणः ॥ ७६ ॥ अथतौकालयोगेनविपन्नौसरयूतटे ॥ मुक्तिपुर्यामयोध्यायामेकोविद्याधरोऽभवत् ॥ ७७ ॥ मृतानांयत्रजंतूनांकाशीप्राप्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ मंदारदामतनयोनाम्नापरिमलालयः ॥ ७८ ॥ अनेकविद्यानिलयःकलाकौशलभाजनम् ॥ कौमारंवयआसाद्यशिवभक्तिपरोभवत् ॥ ७९ ॥ नियमंचातिजग्राहविजितेंद्रियमानसः ॥ एकपत्नीव्रतंनित्यंचरिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ ॥ ८० ॥ परयोषित्समासक्तिरायुःकीर्तिंबलंसुखम् ॥ हरेत्स्वर्गगतिंचापितस्मात्तांवर्जयेत्सुधीः ॥ ८१ ॥ अपरंचापिनियमंसशुचिष्मान्समाददे ॥ गतजन्मांतराभ्यासात्त्रिलोचनसमाश्रयात् ॥ ८२ ॥ समस्तपुण्यनिलयंसमस्तार्थप्रकाशकम् ॥ समस्तकामजनकंपरानंदैककारणम् ॥ ८३ ॥ यावच्छरीरमरुजंयावन्नेंद्रियविप्लवः ॥ तावत्त्रिलोचनंकाश्यामनर्च्याश्नामिनाण्वपि ॥ ८४ ॥ इत्थंमांदारदामिःसनित्यंपरिमलालयः ॥ काश्यांत्रिविष्टपंद्रष्टुंसमागच्छेत्प्रयत्नवान् ॥ ८५ ॥

सबकुछ नष्ट होजाताहै अतएव बुद्धिमान् जन परस्त्रीगमनको सर्वथा त्यागदेवें ॥ ८१ ॥ त्रिलोचनके आश्रयवश व्यतीत जन्मके अभ्याससे उस शुचिष्मान् विद्याधरने एक औरभी नियम धारण करलिया कि, ॥ ८२ ॥ जबतक शरीर नीरोगहै और जबतक इन्द्रियां शिथिल नहीं पडजातीं तबतक मैं काशीपुरीमें अशेषपुण्योंके भवन, चारों पुरुषार्थोंके साधक, समस्त कामनाओंके दाता, एवं परमानन्दके एकमात्र कारण भगवान् त्रिलोचनका पूजन किये बिना कुछभी नहीं खाऊंगा ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ इस प्रकारसे वह मंदारदामका पुत्र परिमलालय (नियमोंको धारणकर) प्रतिदिन काशीमें बडे प्रयत्नसे दर्शन

करनेको आता था ॥ ८५ ॥ (उधर) वह कपोतीभी पातालमें नागराज रत्नदीपके गृहमें रत्नावली नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ ८६ ॥ वह रत्नदीपनामकी कन्या समस्त नागकन्याओंमें रूप, शील, और कला आदि गुणोंसे एक रत्नहीसी होगई थी ॥ ८७ ॥ उसकी प्रभावती और कलावती नामसे (विदित) दो सखियां थीं, जो सर्वदा उसके साथ रहती थीं ॥८८॥ हे घटज ! मुने ! जैसे अपने शरीरसे छाया और कांति कभी दूरनहीं होसकती, वैसेही वे दोनोंही सखियां रत्नावलीसे कभी पृथक् नहीं होती थीं ॥ ८९ ॥ रत्नावली, लडकपन बीतजानेपर जब कुछ कुछ जवान होनेलगी तो अपने

पारावत्यपिसाजातारत्नदीपस्यमंदिरे ॥ नागराजस्यपातालेनाम्नारत्नावलीतिच ॥ ८६ ॥ समस्तनागकन्यानांरूपशीलकलागुणैः ॥ एकैवरत्नभूतासीद्रत्नदीपोरगात्मजा ॥ ८७ ॥ तस्याःसखीद्वयंचासीदेकानाम्नाप्रभावती ॥ कलावतीतथान्याचनित्यंतदनुगेउभे ॥ ८८ ॥ स्वदेहादनपायिन्यौछायाकांतीयथातथा ॥ तेद्वेसख्यावभूतांहिरत्नावल्याघटोद्भव ॥ ८९ ॥ सातुबाल्येऽव्यतिक्रांतेकिंचिदुद्भिन्नयौवना ॥ शिवभक्तंस्वपितरंदृष्ट्वानियममग्रहीत् ॥ ९० ॥ पितस्त्रिलोचनंकाश्यामर्चयित्वादिनेदिने ॥ आभ्यांसखीभ्यांसहितामौनंत्यक्ष्यामिनान्यथा ॥ ९१ ॥ एवंनागकुमारीसासखीद्वयसमन्विता ॥ त्रिलोचनंसमभ्यर्च्यगृहानहरहोव्रजेत् ॥ ९२ ॥ दिनेदिनेसाप्रत्यग्रैःकुसुमैरिष्टगंधिभिः ॥ सुविचित्राणिमाल्यानिपरिगुंफ्यार्चयेद्विभुम् ॥ ९३ ॥ तिस्रोपिगीतंगायंतिलसद्गांधारसुंदरम् ॥ रासमंडलभेदेनलास्यंतिस्रोपिकुर्वते ॥ ९४ ॥

बापको बडा शिवभक्त देख आपभी यह नियम धारणकर कहने लगी ॥ ९० ॥ कि, हे पितः ! मैं प्रतिदिन इन दोनों सखियोंके साथ काशीमें जाकर त्रिलोचनकी पूजा करलेनेपर बोलूंगी नहीं तो मौनही रहूंगी ॥ ९१ ॥ इस भाँतिसे (पिताकी अनुमति पाकर) वह नागकुमारी दोनों सखियोंके साथ प्रतिदिन त्रिलोचनका पूजन करके गृह पर जाती (और मौनभाव त्यागती) थी ॥ ९२ ॥ वह नित्यही टटके और बड़ेही सुगंधवाले चित्रविचित्र पुष्पोंकी माला गुथकर भगवान्को चढ़ाती थी ॥ ९३ ॥ वे तीनोंही मनोहर गांधार स्वरसे सोहावन गीतोंको गातीं और रासकामण्डल बांधकर नाचतीं ॥ ९४ ॥

एवं भगवान्के समीपमें बीन बाँसुरी और पखावजको लयतालकी निपुणतासे हर्षपूर्वक बजाती थीं ॥ ९५ ॥ वे तीनोंही नागकन्यायें इसी प्रकारसे विचित्र गंध और माला इत्यादिके द्वारा तथा संमार्जन विलेपन प्रभृति सेवाओंसे भगवान् त्रिलोचनकी आराधना करती रहीं ॥ ९६ ॥ इसीमें एकवार वे सब वैशाखमासकी शुक्ला तृतीयाको व्रत और रात्रिमें नृत्यगीत और कथादिकसे जागरण कर ॥ ९७ ॥ प्रातःकाल चतुर्थीको पिलपिलातीर्थमें नहाय श्रीत्रिलोचनकी पूजाकर रंगमण्डपमें जाकर सोगई ॥ ९८ ॥ उन कन्याओंके सोजानेपर भगवान् त्रिलोचन उसी पन्नगमेखलावाले लिंगसे शुद्ध कर्पूरके समान

वीणावेणुमृदंगांश्चलयतालविचक्षणाः ॥ वादयंतिमुदायुक्तास्तिस्रोपीश्वरसन्निधौ ॥ ९५ ॥ इत्थमाराधयंतीशंतिस्रोनागकुमारिकाः ॥ विचित्रगंधमालाभिःसंमार्जनविलेपनैः ॥ ९६ ॥ एकदामाधवेमासितृतीयायामुपोषिताः ॥ रात्रौजागरणंकृत्वानृत्यगीतकथादिभिः ॥ ९७ ॥ प्रातश्चतुर्थींस्नात्वाथतीर्थेपैलिपिलेशुभे ॥ त्रिलोचनंसमभ्यर्च्याथप्रसुप्तारंगमंडपे ॥ ९८ ॥ सुप्तासुतासुबालासुत्रिनेत्रःशशिभूषणः ॥ शुद्धकर्पूरगौरांगोजटामुकुटमंडलः ॥ ९९ ॥ तमालनीलसुग्रीवःस्फुरत्फणिविभूषणः ॥ वामार्धविलसच्छक्तिर्नागयज्ञोपवीतवान् ॥ १०० ॥ तस्मादेवविनिष्क्रम्यलिंगात्पन्नगमेखलात् ॥ उवाचचततोबालाविबुध्युत्तिष्ठतेतिसः ॥ १ ॥ उत्थायताविनिर्माज्यलोचनेश्रुतिसंगते ॥ अंगमोटनवत्यश्चजृंभाभिःक्कणिताननाः ॥ २ ॥ यावत्पश्यंतिपुरतःसंभ्रमापन्नमानसाः ॥ अतर्किताागमस्तावत्ताभिर्दृष्टस्त्रिलोचनः ॥ ३ ॥ ववंदुरथताबालाज्ञात्वालक्ष्मभिरीश्वरम् ॥ तुष्टुवुश्चप्रहृष्टास्याःसन्नकंठयोतिगद्गदम् ॥ ४ ॥

गौरांग, जटाजूटसे मण्डित चन्द्रशेखर, तमाल ऐसे नीलकंठ, वामार्द्ध देहमें शक्तिसे सुशोभित और सर्पके भूषण एवं यज्ञोपवीतसे विराजित रूपधर निकलकर उन सब कुमारियोंसे कहनेलगे कि, उठती जाओ ॥ ९९ ॥ १०० ॥ १ ॥ अनंतर वे सब उठकर अपने बड़े बड़े नेत्रोंको मींजतीहुई अंगराकर जँभाई लेने लगीं ॥ २ ॥ और ज्योंही उन सबोंने घबड़ाहटके साथ आगेकी ओर दृष्टि डाली त्योंही अचानक भगवान् त्रिलोचनको देखा ॥ ३ ॥ फिर तो वे सब नागकन्या चिह्नोंके द्वारा परमेश्वरको पहिचान प्रणाम करने लगीं और प्रसन्नमुख होने परभी कण्ठके सन्न हो (रुक) जानेसे गद्गद स्वरमें उनकी स्तुति

करनेलगीं ॥ ४ ॥ हे शंभो ! आप सर्वव्यापीहैं, आपका जय हो, हे ईशान ! आपही सबकुछके दाताहैं, आपका जयहो, हे त्रिपुरान्तक ! आपहीने अंधक दैत्यको माराहै, आपका जयहो ॥ ५ ॥ हे त्रिलोकीजनक ! आपहीने जालंधर असुरको विनाश कियाहै, हे त्रैलोक्यवर्धन ! आपहीके द्वारा कन्दर्पका दर्प दूर हुआहै, आपका जयहो, जयहो, ॥ ६ ॥ हे विश्वाधार ! आप तो त्रैलोक्य भरसे वन्दितहैं, हे प्रमथनाथ ! आप (सदैव) अपने भक्तलोगोंके अधीन रहतेहैं, आपका वारंवार जयहो ॥ ७ ॥ हे देव ! आपका जटाजूट त्रिपथगा गंगाके जलसे प्रक्षालित रहताहै और आपके (मुकुटमणि) चन्द्रमाकी कलाओंकी ज्योतियोंसे त्रैलोक्यमात्र प्रकाशित होताहै, आपका जयहो ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! आपका शरीर तो सर्पोंके फणामणिकी प्रभासे भासमान होरहाहै, एवं गिरि

जयशंभोजयेशानजयसर्वगसर्वद ॥ जयत्रिपुरसंहर्तर्जयांधकनिषूदन ॥ ५ ॥ जयजालंधरहरजयकंदर्पदर्पहृत् ॥ जयत्रैलोक्यजनकज यत्रैलोक्यवर्धन ॥ ६ ॥ जयत्रैलोक्यनिलयजयत्रैलोक्यवंदित ॥ जयभक्तजनाधीनजयप्रमथनायक ॥ ७ ॥ जयत्रिपथगापाथःप्रक्षा लितजटातट ॥ जयचंद्रकलाज्योतिर्विद्योतितजगत्त्रय ॥ ८ ॥ जयसर्पफणारत्नप्रभाभासितविग्रह ॥ जयाद्रिराजतनयातपःक्रीतार्ध देहक ॥ ९ ॥ जयश्मशाननिलयजयवाराणसीप्रिय ॥ जयानंदवनाध्यासिप्राणिनिर्वाणदायक ॥ ११० ॥ जयविश्वपतेशर्वशर्वरीपरिव र्जित ॥ जयनृत्यप्रियेशोग्रजयगीतविशारद ॥ ११ ॥ जयप्रणवसद्वासजयधाममहानिधे ॥ जयशूलिन्विरूपाक्षजयप्रणतसर्वद ॥ १२ ॥ विधिःसर्वविधिज्ञोपिनत्वांस्तोतुंविचक्षणः ॥ वाचोवाचस्पतेर्नाथत्वत्स्तुतौपरिकुंठिताः ॥ १३ ॥

राजनन्दिनीने आपका आधा शरीर अपने तपोबलसे खरीद लियाहै आपका जय हो ॥ ९ ॥ हे श्मशानवासिन् ! वाराणसीवल्लभ ! आप आनन्दवनवासी प्राणियोंके मोक्षदाताहैं, आपका जयहो जयहो ॥ ११० ॥ हे विश्वनाथ ! शर्व ! आप शर्वरीसे वर्जितहैं, हे नृत्यप्रिय ! उग्र ! आप समस्त गीतविशारदहैं, आपका जयहो ॥ ११ ॥ हे शूलपाणे ! आपही प्रणवके आश्रय और समस्त तेजोंकी महानिधिहैं, हे विरूपाक्ष ! आप प्रणतजनके सर्वस्व दाताहैं, आपका जयहो जयहो ॥ १२ ॥ हे नाथ ! स्वयं विधि ! समस्त विधियोंके ज्ञाता होनेपरभी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं और वाचस्पतिकीभी

वाणियां आपके स्तुतिगानमें कुंठित होजातीहैं ॥ १३ ॥ हे सर्वज्ञ ! आपको तो वेदगणभी यथार्थरीतिसे नहीं जानसके हैं, हे नाथ ! फिर इस संसारमें (हमलोगोंका) मनभी आदि–अन्तसे रहित आपको अपने मननका विषय नहीं बनासकता ॥ १४ ॥ अतएव हे त्रिलोचन ! आपको वारंवार नमस्कार है हे त्रिविष्टप ! हम सब (लोग) आपको अनेकशः दण्डवत्प्रणाम करतींहैं ॥ १५ ॥ वे सब नागकन्यायें इसी भाँतिसे स्तुतिकहकर भूमिपर दण्डवत्प्रणाम करनेलगीं, तब तो भगवान् शशिभूषण उन सब कुमारियोंको उठाकर कहने लगे कि–॥ १६ ॥ मंदारदामनामक विद्याधरका बेटा परिमलालय तुमलोगोंका पति होगा ॥ १७ ॥ तुमलोग बहुत दिनोंतक विद्याधरोंके लोकमें यथेष्ट भोगोंका सुख भोगकर तदनंतर निर्वेद पाजानेपर काशीमें परमसिद्धिको प्राप्त

विदंतिवेदाःसर्वज्ञनत्वांनाथयथार्थतः ॥ मनतीहमनोनत्वामनंतंचादिवर्जितम् ॥ १४ ॥ नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंनमोनमः ॥ त्रिलोचननमस्तुभ्यंत्रिविष्टपनमोस्तुते ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वादंडवद्भूमौप्रणिपेतुःकुमारिकाः ॥ अथोत्थाप्यकुमारीस्ताःप्रोवाचशशिभूषणः ॥ १६ ॥ सुतोमंदारदाम्नश्चनाम्नापरिमलालयः ॥ पतिर्विद्याधरवरोभवतीनांभविष्यति ॥ १७ ॥ चिरंविद्याधरेलोकेभोगान्भुक्त्वासमंततः ॥ ततोनिर्वेदमापन्नाःकाशीसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ १८ ॥ यूयंतिस्रोपिमेभक्ताःसचविद्याधरोयुवा ॥ चत्वारोप्येतएवात्रप्रांतेमोक्षमवाप्स्यथ ॥ १९ ॥ जन्मांतरेपिमेसेवाभवतीभिश्चतेनच ॥ विहितातेनवोजन्मनिर्मलंभक्तिभावितम् ॥ २० ॥ एतच्चभवतीस्तोत्रंयःपठिष्यतिमेपुरः ॥ तस्य कामंप्रदास्यामिभवतीनामिवस्फुटम् ॥ २१ ॥ त्यजेत्क्षपाकृतंपापंशुचिःप्रातःपठन्नरः ॥ दिवाकृतमलंहंतिसायंपठनतःस्फुटम् ॥ २२ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशेताःकन्याहृष्टमानसाः ॥ प्रणम्यप्रोचुरीशानंप्रबद्धकरसंपुटाः ॥ २३ ॥

करोगी ॥ १८ ॥ तुम तीनों जनी और वह नौजवान विद्याधर ये चारोंही जन यहींपर अन्तमें मोक्षको पाओगे ॥ १९ ॥ पूर्व जन्ममें तुमलोगोंने और उसनेभी मेरी बडी सेवा कीथी, इसीसे यह जन्म निर्मल और भक्ति भावसे भरा हुआहै ॥ १२० ॥ तुमलोगोंके कहेहुए इस स्तोत्रका पाठ जो कोई मेरे आगे करेगा उसकेभी मनोरथको तुमलोगोंके समान मैं अवश्यही पूर्ण करदूंगा ॥ २१ ॥ मनुष्य प्रातःकालमें इस स्तोत्रके पढनेसे रात्रिके कियेहुए पापोंसे पवित्र होजावेगा एवं जो सन्ध्या समयमें पाठ करेगा उसके दिनभरके सब पाप दूर होजावेंगे ॥ २२ ॥ भगवान्के इस कहनेपर वे सब नागकन्यायें प्रहृष्ट

मन हो दोनों हाथोंको जोड प्रणाम कर महादेवसे बोलीं ॥ २३ ॥ नागकन्याओंने कहा–हे करुणाकर ! नाथ ! शंकर ! हम चारों जनोंने पूर्व जन्ममें कैसे आपकी सेवा की थी ? ॥ २४ ॥ एवं हे कृपानिधे ! भव ! देव ! उस सुकृती विद्याधरका और हमलोगोंके पूर्वजन्मका वृत्तान्त आप कृपाकरके कहें ॥ २५ ॥ भगवान् शिव इसप्रकारसे उन नागकन्याओंकी बिनती सुनकर उन सबोंके एवं पारिमलालयके जन्मान्तरकी कथाको कहने लगे ॥२६॥ ईश्वरने कहा हे नागकन्याओं ! मैं तुम तीनोंजनी और उस विद्याधर कुमारके पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त कहताहूं, सावधान हो (करसुनो) ॥ २७ ॥ यह

नागकन्याऊचुः ॥ ॥ पृच्छामोब्रूहिनोनाथकरुणाकरशंकर ॥ जन्मांतरेकथंसेवाचतुर्भिर्भवतःकृता ॥ २४ ॥ भवप्राग्भववृत्तांतंतस्यापिसुकृतात्मनः ॥ अस्माकमपिचाख्याहिकृपांकुरुकृपानिधे ॥ २५ ॥ इतिश्रुत्वाप्रणयतोबालोदीरितमीशिता ॥ प्रोवाचतासांतस्यापि भवांतरविचेष्टितम् ॥ २६ ॥ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ॥ शृणुध्वंनागतनयास्तिस्रोपिहिसमाहिताः ॥ प्राग्भवंभवतीनांचतस्यापिकथयाम्यहम् ॥ २७ ॥ एषारत्नावलीपूर्वमासीत्पारावतीखगी ॥ सचविद्याधरवरःपतिरस्याःखगोभवत् ॥ २८ ॥ प्रासादेत्रममैताभ्यामुषितं सुचिरंसुखम् ॥ रजःप्रासादसंलग्नंनुन्नंपक्षानिलैःपुनः ॥ २९ ॥ उपरिष्टादधस्ताच्चकृताबह्वयःप्रदक्षिणाः ॥ व्योम्नासंचरमाणाभ्यांसंचरद्भ्यांममाजिरे ॥ १३० ॥ स्नातंचतुर्नदेतीर्थेपीतंतत्रांबुचासकृत् ॥ आभ्यांकलरवाभ्यांचकृतःकलरवोमुदे ॥ ३१ ॥ एताभ्यांस्थिरचेतोभ्यांमुदिताभ्यामतीवहि ॥ दृष्टानिकौतुकान्यत्रममभक्तैःकृतानिवै ॥ ३२ ॥ अमूभ्यांबहुशोदृष्टाममम‌ंगलदीपिकाः ॥ पीतंश्रुतिपुटाभ्यां चममनामाक्षरामृतम् ॥ ३३ ॥

रत्नावली और वह विद्याधर ये दोनोंही पूर्वजन्ममें कपोत पक्षीके जोडा थे, ॥ २८ ॥ इन दोनोंने मेरे इसी मन्दिरपर बहुत दिनोंतक वासकिया, और फिर इस शिवालय पर पडीहुई धूलीको अपने पंखोंके वायुसे अनेकबार उडादिया था ॥ २९ ॥ आकाशमें उडते हुए ऊपरसे, और मन्दिरके आँगनमें घूमघूम कर नीचेसे इन दोनोंने मेरी बहुतसी प्रदक्षिणायें कीं ॥ १३० ॥ वारंवार चतुर्नदतीर्थमें स्नान किया वहांका जल पिया, और अपने मधुरध्वनिसे मुझे हर्षितकिया ॥ ३१ ॥ इन दोनोंने बडे प्रसन्न और स्थिर चित्तसे यहांपर मेरे भक्तोंके कियेहुए बडेबडे कौतुकोंको देखा ॥ ३२ ॥ एवं मेरे मंगल आर्तिकी

शोभाका दर्शन किया, और अपने श्रवणपुटसे मेरे नामाक्षररूप अमृतको पान किया ॥ ३३ ॥ पर (यह सब होनेपरभी) तिर्यक्योनिके प्रभाववश मेरे समीपमें मृत्यु नहीं हुई, ये दोनोंही काशीमें अवश्य पहुँचादेनेवाले अयोध्यातीर्थमें जाकर मृत्युको प्राप्तहुए ॥ ३४ ॥ फिर अयोध्यामें मृत्यु होनेहीसे यह तो रत्नदीपनागकी कन्याहुई और इसका पति वह कबूतर विद्याधरका पुत्र हुआ है ॥ ३५ ॥ और नागराजपद्मीकी कन्या जो यह प्रभावतीनामसे इस जन्ममें उत्पन्न हुईहै, इसकी एवं ॥ ३६ ॥ त्रिशिरनामके नागेन्द्रकी पुत्री इस कलावतीके भी पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहताहूं, सुनतीजाओ ॥ ३७ ॥ इस जन्मसे तीन जन्म पहिले ये दोनोंही महर्षि (वर) चारायणकी बडीही शीलवती और परस्पर प्रेमवती कन्या हुईथीं ॥ ३८ ॥ अनंतर इन्हींकी प्रेरणासे

तिर्यग्योनिप्रभावेननमृतौममसन्निधौ ॥ मृतंपुर्यामयोध्यायांकाशीप्राप्तिकृतिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ अयोध्यानिधनादेषारत्नदीपसुताभवत् ॥ पतिःपारावतोऽस्याःसजातोविद्याधरांगजः ॥ ३५ ॥ एषाप्रभावतीनागीनागराजस्यपद्मिनः ॥ इहजन्मनिकन्यासीत्पूर्वजन्मब्रवीमिवः ॥ ३६ ॥ त्रिशिखस्योरगेंद्रस्यसुताचेयंकलावती ॥ एतस्याअपिवृत्तांतंनिशामयतवच्म्यहम् ॥ ३७ ॥ भवांतरेतृतीयेऽतःकन्ये चारायणस्यह ॥ आस्तांमहर्षेःशीलाढ्येप्रेमवत्यौपरस्परम् ॥ ३८ ॥ पित्राचारायणेनापिताभ्यांसंप्रेरितेनते ॥ आमुष्यायणपुत्रायदत्ते नारायणायहि ॥ ३९ ॥ अप्राप्तयौवनःसोथसमिदाहरणायवै ॥ गतोविधिवशाद्दष्टोदंदशूकेनकानने ॥ १४० ॥ भवानीगौतमीनाम्न्यौ तेतुचारायणांगजे ॥ वैधव्यदुःखमापन्नेदैन्यग्रस्तेबभूवतुः ॥ ४१ ॥ अतएवप्रयत्नेनपरिणेताविवर्जयेत् ॥ देवतासरिदाह्वानांकन्यांपाणि ग्रहेसुधीः ॥ ४२ ॥ अथर्षेःकस्यचिद्दैवादाश्रमेपरमाद्भुते ॥ रंभाफलान्यदत्तानिमोहाज्जगृहतुस्तदा ॥ ४३ ॥

इनके पिता चारायणऋषिने इन दोनोंहीको अमुष्यायणमुनिके पुत्र नारायणको दान करदिया ॥ ३९ ॥ परन्तु वह ऋषिकुमार जवान होनेके पहिलेही (किशोरावस्थामें) एकबार कहीं वनमें समिधा लानेके लिये गयाथा दैवात् वहींपर उसे सांपने डँसलिया ॥ १४० ॥ तबतो ये दोनोंही भवानी और गौतमी नाम्नी चारायणकी कन्यायें वैधव्यका दुःख पाकर बहुतही दैन्यग्रस्त होगईं ॥ ४१ ॥ तबीसे कोईभी बुद्धिमान्जन देवता और नदीके नामवाली कन्याका पाणिग्रहण प्रयत्नपूर्वक नहीं करताहै ॥ ४२ ॥ फिर इन दोनोंने कुछदिनके अनंतर किसी ऋषिके बड़े विचित्र आश्रममें जाकर दैवात् मोहके वशमें

पढ़कर विनादियेहुए केलाका फल लेलिया ॥ ४३ ॥ पश्चात् ये ऋषिकन्यायें मासोपवास इत्यादि व्रतोंको करके कालवश जब मरीं तो फिर वानरी होगईं ॥ ४४ ॥ यद्यपि फल चोरानेके कारण इन दोनोंको (विचिले जन्ममें) वानरी होनापड़ा पर अपने शीलरक्षण रूपधर्मके बलसे काशीमें जन्म हुआ ॥ ४५ ॥ और वह नारायणनामक ऋषिकुमार पिताके सेवन व्रत करनेसे सांपके काटने परभी काशीमें (जाकर) कपोत हुआ ॥ ४६ ॥ इस प्रकारसे यही परिमलालय पूर्वजन्ममेंभी इन दोनोंका पति रहचुकाहै, और अबभी तुम तीनों (जनी) का भर्ता होनेवाला है ॥ ४७ ॥ इसी मन्दिरके

कृत्वामासोपवासादिव्रतानिब्राह्मणांगजे ॥ अवाप्यनिधनंकालाच्छाखामृग्यौबभूवतुः ॥ ४४ ॥ फलचौर्यविपाकेनवानरीत्वंतयोरभूत् ॥ शीलरक्षणधर्मेणकाश्यांजनिमवापतुः ॥ ४५ ॥ सचनारायणोविप्रःपितृशुश्रूषणव्रतः ॥ दष्टोपिदंदशूकेनकाश्यांपारावतोभवत् ॥ ॥ ४६ ॥ एवंभवांतरेचासीदेतयोःपतिरेषकः ॥ तिसृणांभवतीनांचभावीभर्ताधुनापिहि ॥ ४७ ॥ प्रासादस्यास्यपार्श्वेतुन्यग्रोधस्तु महानभूत् ॥ तस्मिञ्शाखिनिशाखाढ्येशाखामृग्यौबभूवतुः ॥ ४८ ॥ चतुःस्रोतस्विनीतीर्थेक्रीडयाचममज्जतुः ॥ पपतुश्चापिपानीयं तस्मिंस्तीर्थेतृषातुरे ॥ ४९ ॥ जातिस्वभावचापल्यात्क्रीडंत्यौचप्रदक्षिणम् ॥ चक्रतुर्बहुकृत्वश्चलिंगंददृशतुर्बहु ॥ १५० ॥ विचरंत्याविति स्वैरंतत्रन्यग्रोधसन्निधौ ॥ केनचिद्योगिवेषेणपाशेनचनियंत्रिते ॥ ५१ ॥ भिक्षार्थंशिक्षितेतेनतद्नुत्कुत्यादिनर्तनम् ॥ अथते क्वापिमर्कट्यौकालधर्मवशंगते ॥ ५२ ॥

पासमें एक बहुत बड़ा बरगदका पेड़ था, जिसमें बहुतेरी शाखें लगी थीं उसी पर ये दोनों वानरियां रहतीथीं ॥ ४८ ॥ और क्रीड़ावश इसी चतुर्नदती र्थमें डुबकी मारतीं और प्यास लगनेपर इसी तीर्थका पानी पीतींथीं ॥ ४९ ॥ अपने जाति स्वभावकी चंचलतासे अनेकबार क्रीड़ा करतीहुईं लिंगकी प्रदक्षिणा और दर्शनभी करलेतींथीं ॥ १५० ॥ एकबार उसी बरगदके पासमें ये दोनों घूमरहींथीं इसीमें एक योगीवेषधारी (मन्दारी) ने फाँसमें बाँधलिया ॥ ५१ ॥ और इन दोनोंहीको उसने नाचना और कूदना भीख माँगनेके लिये सिखाया, फिर कुछ दिनके पश्चात् ये दोनों वानरियां

मरगई ॥ ५२ ॥ पर काशीवासके पुण्य और त्रिलोचनकी प्रदक्षिणा आदि सेवासे ये दोनोंही नागकन्या हुईं ॥ ५३ ॥ अब फिर उस विद्याधरकुमारको पतिपाकर स्वर्गके सुखोंका अनुभव करतीहुई यह काशीमें निर्वाणपदको पावेंगी ॥ ५४ ॥ काशीमें यदि थोड़ाभी सत्कर्म करते बनपड़े तो उसका फल मेरी कृपासे मोक्षही मिलताहै ॥ ५५ ॥ त्रैलोक्यभरमें काशीपुरीसे बढ़कर कोई स्थान श्रेष्ठ नहीं है; उसमेंभी ओंकारेश्वर सबके प्रधानहैं, पर यह त्रिलोचनका स्थान उससेभी बढ़ाचढ़ाहै ॥ ५६ ॥ इस लिंगमें सदा वर्तमान रहकर मैं भक्तोंको भोग और मोक्ष देतारहताहूं, अतएव सर्वात्मना काशीमें त्रिलोचनकी

काशीवासजपुण्येनत्रैलोचन्यानुसेवया ॥ प्रादक्षिण्यादिरूपिण्याजातेनागसुतेइति ॥ ५३ ॥ अधुनातंपतिंप्राप्यविद्याधरकुमारकम् ॥ निर्विश्यस्वर्गभोगांश्चकाश्यांनिर्वृतिमेष्यथ ॥ ५४ ॥ यदल्पमपिवैकाश्यांकृतंकर्मशुभावहम् ॥ तस्यमोक्षःपरीपाकोनिश्चितंमदनुग्रहात् ॥ ५५ ॥ त्रिलोक्याअपिसर्वस्याःश्रेष्ठावाराणसीपुरी ॥ ततोपिलिंगमोंकारंततोप्यत्रत्रिलोचनम् ॥ ५६ ॥ तिष्ठमानोत्रलिंगेहंभक्तमुक्तिंदिशाम्यहम् ॥ ततःसर्वप्रयत्नेनकाश्यांपूज्यस्त्रिलोचनः ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्प्रासादांतरंविशत् ॥ अवाच्यरूपमासाद्यस्थूलंत्रिभुवनादपि ॥ ५८ ॥ ताश्चस्वंस्वंपदंप्राप्यतद्वृत्तांतमशेषतः ॥ स्वमातृपुरतश्चोक्त्वाकृतकृत्याइवाभवन् ॥ ५९ ॥ एकदामाधवेमासिमहायात्रासमागता ॥ विद्याधरास्तथानागामिलिताःसपरिच्छदाः ॥ १६० ॥ विरजस्केमहाक्षेत्रेत्रिलोचनसमीपतः ॥ देवस्यवरदानाच्चपृष्ट्वान्योन्यंकुलावलीम् ॥ ६१ ॥ विद्याधरायतानागैःकन्यास्तिस्रोपिकल्पिताः ॥ मंदारदामासंतुष्टःप्राप्यतच्चक्षुषात्रयम् ॥ ६२ ॥

पूजा करनी चाहिए ॥ ५७ ॥ यह कहकर भगवान् त्रिलोचन त्रिभुवन भरसे बड़े होनेपरभी अवाच्यरूप (सूक्ष्मरूप) को धारण कर उसी मन्दिरके भीतर चलेगये ॥ ५८ ॥ इधर ये सब नागकन्यायें अपने अपने घरमें पहुँच अपनी माताओंसे यह सब वृत्तान्त कहकर मानो कृतकृत्य होगईं ॥ ५९ ॥ फिर एकबार वैशाख मासकी महायात्रा आपहुंची, उसी समय त्रिलोचनके पास विरजस्क महापीठ क्षेत्रमें अपने स्वजन गणके साथ समस्त विद्याधर और नागगण वहां जुटेथे, सुतरां देवके वरदानसे उन लोगोंने एक दूसरेकी कुलपरम्परा इत्यादि समझ बूझलेनेपर ॥ १६० ॥ ६१ ॥ नागोंने विद्याधरके पुत्र परिमलाल

यको उन तीनोंही कन्याओंका दान करदिया, और मंदारदामभी उन तीनों पुत्रवधुओंको पाकर बडा संतुष्ट हुआ ॥ ६२ ॥ योंही नागराज रत्नदीप, पद्मी, और त्रिशिखिभी परिमलालयको सब प्रकारसे योग्य जामाता पाकर बडेही सन्तुष्ट हुए, और दोनों ओरके बन्धुबांधवगणभी हर्षके मारे विकसितनयन होगये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ इस प्रकारसे उन सबोंने विवाहोत्सवको सम्पन्न कर त्रिलोचन लिंगकी बडी बडाई गातेहुए अपने अपने लोककी यात्रा की ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त वह श्रीमान् परिमलालय विद्याधर उन तीनों नागकन्योंके साथ विपुलसुख भोगकर अन्तको काशीधाममें पहुँच श्रीत्रिलोचनकी सेवा करता हुआ ॥ ६६ ॥ और मधुर गीतोंको गाता हुआ उन नागकन्याओंके साथ अपनेको भूलजानेपर उसी त्रिलोचन लिंगमें लीन होगया ॥ ६७ ॥ स्कन्दने

रत्नदीपश्चनागेंद्रःपद्मीचभुजगेश्वरः ॥ त्रिशिखोपिफणींद्रश्चहृष्टाएतेत्रयोपिच ॥ ६३ ॥ जामातरंसमासाद्यशुभंपरिमलालयम् ॥ अन्योन्यंस्वजनास्तेतुमुदाविकसितेक्षणाः ॥ ६४ ॥ विवाहोत्सवमाकल्प्यस्वंस्वंभुवनमाविशन् ॥ त्रिलोचनस्यलिंगस्यवर्णयंतोतिगौरवम् ॥ ॥ ६५ ॥ सचविद्याधरःश्रीमान्नागीभिर्विपुलंसुखम् ॥ भुक्त्वावाराणसींप्राप्यसंसेव्याथत्रिलोचनम् ॥ ६६ ॥ गायन्गीतंसुमधुरंनागीभिः सहितःकृती ॥ आत्मानंचातिसंस्मृत्यमध्येलिंगंलयंगतः ॥ ६७ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ त्रिलोचनस्यमहिमाकलौदेवेनगोपितः ॥ अतोल्पसत्त्वामनुजानतल्लिंगमुपासते ॥ ६८ ॥ त्रिलोचनकथामेतांश्रुत्वापापान्वितोप्यहो ॥ विपाप्माजायतेमर्त्योलभतेचपरांगतिम् ॥ ॥ १६९ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडे उत्तरार्धे त्रिलोचनप्रभावोनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ॥ नमस्तेदेवदेवेशप्रणमत्करुणानिधे ॥ वदकेदारमाहात्म्यंभक्तानामनुकंपया ॥ १ ॥

कहा—कलियुगमें महादेवने त्रिलोचन लिंगकी महिमाको गुप्तकर रक्खाहै इसीसे अल्प सत्त्ववाले मनुष्यलोग उस लिंगकी उपासना नहीं करते ॥ ६८ ॥ अहो ! ! यह त्रिलोचनकी कथा यदि पापीकेभी कानोंमें जा पडे तो उसे निष्पाप करके परम गतिका लाभ करासकतीहै ॥ १६९ ॥ दोहा—त्रिपथ गामिनी तीर पै, श्रीतिरलोचन घाट । वहां त्रिलोचन हरत हैं, त्रिभुवनके अघ ठाट ॥ १ ॥ अछय तृतीयापर्वपर, काशीके सब लोक । वहां नहाय नसावते, अपने दुख अघ शोक ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ पार्वतीने कहा—हे प्रणतजनदयानिधे !

देवदेवेश ! मैं आपको प्रणाम करतीहूं, आप भक्तोंपर कृपाकरके केदारेश्वरका माहात्म्य वर्णन कीजिए ॥ १ ॥ क्योंकि काशीमें उस लिंगपर आपकी बडीही प्रीतिहै, और उसके भक्तलोगभी नित्यही बडे बुद्धिमान् होतेहैं ॥ २ ॥ महादेव बोले—हे अपर्णे ! मैं केदारेश्वरकी कथाको कहताहूं, श्रवण करो, इसके सुननेसे पापीभी तुरतही निष्पाप होजाताहै ॥ ३ ॥ जो पुरुष दृढचित्त होकर केदारेश्वरकी यात्रा करनेकी इच्छा करताहै, उसके जन्म भरके संचित पाप उसी क्षणमें नष्ट होजातेहैं ॥ ४ ॥ और जो कोई केदारयात्राके लिए घरसे निकल पडता है, उसके तो दो जन्मके उपार्जित पापभी शरी

तस्मिँल्लिंगेमहाप्रीतिस्तवकाश्यामनुत्तमा ॥ तद्भक्ताश्चजनानित्यंदेवदेवमहाधियः ॥ २ ॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ शृण्वपर्णेभिधास्यामिकेदारेश्वरसंकथाम् ॥ समाकर्ण्यापियांपापोप्यपापोजायतेक्षणात् ॥ ३ ॥ केदारंयातुकामस्यपुंसोनिश्चितचेतसः ॥ आजन्मसंचितंपापंतत्क्षणादेवनश्यति ॥ ४ ॥ गृहाद्विनिर्गतेपुंसिकेदारमभिनिश्चितम् ॥ जन्मद्वयार्जितंपापंशरीरादपिनिर्व्रजेत् ॥ ५ ॥ मध्येमार्गंप्रपन्नस्यत्रिजन्मजनितंत्वघम् ॥ देहगेहाद्विनिःसृत्यनिराशंयातिनिःश्वसत् ॥ ६ ॥ सायंकेदारकेदारकेदारेतित्रिरुच्चरन् ॥ गृहेपिनिवसन्नूनंयात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाकेदारशिखरंपीत्वातत्रत्यमंबुच ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ हरपापह्रदेस्नात्वाकेदारेशंप्रपूज्यच ॥ कोटिजन्मार्जितैनोभिर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९ ॥ सकृत्प्रणम्यकेदारंहरपापकृतोदकः ॥ स्थाप्यलिंगंह्रदंभोजेप्रांतेमोक्षंगमिष्यति ॥ १० ॥

रसे अवश्यही निकल भागतेहैं ॥ ५ ॥ एवं जो कोई आधा मार्ग साधलेताहै उसके तीन जन्मके पाप देहरूप गेहसे बाहर हो उसाँसेंलेते हुए निराश होकर परायजातेहैं ॥ ६ ॥ यदि कोई घरमेंभी रहकर सन्ध्या समय तीनबार केदारका नाम लेलेवे तो उसे निश्चय करके केदारकी यात्राका फल मिल जाताहै ॥ ॥७॥ केदारनाथके शिवालयका शिखर देख, और वहांका जल पीकर सभी कोई अपने सात जन्मोंके पापोंसे छूटजाताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥८॥ हरपापकुंडमें स्नान और केदारेश्वरके पूजनसे तो करोडों जन्मके पातक छूटजातेहैं, यह बात निश्चितहै ॥ ९ ॥ यदि कोई हरपापमें स्नानादिकृत्योंको कर

अपने हृदय रूप कमलमें केदारेश्वरलिंगको रख एक वारभी प्रणाम करे तो वह अन्तमें मुक्तिको प्राप्त करताहै ॥ १० ॥ हरपाप ह्रदपर श्रद्धापूर्वक श्राद्धकरे तो उसके सात पुरुषोंका उद्धार होजाताहै एवं वह मनुष्य मेरे लोकमें चलाजाताहै ॥ ११ ॥ हे अपर्णे ! पूर्व—रथंतर कल्पमें जो बात यहां हुईथी, उसे मैं तुम्हारे आगे प्रकट करताहूं, कान देकर सुनो ॥ १२ ॥ एक ब्राह्मणका लडका पिताके यज्ञोपवीत करदेनेपर ब्रह्मचर्यका व्रतधारण करके उज्जयिनीसे यहां आया ॥ १३ ॥ वह जटामुकुटसे भूषित, लिंगपूजक, भस्मसे लेपित शरीर, भिक्षामात्रके अन्नसे संतुष्ट, गंगाके जलपानसे पुष्ट पाशुपत ब्राह्मणोंसे चारोंओर

हरपापह्रदेश्राद्धंश्रद्धयायःकरिष्यति ॥ उद्धृत्यसप्तपुरुषान्समेलोकंगमिष्यति ॥ ११ ॥ पुरारार्थतरेकल्पेयदभूदत्रतच्छृणु ॥ अपर्णेदत्त कर्णात्वंवर्णयामितवाग्रतः ॥ १२ ॥ एकोब्राह्मणदायादउज्जयिन्याइहागतः ॥ कृतोपनयनःपित्राब्रह्मचर्यव्रतेस्थितः ॥ १३ ॥ स्थलींपा शुपतींकाशींसविलोक्यसमंततः ॥ द्विजैःपाशुपतैःकीर्णांजटामुकुटभूषितैः ॥ १४ ॥ कृतलिंगसमर्चैश्चभूतिभूषितवर्ष्मभिः ॥ भिक्षाह्व तान्नसंतुष्टैःपुष्टैर्गंगामृतोदकैः ॥ १५ ॥ बभूवानंदितमनाव्रतंचग्राहचोत्तमम् ॥ हिरण्यगर्भादाचार्यान्महत्पाशुपताभिधम् ॥ १६ ॥ सच शिष्योवशिष्ठोभूत्सर्वपाशुपतोत्तमः ॥ स्नात्वाह्रदेहरपापेनित्यंप्रातःसमुत्थितः ॥ १७ ॥ विभूत्याहरहःस्नातित्रिकालंलिंगमर्चयन् ॥ नांतरंसविजानातिशिवलिंगेगुरौतथा ॥ १८ ॥ सद्वादशाब्ददेशीयोवशिष्ठोगुरुणासह ॥ ययौकेदारयात्रार्थंगिरिंगौरीगुरोर्गुरुम् ॥ १९ ॥ यत्रगत्वानशोचंतिकिंचित्संसारिणःक्वचित् ॥ प्राश्योदकंलिंगरूपंलिंगरूपत्वमागताः ॥ २० ॥

भरीहुई शिवपुरी काशीको देख ॥ १४ ॥ १५ ॥ बहुतही प्रसन्न हुआ, और (वहींपर) हिरण्यगर्भनामक आचार्यसे उसने परमोत्तम पाशुपत व्रतको ग्रहण किया ॥१६॥ उस शिष्यका नाम वशिष्ठ था, वह समस्त शैवोंमें प्रधान होगया, वह प्रतिदिन प्रातःकाल (सूत) उठनेपर हरपापकुंडमें नहाता ॥ १७ ॥ और नित्यही भस्मसे स्नान कर त्रिकाललिंगका पूजन करता, एवं शिवलिंग और गुरुमें कुछभी अन्तर नहीं समझता था, ॥ १८ ॥ (एकबार) जब वह बारह वर्षका था अपने गुरुके साथ केदारेश्वरकी यात्राके लिए हिमालयपर्वतपर गया ॥ १९ ॥ जहां जानेसे संसारियोंको कभी कोईभी शोच नहीं करना

पडता, और वहांके लिंगरूप जलके पीनेसे लोग स्वयंभी लिंगरूपको प्राप्त होजाते हैं ॥ २० ॥ इसके अनंतर वशिष्ठके आचार्य तपस्वी हिरण्यगर्भ असिधारपर्वतपर पहुँचकर कालके ग्रास होगये ॥ २१ ॥ फिर उनको सब तपस्वियोंके देखतेही देखते शिवके पारिषद लोग स्वेच्छाचारी विमानपर चढाकर बडे हर्षसे कैलासमें लेगये ॥ २२ ॥ (क्योंकि) केदारेश्वरके उद्देश्यसे जो कोई यात्रा करताहै वह यदि आधे मार्गमें अकातर रहकर मर जावे तो बहुत दिनों तक कैलासमें वास करताहै ॥ २३ ॥ उस आश्चर्य्यघटनाको देखकर वह तपोधन वशिष्ठ निश्चयरूपसे केदारहीको सब लिंगोंमें बडा समझने लगा ॥२४॥ पश्चात् वह केदारेश्वरकी यात्रा करके फिर काशीमें लौटआया, और इस नियमको धारणकरके यथार्थरीतिसे उसका पालनभी करनेलगा, कि ॥ २५ ॥

असिधारंगिरिंप्राप्यवशिष्ठस्यतपस्विनः ॥ गुरुर्हिरण्यगर्भाख्यःपंचत्वमगमत्तदा ॥ २१ ॥ पश्यतांतापसानांचविमानेसार्वकामिके ॥ आरोप्यतंपारिषदाःकैलासमनयन्मुदा ॥ २२ ॥ यस्तुकेदारमुद्दिश्यगेहादर्धपथेप्यहो ॥ अकातरस्त्यजेत्प्राणान्कैलासेसचिरंवसेत् ॥ ॥ २३ ॥ तदाश्चर्यंसमालोक्यसवशिष्ठस्तपोधनः ॥ केदारमेवलिंगेषुबह्वमंस्तसुनिश्चितम् ॥ २४ ॥ अथकृत्वासकैदारींयात्रांवाराणसीमगात् ॥ अग्रहीन्नियमंचापियथार्थंचाकरोत्पुनः ॥ २५ ॥ प्रतिचैत्रंसदाचैत्र्यांयावज्जीवमहंध्रुवम् ॥ विलोकयिष्येकेदारंवसन्वाराणसींपुरीम् ॥ २६ ॥ तेनयात्राःकृताःसम्यक्षष्टिरेकाधिकामुदा ॥ आनंदकाननेनित्यंवसताब्रह्मचारिणा ॥ २७ ॥ पुनर्यात्रांसवैचक्रेमधौनिकटवर्तिनि ॥ परमोत्साहसंतुष्टःपलिताकलितोप्यलम् ॥ २८ ॥ तपोधनैस्तन्निधनंशंकमानैर्निवारितः ॥ कारुण्यपूर्णहृदयैरन्यैरपिचसंगिभिः ॥ २९ ॥ ततोपिनतदुत्साहभंगोभूद्दृढचेतसः ॥ मध्येमार्गंमृतस्यापिगुरोरिवगतिर्मम ॥ ३० ॥

प्रति वर्ष चैत्रकी पूर्णिमाको जबलों मैं जीता रहूंगा काशीमें रहनेपरभी केदारेश्वरका दर्शन कियाकरूंगा ॥ २६ ॥ फिर तो आनन्दवनमें रहकर उस बालब्रह्मचारीने सम्यक् प्रकारसे केदारनाथकी एकसठ यात्रा बडे हर्षसे कीं ॥ २७ ॥ अनंतर वह तपस्वी बालोंके बहुत श्वेत होजानेपरभी बडे उत्साहके साथ सन्तुष्टचित्तसे फिर चैत्रमासके निकट आनेपर यात्राका प्रबंध करनेलगा ॥ २८ ॥ यह देखकर उसके संगी दूसरे तपस्वीलोग वृद्धताके कारण उसकी मृत्युके संदेहवश दयार्द्रचित्तहोकर उसे निषेध करनेलगे ॥ २९ ॥ पर उस दृढचित्त शैवका उत्साह नहीं टूटा, उसने शोचा कि, यदि मैं मार्गहीमें मरजाऊंगा

तो भी गुरुकी नाईं मेरी गति होजावेगी ॥ ३० ॥ हे पार्वति ! इस प्रकारके दृढसंकल्प और द्विजमात्रके अन्नभोजी उस पवित्र तपोधन पर मैं बडा प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ और स्वप्नमें उस तापसोत्तम वशिष्ठसे बोला कि हे दृढ—व्रत ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं, तुम मुझको केदारेश्वर जानो ॥ ३२ ॥ और जो कुछ तुमको अभीष्टहो उस वरकी मुझसे प्रार्थनाकरो, इसमें कोई विचारकी आवश्यकता नहीं है, मेरे इस कहने परभी उसने कहा कि स्वप्न तो झूठा होता है ॥ ३३ ॥ तब फिर मैंने उससे कहा कि, अपवित्र लोगोंहीका स्वप्न झूठा होताहै, पर तुम्हारे ऐसे जितेन्द्रियोंका तो सर्वथा सच्चाही होताहै ॥ ३४ ॥ हे द्विज ! तुम स्वप्नकी शंकाको छोड़कर वरमांगो मैं प्रसन्नहूं तुमसे सात्त्विक वृत्तिवालोंको कुछभी अदेय नहींहै ॥ ३५ ॥ मेरे इस कहनेको सुनकर हिरण्य

इतिनिश्चितचेतस्केवशिष्ठेतापसेशुचौ ॥ अशूद्रान्नपरीपुष्टेतुष्टोहंचंडिकेऽभवम् ॥ ३१ ॥ स्वप्नेमयासंप्रोक्तोवशिष्ठस्तापसोत्तमः ॥ दृढव्रत प्रसन्नोस्मिकेदारंविद्धिमामिह ॥३२॥ अभीष्टंचवरंमत्तःप्रार्थयस्वाविचारितम् ॥ इत्युक्तवत्यपिमयिस्वप्नोमिथ्येतिसोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ ततोपिसमयाप्रोक्तःस्वप्नोमिथ्याशुचिष्मताम् ॥ भवादृशाममिथ्यैवस्वाख्यासद्दशवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥ वरंब्रूहिप्रसन्नोस्मिस्वप्नशंकांत्यजद्विज ॥ तवसत्त्ववतःकिंचिन्मयादेयंनकिंचन ॥ ३५ ॥ इत्युक्तंमेसमाकर्ण्यवरयामाससमामिति ॥ शिष्योहिरण्यगर्भस्यतपस्विजनसत्तमः ॥३६॥ यदिप्रसन्नोदेवेशतदामेसानुगाइमे ॥ सर्वेशूलिन्ननुग्राह्याएषएववरोमम ॥ ३७ ॥ देवितस्येदमाकर्ण्यपरोपकृतिशालिनः ॥ वचनंनितरांप्रीतस्तथेतितमुवाचह ॥ ३८ ॥ पुनःपरोपकरणात्तत्तपोद्विगुणीकृतम् ॥ तेनपुण्येनसमयापुनःप्रोक्तोवरंवृणु ॥ ३९ ॥ सवशिष्ठोमहाप्राज्ञोदृढपाशुपतव्रतः ॥ देविमेप्रार्थयामासहिमशैलादिहस्थितिम् ॥ ४० ॥

गर्भके शिष्य उस तपस्विसत्तमने मुझसे यह वरदान मांगा (कि) ॥ ३६ ॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्नहीहैं तो मेरे साथ चलनेवाले इन सबलोगोंपर आप अनुग्रह करें, हे शूलिन् ! (बस) मेरा यही वरहै ॥ ३७ ॥ हे देवि ! उस परोपकारी वशिष्ठकी इस बातको सुनकर मैं बहुतही प्रसन्न हुआ, और उससे कहनेलगा कि "तथास्तु" (वैसाही होवेगा) ॥ ३८ ॥ मैंने परोपकार करनेसे उसकी तपस्याको दूनी करदिया, और उसीके पुण्याधिक्यसे फिर कहा कि वरमांगो ॥ ३९ ॥ हे उमे ! उस दृढ़शैवव्रत, महाप्राज्ञ वशिष्ठने मुझसे यही प्रार्थना की, कि आप हिमाचलसे आकर यहांपर वासकरें ॥ ४० ॥

तदनंतर मैं उसके तपसे आकृष्टहो तभीसे हिमालयपर कलामात्र छोड़कर इस काशीहीमें सर्वभावसे रहनेलगा ॥ ४१ ॥ फिर तो प्रभात होजानेपर सब लोगोंके समक्षही देवता और ऋषियोंकी स्तुतिके सहित मैंने हिमालयसे प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥ और समस्त यात्रिवर्गके साथ वशिष्ठको अग्रसर बना उस पर अनुग्रह करके हरपाप ह्रदतीर्थपर निवास किया ॥ ४३ ॥ मेरेही संबन्धसे हरपाप ह्रदमें स्नान और मेरा आराधन करके वे सब वशिष्ठके साथी लोगभी इसी शरीरसे सिद्धिको प्राप्त होगये ॥ ४४ ॥ तभीसे मैं अविमुक्तक्षेत्रमें विशेष करके कलियुगके समय इसीलिंगमें साधक लोगोंकी सिद्धिके लिए (सर्वदैव) वास करनेलगा ॥ ४५ ॥ हिमालयपर्वतपर चढ़कर केदारनाथके दर्शनसे जो फल मिलताहै, काशीमें केदारेश्वरके दर्शनसे उसका सातगुना अधिक पुण्य होताहै

ततस्तत्तपसाकृष्टःकलामात्रेणतत्रहि ॥ हिमशैलेततश्चात्रसर्वभावेनसंस्थितः ॥ ४१ ॥ ततःप्रभातेसंजातेसर्वेषांपश्यतामहम् ॥ हिमाद्रेः प्रस्थितःप्रातःस्तूयमानःसुरर्षिभिः ॥ ४२ ॥ वशिष्ठंपुरतःकृत्वासर्वसार्थसमायुतम् ॥ हरपापह्रदेतीर्थेस्थितोहंतदनुग्रहात् ॥ ४३ ॥ मत्प रिग्रहतःसर्वेहरपापेकृतोदकाः ॥ आराध्यमामनेनैववपुषासिद्धिमागताः ॥ ४४ ॥ तदाप्रभृतिलिंगेस्मिंस्थितःसाधकसिद्धये ॥ अवि मुक्तेपरेक्षेत्रेकलिकालेविशेषतः ॥ ४५ ॥ तुषाराद्रिंसमारुह्यकेदारंवीक्ष्ययत्फलम् ॥ तत्फलंसप्तगुणितंकाश्यांकेदारदर्शने ॥ ४६ ॥ गौरी कुंडंयथातत्रहंसतीर्थंचनिर्मलम् ॥ यथामधुस्रवागंगाकाश्यांतदखिलंतथा ॥ ४७ ॥ इदंतीर्थंहरपापंसप्तजन्माघनाशनम् ॥ गंगायांमिलि तंपश्चाज्जन्मकोटिकृताघहम् ॥ ४८ ॥ अत्रपूर्वंतुकाकोलौयुध्यंतौखान्निपेततुः ॥ पश्यतांतत्रसंस्थानांहंसौभूत्वाविनिर्गतौ ॥ ४९ ॥ गौरि त्वयाकृतंपूर्वंस्नानमात्रंमहाह्रदे ॥ गौरीतीर्थंततःख्यातंसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ५० ॥

॥ ४६ ॥ जैसे हिमाचलपर निर्मल गौरीकुंड, हंसतीर्थ, और मधुस्रवागंगा विराजमानहैं, काशीमेंभी वे सब ज्योंके त्यों वर्तमानहैं ॥ ४७ ॥ यह हरपाप तीर्थ (पहिलेतो) सातही जन्मके पापोंको हरताथा, पर जबसे गंगामें मिलगया तबसे करोडों जन्मके कियेहुए पापोंका नाश करडालताहै ॥ ४८ ॥ यहां पर पूर्वकालमें दो (डोम) कौवे लडतेहुए आकाशसे गिरपडेथे, सो वे दोनों वहां वालोंके देखतेही देखते हंस होकर निकल गये (इससे तो यह हंसतीर्थ हुआ और) ॥ ४९ ॥ हे गौरि ! इस महाह्रदमें पहिलेपहिल तुम्हीने स्नान कियाथा इस कारणसे यह सब तीर्थोंमें परमोत्तम गौरीकुण्डके नामसे प्रसिद्ध

हुआ ॥ ५० ॥ यहांपर गंगाभी मधुस्रवा कहलातीहैं, क्योंकि वह यहां महामोहांधकारको हरती एवं अनेकजन्म जनित जडताको दूरकरतीहैं ॥ ५१ ॥ इसी हरपापतीर्थ पर मानसनामक सरोवरने पूर्वकालमें बडी कठोर तपस्या की थी इसीसे इसको लोग मानसतीर्थ कहनेलगे ॥ ५२ ॥ पहिले तो लोग इस तीर्थमें केवल स्नानही करलेनेसे मुक्त होजाते थे पर पीछेसे मुक्तिके विषयमें दुर्दशाग्रस्त देवतोंने (आकर) मुझसे प्रार्थना की कि ॥ ५३ ॥ हे देव ! इस केदारकुण्डमें स्नान करनेसे यदि सभीलोगोंको मुक्ति मिल जायाकरेगी तो फिर सभी वर्ण, आश्रम, और धर्मियोंका उच्छेद (होकर सृष्टिका लोप)

अत्रामृतस्रवागंगामहामोहांधकारहृत् ॥ अनेकजन्मजनितजाड्यध्वंसविधायिनी ॥ ५१ ॥ सरसामानसेनात्रपूर्वंतप्तंमहातपः ॥ अतस्तु मानसंतीर्थंजनेख्यातिमिदंगतम् ॥ ५२ ॥ अत्रपूर्वंजनःस्नानमात्रेणैवप्रमुच्यते ॥ पश्चात्प्रसादितश्चाहंत्रिदशैर्मुक्तिदुर्दशैः ॥ ५३ ॥ सर्वे मुक्तिंगमिष्यंतियदिदेवेहमानवाः ॥ केदारकुंडेसुस्नातास्तदोच्छित्तिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥ सर्वेषामेववर्णानामाश्रमाणांचधर्मिणाम् ॥ तस्मा त्तनुविसर्गेत्रमोक्षंदास्यतिनान्यथा ॥ ५५ ॥ ततस्तदुपरोधेनतथेतिचमयोदितम् ॥ तदारभ्यमहादेविस्नानात्केदारकुंडतः ॥ ५६ ॥ सम र्चनाच्चभक्त्यावैममनामजपादपि ॥ नैःश्रेयसींश्रियंदद्यामन्यत्रापितनुत्यजाम् ॥ ५७ ॥ केदारतीर्थेयःस्नात्वापिंडान्दास्यतिचात्वरः ॥ एकोत्तरशतंवंश्यास्तस्यतीर्णाभवांबुधिम् ॥५८॥ भौमवारेयदादर्शस्तदायःश्राद्धदोनरः ॥ केदारकुंडमासाद्यगयाश्राद्धेनकिंततः ॥ ५९ ॥ केदारंगंतुकामस्यबुद्धिर्देयानरैरियम् ॥ काश्यांस्पृशंस्त्वंकेदारंकृतकृत्योभविष्यसि ॥ ६० ॥

होजावेगा, इसलिये आप यहांपर शरीर त्यागनेवालोंहीको मुक्तिदेवें, अन्यथा मत दियाकीजिये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ उनलोगोंके अनुरोधसे मैंने तथास्तु (तो) कहदिया (पर) हे महादेवि ! तबसे केदारकुंडमें स्नान ॥ ५६ ॥ भक्तिभावसे मेरा पूजन और नामके जपकरनेसे अन्यत्र मरनेवालोंकोभी मैं मोक्षलक्ष्मीका दान करनेलगा ॥ ५७ ॥ केदारतीर्थमें स्नान कर यदि कोई स्थिरचित्तसे पिंडदान करेगा तो उसके एकसौएक पुरुषे भवार्णवसे पार होजावेंगे ॥ ५८ ॥ यदि भौमवती अमावास्यामें कोई केदारकुण्डपर श्राद्ध करसके तो फिर उसे गयामें श्राद्ध करनेका कौन प्रयोजनहै ? ॥ ५९ ॥ यदि कोई केदारकी यात्रा

किया चाहता हो तो लोगोंको यही बुद्धि देनी चाहिये कि, काशीहीमें केदारेश्वरका स्पर्श करके तुम कृतकृत्य होजावोगे ॥ ६० ॥ जो कोई चैत्रमासकी कृष्णा चतुर्दशीको व्रत रहकर प्रातःकाल यदि तीन घोंट जल (वहांपर) पीलेवे तो उसके हृदयमें लिंगका वास होजाताहै ॥ ६१ ॥ हिमालयके केदारोदकका पान करनेसे जो फल होताहै, यहांपरभी निस्सन्देह वही पुण्य स्त्री हो अथवा पुरुष हो सभी लोगोंको मिलजाताहै ॥ ६२ ॥ जो कोई धन, वस्त्र, और अन्न इत्यादिके द्वारा केदारेश्वरके भक्तकीभी पूजा करताहै, वह अपने जन्मभरके पापोंसे छूटकर मेरे स्थानमें प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ छमासपर्यंत जो कोई प्रतिदिन तीनवार (त्रिकालमें) केदारनाथको प्रणाम करताहै, उसे यमराज आदिक लोकपाललोग सर्वदैव नमस्कार करतेहैं ॥ ६४ ॥ कलियुगमें

चैत्रकृष्णचतुर्दश्यामुपवासंविधायच ॥ त्रिगंडूषान्पिबन्प्रातर्हृल्लिंगमधितिष्ठति ॥ ६१ ॥ केदारोदकपानेनयथातत्रफलंभवेत् ॥ तथात्रजायतेपुंसांस्त्रीणांचापिनसंशयः ॥ ६२ ॥ केदारभक्तंसंपूज्यवासोन्नद्रविणादिभिः ॥ आजन्मजनितंपापंत्यक्त्वायातिममालयम् ॥ ६३ ॥ आषण्मासंत्रिकालंयःकेदारेशंनमस्यति ॥ तंनमस्यंतिसततंलोकपालायमादयः ॥ ६४ ॥ कलौकेदारमाहात्म्यंयोपिकोपिनवेत्स्यति ॥ योवेत्स्यतिसपुण्यात्मासर्ववेत्स्यतिसध्रुवम् ॥ ६५ ॥ केदारेशंसकृद्दृष्ट्वादेविमेऽनुचरोभवेत् ॥ तस्मात्काश्यांप्रयत्नेनकेदारेशंविलोकयेत् ॥ ॥६६॥ चित्रांगदेश्वरंलिंगंकेदारादुत्तरेशुभम् ॥ तस्यार्चनान्नरोनित्यंस्वर्गभोगानुपाश्नुते ॥६७॥ केदाराद्दक्षिणेभागेनीलकंठविलोकनात् ॥ संसारोरगदष्टस्यतस्यनास्तिविषाद्भयम् ॥ ६८ ॥ तद्वायव्येंबरीषेशोनरस्तदवलोकनात् ॥ गर्भवासंनचाप्नोतिसंसारेदुःखसंकुले ॥ ६९ ॥

सब कोई केदारेश्वरकी महिमाको नहीं समझसकते, पर ज़ो जानताहै वह पुण्यात्मा सब कुछ जानसकता है यह बात ध्रुवहै ॥ ६५ ॥ हे देवि ! जो कोई एक बारभी केदारेश्वरका दर्शन करलेताहै वह मेरा अनुचर होताहै, अतएव प्रयत्न उठाकर काशीमें केदारनाथका दर्शन करना चाहिये ॥ ६६ ॥ केदारेश्वरके उत्तरभागमें परमोत्तम चित्रांगदेश्वरनामक लिंग विराजमानहै, उसके पूजनसे मनुष्य स्वर्गके नित्य भोगोंको पाताहै ॥६७॥ केदारेश्वरके दक्षिणभागमें नीलकंठेश्वरके दर्शनसे संसाररूपी सर्पके डँसेहुए लोगोंको (दुःख रूप) विषसे कोई भय नहीं रहनेपाता ॥ ६८ ॥ उसके वायव्यकोणपर अंबरीषेश्वरके

दर्शन करनेसे मनुष्य दुःखमय संसारमें गर्भवासकी यातना नहीं भोगनेपाता ॥ ६९ ॥ उसीके पासमें इन्द्रद्युम्नेश्वरनामक लिंगके पूजन करनेसे मनुष्य तेजोमय विमानपर चढकर स्वर्गलोकमें आनन्द करताहै ॥ ७० ॥ उसके दक्षिणओर कालंजरेश्वरनामक लिंगके दर्शन करनेसे मनुष्य जरा और कालको जीतकर मेरे लोकमें बहुत दिनोंतक वास करताहै ॥ ७१ ॥ चित्रांगदेश्वरके उत्तर ओर क्षेमेश्वर लिंगके दर्शन करनेसे सर्वत्रही अर्थात् इसलोक और परलोकमेंभी क्षेमही मिलताहै ॥ ७२ ॥ स्कन्दने कहा—हे विन्ध्यविमर्दक ! इस प्रकारसे महादेवने श्रीकेदारेश्वरका बडाभारी माहात्म्य जगदम्बासे निरूपण कियाथा सो सब मैंने तुमसे कहदिया ॥ ७३ ॥ जो मनुष्य केदारेश्वरके प्रकटहोनेकी कथाको श्रवण करताहै वह क्षणमात्रमें निष्पाप होकर शिवलोकमें चलाजाताहै ॥

इंद्रद्युम्नेश्वरंलिंगंतत्समीपेसमर्च्यच ॥ तेजोमयेनयानेनसस्वर्गभुविमोदते ॥ ७० ॥ तद्दक्षिणेनरोदृष्ट्वालिंगंकालंजरेश्वरम् ॥ जरांकालंविनिर्जित्यममलोकेवसेच्चिरम् ॥ ७१ ॥ दृष्ट्वाक्षेमेश्वरंलिंगमुदक्चित्रांगदेश्वरात् ॥ सर्वत्रक्षेममाप्नोतिलोकेऽत्रचपरत्रच ॥ ७२ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ ॥ देवदेवेनविंध्यारेकेदारमहिमामहान् ॥ इत्याख्यायिपुरांबायैमयातेपिनिरूपितः ॥ ७३ ॥ केदारेश्वरलिंगस्यश्रुत्वोत्पत्तिंकृतीनरः ॥ शिवलोकमवाप्नोतिनिष्पापोजायतेक्षणात् ॥ ७४ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धेकेदारमहिमाख्यानंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ॥ आनंदकाननेशंभोयल्लिंगंपुण्यवर्धनम् ॥ यन्नामस्मरणादेवमहापातकसंक्षयः ॥ १ ॥ यत्सेव्यंसाधकैर्नित्यंयत्रप्रीतिरनुत्तमा ॥ यत्रदत्तंहुतंजप्तंध्यातंभवतिचाक्षयम् ॥ २ ॥

॥ ७४ ॥ दोहा—गौरीकुंड नहायकै, जो केदारहिं देख । सो मनुष्य निष्पाप है, सब लेखनमें लेख ॥ १ ॥ शोभन सावन मासमें, सोमवार परदोष । केदारेश्वर घाटपै, मेला लगत निदोष ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ पार्वती बोलीं—हे शम्भो ! आनन्दकाननमें ऐसा कौनसा लिंगहै जो पुण्यका वर्द्धक हो, और जिसके नामका स्मरण करनेहीसे समस्त महापातकोंका क्षय होजावे ? ॥ १ ॥ एवं साधक लोग जिसपर बडी प्रीति रखकर सदैव जिसका सेवन किया चाहतेहैं, और जिसके समीपमें कियाहुआ दान, ध्यान, जप, और होम (इत्यादि)

अक्षय होजाता होवे ॥ २ ॥ फिर जिस लिंगके स्मरण, दर्शन, स्पर्शन, प्रणाम ॥ ३ ॥ और पंचामृतस्नपन—पूर्वक पूजन करनेसे असीम कल्याण होवे हे ईशान ! आप उस लिंगको वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ स्कन्दने कहा—हे घटज ! भगवतीके इस प्रश्नको सुनकर सर्वज्ञ भगवानने जो कुछ उत्तर दिया था, उसे मैं कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ५ ॥ महादेवने कहा-हे उमे ! देवि ! तुमने जो संसारके बन्धन छुडानेवाले लिंगको पूछा सो मैं कहताहूं स्थिरचित्त होजाओ ॥ ६ ॥ (क्योंकि) इस आनंदवन काशीक्षेत्रमें यह मेरा बडाभारी रहस्यहै, और इस बातको (आजतक) मैंने किसीसे नहीं कहाहै, कारण ऐसे

यस्यसंस्मरणादेवयल्लिंगस्यविलोकनात् ॥ यल्लिंगप्रणतेश्चापियस्यसंस्पर्शनादपि ॥ ३ ॥ पंचामृतादिस्नपनपूर्वाद्यस्यार्चनादपि ॥ तल्लिंगं कथयेशानभवेच्छ्रेयःपरंपरा ॥ ४ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इतिदेवीसमुदितंसमाकर्ण्यघटोद्भव ॥ सर्वज्ञेनयदाख्याततंतदाख्यास्यामि तेशृणु ॥ ५ ॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ उमेभवत्यायत्पृष्टंभवबंधविमोक्षकृत् ॥ ततोऽहंकथयिष्यामिलिंगंस्थिरमनाभव ॥ ६ ॥ आनंदकाननेचात्ररहस्यंपरमंमम ॥ नमयाकस्यचित्ख्यातंनप्रष्टुंवेत्तिकश्चन ॥ ७ ॥ संतिलिंगान्यनेकानिममानंदवनेप्रिये ॥ परंत्वयायथा पृष्टंयथावत्तद्ब्रवीमिते ॥ ८ ॥ यत्रमुक्तिस्वरूपात्वंस्वयंतिष्ठसिविश्वगे ॥ यत्रतेनंदनश्चास्तिक्षेत्रविघ्नविघातकृत् ॥ ९ ॥ ममापियेनत्रिपुर समरेजयकांक्षिणः ॥ जयाशापूरितास्तुत्याबहुमोदकदानतः ॥ १० ॥ यत्रास्तितीर्थमघहृत्पितृप्रीतिविवर्धनम् ॥ यत्स्नानाद्वृत्रहावृत्रवधपापाद्विमुक्तवान् ॥ ११ ॥ धर्माधिकरणंयत्रधर्मराजोप्यवाप्तवान् ॥ सुदुष्करंतपस्तप्त्वापरमेणसमाधिना ॥ १२ ॥

प्रकारसे कोई पूछनेही नहीं जानते ॥ ७ ॥ हे प्रिये ! यद्यपि मेरे आनन्दवनमें अनेकलिंग वर्तमानहैं परंतु तुमने जैसे पूछाहै मैं तुम्हारे अभिप्रायके अनुरूप (वैसाही लिंग) तुमसे कहताहूं ॥ ८ ॥ हे विश्वगे ! जहांपर स्वयं तुम्ही मुक्तिस्वरूपाहो, और जहांपर तुम्हारे पुत्रभी क्षेत्रके विघ्नोंका विघात करते रहतेहैं ॥ ९ ॥ जिसने त्रिपुरासुरके संग्रामकालमें जयकी आकांक्षासे बडी स्तुति करने और लड्डू चढानेसे मेरीभी जयाशाको पूर्ण कर दियाथा ॥ १० ॥ जहांपर पापनाशक और पितरोंका प्रीतिवर्द्धक एक उत्तमतीर्थ है, इन्द्रभी जिसमें स्नान करके वृत्रासुरकी हत्यासे छूटगये थे ॥ ११ ॥ फिर जहांपर धर्म राजनेभी

समाधि लगाय बडी कठोर तपस्या करके धर्माधिकारी (दंडधर) के पदको पायाहै ॥ १२ ॥ जहांपर पक्षीलोगोंनेभी भवमोचक ज्ञानको प्राप्त कियाथा, और जिस स्थानपर एक सोहावना बरगदका पेड सुवर्णमय होचुका है ॥ १३ ॥ फिर जिस लिंगके केवल दर्शन करनेहीसे राजा दुर्दम जो कि लोगोंको उद्वेजितकर (उबिआय) देता था क्षणमात्रमें धर्म बुद्धि बन गयाथा ॥ १४ ॥ हे सुन्दरि ! उसी महापातक नाशक लिंगका माहात्म्य और आविर्भाव मैं वर्णन करताहूं, श्रवण करो ॥ १५ ॥ मेरे इस आनन्दवनमें यह स्थान धर्मपीठके नामसे प्रसिद्धहै, और इस पीठके दर्शनसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १६ ॥ हे विशालाक्षि ! पूर्वकालमें सूर्यनारायणके पुत्र परमसंयमी यमराजने (वहींपर) तुम्हारे सन्मुखही घोरतपस्या की थी ॥

पक्षिणोपिहियत्रापुर्ज्ञानंसंसारमोचनम् ॥ रम्योहिरण्मयोयत्रबभूवबहुपाद्द्रुमः ॥ १३ ॥ यल्लिंगदर्शनादेवदुर्दमोनामपार्थिवः ॥ उद्वेजको पिलोकानांक्षणाद्धर्ममतिस्त्वभूत् ॥ १४ ॥ तस्यलिंगस्यमाहात्म्यमाविर्भावंचसुंदरि ॥ निशामयाभिधास्यामिमहापातकनाशनम् ॥ ॥ १५ ॥ धर्मपीठंतदुद्दिष्टमत्रानंदवनेमम ॥ तत्पीठदर्शनादेवनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ १६ ॥ पुराविवस्वतःपुत्रोयमःपरमसंयमी ॥ तपस्त तापविपुलंविशालाक्षितवाग्रतः ॥ १७ ॥ शिशिरेजलमध्यस्थोवर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ तपतौपंचवह्निस्थःकदाचिदिदितितप्तवान् ॥ १८ ॥ पादाग्रांगुष्ठभूस्पर्शीबहुकालंसतस्थिवान् ॥ एकपादस्थितःसोपिकदाचिद्बह्वनेहसम् ॥ १९ ॥ समीराभ्यवहर्तासीद्बहुदिंष्टंसदिष्टवान् ॥ पपौसतुपिपासुःसन्कुशाग्रजलविप्रुषः ॥ २० ॥ दिव्यांचतुर्युगीमित्थंसनिनायतपश्चरन् ॥ चतुर्गुणंदिदृक्षुर्मांपरमेणसमाधिना ॥ २१ ॥ ततोहंतस्यतपसासंतुष्टःस्थिरचेतसः ॥ ययौतस्मैवरान्दातुंशमनायमहात्मने ॥ २२ ॥

॥ १७ ॥ वह शिशिर ऋतुमें जलके बीचमें बैठ, वर्षामें अनाच्छादित भावसे रह, एवं ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापकर, तपस्याको करनेलगा ॥ १८ ॥ वह बहुत दिनोंतक तो एक पैरसे खडा रहकर फिर पीछे केवल अंगूठासे भूमिको स्पर्श करताहुआ तपस्या करता रहा ॥ १९ ॥ उस भाग्यवान् यमने बहुत समय तो केवल वायुभोजनहीसे बितादिया एवं प्यास लगनेपर कुशाग्रभागसे टपकनेवाले बून्दोंहीको चाटकर कालको काट दिया ॥ २० ॥ वह मेरेही दर्शनके लिये, उग्र समाधि लगाकर चारों युगोंकी चार चौकडीतक घोर तपश्चर्या करता रहा ॥ २१ ॥ तबतो उस दृढचित्त महात्मा यमराजकी तपस्यासे

बडाही संतुष्ट होकर मैं वरदान करनेके लिये वहां गया ॥ २२ ॥ जहांपर कांचनशाखनामक वट जो अनेक पक्षियोंसे भरा और बडी छाया युक्त होनेसे तपस्याजनित संतापोंको (दूर करताथा) ॥ २३ ॥ जो वट मन्द मन्द वायुके धक्केसे हिलतेहुए पल्लवरूपी करपल्लवोंके द्वारा मार्गश्रमसे नितांत क्लान्त (थकेहुए) पथिकोंको (अपनी ठंढी छायामें) विश्राम करनेके लिए मानो पुकार रहाथा ॥ २४ ॥ एवं जो लोग उसपर अनुराग करके उसका आश्रय ग्रहण करतेथे उन अर्थियोंको वह अपने गोलगोल पक्के सुगन्धित और स्वादिष्ठ फलोंसे संतुष्ट कर देताथा ॥ २५ ॥ उसी बडे बरगदके नीचे (पहुँचकर) मैंने यमराजको देखा वह (तो मानो) अत्यंतनीले आकाशमंडलमें अपने तेजसे देदीप्यमान सूर्यकी नाईं फैलतेहुए तपस्याके तेजसे चारोंओर परिधि

वटःकांचनशाखाख्योयस्तपस्तापसंततिम् ॥ दूरीचकारसुच्छायोबहुद्विजसमाश्रयः ॥ २३ ॥ मंदमंदमरुल्लोलपल्लवैःकरपल्लवैः ॥ योध्वगानध्वसंतप्तानाह्वयेदिवतापहृत् ॥ २४ ॥ स्वानुरागैःसुरभिभिःस्वादुभिश्चपचेलिमैः ॥ प्रीणयेदर्थिसार्थंयोवृत्तैर्निजफलैरलम् ॥ २५ ॥ तदधस्तात्परंवीक्ष्यतमहंतपनांगजम् ॥ स्थाणुनिश्चलवर्ष्माणंनासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥ २६ ॥ तपस्तेजोभिरुद्यद्भिःपरितःपरिधीकृतम् ॥ भानुमंतमिवाकाशेसुनीलेस्वेनतेजसा ॥ २७ ॥ स्वाख्यांकितंमहालिंगंप्रतिष्ठाप्यातिभक्तितः ॥ स्वच्छसूर्योपलमयंतेजःपुंजैरिवार्चितम् ॥ २८ ॥ साक्षीकृत्येवतल्लिंगंतप्यमानंमहत्तपः ॥ प्रत्यवोचंधर्मराजंवरंब्रूहीतिभास्करे ॥ २९ ॥ अलंतप्त्वामहाभागप्रसन्नोस्मिशुभव्रत ॥ निशम्यशमनश्चेतिदृष्ट्वामांप्रणनामह ॥ ३० ॥ चकारस्तवनंचापिपरिहृष्टेंद्रियेश्वरः ॥ निर्व्याजंससमाधिंचविसृज्यब्रध्नंनंदनः ॥ ३१ ॥

(मंडल) से वेष्टित, और बडीभक्तिसे अपने नामानुसार सूर्यकांत मणिका महालिंग स्थापित कर मानो तेजपुंजहीसे उसको पूजित करताहुआ, उसी लिंगको साक्षी बनाकर स्थाणुकी नाईं निश्चल देह होय और नासाके अग्रभागपर दृष्टि देकर तपन तनय घोर तपस्या कररहाथा, तब मैंने धर्मराजसे कहा हे भास्कर नन्दन ! बरमांगो, हे महाभाग ! अब तपस्या करनेका कोई प्रयोजन नहीं है, हे सुव्रत ! मैं बहुतही प्रसन्नहूं, यह सुनकर यमराजने मेरी ओर ताककर प्रणाम किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ और परम हृष्टचित्त हो, निष्कपटभावसे समाधिको छोडकर भानुनन्दन मेरी स्तुति करनेलगा ॥ ३१ ॥

धर्मराज कहने लगे हे कारणोंकेभी कारण ! आपको नमस्कारहै हे कारणरहित ! आपको प्रणामहै, हे देव ! आप समस्तकार्योंके स्वरूप होनेपरभी कार्योंसे पृथक् स्वरूपहैं, अतएव आपको वारंवार नमस्कारहै ॥ ३२ ॥ हे शशिमौले ! यद्यपि आप रूपहीनहैं, पर (मायाकरके) समस्त रूपोंसे परिपूर्ण हैं, फिर आप परमाणु स्वरूपहैं, तौभी कार्य कारण रूपहैं, हे अपारपार ! आपही संसाररूपी घोरसमुद्रके पार पहुँचाने वाले हैं अतएव आपको नमस्कार करताहूं, ॥ ॥ ३३ ॥ हे स्वामिन् ! आपका ईश्वर तो कोईभी नहीं है पर समग्र जगत्के ईश्वर आपहीहैं, आप गुणात्मक होनेपरभी गुणातीतहैं, आप स्वयं कालमूर्ति होकरभी काल और प्रकृतिसे परेहैं परन्तु आपही कालान्तक प्रकृतिहैं, अतएव आपको नमस्कारहै ॥ ३४ ॥ हे अनंतशक्ते ! आपही निर्वाणहैं और

धर्मउवाच ॥ ॥ नमोनमःकारणकारणानांनमोनमःकारणवर्जिताय ॥ नमोनमःकार्यमयायतुभ्यंनमोनमःकार्यविभिन्नरूप ॥ ३२ ॥ अरूपरूपायसमस्तरूपिणेपराणुरूपायपरापराय ॥ अपारपारायपराब्धिपारप्रदायतुभ्यंशशिमौलयेनमः ॥ ३३ ॥ अनीश्वरस्त्वंजगदीश्वरस्त्वंगुणात्मकस्त्वंगुणवर्जितस्त्वम् ॥ कालात्परस्त्वंप्रकृतेःपरस्त्वंकालायकालात्प्रकृतेनमस्ते ॥ ३४ ॥ त्वमेवनिर्वाणपदप्रदोसित्वमेवनिर्वाणमनंतशक्ते ॥ त्वमात्मरूपःपरमात्मरूपस्त्वमंतरात्मासिचराचरस्य ॥३५॥ त्वत्तोजगत्त्वंजगदेवसाक्षाज्जगत्त्वदीयंजगदेकबंधो ॥ हर्तावितात्वंप्रथमोविधाताविधातृविष्णवीशनमोनमस्ते ॥ ३६ ॥ मृडस्त्वमेवश्रुतिवर्त्मगेषुत्वमेवभीमोऽश्रुतिवर्त्मगेषु ॥ त्वंशंकरःसोमसुभक्तिभाजामुग्रोसिरुद्रत्वमभक्तिभाजाम् ॥ ३७ ॥

आपही निर्वाणपदके दाताहैं, आपही आत्मा और आपही परमात्माके रूपहैं, एवं समस्त चराचरके अंतरात्माभी आपहीहैं ॥ ३५ ॥ हे जगदेकबंधो ! यह सारा जगत् आपहीसे है, और आपही साक्षात् विश्वरूप हैं, एवं समस्त संसार आपहीका है, क्योंकि पहिले तो इसके स्रष्टा फिर पालयिता और अन्तमें संहर्ता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप आपही हैं, अतः आपको वारंवार नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ जो लोग वेदमार्गानुसारीहैं, उनके लिए आप सुखमय मृडस्वरूपहैं, और जो लोग वेदके विरुद्ध आचरण करतेहैं उनके लिए आपही भयंकर भीममूर्ति होजातेहैं, हे उमासहित ! अपने भक्तोंके लिए तो आप शंकरहैं

पर भक्तिहीनोंके लिये आपही उग्ररूपहैं अतएव हे रुद्र ! आपको अनेकवार नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ हे नाथ ! द्वेषियोंके हेतु आप शूलपाणिहैं, परन्तु मनसा वचसा प्रणतजनोंके लिए आपही शिवरूपहैं, अपने चरणशरणोंके विषयमें आप एकमात्र श्रीकंठहैं, पर दुरात्माओंके निमित्त तो आप हलाहल विषधारी उग्र नीलकंठ (स्वरूप) होजातेहैं ॥ ३८ ॥ हे शान्तमूर्ते ! शंकर ! शम्भो ! चन्द्रकलावतंस ! फणिभूषण ! पिनाकपाणे ! अन्धकारिपो ! आपको कोटिशः नमस्कारहैं ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! जो कोई (इस संसारमें) आपकी भक्ति अथवा पूजाको करसकताहै वही धन्य और सुकृती होताहै, एवं जो

त्वमेवशूलीद्विषतांत्वमेवविनम्रचेतोवचसांशिवोसि ॥ श्रीकंठएकःस्वपदाश्रितानांदुरात्मनांहालहलोग्रकंठः ॥ ३८ ॥ नमोस्तुतेशंकरशांत शंभोनमोस्तुतेचंद्रकलावतंस ॥ नमोस्तुतुभ्यंफणिभूषणायपिनाकपाणेऽधकवैरिणेनमः ॥ ३९ ॥ सएवधन्यस्तवभक्तिभाग्यस्तवार्चको यःसुकृतीसएव ॥ तवस्तुतिंयःकुरुतेसदैवसस्तूयतेदुश्च्यवनादिदेवैः ॥ ४० ॥ कस्त्वामिहस्तोतुमनंतशक्तेशक्नोतिमादृग्लघुबुद्धिवैभवः ॥ प्राचांनवाचामिहगोचरोयःस्तुतिस्त्वयीयंनतिरेवयावत् ॥ ४१ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ उदीर्यसूर्यस्यसुतोतिभक्त्यानमःशिवायेति समुच्चरन्सः ॥ इलामिलन्मौलिरतीवहृष्टःसहस्रकृत्वःप्रणनामशंभुम् ॥ ४२ ॥ ततःशिवस्तंतपसातिखिन्नंनिवार्यताभ्यःप्रणतिभ्यईश्वरः ॥ वरान्ददौसप्ततुरंगसूनवेत्वंधर्मराजोभवनामतोपि ॥ ४३ ॥

कोई आपकी स्तुति करताहै वह तो इन्द्रादिदेवोंसेभी स्तूयमान होजाताहै ॥ ४० ॥ हे असीममहिमन् ! भला मुझसा मन्दबुद्धि, सम्पन्न जन आपकी स्तुति क्योंकर कर सकताहै ? जब कि इस लोकमें आप प्राचीन लोगोंके भी वचनगोचर नहीं हुए तो मेरी यह स्तुति तो केवल प्रणतिमात्रहुईहै ॥ ४१ ॥ स्कन्दने कहा—सूर्यके पुत्र यमराज इसप्रकारसे स्तुति गानकर अत्यंत दृढचित्तसे नमःशिवाय कहतेहुए बडीभक्तिसे भूतलमें माथा टेककर महादेवको सहस्रबार प्रणामही करते रहे ॥ ४२ ॥ तबतो भगवान् शंकरने तपकरनेसे बडेही खिन्न यमको प्रणाम करनेसे रोककर वरदान किया कि तुम्हारा नाम धर्मराज

होवे ॥ ४३ ॥ और आजके दिनसे मैं तुमको स्थावर और जंगम समस्त देहधारियोंके धर्माधिकारपर नियुक्त करताहूं, अतएव मेरे आदेशसे तुम सब लोगोंके धर्म और अधर्मका शासन करो ॥ ४४ ॥ एवं दक्षिणदिशाके अधीश्वर होकर तुम समस्तप्राणियोंके कर्मसाक्षी बनेरहो, और तुम्हारे दर्शितमार्गके अनुसारही उत्तम और अधम लोग यहांसे अपनी अपनी गतिको प्राप्त करसकेंगे ॥ ४५ ॥ हे धर्मराज ! मेरे परमभक्त तुमने इस काशीमें जो इस लिंगकी आराधना की है, इसके दर्शन स्पर्शन और पूजनसे लोग थोडेही कालमें सिद्धिलाभ करसकेंगे ॥ ४६ ॥ जो कोई शुद्धबुद्धिसे तुम्हारे सन्मुख इस धर्मती

त्वमेवधर्माधिकृतोसमस्तशरीरिणांस्थावरजंगमानाम् ॥ मयानियुक्तोद्यदिनादिकृत्यःप्रशाधिसर्वान्ममशासनेन ॥ ४४ ॥ त्वंदक्षिणाया श्चदिशोधिनाथस्त्वंकर्मसाक्षीभवसर्वजंतोः ॥ त्वद्दर्शिताध्वानइतोव्रजंतुस्वकर्मयोग्यांगतिमुत्तमाधमाः ॥ ४५ ॥ त्वयायदेतन्ममभक्ति भाजालिंगंसमाराधितमत्रधर्म ॥ तद्दर्शनात्स्पर्शनतोऽर्चनाच्चसिद्धिर्भविष्यत्यचिरेणपुंसाम् ॥ ४६ ॥ धर्मेश्वरंयःसकृदेवमर्त्योविलोकयि ष्यत्यवदातबुद्धिः ॥ स्नात्वापुरस्तेऽत्रचधर्मतीर्थेनतस्यदूरेपुरुषार्थसिद्धिः ॥ ४७ ॥ कृत्वाप्यघानामिहयःसहस्रंधर्मेश्वरंपश्यतिदैवयोगात् ॥ सहेतनोजातुसनारकींव्यथांकथांतदीयांदिविकुर्वतेमराः ॥ ४८ ॥ योधर्मपीठंप्रतिलभ्यकाश्यांस्वश्रेयसेनोयततेऽत्रमर्त्यः ॥ कथंसधर्मत्व मिवातितेजाःकरिष्यतिस्वंकृतकृत्यमेव ॥ ४९ ॥ त्वयायथाप्ताइहधर्मराजमनोरथास्तेगुरुभिस्तपोभिः ॥ तथैवधर्मेश्वरभक्तिभाजांकामाः फलिष्यंतिनसंशयोत्र ॥ ५० ॥

र्थमें नहाकर एकबारभी धर्मेश्वरका दर्शन करलेवेगा उसके लिये चतुर्वर्गकी सिद्धि कुछ दूर नहीं रहजावेगी ॥ ४७ ॥ यदि कोई सहस्रों पाप करने परभी दैवयोगसे काशीमें धर्मेश्वरका दर्शन पाजावे तो उसे कभी नरकका क्लेश नहीं भोगना पडे, वरं स्वर्गमें देवतालोगभी उसकी चर्चा करते रहतेहैं ॥ ४८ ॥ हे धर्म ! जो मनुष्य इस संसारमें काशीके धर्मपीठस्थानको पाकरभी अपने कल्याणका प्रयत्न नहीं करता, भला वह अपनेको तुमसा तेजस्वी और कृतकृत्य कैसे बनासकेगा ॥ ४९ ॥ हे धर्मराज ! यहांपर जैसे तुमने अपनी बडी तपस्याओंसे अपने सब मनोरथोंको पूर्ण करलिया, वैसेही धर्मेश्वरके भक्तोंकी सब

कामनायें निस्सन्देह सफल होजावेंगी ॥ ५० ॥ बडेसे बडे पापोंको करके जो कोई यहांपर एक बारभी धर्मेश्वरका पूजन करलेवेगा, वह तुम्हारे पूजित लिंगके भक्त होनेसे तुम्हारा प्यारा बन्धु बनकर फिर तुमसे क्यों डरेगा ? ॥ ५१ ॥ हे धर्म ! जो कोई पत्र, पुष्प, दूर्वा, और जल इत्यादिसे धर्मेश्वरका पूजन करेगा, देवतालोग बडी प्रसन्नताके साथ मन्दारकी मालाओंसे उसकी पूजा करेंगे ॥ ५२ ॥ जो लोग पाप करनेके कारण तुमसे डरते होंगे, वे सब धर्मेश्वरकी अर्चनाकी रचनाकर बन्धुतासे तुम्हारे मनको प्रसन्न करके तुमसे कदापि नहीं डरेंगे ॥ ५३ ॥ लोग यहांपर उत्तरबाहिनी गंगामें स्नान और

कृत्वाप्यघान्येवमहांत्यपीहधर्मेश्वरार्चांसकृदेवकुर्वन् ॥ कुतोबिभेतिप्रियबंधुरेवतवत्वदीयार्चितलिंगभक्तः ॥ ६१ ॥ पत्रेणपुष्पेणजलेन दूर्वयायोधर्मधर्मेश्वरमर्चयिष्यति ॥ समर्चयिष्यंत्यमृतांधसस्तंमंदारमालाभिरतिप्रहृष्टाः ॥ ६२ ॥ त्वत्तोविभेष्यंतिकृतैनसोयेभयंन तेषांभविताकदाचित् ॥ धर्मेश्वरार्चारचनांकरिष्यतांहरिष्यतांबंधुतयामनस्ते ॥ ६३ ॥ यदत्रदास्यंतिहिधर्मपीठेनराद्युनद्यांकृतमज्ज नाश्च ॥ तदक्षयंभावियुगांतरेपिकृतप्रणामास्तवधर्मलिंगे ॥ ६४ ॥ येकार्तिकेमासिसिताष्टमीतिथौयात्रांकरिष्यंतिनराउपोषिताः ॥ रात्रौ चवैजागरणंमहोत्सवैर्धर्मेश्वरेतेनपुनर्भवाभुवि ॥ ६५ ॥ स्तुतिंचयेवैत्वदुदीरितामिमांनराःपठिष्यंतितवाग्रतःक्वचित् ॥ निरेनसस्तेमम लोकगामिनःप्राप्स्यंतितेवैभवतःसखित्वम् ॥ ६६ ॥ पुनर्वरंब्रूहियथेप्सितंददेतेजोनिधेर्नंदनधर्मराज ॥ अदेयमत्रास्तिनकिंचिदेवते विधेहिवाग्व्ययमात्रमेव ॥ ६७ ॥

धर्मेश्वरलिंगको प्रणाम कर इस धर्मपीठपर जो कुछ दान करेंगे वह युगान्तरमेंभी अक्षयफलको देवेगा ॥ ५४ ॥ कार्तिकमासकी शुक्ला अष्टमीके दिन व्रत रहकर जो लोग धर्मेश्वरमें बडे उत्सवोंके साथ यात्रा और रात्रिमें जागरण करेंगे पृथिवीपर फिर उनका जन्म कभी नहीं होगा ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य तुम्हारी कहीहुई इस स्तुतिको तुम्हारे आगे कभी पढेंगे वे निष्पाप होकर मेरे लोकमें जावेंगे और तुम्हारे मित्र होवेंगे ॥ ५६ ॥ हे सूर्यनन्दन धर्मराज ! तुम्हारे लिए मुझे कुछभी अदेय नहीं है, अतएव जो कुछ इच्छाहो औरभी वर मांगलो तुमको केवल कहदेनेही भरका परिश्रम उठाना पडेगा ॥ ५७ ॥

(स्कन्दने कहा) यमराज अपने मनोरथ पूरक करुणामय भगवान् शंकरको प्रसन्नमूर्ति देख आनन्दरसके सरोवरमें डूबकर क्षणमात्र (निस्तब्धहो) कुछभी नहीं बोलसके ॥ ५८ ॥ दोहा—धर्ममूल संसार सब, धर्महिसे शुभ कर्म । शुभ कर्मनके शर्मफल, करु विचार तजि भर्म ॥ १ ॥ पुरुषार्थनमें श्रेष्ठ है, धर्महि सो तनु धारि । तप कीन्ह्यो धर्मेश हित, कहुको तस अनुहारि ॥ २ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायां धर्मेश्वरलिंगोत्पत्तिकथनन्नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ स्कन्दने कहा—सुधासागर भगवान् शंकरने धर्मराजको आनन्दवाष्पके जलसे रुद्धकंठ देखकर अमृतवर्षी अपने दोनों हाथोंसे उनको सुहरादिया ॥ १ ॥ तब तो वे परमतपस्वी धर्मराज उस स्पर्शके सुखसे फिर तपोरूप अग्निसे प्रज्वलित अपने शरीरको अंकुरित

प्रसन्नमूर्तिंसविलोक्यशंकरंकारुण्यपूर्णंस्वमनोरथाभिदम् ॥ आनंदसंदोहसरोनिमग्नोवक्तुंक्षणंनैवशशाककिंचित् ॥ ५८ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेधर्मेशमहिमाख्यानंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ॥ स्कंद उवाच ॥ आनंदबाष्पसलिलरुद्धकंठंविलोक्यतम् ॥ मृडःपस्पर्शपाणिभ्यांसौधाभ्यांतुसुधांबुधिः ॥ १ ॥ अथतत्स्पर्शसौख्येनधर्मराजोमहातपाः ॥ पुनरंकुरयामासतपोग्निज्वलितांतनुम् ॥ २ ॥ ततःप्रोवाचसप्राञ्जिर्देवदेवमुमापतिम् ॥ प्रसन्नवदनंशांतंशांतपारिषदावृतम् ॥ ३ ॥ प्रसन्नोसियदीशानसर्वज्ञकरुणानिधे ॥ किमन्येनवरेणात्रयत्त्वंसाक्षात्कृतोमया ॥ ४ ॥ यंनवेदाविदुःसम्यङ्नचतौवेदपूरुषौ ॥ ततोपिवरयोग्योस्मितन्नाथप्रार्थयाम्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीकंठांडजडिंभानाममीषांमधुरध्रुवाम् ॥ मत्तपश्चिरसाक्षीणांमत्पुरःप्राप्तजन्मनाम् ॥ ६ ॥ पितृभ्यांपरिहीनानामितिहासकथाविदाम् ॥ त्यक्ताहारविहाराणांकीराणांवरदोभव ॥ ७ ॥

(रोमांचित) करने लगे ॥ २ ॥ तदनंतर तपनन्दन शान्त परिषदोंसे घिरेहुए, परमशान्त, प्रसन्नमुख, देवदेव उमापतिसे बोले ॥ ३ ॥ हे सर्वज्ञ ! करुणानिधे ! ईशान ! जब आप प्रसन्न हुए तभी तो मैं आपका साक्षात्कार करसका, अब दूसरे वरका कौन प्रयोजन है ? ॥ ४ ॥ (पर) जिसे न तो वेदोंहीने जाना, न दोनों वेद पुरुष ब्रह्मा और विष्णुही समझसके, उसके निकट मैं वरदानके योग्य ठहरा, तो फिर हे नाथ ! मैं प्रार्थना करताहूं ॥ ५ ॥ हे श्रीकण्ठ ! इन सब मधुरभाषी, मेरे तपके साक्षी, मेरे आगेके उत्पन्न, ॥ ६ ॥ माता पितासे रहित, इतिहास और कथाओंके ज्ञाता, आहार विहारत्यागी, सुग्गाके बच्चोंको

(कुछ) वरदान कीजिए ॥ ७ ॥ इन सबोंके जनमनेहीकी वेलामें रोगसे पीडित होकर सुग्गी तो मरगई और सुग्गेको बाजने खाडाला ॥ ८ ॥ अतएव सर्वथा अनाथ होकर मेराही मुख ताकनेवाले इन पक्षियोंको, हे अनाथनाथ ! आपहीने आयुष्य शेषस्वरूप होकर रक्षित कियाथा ॥ ९ ॥ हे महर्षे ! महादेव धर्मराजके परोपकारसे निर्मल इस वचनको सुन, बडेही प्रसन्न हो, विनयसे नम्रमुख उन सब शुकशावकोंको बुलाकर यह बात कहनेलगे कहो धर्मसंगत साधु पक्षिगण ! तुमलोग सत्संग करके अपने जन्मांतरके सब पापोंको क्षीणकर चुके हो और धर्मेश्वरके परिचारक हो, अतएव तुम लोगोंको कौनसा वरदान कियाजावे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ इस भाँतिसे महेश्वरके वचनको सुनकर उन सब पक्षियोंने शंकरको प्रणाम करके कहा कि, हे भवनाशन !

एतत्प्रसूतिसमयेआमयेनप्रपीडिता ॥ शुकीपंचत्वमापन्नाशुकःश्येनेनभक्षितः ॥ ८ ॥ रक्षितानामनाथानांसदामन्मुखदर्शिनाम् ॥ अनाथनाथभवताह्यायुःशेषस्वरूपिणा ॥ ९ ॥ इतिधर्मवचःश्रुत्वापरोपकृतिनिर्मलम् ॥ तानाहूयमुनेशंभुर्विनयावनताननान् ॥ १० ॥ उवाच धर्मेतिप्रीतःशुकशावानिदंवचः ॥ अयिपत्ररथाब्रूतसाधवोधर्मसंगताः ॥ ११ ॥ कोवरोभवतांदेयोधर्मेशपरिचारिणाम् ॥ साधुसंसर्गसंक्षीणजन्मांतरमहैनसाम् ॥ १२ ॥ इतिश्रुत्वामहेशस्यवचनंतेपतत्रिणः ॥ प्रोचुःप्रणम्यदेवेशंनमस्तेभवनाशन ॥ १३ ॥ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ॥ अनाथनाथसर्वज्ञकोवरोनःसमीहितः ॥ इतोपिऽयक्षयत्साक्षात्तिर्यक्त्वेपिसमीक्षिताः ॥ १४ ॥ लाभाःसंतूद्यमवतांगिरीशेहपरःशताः ॥ परंपरोयंलाभोत्रयत्त्वंदृग्गोचरीभवेः ॥ १५ ॥ यदेतद्दृश्यतेनाथतत्सर्वंक्षणभंगुरम् ॥ अभंगुरोभवानेकस्त्वत्सपर्याप्यभंगुरा ॥ १६ ॥ विचित्रजन्मकोटीनांस्मृतिर्नोत्रपरिस्फुरेत् ॥ एतत्तपस्विरचितलिंगपूजाविलोकनात् ॥ १७ ॥

भव ! आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥ (फिर) वे सब पक्षी कहनेलगे कि, हे अनाथनाथ ! सर्वज्ञ ! हमलोग तिर्यक्योनिमें रहकरभी जो साक्षात् आपका दर्शन पारहेहैं भला इससे बढकर और कौन वर है जिसकी इच्छा करें ॥ १४ ॥ हे गिरीश ! उद्यमशील लोगोंके ऐहिक सैकडोंही लाभ हो सकतेहैं, पर आप जो नयनगोचर होरहे हैं यह तो परमलाभ होरहाहै ॥ १५ ॥ हे नाथ ! यह जो कुछ दिखाई पडता है वह सब क्षणभंगुरहीहै, केवल आप और आपकी पूजाही भर अभंगुर है ॥ १६ ॥ इस तपस्वीके रचित लिंगकी पूजाके देखनेसे हमलोगोंको करोडों जन्मकी विचित्र स्मरणशक्ति प्रस्फुरित होरहीहै ॥ १७ ॥

हे ईशान ! हम सबोंने देवयोनिभी पाई थी उस घडी लीलानुसार बहुतदिनोंतक सहस्रशः दिव्यांगनाओंका भोगभी किया था ॥ १८ ॥ असुरयोनि, दानवयोनि, नागयोनि, राक्षसयोनि, किन्नरयोनि, विद्याधरयोनि और गन्धर्वयोनियोंकोभी प्राप्त कियाथा ॥ १९ ॥ मनुष्ययोनिमें तो अनेक बार राजाभी हुए जलमें जलचर, स्थलपर स्थलचर, ॥ २० ॥ वनमें वनेचर, एवं ग्राममें ग्रामवासी (गँवार) भी बने, दाता, याचक, रक्षक, घातक, ॥ ॥ २१ ॥ सुखी, दुःखी, विजयी, पराजयी, ॥ २२ ॥ अध्ययनशील, मूर्ख एवं स्वामी और सेवकभी होचुके (कहांतक कहें) चारों प्रकारके भूतग्रामोंमें

देवयोनिरपिप्राप्ताचिरमस्माभिरीशितः ॥ दिव्यांगनाःसहस्राणितत्रभुक्तास्वलीलया ॥ १८ ॥ आसुरीदानवीनागीनैर्ऋतीचापिकैन्नरी ॥
विद्याधरीचगांधर्वीयोनिरस्माभिरर्जिता ॥ १९ ॥ नरत्वेभूपतित्वंचपरिप्राप्तमनेकशः ॥ जलेजलचरत्वंचस्थलेचस्थलचारिता ॥ २० ॥
वनेवनौकसोजाताग्रामेषुग्रामवासिनः ॥ दातारोयाचितारश्चरक्षितारश्चघातुकाः ॥ २१ ॥ सुखिनोपिवयंजाताडुःखिनोवयमास्मच ॥
जेतारश्चवयंजाताःपराजेतारएवच ॥ २२ ॥ अधीतिनोपिमूर्खाश्चस्वामिनःसेवकाअपि ॥ चतुर्षुभूतग्रामेषुउत्तमाधममध्यमाः ॥ २३ ॥
अभूमभूरिशःशंभोनक्वापिस्थैर्यमागताः ॥ इतोयोनेस्ततोयोनौततोयोनेस्ततोन्यतः ॥ २४ ॥ पिनाकिन्क्वापिनप्रापिसुखलेशोमनागपि ॥
इदानींपुण्यसंभारैर्धर्मेश्वरविलोकनात् ॥ २५ ॥ तापनैःसुतपोवह्निज्वालाप्रज्वलितैनसः ॥ संवीक्ष्यत्र्यक्षसाक्षात्त्वांकृतकृत्याबभूविम ॥
॥ २६ ॥ तथापिचेद्वरोदेयस्तिर्यक्ष्वस्मासुधूर्जटे ॥ कृपणेष्वपिशोच्येषुज्ञानंसर्वज्ञदेहितत् ॥ २७ ॥

हम सब उत्तम मध्यम और अधम ॥ २३ ॥ बहुत कुछ हुए परन्तु हे शम्भो ! स्थिरताको कहीं परभी नहीं पासके, इस योनिसे उस योनिमें और उस योनिसे फिर दूसरी योनिमें (चकरातेहुए) ॥ २४ ॥ हे पिनाकिन् ! किसी योनिमें कुछभी सुखका लेश नहीं प्राप्त करसके, पर इस घडी धर्मेश्वरके दर्शन जनित पुण्यभारसे ॥ २५ ॥ एवं धर्मराजके तपरूपी अग्निकी ज्वालासे पापोंके जलजानेके कारण हे त्र्यक्ष ! आपका साक्षात् दर्शन पाकर कृतार्थ होगये ॥ २६ ॥ हे धूर्जटे ! तथापि यदि दीन हीन शोचनीय इन सब पक्षियोंकोभी (आप) वर दिया चाहतेहैं तो हे सर्वज्ञ ! वह ज्ञान, दान, कीजिए ॥ २७ ॥

जिस ज्ञानके द्वारा मेरे ऐसे प्राणियोंसे दुर्भेद्य और प्रकृतिके पाशमें नियन्त्रित हमलोगभी इस संसारबन्धनसे छूटजावें ॥ २८ ॥ हमलोग न तो इन्द्रासनही चाहते हैं, न चन्द्रमाहीके अधिकारकी वांछा रखते हैं, न दूसरेही किसी पदकी इच्छा करते हैं, हे शम्भो ! यदि कुछ चाहतेहैं तो केवल काशीमें मृत्यु;— जिससे फिर जन्म नहीं लेना पडे ॥ २९ ॥ हे सर्वज्ञ ! आपहीके सान्निध्यसे हमलोगभी सबकुछ समझसकतेहैं, जैसे चन्दनके संसर्गसे सभी वृक्ष परिपूर्ण होजाते हैं ॥ ३० ॥ यही परमज्ञान संसारका उच्छेदक है, जो आपके आनन्दवनमें कालानुसार शरीरका त्याग होजावे ॥ ३१ ॥ समस्त वाग्जालको मथकर परम सारभूत इसी बातको पहिले ब्रह्माने कहाथा कि, " काशीमें देह त्याग करनेवालोंको मुक्ति मिलतीहै " ॥ ३२ ॥ जो बात बहुतसे ग्रंथोंमें

येनज्ञानेनमुक्ताःस्मोऽमुष्मात्संसारबंधनात् ॥ यंत्रिताःप्राकृतैःपाशैर्दुर्भेद्यैश्चमादृशैः ॥ २८ ॥ ऐंद्रंपदंनवांछामोनचांद्रंनान्यदेवहि ॥ वाञ्छामःकेवलंमृत्युंकाश्यांशंभोऽपुनर्भवम् ॥ २९ ॥ त्वत्सान्निध्याद्विजानीमःसर्वज्ञसकलंवयम् ॥ यथाचंदनसंसर्गात्सर्वेसुरभयोद्रुमाः ॥ ॥३०॥ एतदेवपरंज्ञानंसंसारोच्छित्तिकारणम् ॥ वपुर्विसर्जनंकालेयत्त्वानंदकानने ॥ ३१ ॥ निर्मथ्यविष्वग्वाग्जालंसारभूतमिदंपरम् ॥ ब्रह्मणोदीरितंपूर्वंकाश्यांमुक्तिस्तनुत्यजाम् ॥३२॥ यद्वाच्यंबहुभिर्ग्रंथैस्तदष्टाभिरिहाक्षरैः ॥ हरिणोक्तंरविपुरःकैवल्यंकाशिसंस्थितौ ॥३३॥ याज्ञवल्क्योमुनिवरःप्रोक्तवान्मुनिसंसदि ॥ रवेरधीत्यनिगमान्काश्यामंतेपरंपदम् ॥ ३४ ॥ स्वामिनापिजगद्धात्रीपुरतोमंदराचले ॥ इद मेवपुराप्रोक्तंकाशीनिर्वाणजन्मभूः ॥ ३५ ॥ कृष्णद्वैपायनोप्येवंशंभोवक्ष्यतिनान्यथा ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षान्मुक्तिस्तत्रपदेपदे ॥ ३६ ॥

कहने योग्यहै, उसीको भगवान् हरिने सूर्यदेवसे आठही अक्षरोंमें कहाथा कि, " कैवल्यं काशिसंस्थितौ " अर्थात् केवल काशीमें मरनेहीसे कैवल्य मिलता है ॥ ३३ ॥ मुनिराज याज्ञवल्क्यने भी सूर्यनारायणसे समस्त वेदोंको पढकर ऋषिसमाजमें यही कहाथा कि " काशीमें अन्तकाल होनेहीसे परमपद प्राप्त होताहै " ॥ ३४ ॥ पूर्वकालमें (एकबार) स्वामीनेभी मन्दराचलपर जगदम्बाके आगे कहाथा कि, " काशीही निर्वाणकी जन्मभूमी है " ॥ ३५ ॥ हे शंभो ! कृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) भी यही बात कहेंगे " जहांपर साक्षात् विश्वेश्वर विराजमान हैं, वहां तो पद पदपर मुक्ति होसकती है इसमें कुछ

अन्यथा नहीं है" ॥ ३६ ॥ एवं तीर्थ संन्यासकारी लोमश इत्यादि अन्यान्य प्राचीन ऋषिलोगभी यही कहते हैं कि "काशीही मोक्षकी प्रकाशिका है" ॥ ३७ ॥ और हमलोगभी यही समझते हैं कि जहांपर स्वर्गतरंगिणी गंगा बहरही हैं उस महादेवके आनन्दकाननमेंही मोक्ष निश्चित है ॥ ३८ ॥ सवैया—कमलासन औ कमलापतिजू, मुनि याज्ञवल्क् यहई कहि साख्यो। पुनि आपहु मंदरपर्वत पै, जगदम्बसे मुक्तिमही वहि भाख्यो ॥ कहिहैं यह व्यासहु लोमश आदिक, हैं कहते हमलोग सुराख्यो। जहँ गंग बहै वहि शंभुपुरी, तन त्यागकिये सब मुक्तिहि चाख्यो ॥ ३२—३८ ॥ (इन्हीं) धर्मेश्वरके परम अनुग्रहसे हमलोग स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें, भूत, भविष्य एवं वर्तमान जो कुछ होताहै वह सब जानजाते हैं ॥ ३९ ॥ हे शंकर ! इसी

वदंत्यन्येपिमुनयस्तीर्थसंन्यासकारिणः ॥ चिरंतनालोमशाद्याःकाशिकामुक्तिकाशिका ॥ ३७ ॥ वयमप्येवंजानीमोयत्रस्वर्गतरंगिणी ॥ आनंदकाननेशंभोर्मोक्षस्तत्रैवनिश्चितम् ॥ ३८ ॥ भूतंभाविभविष्यंयत्स्वर्गेमर्त्येरसातले ॥ तत्सर्वमेवजानीमोधर्मेशानुग्रहात्परात् ॥ ३९ ॥ अतोहिरण्यगर्भोक्तंहरिप्रोक्तंमुनीरितम् ॥ भवतोक्तंचनिखिलंशंभोजानीमहेवयम् ॥ ४० ॥ करामलकवत्सर्वमेतद्ब्रह्मांडगोलकम् ॥ अस्मद्वाग्गोचरेऽस्त्येवधर्मपीठनिषेवणात् ॥ ४१ ॥ धर्मराजस्यतपसातिर्यञ्चोपिवयंविभो ॥ जाताःस्मनिर्विकल्पंहिसर्वज्ञानस्यभाजनम् ॥ ४२ ॥ मधुरंमृदुलंसत्यंस्वप्रमाणंसुसंस्कृतम् ॥ हितंमितंसदृष्टांतंश्रुत्वापक्षिसुभाषितम् ॥ ४३ ॥ देवोतिविस्मयापन्नोऽवर्णयत्पीठगौरवम् ॥ त्रैलोक्यनगरेचात्रकाशीराजगृहंमम ॥ ४४ ॥

कारणसे ब्रह्माका कहा, विष्णुका उक्त, मुनियोंका भाषित, एवं आपकाभी कथित सब कुछ हमलोग जानसके हैं ॥ ४० ॥ इसी धर्मपीठके सेवनसे यह समग्र ब्रह्मांड मंडल करतलगत आमलक (आंवरा) फलके समान हमसबोंके जिह्वाग्रभाग पर बना रहताहै ॥ ४१ ॥ हे विभो ! धर्मराजहीके तपःप्रभावसे हमलोग तिर्यग्योनि होनेपरभी विकल्प रहित समस्तज्ञानके पात्र होगये हैं ॥ ४२ ॥ देवदेव इस प्रकारसे मधुर, मृदुल, सत्य, हित, मित, सुसंस्कृत, दृष्टान्तपूर्ण और अनुभव सिद्ध, उन पक्षियोंका वचन सुन ॥ ४३ ॥ बडेही विस्मित होकर उस धर्मपीठकी बडाई करनेलगे, इस त्रैलोक्यरुपी नगरमें यह

काशीही मेरा राजमन्दिरहै ॥ ४४ ॥ उसमेंभी मोक्षलक्ष्मी विलासनामक परममंगलमय प्रासाद, बहुत मूल्यके मणियोंसे निर्मित मेरा भोगभवनहै ॥ ४५ ॥ जिस प्रासादके स्वेच्छानुसार आकाशमें विचरण करते हुए पक्षीलोगभी (दैवात) प्रदक्षिण करजानेसे विमानचारी देवता होजाते हैं ॥ ४६ ॥ मोक्षलक्ष्मी विलासनामक मन्दिरके दर्शन करनेसे ब्रह्महत्याभी शरीरसे दूर चलीजाती है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ४७ ॥ जो लोग मोक्षलक्ष्मी विलास नामक मन्दिरके ऊपरका कलसभी देखलेते हैं, उन लोगोंको निधियोंके कलसे पग पगपरभी नहीं छोड सकते हैं ॥ ४८ ॥ इस मन्दिरके शिखरपरकी पताकाकोभी जो लोग दूरहीसे देखलेते हैं, वे सदाके लिए मेरे पाहुने बनजाते हैं ॥ ४९ ॥ उस प्रासादके व्याजसे भूमीको भेदकर आनंदनामक कन्दका यह अपूर्व परमअंकुर स्वयं

तत्रापिभोगभवनमनर्घ्यमणिनिर्मितम् ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यःप्रासादोमेतिशर्मभूः ॥४५॥ पतत्रिणोपिमुच्यंतेयंकुर्वाणाःप्रदक्षिणम् ॥ स्वेच्छयाविचरंतःखेखेचराअपिदेवताः ॥ ४६ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्यविलोकनात् ॥ शरीराद्दूरतोयातिब्रह्महत्यापिनान्यथा ॥ ४७ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासस्यकलशोयैर्निरीक्षतः ॥ निधानकलशास्तांस्तुनमुंचंतिपदेपदे ॥ ४८ ॥ दूरतोपिपताकापिममप्रासादमूर्धगा ॥ नेत्रातिथीकृतायैस्तुनित्यंतेऽतिथयोमम ॥ ४९ ॥ भूमिंभित्त्वास्वयंजातस्तत्प्रासादमिषेणहि ॥ आनंदाख्यस्यकंदस्यकोप्येषपरमोंकुरः ॥५०॥ ब्रह्मादिस्थावरांतानियत्ररूपाण्यनेकशः ॥ मामेवोपासतेनित्यंचित्रंचित्रगतान्यपि ॥५१॥ ससौधोमेखिलेलोकेस्थानंपरमनिर्वृतेः ॥ रतिशालासमेरम्यासमेविश्वासभूमिका ॥५२॥ ममसर्वगतस्यापिप्रासादोयंपरास्पदम् ॥ परंब्रह्मयदाम्नातंपरमोपनिषद्गिरा ॥ अमूर्तंतदहंमूर्तोभूयांभक्तकृपावशात् ॥ ५३ ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोधामतद्याम्यांमंडपोस्तिमे ॥ तत्राहंसततंतिष्ठेतत्सदोमंडपंमम ॥ ५४ ॥

उग आयाहै ॥ ५० ॥ कैसी आश्चर्यमयी बातहै कि, ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक अनेक चित्रस्थित रूपभी सर्वदा मेरीही उपासना करते रहते हैं ॥ ५१ ॥ वही प्रासाद समस्तलोकमें मेरे आनन्दका स्थानहै और वही मेरी रम्य रतिशाला और विश्वास भूमिकाहै ॥ ५२ ॥ यद्यपि मैं सर्वव्यापकहूं पर यह मन्दिर मेरा बडाही प्रधानस्थानहै, परम उपनिषद्के वाक्योंसे जो निराकार ब्रह्म कहाजाताहै, वही निराकार मैं भक्तोंपर अनुकंपा करके साकार होजाताहूं ॥५३॥ मोक्षलक्ष्मी विलासमन्दिरके दक्षिणभागमें मेरा एक मंडपहै, वहांपर मैं सर्वदा अवस्थित रहताहूं क्योंकि, वही मेरा सभामंडप है ॥ ५४ ॥

वहांपर जो कोई आधा निमेषभी स्थिरचित्त होकर बैठजाताहै, उसे सौ वर्षपर्यन्त योगाभ्यास करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ वह स्थान भूमंडलपर मुक्तिमंडप नामसे प्रसिद्धहै वहांपर एकभी ऋचापढनेसे समस्त वेदाध्ययनका फल मिलताहै ॥ ५६ ॥ उस मुक्तिमंडपमें जिसने एकभी प्राणायाम किया उसे अन्यत्र पर दससहस्र वर्ष अष्टांग योगाभ्यास करनेका पुण्य प्राप्त होताहै ॥५७॥ जो कोई मुक्ति मंडपमें शिवका एकभी षडक्षर मंत्र जपताहै, उसे एक करोड रुद्रिय जप करनेका फल होताहै ॥ ५८ ॥ गंगाके जलमें स्नानकर पवित्र हो जो कोई शतरुद्रियको मुक्तिमंडपमें जपे उसे द्विज वेषधारी रुद्रही समझना

निमेषार्धप्रमाणंचकालंतिष्ठतिनिश्चलः ॥ तत्रयस्तेनवैयोगःसमभ्यस्तःसमाःशतम् ॥ ५५ ॥ निर्वाणमंडपंनामतत्स्थानंजगतीतले ॥ तत्रर्चसंजपन्नेकांलभेत्सर्वश्रुतेःफलम् ॥ ५६ ॥ प्राणायामंतुयःकुर्यादप्येकंमुक्तिमंडपे ॥ तेनाष्टांगःसमभ्यस्तोयोगोऽन्यत्रायुतंसमाः ॥ ॥ ५७ ॥ निर्वाणमंडपेयस्तुजपेदेकंषडक्षरम् ॥ कोटिरुद्रेणजप्तेनयत्फलंतस्यतद्भवेत् ॥ ५८ ॥ शुचिर्गंगांभसिस्नातोयोजपेच्छतरुद्रियम् ॥ निर्वाणमंडपेज्ञेयःसरुद्रोद्विजवेषभृत् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मयज्ञंसकृत्कृत्वाममदक्षिणमंडपे ॥ ब्रह्मलोकमवाप्याथपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ॥ ६० ॥ धर्मशास्त्रंपुराणानिसेतिहासानितत्रयः ॥ पठेन्निरभिलाषुःसन्सवसेन्ममवेश्मनि ॥ ६१ ॥ तिष्ठेदिंद्रियचापल्यंयोनिवार्यक्षणंकृती ॥ निर्वाणमंडपेन्यत्रतेनतप्तंमहत्तपः ॥ ६२ ॥ वायुभक्षणतोन्यत्रयत्पुण्यंशरदांशतम् ॥ तत्पुण्यंघटिकार्धेनमौनंदक्षिणमंडपे ॥ ॥ ६३ ॥ मितंकृष्णलकेनापियोदद्यान्मुक्तिमंडपे ॥ स्वर्णंसौवर्णयानेनसतुसंचरतेदिवि ॥ ६४ ॥

चाहिए ॥ ५९ ॥ जो कोई मेरे दक्षिणमंडपमें एकबारभी ब्रह्मयज्ञको कर लेताहै, वह ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर परब्रह्मका लाभ करताहै ॥ ६० ॥ निष्काम होकर जो कोई धर्मशास्त्र इतिहास और पुराणोंको पढताहै, वह मेरे घरमें बास करताहै ॥ ६१ ॥ जो पुण्यप्राणी इन्द्रियोंकी चंचलताको रोककर क्षणमात्रभी मुक्तिमंडपमें बैठताहै उसे दूसरे स्थानपर बडी तपस्या करनेका फल मिलताहै ॥ ६२ ॥ अन्यत्र पर सौवर्ष वायु भक्षणसे जो पुण्य होताहै मुक्तिमंडपमें आधीघडी मौन हो रहनेसेभी वही फल प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ जो कोई मुक्तिमंडपमें एक घुंघुची भरभी सुवर्णदान करताहै वह स्वर्गमें सुवर्णके विमानपर

चढकर भ्रमण करताहै ॥ ६४ ॥ जो कोई वहांपर चाहे कोईभी दिन हो व्रत रहकर जागरण करे और लिंगका पूजन करे तो वह समस्त व्रतोंके पुण्यका भागी होताहै ॥ ६५ ॥ वहांपर बडेभारी दानके करने, महाव्रतके धारण करने, और समस्त वेदोंका पाठ करनेसे मनुष्य स्वर्गसे पतित नहीं होता ॥६६॥ जिसका प्राण इस मुक्तिमण्डपमें निकल जाताहै, वह मुझमें लीन होकर यहांपर जबतक मैं रहूंगा बना रहेगा ॥ ६७ ॥ मैं उमादेवीके साथ ज्ञानवापीमें सदैव जलक्रीडा करताहूं, उसके जलपान करनेसेही निर्मलज्ञान उत्पन्न होताहै ॥ ६८ ॥ मेरे इस राजभवनमें वह जलक्रीडाका स्थान मुझे बहुतही प्याराहै,

तत्रैकंजागरंकुर्याद्यस्मिन्कस्मिन्दिनेपियः ॥ उपोषितोर्चयेल्लिंगंससर्वव्रतपुण्यभाक् ॥ ६५ ॥ तत्रदत्त्वामहादानंतत्रकृत्वामहाव्रतम् ॥ तत्राधीत्याखिलंवेदंच्यवतेननरोदिवः ॥ ६६ ॥ प्रयाणंकुर्वतेयस्यप्राणामेमुक्तिमंडपे ॥ समामनुप्रविष्टोत्रतिष्ठेद्यावदहंखलु ॥ ६७ ॥ जलक्रीडांसदाकुर्यांज्ञानवाप्यांसहोमया ॥ यदंबुपानमात्रेणज्ञानंजायेतनिर्मलम् ॥ ६८ ॥ तज्जलक्रीडनस्थानंममप्रीतिकरंमहत् ॥ अस्मिन्राजसदनेजाड्यहृज्जलपूरितम् ॥ ६९ ॥ तत्प्रासादपुरोभागेममशृंगारमंडपः ॥ श्रीपीठंतद्धिविज्ञेयंनिःश्रीकश्रीसमर्पणम् ॥ ७० ॥ मदर्थंतत्रयोदद्याद्दुकूलानिशुचीन्यहो ॥ माल्यानिसुविचित्राणियक्षकर्दमवंतिच ॥ ७१ ॥ नानानेपथ्यवस्तूनिपूजोपकरणान्यपि ॥ सश्रियालंकृतस्तिष्ठेद्यत्रकुत्रापिसत्तमः ॥ ७२ ॥ निर्वाणलक्ष्मीर्वृणुतेतंनिर्वाणपदाप्तये ॥ यत्रकुत्रापिनिधनंप्राप्नुयादपिसध्रुवम् ॥ ७३ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्योत्तरेमम ॥ ऐश्वर्यमंडपंरम्यंतत्रैश्वर्यंददाम्यहम् ॥ ७४ ॥

और जडता रहनेवाले जलसे भरपूर रहताहै ॥ ६९ ॥ उस प्रासादके अग्रभागमें मेरा शृंगारमंडपहै, उसीको श्रीपीठभी समझना चाहिये, क्योंकि, वह श्रीहीन लोगोंको भी श्रीमान् बनादेताहै ॥ ७० ॥ उस स्थानपर जो कोई मेरे लिये निर्मल वस्त्र, परमविचित्र मालायें, यक्ष कर्दम ॥ ७१ ॥ नानाप्रकारके शृंगार संबंधि वस्तु और पूजनकी सामग्री इत्यादिको समर्पण करताहै, वह सज्जन सर्वत्रही श्रीसे भूषित रहताहै ॥ ७२ ॥ वह चाहे कहींभी मरे पर निर्वाण लक्ष्मी उसे निर्वाणपद देनेके लिये अवश्यही वरण करतीहै ॥ ७३ ॥ मेरे मोक्षलक्ष्मी विलासनामक प्रासादके उत्तरभागमें रमणीय ऐश्वर्यमंडप है, वहांपर

मैं ऐश्वर्यदान करताहूं ॥ ७४ ॥ मेरे मंदिरके पूर्व ओर जो ज्ञानमंडपहै उसमें जो लोग मेरा ध्यान करतेहैं, उनको मैं सर्वदा ज्ञानका उपदेश देता रहताहूं ॥ ॥ ७५ ॥ भवानीका राजभवनही मेरा जेवनहरा है, वहांपर उपहाररूपसे जो कुछ पवित्र वस्तु प्राप्त होतीहै, उसे मैं हर्षपूर्वक स्वीकार करलेताहूं ॥ ७६ ॥ विशालाक्षी देवीका बडा मंदिरही मेरे विश्रामका स्थान है, वहांपर मैं संसारसे खिन्न लोगोंको विश्राम वितरण करताहूं ॥ ७७ ॥ मेरे नियम स्नानका तीर्थ चक्रपुष्करिणी (मणिकर्णिका) है, वहांपर नहानेवालोंको मैं वही निर्मलता देदेताहूं ॥ ७८ ॥ जिसे (शास्त्रोंमें) परमतत्त्वके नामसे कहाहै, और जिसे सर्वोत्तम ब्रह्म कहतेहैं, एवं वही स्वसंवेद्यभी कहाजाताहै, अन्तके समय वहांपर मैं उसीका उपदेश करताहूं ॥ ७९ ॥ जिसे तारकज्ञान कहतेहैं, किंवा जो

मत्प्रासादैंद्रदिग्भागेज्ञानमंडपमस्तियत् ॥ ज्ञानंदिशामिसततंतत्रमांध्यायतांसताम् ॥ ७५ ॥ भवानिराजसदनेममास्तिहिमहानसम् ॥ यत्तत्रोपहृतंपुण्यंनिर्विशामिमुदैवतत् ॥ ७६ ॥ विशालाक्ष्यामहासौधेममविश्रामभूमिका ॥ तत्रसंसृतिखिन्नानांविश्रामंश्राणयाम्यहम् ॥ ॥ ७७ ॥ नियमस्नानतीर्थंचचक्रपुष्करिणीमम ॥ तत्रस्नानवतांपुंसांतन्नैर्मल्यंदिशाम्यहम् ॥ ७८ ॥ यदाहुःपरमंतत्त्वंयदाहुर्ब्रह्मसत्तमम् ॥ स्वसंवेद्यंयदाहुश्चतत्तत्रांतेदिशाम्यहम् ॥ ७९ ॥ यदाहुस्तारकंज्ञानंयदाहुरतिनिर्मलम् ॥ स्वात्मारामंयदाहुश्चतत्तत्रांतेदिशाम्यहम् ॥८०॥ जगन्मंगलभूर्यात्रपरमामणिकर्णिका ॥ विपाशयामितत्राहंकर्मभिःपाशितान्पशून् ॥ ८१ ॥ निर्वाणश्राणनेयत्रपात्रापात्रंनचिंतये ॥ आनंदकाननेतन्मेदानस्थानंदिवानिशम् ॥ ८२ ॥ भवांबुधौमहागाधेप्राणिनःपरिमज्जतः ॥ भूत्वैवकर्णधारोंतेयत्रसंतारयाम्यहम् ॥ ८३ ॥ सौभाग्यभाग्यभूर्यावैविख्यातामणिकर्णिका ॥ ददामितस्यांसर्वस्वमग्रजायांत्यजायवा ॥ ८४ ॥

परमनिर्मल कहलाताहै, एवं जिसे स्वात्मारामभी कहाजाताहै, मणिकर्णिका पर अन्तमें मैं वही उपदेश करताहूं ॥ ८० ॥ इस लोकमें जगत्भरकी जो मंगलभूमी मणिकर्णिकाहै वहांपर कर्मके पाशमें बंधेहुए पशुओंको मैं छुडाता रहताहूं ॥ ८१ ॥ जहांपर मैं मोक्षकी भिक्षादेनेमें रातदिन पात्र कुपात्रका कुछभी विचार नहीं करता आनंदवनमें वही मेरे दानका स्थानहै ॥ ८२ ॥ बडे अथाह संसारसागरमें डूबतेहुए प्राणियोंको कर्णधार बनकर जहांपर मैं पार उतार देताहूं ॥८३॥ वही मणिकर्णिका सौभाग्य की भाग्य भूमि कहीजाती है अतएव वहांपर मैं अग्रज और अंत्यज सभीको सर्वस्व देडालताहूं ॥८४॥

महासमाधिके लगानेवाले तथा वेदान्तोंके अर्थसेवियोंकोभी अन्यत्र पर जो मोक्ष दुर्लभहै यहांपर शोचनीय लोगोंकोभी वह प्राप्त होजाताहै ॥ ८५ ॥ चाहे कोई यज्ञसे दीक्षितहो अथवा चाण्डालहो एवं पंडितहो किंवा मूर्खही हो पर मणिकर्णिकापर पहुँचजावे तो मेरी ओरसे मोक्षकी दीक्षामें समान अधिकारी होताहै ॥ ८६ ॥ अन्य स्थानोंमें मैं जिसके देनेमें कृपण होजाताहूं, इस मणिकर्णिकापर उस चिरसंचित सर्वस्वको प्राणिमात्रके लिए देनेमें तत्पर रहताहूं ॥ ८७ ॥ यदि दैववश यहांपर परमदुर्घट तीनों संयोग होजावें तो बिना विचारेही चिरसंचित सर्वस्व देदेताहूं ॥ ८८ ॥ शरीर, संपत्ति, और मणिकर्णिका इन तीनोंका इकट्ठा होजानाही त्रिसंयोगहै, यह इन्द्रादिक देवतोंकोभी दुर्लभहै ॥ ८९ ॥ मैं इसे वारंवार विचारकर समस्तप्रा

महासमाधिसंपन्नैर्वेदांतार्थनिषेविभिः ॥ दुष्प्रापोन्यत्रयोमोक्षःशोच्यैरपिसलभ्यते ॥ ८५ ॥ दीक्षितोवादिवाकीर्तिःपंडितोवाप्यपंडितः ॥ तुल्योमेमोक्षदीक्षायांसंप्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ८६ ॥ यत्त्यागेन्यत्रकृपणस्तत्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ददामिजंतुमात्रायसर्वस्वंचिरसंचितम् ॥ ८७ ॥ यदिदैवादिहप्राप्तस्त्रिसंयोगोऽतिदुर्घटः ॥ अविचारंतदादेयंसर्वस्वंचिरसंचितम् ॥ ८८ ॥ शरीरमथसंपत्तिरथसामणिकर्णिका ॥ त्रिसंयोगोयमप्राप्योदेवैरिंद्रादिकैरपि ॥ ८९ ॥ पुनःपुनर्विचार्येतिजंतुमात्रेभ्यएवच ॥ निर्वाणलक्ष्मींयच्छामिसदापमणिकर्णिकम् ॥ ९० ॥ मुक्तिदानमहीसामेवाराणस्यांमहीयसी ॥ तन्महीरजसासाम्यंत्रिलोक्यपिनचोद्वहेत् ॥ ९१ ॥ परंलिंगार्चनस्थानमविमुक्तेश्वरेश्वरम् ॥ तत्रपूजांसकृत्कृत्वाकृतकृत्योनरोभवेत् ॥ ९२ ॥ सायंपाशुपतींसंध्यांकुर्यांपशुपतीश्वरे ॥ विभूतिधारणात्तत्रपशुपाशैर्नबध्यते ॥ ९३ ॥ प्रातःसंध्यांकरोम्येवसदोंकारनिकेतने ॥ तत्रैकापिकृतासंध्यासर्वपातककृंतनी ॥ ९४ ॥

णियोंको मणिकर्णिका पर सदैव मुक्तिलक्ष्मीका दान करता रहताहूं ॥ ९० ॥ इस वाराणसीपुरीमें वही स्थान मेरे मुक्तिदानका प्रधानस्थान (अड्डा) है, क्योंकि उस भूमिकी धूलिके समानभी त्रैलोक्य भर नहीं होसकता ॥ ९१ ॥ मेरे लिंग पूजनके प्रधानस्थान अविमुक्तेश्वरहैं, वहांपर यदि कोई मनुष्य एकवारभी पूजा करलेवे तो कृतकृत्य होजाता है ॥ ९२ ॥ सन्ध्याके समय मैं पशुपतीश्वर पर शैवी सन्ध्याको करताहूं, उसवेला वहांपर विभूति धारण करनेहीसे पशुपाशमें बंधना नहीं पडता ॥ ९३ ॥ और प्रातःकालकी सन्ध्या (तो) मैं सदैव ओंकारेश्वरके मन्दिरमें करता हूं, (क्योंकि) वहांपर

एकभी सन्ध्या करनेसे समस्त पाप दूर होजाते हैं ॥ ९४ ॥ मैं प्रत्येक चतुर्दशीको कृत्तिवासेश्वर पर वास करताहूं, वहांपर चतुर्दशीको जागरण करनेसे गर्भ भागी नहीं होना पडता ॥ ९५ ॥ भक्तिपूर्वक रत्नेश्वरके पूजन करनेसे वह बहुत भारी रत्नोंको देतेहैं, एवं जो नर रत्नोंसे उस लिंगका पूजन करता है, उसे स्त्रीरत्न इत्यादि प्राप्त होते हैं ॥९६॥ मैं त्रैलोक्य भरमें सर्वत्र व्यापी होनेपरभी भक्तोंकी मनोरथ सिद्धिके लिए त्रिलोचन सदैव बैठा रहताहूं ॥९७॥ मनुष्य वहांपर विरजस्क महापीठका सेवन और चतुर्नदतीर्थमें उदकक्रियाको कर अवश्यही रजोगुणसे शून्य होजाता है ॥ ९८ ॥ महादेवमें मेरा साधकोंका सिद्धिदायक महापीठ है उस पीठके दर्शन करनेहीसे कठोरपापोंसे भी छुट्टी होजातीहै ॥ ९९ ॥ पितरोंका परम प्रीतिप्रद वृषभध्वज तीर्थ (पीठ) है वहां

वसामिकृत्तिवासेहंसदाप्रतिचतुर्दशि ॥ अत्रजागरणंकृत्वाचतुर्दश्यांनगर्भभाक् ॥ ९५ ॥ रत्नेश्वरोर्चितोदद्यान्महारत्नानिभक्तितः ॥ रत्नैः समर्च्यतल्लिंगंस्त्रीरत्नादिलभेन्नरः ॥ ९६ ॥ विष्टपत्रितयांतस्थोप्यहंलिंगेत्रिविष्टपे ॥ तिष्ठामिसततंभक्तमनोरथसमृद्धये ॥९७॥ विरजस्कं महापीठंतत्रसंसेव्यमानवः ॥ विरजाजायतेनूनंचतुर्नदकृतोदकः ॥ ९८ ॥ महादेवेमहापीठंममसाधकसिद्धिदम् ॥ तत्पीठदर्शनादेवमहापापैःप्रमुच्यते ॥ ९९ ॥ पितृप्रीतिप्रदंपीठंवृषभध्वजसंज्ञकम् ॥ पितृतर्पणकृत्तत्रपितॄंस्तारयतिक्षणात् ॥ १०० ॥ आदिकेशवपीठेहमादिकेशवरूपधृक् ॥ श्वेतद्वीपंनयेभक्तान्वैष्णवानतिवल्लभान् ॥ १ ॥ तत्रैवमंगलापीठेसर्वमंगलदायिनि ॥ उपपंचनदेतीर्थेभक्तान्संतारयाम्यहम् ॥ २ ॥ बिंदुमाधवरूपेणयत्राहंवैष्णवाञ्जनान् ॥ नयेपंचनदस्नातांस्तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ३ ॥ पंचमुद्रेमहापीठेयेवीरेश्वरसेवकाः ॥ तेषांपरमनिर्वाणंकालेनाल्पेनजायते ॥ ४ ॥ तत्रसिद्धेश्वरीपीठेचंद्रेश्वरसमीपतः ॥ तत्रसंनिधिकर्तॄणांसिद्धिःषण्मासतोभवेत् ॥ ५ ॥

पर पितरोंका तर्पण करनेवाला क्षणमात्रमें पितरोंका उद्धार करदेताहै ॥ १०० ॥ आदिकेशव पीठपर मैं आदिकेशवरूपसे रहताहूं वहांके अपने परमप्रिय वैष्णव भक्तोंको श्वेतद्वीपमें प्राप्त करदेताहूं ॥ १ ॥ सकल मंगलदायक, मंगलापीठ पर जो पंचनदतीर्थके समीपमें है, मैं अपने भक्तोंका निस्तार करताहूं ॥ ॥ २ ॥ जहांपर मैं बिन्दुमाधव रूप धरकर, पंचनदतीर्थमें स्नान करनेवाले अपने वैष्णवभक्तोंको विष्णुके प्रसिद्ध परमपदपर पहुँचा देताहूं ॥ ३ ॥ पंचमुद्रनामक महापीठपर जो लोग वीरेश्वरके सेवक हैं, वे थोडेही कालमें निर्वाणपदको प्राप्त होजातेहैं ॥ ४ ॥ चन्द्रेश्वरके समीपमें सिद्धेश्वरी पीठहै, वहांपर

रहनेवालोंकी छः मासमें सिद्धि होजातीहै ॥ ५ ॥ काशीमें योगसिद्धि विधायक योगिनीपीठमें किन सुसाधकोंने उच्चाटनादि सिद्धियोंको नहीं पाया (है)? ॥ ६ ॥ इस काशीपुरीमें पद पदपर अनेक पीठहैं, पर धर्मेश्वर पीठकी कुछ अपूर्व शक्तिहै ॥ ७ ॥ जहांपर " रक्षाकरो, रक्षाकरो " ऐसा आर्तनाद करने वाले ये सब सुग्गोंके बच्चेभी मेरे उत्तम उपदेशसे निर्मलज्ञानके पात्र बनगयेहैं ॥ ८ ॥ हे सूर्यनन्दन ! आजसे मैं तुम्हारे इस उत्तम तपोवन धर्मेश्वर पीठको कभी नहीं छोडूंगा ॥ ९ ॥ हे रवितनूज ! देखो, मेरे अनुग्रहसे ये सब सुग्गेभी दिव्यविमानपर चढकर मेरे महापुरको जारहेहैं ॥ ११० ॥ तुम्हारे संसंगसे परम निर्मल होकर ये सब वहांपर बहुत दिनोंतक सुखभोग मेरे कहेहुए ज्ञानको प्राप्तकर, (फिर) यहींपर मुक्तिको पावेंगे ॥ ११ ॥ भगवान्

काश्यांचयोगिनीपीठेयोगसिद्धिविधायिनि ॥ सिद्धीरुच्चाटनाद्याश्चकैर्नलब्धाःसुसाधकैः ॥ ६ ॥ अनेकानीहपीठानिसंतिकाश्यांपदे पदे ॥ परंधर्मेशपीठस्यकाचिच्छक्तिरनुत्तमा ॥ ७ ॥ यत्रामीबालकीराश्चनिर्मलज्ञानभाजनम् ॥ आसुःसदुपदेशान्मेत्रातत्रातेतिभाषिणः ॥ ८ ॥ एतद्धर्मेश्वरंपीठंत्यजाम्यद्यदिनावधि ॥ नकदाचित्तरणिजत्वत्तपोवनसुत्तमम् ॥ ९ ॥ ममानुग्रहतःकीरानेतान्पश्यरवेः सुत ॥ दिव्यंविमानमारुह्यगंतारोमत्पुरंमहत् ॥ ११० ॥ तत्रभुक्त्वाचिरंभोगाञ्ज्ञानंप्राप्यमयेरितम् ॥ इहमुक्तिमवाप्स्यंतित्वत्संसर्गातिनिर्मलाः ॥ ११ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशेकैलासशिखरोपमम् ॥ दिव्यंविमानमापन्नंरुद्रकन्यापरिष्कृतम् ॥ १२ ॥ आरुह्यतेनयानेनदिव्यरूपधराःखगाः ॥ कैलासमभिसंजग्मुर्धर्ममापृच्छ्यतेऽमलाः ॥ ११३ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थे काशीखंडउत्तरार्धेधर्मेशाख्याननंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ कुंभोद्भूततदाश्चर्यंविलोक्यजगदंबिका ॥ उवाचशंभुंप्रणताप्रणतार्तिहरंपरम् ॥ १ ॥

शंकरके यह कहतेही रुद्रकन्याओंसे भूषित और कैलासके श्रृंगसमान दिव्य विमान वहांपर आपहुँचा ॥१२॥ परम निर्मल वे सब शुकशावक दिव्यरूपको धारणकर धर्मराजसे पूछ (बिदा हो) उस विमानपर चढकर कैलासकी ओर चलेगये ॥ ११३ ॥ दोहा—श्री धर्मेश्वर लिंगको, प्रनवौं वारंवार । शुकशावक पाये जहां, निर्मलस्थान अपार ॥ १ ॥ धर्मपीठ सम नहिं कहीं, पीठ मध्य संसार । जहां पच्छियो ज्ञान लहि, पाये भवनिस्तार ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ स्कन्द बोले—हे कुम्भज ! जगदम्बाने उस आश्चर्यघटनाको

देख, प्रणामकर प्रणतार्तिहारी भगवान् शिवसे कहा ॥ १ ॥ अंबिका बोलीं—हे महेश्वर ! महादेव ! इस पीठका कैसा माहात्म्यहै, जो तिर्यग्योनिवाले (पक्षियों) को भी संसारमोचक ज्ञान उत्पन्न होगया ? ॥ २ ॥ इसी कारणसे हे धूर्जटे ! धर्मपीठका प्रभाव समझकर आजके दिनसे सर्वदा मैं धर्मेश्वरके समीपमें रहा करूंगी ॥ ३ ॥ जो स्त्री अथवा पुरुष इस लिंगके भक्त होंगे मैं सदैव उनकी अभीष्टसिद्धिका साधन करती रहूंगी ॥ ४ ॥ ईश्वरने कहा—हे देवि ! सज्जनलोगोंके मनोरथ पूरनेवाले इस धर्मपीठका आश्रयण करके तुमने बहुतही अच्छा किया ॥ ५ ॥ जो लोग यहांपर विश्वभुजा रूपसे तुम्हारा पूजन

अंबिकोवाच ॥ ॥ अस्यपीठस्यमाहात्म्यंमहादेवमहेश्वर ॥ तिरश्चामपियज्जातंज्ञानंसंसारमोचनम् ॥ २ ॥ अतःप्रभावंविज्ञायधर्मपीठस्यधूर्जटे ॥ धर्मेश्वरसमीपेहंस्थास्याम्यद्यादिनावधि ॥ ३ ॥ अत्रलिंगेतुयेभक्तास्त्रियोवापुरुषास्तुवा ॥ तेषामभीष्टांसंसिद्धिंसाधयिष्याम्यहंसदा ॥ ४ ॥ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ॥ साधुकृतंत्वयादेविकृतवत्यापरिग्रहम् ॥ अस्येहधर्मपीठस्यमनोरथकृतःसताम् ॥ ॥ ५ ॥ तएवविश्वभोक्तारोविश्वमान्यास्तएवहि ॥ येत्वांविश्वभुजामत्रपूजयिष्यंतिमानवाः ॥ ६ ॥ विश्वेविश्वभुजेविश्वस्थित्युत्पत्तिलयप्रदे ॥ नरास्त्वदर्चकाश्चात्रभविष्यंत्यमलात्मकाः ॥ ७ ॥ मनोरथतृतीयायांयस्तेभक्तिंविधास्यति ॥ तन्मनोरथसंसिद्धिर्भवित्रीमदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ नारीवापुरुषोवाथत्वद्व्रताचरणात्प्रिये ॥ मनोरथानिहप्राप्यज्ञानमंतेचलप्स्यते ॥ ९ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ मनोरथतृतीयायांव्रतंकीदृक्कथाकथम् ॥ किंफलंकैःकृतंनाथकथयैतत्कृपांकुरु ॥ १० ॥

करेंगे वेही सब संसार सुखोंके भोक्ता और जगत्पूज्य होंगे ॥ ६ ॥ हे संसारकी सृष्टि पालन और संहारकरनेवाली विश्वभुजे ! विश्वे ! जो लोग यहांपर तुम्हारी पूजा करेंगे वे निर्मलहृदयवाले होजावेंगे ॥ ७ ॥ जो कोई मनोरथतृतीयाको तुम्हारा सेवन करेगा, मेरी कृपासे उसके मनोरथोंकी सिद्धि होजावेगी ॥ ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी कोई तुम्हारे व्रतका—अनुष्ठान करनेसे इस लोकमें अपने मनोरथोंको पाकर अन्तमें ज्ञानभी पावेंगे ॥ ९ ॥ देवीने पूछा—हे नाथ ! मनोरथतृतीयाका व्रत कैसे होताहै ? और उसकी कथा कैसी है ? एवं उसके करनेसे कौनसा फल मिलताहै ? और किसने उसे

कियाथा ? इन सब बातोंको आप कृपाकरके बतलादेवें ॥ १० ॥ ईश्वरने कहा—हे संसारतारिणि ! देवि ! यह जो तुमने पूछाहै, वह मनोरथव्रत गोपनी यसेभी परमगोपनीय है ॥ ११ ॥ पूर्वकालमें पुलोमकी पुत्री शचीने किसी मनोरथकी सिद्धिके लिए, घोर तपस्या की थी, पर तपस्याका कुछ फल नहीं पाया ॥ १२ ॥ तब उसने बडीभक्तिके साथ हर्षपूर्वक कोकिलाके मधुरस्वनके तुल्य सरहस्य गीतोंके गानसे मेरा पूजनकिया ॥ १३ ॥ तानमान कलासे पूर्ण सुन्दर राग और तालवाले उसके मृदु—मधुर गानसे मैं बडाही संतुष्ट होकर ॥ १४ ॥ उससे बोला, कि, हे पुलोमनन्दिनि ! तुम्हारे इस सुन्दरगान

ईश्वरउवाच ॥ ॥ शृणुदेवियथापृष्टंभवत्याभवतारिणि ॥ मनोरथव्रतंचैतद्गुह्याद्गुह्यतरंपरम् ॥ ११ ॥ पुलोमतनयापूर्वंततापपरमंतपः ॥ किंचिन्मनोरथंप्राप्तुंनचापतपसःफलम् ॥ १२ ॥ अपूपुजत्ततोमांसाभक्त्यापरमयामुदा ॥ गीतेनसरहस्येनकलकंठीकलेनहि ॥ १३ ॥ तद्गानेनातिसंतुष्टोमृदुनामधुरेणच ॥ सुतालेनसुरंगेणधातुमात्राकलावता ॥ १४ ॥ प्रोवाचत्वंवरंब्रूहिप्रसन्नोस्मिपुलोमजे ॥ अनेनचसुगीतेनत्वनयालिंगपूजया ॥ १५ ॥ ॥ पुलोमजोवाच ॥ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशतदायोमेमनोरथः ॥ तंपूरयमहादेवमहादेवीमहाप्रिय ॥ १६ ॥ सर्वदेवेषुयोमान्यःसर्वदेवेषुसुंदरः ॥ यायजूकेषुसर्वेषुयःश्रेष्ठःसोस्तुमेपतिः ॥ १७ ॥ यथाभिलषितंरूपंयथाभिलषितंसुखम् ॥ यथाभिलषितंचायुःप्रसन्नोदेहिमेभव ॥ १८ ॥ यदायदाचपत्यामेसंगःस्याद्धृत्सुखेच्छया ॥ तदातदाचतंदेहंत्यक्त्वान्यंदेहमाप्नुयाम् ॥ १९ ॥ सदाचलिंगपूजायांममभक्तिरनुत्तमा ॥ भवभूयाद्भवहरजरामरणहारिणी ॥ २० ॥

और इस लिंगपूजनसे मैं बडा प्रसन्नहूं, वर मांगो ॥ १५ ॥ पुलोमजाने कहा—हे देवाधिदेव ! महादेवीमहाप्रिय ! महादेव ! यदि आप मुझपर प्रसन्नहैं, तो मेरे मनोरथको पूर्ण कीजिए ॥ १६ ॥ जो सब देवतोंमें माननीय और समग्र देवगणमें सुन्दर, एवं समस्त यज्ञोंके कर्ताओंमें श्रेष्ठहो वही मेरा पतिहोवे ॥ १७ ॥ हे भव ! यदि, आप प्रसन्नहैं तो इच्छानुरूप रूप और इच्छानुरूप सुख एवं इच्छानुरूप आयु दीजिए ॥ १८ ॥ मनकी सुखेच्छासे जब जब मेरा पतिसे संगम होवे तब तब मैं उस शरीरको त्यागकर फिर दूसरा धारण करसकूं ॥ १९ ॥ हे संसार मोचक ! भव ! लिंगपूजनके विषयमें सदैव जरामरणहारिणी,

सर्वोत्तम मेरी भक्ति बनीरहे ॥ २० ॥ हे महादेव ! स्वामीके मरजानेपर क्षणमात्रके लिएभी मुझे वैधव्य न होवे, और न पातिव्रत्यही बिगडने पावे ॥ ॥ २१ ॥ स्कन्द बोले—त्रिपुरसूदन महादेवने पुलोमजाका इस प्रकारसे मनोरथ सुनकर क्षणमात्र मुसकुरातेहुए विस्मयान्वित होकर कहा ॥ २२ ॥ ईश्वर बोले—हे जितेन्द्रिये ! पुलोमजे ! यह जो तुमने मनोरथ कियाहै, सो व्रतचर्याहीसे मिलसकताहै, अतएव तुम उसे करो ॥ २३ ॥ इसके लिए मनोरथतृतीयाका व्रताचरण करना पडेगा, उस व्रतकी विधि मैं कहताहूं, कथनानुसार तुमको करना चाहिए ॥ २४ ॥ हे बाले ! उस परम सौभाग्यप्रद व्रतके

भर्तुर्व्ययेपिवैधव्यंक्षणमात्रमपीहन ॥ ममभाविमहादेवपातिव्रत्यंचयातुमा ॥ २१ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इमंमनोरथंतस्याःपौलोम्याः पुरसूदनः ॥ समाकर्ण्यक्षणंस्मित्वाप्राहेशोविस्मयान्वितः ॥ २२ ॥ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ॥ पुलोमकन्येयश्चैषत्वयाकारिमनोरथः ॥ लप्स्यसेव्रतचर्यातस्तत्कुरुष्वजितेंद्रिये ॥२३॥ मनोरथतृतीयायाश्चरणेनभविष्यति ॥ तत्प्राप्तयेव्रतंवक्ष्येतद्विधेहियथोदितम् ॥२४॥ तेन व्रतेनचीर्णेनमहासौभाग्यदेनतु ॥ अवश्यंभविताबालेतवचैवंमनोरथः ॥ २५ ॥ ॥ पुलोमकन्योवाच ॥ ॥ कारुण्यवारिधेशंभोप्रणतप्राणिसर्वद ॥ किमात्मिकाथकाशक्तिःकापूज्यातत्रदेवता ॥ २६ ॥ कदाचतद्विधातव्यमितिकर्तव्यताचका ॥ इत्याकर्ण्यशिवोवाक्यंतांतुप्रणिजगादह ॥ २७ ॥ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ॥ मनोरथतृतीयायांव्रतंपौलोमितच्छुभम् ॥ पूज्याविश्वभुजागौरीभुजविंशतिशालिनी ॥ २८ ॥ वरदोऽभयहस्तश्चसाक्षसूत्रःसमोदकः ॥ देव्याःपुरस्ताद्व्रतिनापूज्यआशाविनायकः ॥ २९ ॥

पूर्ण होजानेपर तुम्हारा मनोरथ अवश्यही सिद्ध होजावेगा ॥ २५ ॥ पुलोमजाने कहा हे प्रणतजनके सर्वस्वदायक ! दयासागर ! शंकर ! उस व्रतका क्या फलहै ? कौनसी शक्तिहै ? उसमें किस देवताकी पूजा करनी चाहिए ? ॥ २६ ॥ उस व्रतको कब करना पडताहै, ? और उसका विधान क्या है, ? यह बात सुनकर शिव उससे कहने लगे ॥ २७ ॥ हे पुलोमजे ! वह शुभप्रद व्रत मनोरथतृतीयापर होताहै, उसमें बीस भुजावाली विश्वभुजा गौरीका पूजन करना उचितहै ॥ २८ ॥ व्रतकर्ताको चाहिए कि, देवीके सन्मुख एक हाथमें वर, दूसरेमें अक्षसूत्र, तीसरेमें अभय, और चौथे हाथमें मोदकको लिएहुए

आशाविनायकका पूजन करे ॥ २९ ॥ चैत्रमासकी शुक्ला तृ (द्वि) तीयाको दंतधावन और सायंकालकी संध्याको समाप्तकर रात्रिमें स्वल्पही भोजन करे ॥ ३० ॥ फिर क्रोधादिको त्याग जितेन्द्रिय होकर और अस्पृश्योंका स्पर्श न कर पवित्रतापूर्वक तद्गतचित्तसे यह नियम धारण करे ॥ ३१ ॥ हे अनघे ! मात ! विश्वभुजे ! देवि ! मैं प्रातःकाल व्रत करूंगा, उसमें आप (मेरे) मनोरथकी सिद्धिके लिए पधारें ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे नियमको धारणकर शुभका स्मरण करताहुआ सोरहे; फिर वह बुद्धिमान् व्रतकर्ता प्रातःकाल उठकर अपने आवश्यक विधिको करके ॥ ३३ ॥ शौच और कुल्लाके

चैत्रशुक्लतृतीयायांकृत्वावैदंतधावनम् ॥ सायंतनींचनिर्वर्त्यनातितृप्त्याभुजिक्रियाम् ॥ ३० ॥ नियमंचेतिगृह्णीयाज्जितक्रोधोजितेंद्रियः ॥
संत्यक्तास्पृश्यसंस्पर्शःशुचिस्तद्गतमानसः ॥३१॥ प्रातर्व्रतंचरिष्यामिमातर्विश्वभुजेनघे ॥ विधेहितत्रसांनिध्यंमन्मनोरथसिद्धये ॥३२॥
नियमंचेतिसंगृह्यस्वपेद्रात्रौशुभंस्मरन् ॥ प्रातरुत्थायमेधावीविधायावश्यकंविधिम् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनंकृत्वादंतकाष्ठंसमाददे ॥
अशोकवृक्षस्यशुभंसर्वशोकनिशातनम् ॥ ३४ ॥ नित्यंतनंचनिष्पाद्यविधिंविधिविदांवरः ॥ स्नात्वाशुद्धांबरःसायंगौरीपूजांसमाचरेत् ॥
॥ ३५ ॥ आदौविनायकंपूज्यघृतपूरान्निवेद्यच ॥ ततोर्चयेद्विश्वभुजामशोककुसुमैःशुभैः ॥ ३६ ॥ अशोकवर्तिनैवेद्यैर्धूपैश्चागुरुसंभवैः ॥
कुंकुमेनानुलिप्याद्यादेवैकभक्तंततश्चरेत् ॥ ३७ ॥ अशोकवर्तिसहितैर्घृतपूरैर्मनोहरैः ॥ एवंचैत्रतृतीयायांव्यतीतायांपुलोमजे ॥ ३८ ॥
राधादिफाल्गुनांतासुतृतीयासुव्रतंचरेत् ॥ क्रमेणदंतकाष्ठानिकथयामितवानघे ॥ ३९ ॥

उपरांत सब शोकोंके मिटानेवाले अशोकवृक्षकी दतुइन करे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर वह विधिज्ञ श्रवर नित्यतन कृत्यको समाप्तकर स्नानके पश्चात् शुद्धवस्त्र पहिन सन्ध्यासमय गौरी देवीका पूजन करे ॥ ३५ ॥ पहिले गणेशहीकी पूजा करे और उनको घृतपूर (मालपुआ) का नैवेद्य लगावे, फिर कुंकुमका अनुलेपन, उत्तम अशोकके पुष्प, अगरकी धूपबत्ती, और अशोकवर्तियुक्त, घृतपूरोंके नैवेद्यसे विश्वभुजा गौरीका पूजन करे इसके उपरांत अशोकवर्तिसहित मनोहर घृतपूरोंके द्वारा केवल एकबार भोजनकरे, हे पुलोमजे ! इस भाँतिसे चैत्रशुक्ल तृतीयाके बीतजानेपर ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वैशाखसे लेकर फाल्गुन

मासतक प्रत्येक शुक्ला तृतीयाको व्रत करे, हे अनघे ! क्रमसे अवशिष्ट ग्यारहों मासोंकी दतुअन ॥ ३९ ॥ अनुलेपनके द्रव्य, पुष्प, गणेश और गौरीके नैवेद्य, एवं एकाहारके अन्नोंको हे शुभव्रते ! मैं तुमसे कहताहूं, इन्हीं सबोंसे व्रतका फल मिलताहै, अतएव इनको सुन रक्खो जामुन, चिचिढा, खैर, जाही (चमेली) आम, कदम्ब ॥ ४० ॥ ४१ ॥ बड, गुल्लर, खजूर, बिजौरा (नीबू) और अनार—व्रतीके दतुइनिहां पेड येही सब कहेजाते हैं ॥ ४२ ॥ सेंदुर, अगर, कस्तूरी, चंदन, लालचन्दन, गोरोचन, देवदारु, पद्मकाठ और दोनों हरदी (अर्थात् हरदी और दारुहरदी) ॥ ४३ ॥ हे बाले ! इन अनुलेपनोंको और यक्षकर्दमके लेपनको प्रीतिसे समर्पण करे, और इन सब अनुलेपनोंके न मिलनेपर यक्ष कर्दमही प्रशस्तहै ॥ ४४ ॥ दो भाग कस्तूरी, दो

अनुलेपनवस्तूनिकुसुमानितथैवच ॥ नैवेद्यानिगजास्यस्यदेव्याश्चापिशुभव्रते ॥ ४० ॥ अन्नानिचैकभक्तस्यशृणुतानिफलाप्तये ॥ जंब्वपामार्गखदिरजातीचूतकदंबकम् ॥ ४१ ॥ प्लक्षोदुंबरखर्जूरीबीजपूरीसदाडिमी ॥ दंतकाष्ठद्रुमाएतेव्रतिनःसमुदाहृताः ॥४२॥ सिंदूरागुरुकस्तूरीचंदनंरक्तचंदनम् ॥ गोरोचनादेवदारुपद्माक्षंचनिशाद्वयम् ॥४३॥ प्रीत्यानुलेपनंबालेयक्षकर्दमसंभवम् ॥ सर्वेषामप्यलाभेचप्रशस्तोयक्षकर्दमः ॥४४॥ कस्तूरिकायाद्वौभागौद्वौभागौकुंकुमस्यच ॥ चंदनस्यत्रयोभागाःशशिनस्त्वेकएवहि ॥ ४५ ॥ यक्षकर्दमइत्येषसमस्तसुरवल्लभः ॥ अनुलिप्याथकुसुमैरर्चयेद्वच्मितान्यपि ॥ ४६ ॥ पाटलामल्लिकापद्मकेतकीकरवीरकैः ॥ उत्पलैराजचंपैश्चनंद्यावर्तैश्चजातिभिः ॥ ४७ ॥ कुमारीभिःकर्णिकारैरलाभेतच्छदैःसह ॥ सुगंधिभिःप्रसूनौघैःसर्वालाभेपिपूजयेत् ॥४८॥ करंभोदधिभक्तंचसचूतरसमंडकाः ॥ फेणिकावटकाश्चैवपायसंचसशर्करम् ॥४९॥समुद्गंसघृतंभक्तंकार्त्तिकेविनिवेदयेत् ॥ इंडेरिकाश्चलड्डूकामाघेलंपसिकाशुभा ॥५०॥

भाग केशर, तीन भाग चन्दन, और एक भाग कपूर ॥ ४५ ॥ इसीका यक्षकर्दम होताहै जो समस्त देवतोंको बडा प्याराहै, इसका अनुलेपन करके जिन पुष्पोंसे पूजना चाहिये, अब उनको कहताहूं ॥ ४६ ॥ गुलाब, बेला, कमल, केवडा, कनइल, कोई, राजचम्पा, तगर, जाही, ॥ ४७ ॥ घीकुंआर, और करनाके फूल, यदि फूल न मिलें तो उक्तवृक्षोंके पत्र लेने चाहिये, दैवात् कुछभी न मिले तो सुगन्धयुक्त अन्यान्य पुष्पसमूहोंसे पूजा करे ॥ ४८ ॥ करंभ (दधिमिश्रितसक्तु) दहीभात, आमके रसके साथ मांड, फेनी, बडा, शक्करसहित जाउर (खोआ) ॥ ४९ ॥ मूंगकी दाल और घृतके साथ भात, कार्ति

कका नैवेद्यहै, (अगहनमें) इंडेरिका (पूसमें) लडुआ, (माघमें) लपसी ॥ ५० ॥ एवं फाल्गुनमासमें शक्कर भरीहुई और घीमें छनी पेडकिया (वा- पूरी) गौरी और गणेशको हर्षपूर्वक नैवेद्य लगावे ॥ ५१ ॥ जिस वस्तुका नैवेद्य चढावे उसीको एकाहारमें खावे, एक वस्तु नैवेद्य लगावे और दूसरा खावे तो वह मूढ अधःपतित होताहै ॥ ५२ ॥ एकवर्षभर इसी रीतिसे प्रतिमासकी शुक्ल तृतीयाको आराधना करके व्रतकी समाप्तिके लिए स्थंडिलमें अग्निकी पूजाकरे ॥ ५३ ॥ व्रतकर्ता, " जातवेदस " मन्त्रके द्वारा यथाविधि तिल, घृत, इत्यादि द्रव्योंसे अष्टोत्तर शत आहुतियोंका होम करावे ॥ ५४ ॥ सदैव यह पूजा रात्रिहीमें कहीगई है और रात्रिहीमें भोजनभी करना चाहिए, और यह होमभी रात्रिहीमें करे, एवं रात्रिहीमें क्षमापनभी उचितहै ॥ ५५ ॥

मुष्टिकाःशर्करागर्भाःसर्पिषापरिसाधिताः ॥ निवेद्याःफाल्गुनेदेव्यैसार्धविघ्नजितामुदा ॥ ५१ ॥ निवेदयेद्यदन्नंहिएकभक्तेपितत्स्मृतम् ॥ अन्यन्निवेद्यसंमूढोभुंजानोऽन्यत्पतेदधः ॥ ५२ ॥ प्रतिमासंतृतीयायामेवमाराध्यवत्सरम् ॥ व्रतसंपूर्तयेकुर्यात्स्थंडिलेऽग्निसमर्चनम् ॥ ॥ ५३ ॥ जातवेदसमंत्रेणतिलाज्यद्रविणेनच ॥ शतमष्टाधिकंहोमंकारयेद्विधिनाव्रती ॥ ५४ ॥ सदैवनक्तेपूजोक्तासदानक्तेतुभोजनम् ॥ नक्तएवहिहोमोऽयंनक्तएवक्षमापनम् ॥ ५५ ॥ गृहाणपूजांमेभक्त्यामातर्विघ्नजितासह ॥ नमोस्तुतेविश्वभुजेपूरयाशुमनोरथम् ॥ ५६ ॥ नमोविघ्नकृतेतुभ्यंनमआशाविनायक ॥ त्वंविश्वभुजयासार्धंममदेहिमनोरथम् ॥ ५७ ॥ एतौमंत्रौसमुच्चार्यपूज्यौगौरीविनायकौ ॥ व्रत क्षमापनेदेयःपर्यंकस्तूलिकान्वितः ॥ ५८ ॥ उपधान्यासमायुक्तोदीपीदर्पणसंयुतः ॥ आचार्यंचसपत्नीकंपर्यंकउपवेश्यच ॥ ५९ ॥ व्रती समर्चयेद्वस्त्रैःकरकर्णविभूषणैः ॥ सुगंधचंदनैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितः ॥ ६० ॥

" हे मातः ! गणेशके सहित आप भक्तिपूर्वक मेरी कीहुई पूजाको ग्रहण करें, हे विश्वभुजे ! मैं आपको नमस्कार करताहूं, आप शीघ्रही मेरे मनोरथको पूर्ण करदेवें ॥ ५६ ॥ हे आशाविनायक ! आप विघ्नविदारकहैं अतएव आपको वारंवार नमस्कारहै, आप विश्वभुजा देवीके सहित मेरे मनोरथको (सिद्ध) करदेवें " ॥ ५७ ॥ इन दोनों मन्त्रोंको कहकर गौरी और गणेशकी पूजा करे, व्रतके उद्यापनमें, तोसक, तकिया, डीवट, दर्पण आदिसे युक्त पलंग देवे और उस पलंगपर सपत्नीक आचार्यको बैठावे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ तब व्रतकर्ता वस्त्र हाथ और कानके भूषण, सुगंध, चंदन, माला और दक्षिणा इत्यादिसे

हर्षपूर्वक पूजन करे ॥ ६० ॥ एवं व्रतपूर्तिके लिए दुधार गौ, तथा छत्र, उपानह, और लोटा इत्यादि उपभोगकी सब सामग्री दान करे ॥ ६१ ॥ "यह जो मैंने मनोरथतृतीयाका व्रत कियाहै इसमें जो कुछ न्यून अथवा अतिरिक्त होवे वह सब आपके वचनसे परिपूर्ण होजावे" ॥ ६२ ॥ इस प्रकार आचार्यसे प्रार्थना करनेपर जब वे तथास्तु कहदेवें तब सीमापर्यंत उनको पहुँचादेवे फिर और लोगोंकोभी दक्षिणा इत्यादि यथाशक्ति देकर ॥ ६३ ॥ प्रसन्नचित्तसे रात्रिमें अपने पोष्यवर्गके साथ भोजन करे, उसके अनंतर प्रातःकाल चतुर्थीके दिन चार कुमार ॥ ६४ ॥ एवं बारह कुमारियोंको गंध माला दिकसे पूजकर भोजन करावे, इस भाँतिसे यह निर्मल व्रत संपूर्ण होताहै ॥ ६५ ॥ इस शुभव्रतको अपने मनोरथकी सिद्धिके लिए सभी किसीको करना

दद्यात्पयस्विनींगांचव्रतस्यपरिपूर्तये ॥ तथोपभोगवस्तूनिच्छत्रोपानत्कमंडलुम् ॥६१॥ मनोरथतृतीयायाव्रतमेतन्मयाकृतम् ॥ न्यूनातिरिक्तंसंपूर्णमेतदस्तुभवद्गिरा ॥ ६२ ॥ इत्याचार्यसमापृच्छ्यतथेत्युक्तश्चतेनवै ॥ आसीमांतमनुव्रज्यदत्त्वान्येभ्योपिशक्तितः ॥ ६३ ॥ नक्तंसमाचरेत्पोष्यैःसार्धंसुप्रीतमानसः ॥ प्रातश्चतुर्थ्यांसंभोज्यचतुरश्चकुमारकान् ॥६४॥ अभ्यर्च्यगंधमाल्याद्यैर्द्वादशापिकुमारिकाः ॥ एवंसंपूर्णतांयातिव्रतमेतत्सुनिर्मलम् ॥ ६५ ॥ कार्यंमनोरथावाप्त्यैसर्वैरेतद्व्रतंशुभम् ॥ पत्नींमनोरमांकुल्यांमनोवृत्त्यनुसारिणीम् ॥ ६६ ॥ तारिणींदुःखसंसारसागरस्यपतिव्रताम् ॥ कुर्वन्नेतद्व्रतंवर्षंकुमारःप्राप्नुयात्स्फुटम् ॥ ६७ ॥ कुमारीपतिमाप्नोतिस्वाढ्यंसर्वगुणाधिकम् ॥ सुवासिनीलभेत्पुत्रान्पत्युःसौख्यमखंडितम् ॥ ६८ ॥ दुर्भगासुभगास्याच्चधनाढ्यास्याद्दरिद्रिणी ॥ विधवापिनवैधव्यंपुनराप्नोतिकुत्रचित् ॥ ६९ ॥ गुर्विणीचशुभंपुत्रंलभतेसुचिरायुषम् ॥ ब्राह्मणोलभतेविद्यांसर्वसौभाग्यदायिनीम् ॥ ७० ॥

चाहिए । अविवाहित पुरुष एक वर्षभर इस व्रतके करनेसे मनोरमा, सत्कुलोत्पन्ना, मनोवृत्तिके अनुसार चलनेवाली, दुःखमय संसारसागरसे पार उतारनेवाली, पतिव्रता पत्नीको अवश्यही पाताहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ एवं कुमारीभी धनाढ्य, समस्त गुणोंमें अधिक पतिको प्राप्त करती है, सोहागिन बहुतसे पुत्र और स्वामीका अखंडित सुखलाभ करती है ॥ ६८ ॥ दुर्भगाभी सुभगा और दरिद्रिणीभी धनवती होजाती है, और विधवाको फिर कभी वैधव्यका दुःख नहीं झेलना पडता ॥ ६९ ॥ गर्भवती चिरायु और शुभ (लक्षण) पुत्रको पाती है और ब्राह्मणको सर्व सौभाग्यदायिनी विद्याही मिलती है ॥ ७० ॥

राज्यसे च्युतहुआ राजा राज्य पाजाताहै वैश्यको लाभ होताहै, एवं शूद्रभी अपने चिंतित फलको प्राप्त करताहै, इस व्रतके सेवन करनेसे ॥ ७१ ॥ धर्मार्थीजन धर्मको पाताहै, धनार्थीको धन मिलताहै, कामीकी सब कामनायें पूरजाती हैं, और मोक्षार्थीभी मोक्षलाभ करताहै ॥ ७२ ॥ मनोरथतृतीयाके व्रतानुष्ठानसे व्रती जो जो मनोरथ करताहै सो सो सब ध्रुवकरके परिपूर्ण होजातेहैं ॥ ७३ ॥ स्कन्दने कहा—महादेवसे यह सुनकर भगवती संतुष्टचित्त हो फिर हाथ जोडकर विश्वेश्वरसे पूछनेलगीं ॥ ७४ ॥ हे सदाशिव ! जो लोग काशीसे अन्यस्थानमें इस व्रतको करेंगे वे सब मुझे और आशाविनायकको

राज्यभ्रष्टोलभेद्राज्यंवैश्योलाभंचविंदति ॥ चिंतितंलभतेशूद्रोव्रतस्यास्यनिषेवणात् ॥ ७१ ॥ धर्मार्थीधर्ममाप्नोतिधनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ कामीकामानवाप्नोतिमोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ योयोमनोरथोयस्यसतंतंविंदतेध्रुवम् ॥ मनोरथतृतीयायाव्रतस्यचरणाद्व्रती ॥७३॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इत्थंनिशम्यशिवतःशिवासंतुष्टमानसा ॥ पुनःपप्रच्छविश्वेशंप्रबद्धकरसंपुटा ॥ ७४ ॥ अन्यत्रयेव्रतंचैतत्कारिष्यंति सदाशिव ॥ तेकथंपूजयिष्यंतिमांचआशाविनायकम् ॥ ७५ ॥ ॥ शिवउवाच ॥ ॥ साधुपृष्टंत्वयादेविसर्वसंदेहभेदिनि ॥ वाराणस्यांसमर्च्यात्वंविश्वेप्रत्यक्षरूपिणी ॥ ७६ ॥ आशाविघ्नजितासार्धंसर्वाशापूर्तिकारिणा ॥ हारिणानंतविघ्नानांममक्षेत्रशुभार्थिना ॥७७॥ क्षिप्रमागमयित्वाचनत्वादूरंगतानपि ॥ कृतकृत्यान्विधायाथचिंतितैःसुमनोरथैः ॥ ७८ ॥ अन्यत्रव्रतिभिर्विश्वेकांचनीप्रतिमातव ॥ पंचकृष्णलकादूर्ध्वंकार्याविघ्नहृतोपिच ॥७९॥ आचार्यायव्रतीदद्याद्व्रतांतेप्रतिमाद्वयम् ॥ सकृत्कृतेव्रतीचास्मिन्कृतकृत्योव्रतीभवेत् ॥८०॥

किस प्रकारसे पूजसकेंगे ? ॥ ७५ ॥ महादेवने कहा—हे सर्व सन्देहनिवारिणि ! देवि ! तुमने बहुतही ठीक पूछा, हे विश्वे ! वाराणसीपुरीमें तो लोग प्रणाम करनेसे दूरदेशमें चलेगये हुए लोगोंको भी फेरलाकर (उनको) चिंतित उत्तम मनोरथोंके द्वारा कृतार्थ बनाकर, सब किसीकी आशाओंके पूरक, और अनंत विघ्नोंके विनाशक, एवं मेरे क्षेत्रके शुभार्थी आशाविनायकके सहित प्रत्यक्षरूपसे तुमको पूजें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ पर हे विश्वे ! दूसरे स्थानोंपर पांच घुंघुची (रत्ती) से ऊपरकी (तौलमें अधिक) तुम्हारी और गणेशकीभी प्रतिमा (मूर्ति) बनानी चाहिए ॥ ७९ ॥ व्रतकर्त्ता व्रतके अन्तमें उन दोनोंही

प्रतिमाओंको लेजाकर आचार्यको निवेदन करदेवे, इस प्रकारसे एकबारभी इस व्रतके करनेसे व्रती कृतार्थ होजाता है ॥ ८० ॥ हे देवि ! तदनंतर यह सुनकर पुलोमजा (इन्द्राणी) ने इस उत्तम व्रतके अनुष्ठानसे अपने मनोवांछित अभिलाषको प्राप्त किया ॥ ८१ ॥ इसी व्रतके करनेसे अरुंधतीने वसिष्ठको, अनसूयाने अत्रिको पतिरूपसे पायाहै, और सुनीतिने राजा उत्तानपादसे उत्तम पुत्र ध्रुवको प्राप्त कियाथा ॥ ८२ ॥ एवं इसी व्रतके आचरणसे सुनीतिका दुर्भगत्वभी दूर भागाथा, और क्षीरसागरकी कन्या लक्ष्मीनेभी विष्णुको पति पायाथा ॥ ८३ ॥ हे सुश्रोणि ! कहांतक कहूं, जिस व्रतीने इस व्रतको

ततःपुलोमजादेविश्रुत्वैतद्व्रतमुत्तमम् ॥ कृत्वामनोरथंप्रापयथाभिवांछितंहृदि ॥८१॥ अरुंधत्यावसिष्ठोपिलब्धोऽत्रिरनसूयया ॥ सुनीत्योत्तानपादाच्चध्रुवःप्राप्तोंऽगजोत्तमः ॥ ८२ ॥ सुनीतेर्दुर्भगत्वंचपुनरस्माद्व्रताद्गतम् ॥ चतुर्भुजःपतिःप्राप्तःक्षीरनीरधिजन्मना ॥ ८३ ॥ किंबहूक्तेनसुश्रोणिकृतंयेनव्रतंत्विदम् ॥ व्रतानितेनसर्वाणिकृतानिव्रतिनाध्रुवम् ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाधीमान्कथांपुण्यांपुनस्तद्गतमानसः ॥ शुभबुद्धिमवाप्नोतिपापैरपिविमुच्यते ॥ ८५ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धेधर्मेश्वराख्यानेविश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रताख्यानंनामाशीतितमोध्यायः ॥ ८० ॥ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ धर्मतीर्थस्यमाहात्म्यंकीदृग्देवेनशंभुना ॥ स्कंददेव्यैसमाख्यातंतदाख्याहिकृपांकुरु ॥ १ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ विंध्योन्नतिहृदाख्यामिधर्मतीर्थसमुद्भवम् ॥ आकर्णयमहाप्राज्ञयथादेवेनभाषितम् ॥ २ ॥

करलिया, वह सब व्रतोंको करचुका, यह ध्रुवह ॥ ८४ ॥ बुद्धिमान् जन तद्गतचित्त होकर इस पवित्र कथाके सुननेसे शुभ बुद्धिको प्राप्त करता, और पापोंसेभी छूट जाताहै ॥ ८५ ॥ दोहा—आशा गणपतिहैं जहां, विश्वभुजा जहँ मात । सब आशा पूजैं तहां, यहिमें भ्रम न लखात ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायामशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ अगस्त्य बोले—हे स्कन्द ! भगवान् शंभुने देवीसे धर्मतीर्थका माहात्म्य किस प्रकारसे कहाथा, कृपाकरके आप उसेभी कहें ॥ १ ॥ स्कन्दने कहा—हे विन्ध्योन्नतिहारिन् ! महाप्राज्ञ ! भगवान्ने जैसे धर्मतीर्थ जनित माहात्म्यको

कहाथा, उसे मैं कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ २ ॥ इन्द्र वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्यामें जापडे तब बडा पश्चात्ताप करके अपने पुरोहित बृहस्पतिसे प्रायश्चित्त पूछने लगे ॥ ३ ॥ बृहस्पतिने कहा—हे देवराज ! यदि तुम इस दुस्त्यज ब्रह्महत्याको दूरकिया चाहते हो तो विश्वेश्वर पालित काशीपुरीकी यात्रा करो ॥ ॥ ४ ॥ हे शक्र ! भगवान् विश्वेश्वरकी बडी राजधानीको छोडकर और कहींभी ब्रह्महत्याका महौषध दूसरा कोईभी नहीं दीखताहै ॥ ५ ॥ हे वृत्रशत्रो ! जिस आनंदवनमें भैरवकेभी हस्ताग्रसे ब्रह्माका कपाल गिरपडा था, शीघ्रही तुमभी वहींपर चलेजाओ ॥ ६ ॥ हे शक्र ! आनंदवनकी सीमापर पहुँचतेही

वृत्रंनिहत्यवृत्रारिर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ अनुतप्तोथपप्रच्छप्रायश्चित्तंपुरोहितम् ॥ ३ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ॥ यदित्वंदेवराजेमां ब्रह्महत्यांसुदुस्त्यजाम् ॥ अपानुनुत्सुस्तद्याहिकाशींविश्वेशपालिताम् ॥ ४ ॥ नान्यत्किंचित्क्वचिद्दृष्टंब्रह्महत्यामहौषधम् ॥ राजधानीं परित्यज्यशक्रविश्वेशितुःपराम् ॥ ५ ॥ भैरवस्यापिहस्ताग्रादपतद्वेधसंशिरः ॥ यत्रानंदवनेतत्रवृत्रशत्रोव्रजद्रुतम् ॥ ६ ॥ सीमानमपिसं प्राप्यशक्रानंदवनस्यहि ॥ ब्रह्महत्यापलायेतवेपमानानिराश्रया ॥ ७ ॥ अन्येषामपिपापानांमहापापजुषामपि ॥ नाशयित्रीपराकाशी विश्वेशसमधिष्ठिता ॥ ८ ॥ महापातकतोमुक्तिःकाश्यामेवशतक्रतो ॥ महासंसारतोमुक्तिःकाश्यामेवनचान्यतः ॥ ९ ॥ निर्वाणनगरीका शीकाशीसर्वाघसंघहृत् ॥ विश्वेशितुःप्रियाकाशीद्यौःकाशीसदृशीनहि ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याभयंयस्ययस्यसंसारतोभयम् ॥ जातुचित्ते ननत्याज्याकाशिकामुक्तिकाशिका ॥ ११ ॥

ब्रह्महत्या निरालंब होकर कांपती (थर्राती) हुई भागजाती है ॥ ७ ॥ विश्वेश्वरकी अधिष्ठिता काशी, और औरभी बडेबडे पापियोंके पापोंका पूर्णरूपसे नाश करडालती है ॥ ८ ॥ हे शतक्रतो ! महापातकोंसे जैसे काशीमें मुक्ति (छुट्टी) मिलती है, वैसेही महासंसारसेभी काशीहीमें मुक्ति होती है, अन्यत्र तो होही नहीं सकती ॥ ९ ॥ काशीही मुक्तिपुरी है, और काशीही सब पापोंको हरलेती हैं, एवं विश्वेश्वरकी बडीप्यारीभी काशीही है, सुतरां काशीके समान (तुम्हारा) स्वर्गभी नहीं है॥ १०॥ जिसे ब्रह्महत्याका भय हो, अथवा जिसे संसारका भय हो उसे मुक्तिप्रकाशिनी काशीको कभी नहीं छोडना चाहिए॥ ११ ॥

जहांपर देहत्याग करनेसे समस्त प्राणियोंके कर्मबीज शिवके दृष्टिपातसे सूखकर फिर कभी अंकुर नहीं फेंकते ॥ १२ ॥ हे वृत्रारे ! उसी काशीमें जाकर वृत्रासुरकी हत्या छुडानेके लिए विश्वमात्रके मोक्षदाता भगवान् विश्वेश्वरकी आराधना करो ॥ १३ ॥ बृहस्पतिका यह वचन सुनकर सह स्राक्ष, महापातकनाशिनी काशीमें बहुत शीघ्रही आपहुँचे ॥ १४ ॥ उत्तरवाहिनी गंगामें नहाय, धर्मेश्वरके समीपहीमें टिककर ब्रह्महत्या छुडानेके लिए महा देवकी आराधना करने लगे ॥ १५ ॥ अनन्तर (एकबार) महारुद्रमन्त्रका जप करतेहुए इंद्रने लिंगके बीचमें अपने प्रकाशसे आकाशको दीपित किये

जंतूनांकर्मबीजानांयत्रदेहविसर्जने ॥ नजातुचित्प्ररोहोस्तिहरदृष्ट्यातशुष्मणाम् ॥ १२ ॥ तांकाशींप्राप्यवृत्रारेवृत्रहत्यापनुत्तये ॥ समा राधयविश्वेशंविश्वमुक्तिप्रदायकम् ॥ १३ ॥ बृहस्पतेरितिवचोनिशम्यससहस्रदृक् ॥ आयाद्द्रुततरंकाशींमहापातकघातुकाम् ॥ १४ ॥ स्नात्वोत्तरवहायांचधर्मेशंपरितःस्थितः ॥ आराधयन्महादेवंब्रह्महत्यापनुत्तये ॥ १५ ॥ महारुद्रजपासक्तःसुत्रामाथत्रिलोचनम् ॥ ददर्श लिंगमध्यस्थंस्वभासादीपितांबरम् ॥ १६ ॥ पुनस्तुष्टाववेदोक्तैरुद्रसूक्तैरनेकधा ॥ विनिष्क्रम्यततोलिंगादाविर्भूयभवोवदत् ॥ १७ ॥ शचीपतेप्रसन्नोस्मिवरंवरयसुव्रत ॥ किंदेयंद्रुतमाख्याहिधर्मपीठकृतास्पद ॥ १८ ॥ श्रुत्वेतिदेवदेवस्यसप्रेमवचनंहरिः ॥ सर्वज्ञकिंतेऽवि दितंतमुवाचेतिवृत्रहा ॥ १९ ॥ ततस्तत्कृपयानुन्नोधर्मपीठनिषेवणात् ॥ निष्पाद्यतीर्थंतत्रेशोऽत्रस्नाहींद्रेतिचाब्रवीत् ॥ २० ॥ तत्रेंद्रः स्नानमात्रेणदिव्यगंधोऽभवत्क्षणात् ॥ अवापचरुचिंचारुंप्राक्तनींशातयाज्ञिकीम् ॥ २१ ॥

हुए साक्षात् त्रिलोचनका दर्शन पाया ॥ १६ ॥ तब तो वे फिर अनेकभांतिके वेदोक्त रुद्रसूक्तोंसे उनकी स्तुति करनेलगे, तदनन्तर महादेव उस लिंगसे प्रकट होकर (उनसे) कहने लगे ॥ १७ ॥ हे धर्मपीठ सेविन् ! शचीपते ! मैं प्रसन्नहूं वर मांगो, हे सुव्रत ! मुझसे तुम क्या चाहतेहो ? उसे शीघ्र कहो ॥ १८ ॥ वृत्रान्तक इन्द्रने भगवान्का यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर उनसे कहा कि, हे सर्वज्ञ ! भला आपसेभी कुछ छिपाहै ? ॥ १९ ॥ तदनन्तर धर्मपीठके सेवनसे उनपर कृपालु होकर शिवने वहींपर तीर्थ बनाकर इंद्रसे कहा कि, तुम यहांपर स्नानकरो ॥ २० ॥ इंद्र वहांपर नहानेके साथही क्षणमा

त्रमें दिव्यगन्धसे परिपूर्ण होकर अपनी पुरानी शतयज्ञोपार्जिता कांतिको प्राप्त होगये ॥ २१ ॥ उसके पश्चात् नारदादिक मुनिगण यह आश्चर्य देखकर पापनाशक उस धर्मतीर्थमें बडे हर्षके साथ स्नान करनेलगे ॥ २२ ॥ एवं दिव्य पितरोंका तर्पण और श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करके उसी तीर्थके जलसे घडोंको भरकर धर्मेश्वरको स्नानभी कराने लगे ॥ २३ ॥ तबसे वह तीर्थ अनायासही ब्रह्महत्यादि पापोंका धोडालनेवाला धर्मकूपनामसे प्रसिद्ध होगया ॥ २४ ॥ तीर्थराजप्रयागके स्नानसे जो फल होताहै, धर्मकूपके स्नानमात्रसे उसका सहस्रगुण अधिक फल मिलताहै ॥ २५ ॥ मनुष्य, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र और गंगासागर संगममें जो फल पाताहै, धर्मतीर्थमेंभी वही (फल) लाभ करताहै ॥ २६ ॥ बृहस्पतिके सिंहराशिमें जानेपर गौतमी सरस्वती और नर्मदामें स्नान

तदाश्चर्यमथोदृष्ट्वामुनयोनारदादयः ॥ परिसस्नुर्मुदायुक्ताधर्मतीर्थेऽघहारिणि ॥ २२ ॥ अतर्पयन्पितॄन्दिव्यान्व्यधुःश्राद्धानिश्रद्धया ॥ धर्मेशंस्नापयामासुस्तत्तीर्थाम्बुभृतैर्घटैः ॥ २३ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थंधर्मांधुरितिविश्रुतम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानामक्लेशक्षालनंपरम् ॥ २४ ॥ यत्फलंतीर्थराजस्यस्नानेनपरिकीर्त्यते ॥ सहस्रगुणितंतत्स्याद्धर्मांधुस्नानमात्रतः ॥ २५ ॥ गंगाद्वारेकुरुक्षेत्रेगंगासागरसंगमे ॥ यत्फलं लभतेमर्त्योधर्मतीर्थेतदाप्नुयात् ॥ २६ ॥ नर्मदायांसरस्वत्यांगौतम्यांसिंहगेगुरौ ॥ स्नात्वायत्फलमाप्नोतिधर्मकूपेतदाप्नुयात् ॥ २७ ॥ मानसेपुष्करेचैवद्वारिकेसागरेतथा ॥ तीर्थेस्नात्वाफलंयत्स्यात्तत्स्याद्धर्मजलाशये ॥ २८ ॥ कार्तिक्यांसूकरक्षेत्रेचैत्र्यांगौरीमहाह्रदे ॥ शंखोद्धारेहरिदिनेयत्फलंतत्फलंत्विह ॥ २९ ॥ तीर्थद्वयंप्रतीक्षंतेसिस्नासून्पितरोनरान् ॥ गंगायांधर्मकूपेचपिंडनिर्वपणाशया ॥ ३० ॥ पितामहसमीपेवाधर्मेशस्याग्रतोथवा ॥ फल्गौचधर्मकूपेचमाद्यंतिप्रपितामहाः ॥ ३१ ॥

करनेसे जो फल होताहै, धर्मकूपमें नहालेनेसेभी वही फल प्राप्त होजाताहै ॥ २७ ॥ मानससरोवर, पुष्करतीर्थ, और द्वारकाके समुद्रतीर्थमें स्नानसे जो फल है, धर्मकूपमेंभी वही पुण्य होताहै ॥ २८ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको सूकरक्षेत्र, चैत्रकी पूर्णिमापर गौरीकुंड एवं हरिवासरको शंखोद्धारतीर्थमें नहानेका जो फलहै, इस तीर्थमेंभी वही पुण्य होताहै ॥ २९ ॥ गंगा और धर्मकूप—इन दो तीर्थोंमें नहानेवाले लोगोंसे पितरलोग पिंड पानेकी आशा लगाये रहतेहैं ॥ ॥ ३० ॥ (गयामें) पितामहेश्वरके समीप फल्गुनदीपर और (काशीमें) धर्मेश्वरके पास धर्मकूपपर पितरलोग संतुष्ट होजातेहैं ॥ ३१ ॥

मनुष्य धर्मकूपमें नहाय, पितरोंका तर्पण करलेवे, तो गयामें जाकर पितरोंका उससे अधिक हर्षप्रद कौनसा कृत्य करसकताहै ? ॥ ३२ ॥ पितरलोग गयामें पिण्डदान करनेसे जैसे तृप्त होतेहैं, धर्मतीर्थपर पिण्डा पारनेसे भी वैसेही तृप्त होजातेहैं इसमें कुछ न्यूनाधिक्य नहीं होता ॥ ३३ ॥ जो सन्तान धर्मतीर्थपर (पितृकर्म करके) पितरोंके ऋणसे उद्धार करलेते हैं, वेही धन्यहैं, वेही पितृभक्तहैं, और वेही पितरोंके प्रीति–संपादकहैं ॥ ३४ ॥ उस तीर्थके प्रभावसे इन्द्र क्षणमात्रमें निष्पाप होगये, फिर देवदेवको प्रणामकर (अपनी) अमरावतीपुरीको चलेगये ॥ ३५ ॥ हे कुंभजमुने ! उस धर्मतीर्थकी अपार महिमाहै, उस कूपमें

धर्मकूपेनरःस्नात्वापरितर्प्यपितामहान् ॥ गयांगत्वाकिमधिकंकर्तापितृमुदावहम् ॥ ३२ ॥ यथागयायांतृप्ताःस्युःपिंडदानेपितामहाः ॥ धर्मतीर्थेतथैवस्युर्नन्यूनंनैवचाधिकम् ॥ ३३ ॥ तेधन्याःपितृभक्तास्तेप्रीणितास्तःपितामहाः ॥ पैत्राद्दणाद्धर्मतीर्थेनिष्कृतिर्यैःकृतासुतैः ॥ ॥ ३४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावेणनिष्पापोभूत्क्षणेनच ॥ प्रणम्यदेवदेवेशमिंद्रोऽगादमरावतीम् ॥ ३५ ॥ अपारोमहिमातस्यधर्मतीर्थस्यकुंभज ॥ तत्कूपेस्वंनिरीक्ष्यापिश्राद्धदानफलंलभेत् ॥ ३६ ॥ तत्रापिकाकिणीमात्रंयच्छेत्पितृमुदेनरः ॥ अक्षयंफलमाप्नोतिधर्मपीठप्रभावतः ॥ ३७ ॥ तत्रयोभोजयेद्विप्रान्यतिनोथतपस्विनः ॥ सिक्थेसिक्थेलभेत्सोथवाजपेयफलंस्फुटम् ॥ ३८ ॥ प्राप्यामरावतींशक्रस्ततोदिविषदांपुरः ॥ धर्मपीठस्यमाहात्म्यंमहत्काश्यामवर्णयत् ॥ ३९ ॥ आगत्यपुनरप्यत्रशंभोरानंदकानने ॥ मुनिवृंदारकैःसार्धं लिंगमस्थापयद्धरिः ॥ ४० ॥

अपनी परछांही देखनेसेभी श्राद्धदान करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥ वहांपर यदि कोई मनुष्य पितरोंकी प्रीतिके लिए, एक टुकडाभी दे देवे तो धर्मतीर्थके प्रभावसे उसका अक्षयफल प्राप्त करताहै ॥ ३७ ॥ यदि कोई वहांपर ब्राह्मण, संन्यासी अथवा तपस्वियोंको भोजन करावे तो उसे अन्नकी प्रत्येक कणिकामें समस्त वाजपेययज्ञका फल मिलजाताहै ॥ ३८ ॥ (उधर) इन्द्र वहांसे अमरावतीमें जाकर देवतालोगोंके आगे काशीके धर्मपीठकी बडीही बडाई गानेलगे ॥ ३९ ॥ अनंतर वहांसे फिर महादेवके आनन्दवनमें देवता और मुनियोंके साथ (लौट) आकर इन्द्रने लिंगकी स्थापना की ॥ ४० ॥

तारकेश्वरसे पश्चिमओर इन्द्रेश्वरनामक लिंग प्रसिद्धहै, उसके दर्शनसे लोगोंको इन्द्रलोक कुछ दूर नहीं रहजाता ॥ ४१ ॥ उसके दक्षिणभागमें स्वयं इन्द्राणीका स्थापित शचीश्वरनामक लिंगहै, उस शचीश्वर लिंगके पूजन करनेसे स्त्रियोंका अतुलनीय सौभाग्य होजाताहै ॥ ४२ ॥ उसी लिंगके समीपमें रम्भेश्वर हैं जो बडी सुखसमृद्धियोंके दाताहैं, और इन्द्रेश्वरके पासहीमें लोकपालेश्वर नामक एक औरभी लिंगहै ॥ ४३ ॥ उसके पूजन करनेसे लोकपाल गण प्रसन्न होकर समृद्धियोंको देतेहैं । एवं धर्मेश्वरसे पश्चिम दिशामें जो लिंगहै वह धरणीश्वर कहा जाताहै, उसके दर्शनसे राज्य, और राजकुलमें धैर्य बना रहताहै

तारकेशात्पश्चिमतइंद्रेश्वरमितीरितम् ॥ तस्यसंदर्शनात्पुंसामैंद्रलोकोनदूरतः ॥ ४१ ॥ तद्दक्षिणेशचीशश्चस्वयंशच्याप्रतिष्ठितः ॥ शचीशार्चनतःस्त्रीणांसौभाग्यमतुलंभवेत् ॥ ४२ ॥ तत्समीपेस्तिरंभेशोबहुसौख्यसमृद्धिदः ॥ इंद्रेश्वरस्यपरितोलोकपालेश्वरोपरः ॥ ४३ ॥ तदर्चनात्प्रसीदंतिलोकपालाःसमृद्धिदाः ॥ धर्मेशात्पश्चिमाशायांधरणीशःप्रकीर्तितः ॥ तद्दर्शनेनधैर्यंस्याद्राज्येराजकुलादिषु ॥ ४४ ॥ धर्मेशाद्दक्षिणेपूज्यंतत्त्वेशाख्यंपरंनरैः ॥ तत्त्वज्ञानंप्रवर्तेततल्लिंगस्यसमर्चनात् ॥ ४५ ॥ धर्मेशात्पूर्वदिग्भागेवैराग्येशंसमर्चयेत् ॥ निवृत्तिश्चेतसस्तस्यलिंगस्यस्पर्शनादपि ॥ ४६ ॥ ज्ञानेश्वरंतथैशान्यांज्ञानदंसर्वदेहिनाम् ॥ ऐश्वर्येशमुदीच्यांचलिंगाद्धर्मेश्वराच्छुभात् ॥ ४७ ॥ तद्दर्शनाद्भवेन्नृणामैश्वर्यंमनसेप्सितम् ॥ पंचवक्त्रस्यरूपाणिलिंगान्येतानिकुंभज ॥ ४८ ॥ एतान्यवश्यंसंसेव्यनरःप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ अन्यत्तत्रैवयद्वृत्तंतदाख्यामिमुनेशृणु ॥ ४९ ॥

॥ ४४ ॥ धर्मेश्वरके दक्षिणभागमें तत्त्वेश्वरनामक प्रधान लिंगहै, लोगोंको उसकी पूजा करनी चाहिए क्योंकि उस लिंगके पूजनसे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होजाता है ॥ ४५ ॥ धर्मेश्वरके पूर्वओर वैराग्येश्वर लिंगका समर्चन करना उचितहै, उस लिंगके स्पर्श करनेहीसे चित्तकी निवृत्ति–होने लगतीहै ॥ ४६ ॥ धर्मेश्वरसे ईशानकोणपर समस्त देहधारियोंको शुभलिंगज्ञान देनेवाला ज्ञानेश्वर लिंगहै, और उत्तरदिशामें ऐश्वर्येश्वरनामक लिंगहै ॥ ४७ ॥ उस लिंगके दर्शन करनेसे मनोभिलषित ऐश्वर्य्य लोगोंको मिलता है । हे कुम्भयोने ! ये सब लिंग साक्षात् पंचवक्त्रके स्वरूपहैं, ॥ ४८ ॥ इन सबोंका सेवन करनेसे

मनुष्य अवश्यही शाश्वतपदको प्राप्त होताहै । हे मुने ! वहांपर एक और घटना हुईथी, उसेभी कहताहूं श्रवण करो ॥ ४९ ॥ जिसके केवल सुनलेनेसेभी मनुष्य संसारसागरमें डुबकी नहीं खाता, यहींपर कदंब शिखरनामकी विंध्यपर्वतकी एक पहाडी है ॥ ५० ॥ वहांपर राजा दमका पुत्र दुर्दम नामक एक राजा रहताथा, पिताके शान्त होजानेपर राज्य पाकर वह (बडाही) चंचलेन्द्रिय होगयाथा ॥ ५१ ॥ वह कामसे मोहित होकर पुरवासियोंकी युवती स्त्रियोंको बलपूर्वक हरलेताथा, दुष्टही लोग उसके प्यारे थे, और सज्जनोंसे तो वह घृणा करता था ॥ ५२ ॥ वह निरपराध लोगोंको तो दंड देता, पर अपराधियोंको अदण्डच बनाये रहता था, वह व्याध और वनरखोंके साथ रहकर सदैव मृगया (अहेर) में लगा रहता था ॥ ५३ ॥ अच्छी बुद्धि देने

यच्छ्रुत्वापिनरोघोरेसंसाराब्धौनमज्जति ॥ कदंबशिखरोनामविंध्यपादोमहानिह ॥५०॥ दमस्यपुत्रस्तत्रासीद्दुर्दमोनामपार्थिवः ॥ पितर्युपरतेराज्यंसंप्राप्याविजितेंद्रियः ॥५१॥ हरेत्पुरंध्रीःप्रसभंपौराणांकाममोहितः ॥ असाधवःप्रियास्तस्यसाधवोऽप्रियतांययुः ॥५२॥ अदंडयान्दंडयांचक्रेदंडयेष्वासीत्पराङ्मुखः ॥ सदैवमृगयाशीलःसोऽभून्मृगयुसंगतः ॥ ५३ ॥ विवासिताःस्वविषयात्तेनसन्मतिदायिनः ॥ धर्माधिकारिणःशूद्राब्राह्मणाःकरदीकृताः ॥ ५४ ॥ परदारेषुसंतुष्टःस्वदारेषुपराङ्मुखः ॥ आनर्चजातुचिन्नैवदेवौदुःखांतकारिणौ ॥५५॥ हारिणौसर्वपापानांसर्ववांछितदायिनौ ॥ सर्वेषांजगतीसारौश्रीकंठश्रीपतीपती ॥ ५६ ॥ स्वप्रजास्वेकउदितोधूमकेतुरिवापरः ॥ दुर्दमोनामभूपालःक्षयायाकांडएवहि ॥ ५७ ॥ सकदाचिन्मृगयुभिःपापर्धिव्यसनातुरः ॥ सार्धंविवेशारण्यानिग्रष्टिपृष्ठानुगोहयी ॥ ५८ ॥

वालोंको उसने अपने राज्यभरसे बाहर निकाल दिया, शूद्रलोगोंको धर्माधिकारी बनाया, और ब्राह्मणोंसे कर लेनेलगा ॥ ५४ ॥ वह पराई स्त्रियोंसे संतुष्ट और अपनी स्त्रियोंसे पराङ्मुख रहता था, उसने कभीभी दुःखान्तकारी ॥ ५५ ॥ सर्वपापापहारी, सब किसीके वांछितदाता, संसारके सार, सब किसीके स्वामी, देवदेव हरि और हरकी पूजा नहीं की ॥ ५६ ॥ वह दुर्दम नामक भूपाल अपनी प्रजाओंके असमयहीमें क्षय करडालनेके लिए मानो दूसरा धूमकेतुही उदय हुआ था ॥ ५७ ॥ एकबार वह पापकी संपत्तिसे पूर्ण व्यसनातुर राजा व्याधोंके साथ घोडेपर चढकर एक नीलगायके पीछे दौडताहुआ बडे

गहिन जंगलमें जा घुसा ॥ ५८ ॥ इसके अनंतर धनुषको लिए, घोडापर चढाहुआ वह राजा दुर्दम दैवयोगसे अकेलाही आनन्दवनमें जा पडा ॥५९॥ वहांपर सर्वत्रही सुन्दर छायासे भरे, बडे विस्तारयुक्त (छतनार)और फल हीन (विकसित) वृक्षोंको देखकर मानो वह श्रमहीन होगया ॥ ६० ॥ वे सब पेड (मानो) राजाको अपने पल्लवरूप पंखोंके शीतल मन्द सुगंधयुक्त उत्तम वायुसे पंखा झुलने लगे ॥ ६१ ॥ उस वनके देखनेसे उस राजाका केवल मृगयाजनितही खेद नहीं दूर हुआ, वरन्न आजन्मसंचित समस्त खेद दूर होगये ॥ ६२ ॥ उसने उस वनके बीचमें आकाशका चूमनेवाला (बडा ऊँचा) बडेसे बडे रत्नोंकी शलाकाओंके आकारसा परमरमणीय, एक मंदिर देखा ॥ ६३ ॥ फिरतो वह राजा बडे आश्चर्यके साथ घोडेसे उतरकर

एकाकीदैवयोगेनदुर्दमःसोऽवनीपतिः ॥ धन्वीतुरंगमारूढोऽविशदानंदकाननम् ॥ ५९ ॥ सविलोक्याथसर्वत्रपादपानवकेशिनः ॥ सुच्छायांश्चसुविस्तारान्गतश्रमइवाभवत् ॥ ६० ॥ सुगंधेनसुशीतेनसुमंदेनसुवायुना ॥ क्षणंसंवीजितोराजापल्लवव्यजनैःकुजैः ॥ ६१ ॥ केवलंमृगयाजातस्तत्खेदोनाव्यपाव्रजत् ॥ आजन्मजनितःखेदोनिरगात्तद्वनेक्षणात् ॥ ६२ ॥ मध्येवनंसचापश्यत्प्रासादंचुंबितांबरम् ॥ महारत्नशलाकानांरम्यमेकमिवाकरम् ॥ ६३ ॥ अथावरुह्यतुरगात्सभूपालोतिविस्मितः ॥ धर्मेशमंडपंप्राप्यस्वात्मानंप्रशशंसह ॥ ६४ ॥ धन्योस्म्यहंप्रसन्नोस्मिधन्येमेद्यविलोचने ॥ धन्यमद्यतनंचाहर्यदपश्यमिमांभुवम् ॥ ६५ ॥ पुनर्निनिंदचात्मानंधर्मपीठप्रभावतः ॥ धिङ्मांदुर्जनसंसर्गंत्यक्तसज्जनसंगमम् ॥ ६६ ॥ जंतूद्वेगकरंमूढंप्रजापीडनपंडितम् ॥ परदारपरद्रव्यापहृत्यासुखमानिनम् ॥ ६७ ॥ अद्ययावन्ममगतंवृथाजन्माल्पमेधसः ॥ धर्मस्थानानीदृशानियद्दृष्टानिनकुत्रचित् ॥ ६८ ॥

धर्मेश्वरके मंडपमें जा पहुँचा, और अपनी बडी प्रशंसा करने लगा ॥ ६४ ॥ आज मैं धन्य हुआ, प्रसन्न हुआ, और मेरे दोनों नेत्रभी धन्य होगये, एवं आजका दिनभी धन्यहै जो मैंने इस भूमीको देखलिया ॥ ६५ ॥ फिर धर्मपीठके प्रभावसे (ज्ञान होजानेपर) अपनीही निन्दा करनेलगा कि दुर्जनोंके साथी और सज्जनलोगोंके संग त्यागनेवाले मुझको धिक्कार है !! ॥ ६६ ॥ जो मैं प्राणियोंका उद्वेग जनक, मूढ, प्रजापीडनमें पंडित और परायेकी स्त्री और धनका अपहरण करके अपनेको सुखी मानताहूं, ॥ ६७ ॥ सो आजतकका मेरा दिन मेरीही अल्पबुद्धिके कारणसे वृथा गया, हा !! मैंने ऐसे ऐसे उत्तम

धर्मके स्थानोंको कभी नहीं देखा ॥ ६८ ॥ इस प्रकारसे वह राजा दुर्दम अपनी बडी निंदा करनेके उपरांत भगवान् धर्मेश्वरको प्रणाम कर घोडेपर चढ अपने राज्यको चलागया ॥ ६९ ॥ फिर तो उस राजाने अपने परंपरासे चले आएहुए पुराने मन्त्रियोंको बुलाकर, और नये मन्त्रियोंको निकालकर पुरवासियोंकोभी बुला भेजा ॥ ७० ॥ तदनंतर ब्राह्मणोंको प्रणामकर उन लोगोंको वृत्ति देकर, राज्यका भार पुत्रको सौंप अपनी प्रजाको धर्मपर स्थापन कर ॥ ७१ ॥ दंडके योग्य लोगोंको दंड दे, सज्जनलोगोंका संतोष साधन कर स्त्रियोंकोभी त्याग, विषयवासनासे विमुख होगया ॥ ७२ ॥ फिर श्रेयोविका

एवंबहुविनिंद्यस्वंनत्वाधर्मेश्वरंविभुम् ॥ आरुह्याश्वंययौराजादुर्दमोविषयंस्वकम् ॥ ६९ ॥ ततोमात्यान्समाहूयक्रमायातांश्चिरंतनान् ॥ नवीनान्परिनिर्वास्यपौरांश्चापिसमाह्वयत् ॥ ७० ॥ ब्राह्मणांश्चनमस्कृत्यतेभ्योवृत्तीःप्रदायच ॥ पुत्रेराज्यंसमारोप्यप्रजाधर्मेनिवेश्यच ॥ ॥ ७१ ॥ परिदंडयचदंडार्हान्साधूंश्चपरितोष्यच ॥ दारानपिपरित्यज्यविषयेषुपराङ्मुखः ॥ ७२ ॥ समागच्छदथैकाकीकाशींश्रेयोविकासिनीम् ॥ धर्मेश्वरंसमाराध्यकालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ७३ ॥ धर्मेशदर्शनान्नित्यंतथाभूतःसदुर्दमः ॥ बभूवदमिनांश्रेष्ठःप्रांतेमोक्षंचलब्धवान् ॥ ७४ ॥ इत्थंधर्मेशमाहात्म्यंमयास्वल्पंनिरूपितम् ॥ धर्मपीठस्यमाहात्म्यंसम्यक्कोवेदकुंभज ॥ ७५ ॥ इदंधर्मेश्वराख्यानंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ आजन्मसंचितात्पापात्समुक्तोभवतिक्षणात् ॥ ७६ ॥ श्राद्धकालेविशेषेणधर्मेशाख्यानमुत्तमम् ॥ श्रावयेद्ब्राह्मणान्धीमान्पितॄणांतृप्तिकारणम् ॥ ७७ ॥

सिनीकाशीमें अकेलाही पहुँच धर्मेश्वरकी आराधना करके कालानुसार निर्वाणपदको प्राप्त हुआ ॥ ७३ ॥ वह राजा दुर्दम वैसा होनेपरभी नित्य धर्मेश्वरके दर्शन करनेसे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ होगया और अन्तमें मोक्षभी पागया ॥ ७४ ॥ हे कुम्भज ! यह तो धर्मेश्वरका माहात्म्य मैंने थोडेमें निरूपण किया पर संपूर्णरीतिसे उस धर्मपीठकी महिमाको भला कौन जान सकताहै ? ॥ ७५ ॥ जो उत्तम नर इस धर्मेश्वरके उपाख्यानको सुनेगा वह उसी घडी जन्मभरके संचित पापोंसे छूट जाताहै ॥ ७६ ॥ बुद्धिमान् जन विशेष करके श्राद्धकालमें पितरोंके तृप्तिकारक इस उत्तम धर्मेश्वरके आख्यानको ब्राह्मणलोगोंके

(समीप) सुनावे ॥ ७७ ॥ दूर स्थित होनेपरभी बुद्धिमान् जन धर्मेश्वरके इस उपाख्यानके सुननेसे समस्त पापोंसे छूटकर अंतमें शिवधामको गमन करताहै ॥ ७८ ॥ दोहा—धर्मेश्वरके पासमें, धर्मकूप विख्यात । रहै मास छह मृत्युमें, तब तहँ मुख न दिखात ॥ १ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायामेकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥ पार्वतीने पूछा—हे महेश्वर ! वीरेश्वरकी भी तो बडी महिमा सुनाई पडतीहै, कि वहांपर सैकडों लोगोंने परमसिद्धिको पायाहै ॥ १ ॥ उस उत्तम लिंगका काशीमें कैसे आविर्भाव हुआ, जो बहुत शीघ्रही सिद्धियोंका दाता होगया ? हे जगत्पते ! यह सब

धर्माख्यानमिदंशृण्वन्नपिदूरस्थितःसुधीः ॥ सर्वपापैर्विनिर्मुक्तोगंतांतेशिवमंदिरम् ॥ ७८ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणेएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धेधर्मेश्वराख्यानंनामएकाशीतितमोध्यायः ॥ ८१ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ॥ वीरेशस्यमहेशान श्रूयतेमहिमामहान् ॥ परांसिद्धिंपरापेतुस्तत्रसिद्धाःपरःशताः ॥ १ ॥ कथमाविर्भवत्तस्यकाश्यांलिंगवरस्यतु ॥ आशुसिद्धिप्रदस्यैतन्मेब्रूहिजगत्पते ॥ २ ॥ ॥ महेश्वरउवाच ॥ ॥ निशामयमहादेविवीरेशाविर्भवंपरम् ॥ यंश्रुत्वापिनरःपुण्यंप्राप्नोतिविपुलंशिवे ॥ ॥ ३ ॥ आसीदमित्रजिन्नामराजापरपुरंजयः ॥ धार्मिकःसत्त्वसंपन्नःप्रजारंजनतत्परः ॥ ४ ॥ यशोधनोवदान्यश्चसुधीर्ब्राह्मणदैवतः ॥ सदैवावभृथस्नानपरिक्लिन्नशिरोरुहः ॥ ५ ॥

मुझसे कहिए ॥ २ ॥ महेश्वरने उत्तर दिया—हे महादेवि ! वीरेश्वरके परम आविर्भावकी कथाको श्रवण करो, अयि शिवे ! इसके सुननेसे मनुष्य विपुल पुण्यको प्राप्त करताहै ॥ ३ ॥ अमित्रजित्नामक एक राजा बडा धार्मिक परपुरंजय, परम सत्त्व संपन्न प्रजारंजनमें तत्पर, ॥ ४ ॥ यशस्वी, वदान्य बुद्धिमान् ब्राह्मणसेवी बहुत विनीत, नीतिसंपन्न समस्त कर्मोंमें निपुण, विद्यासागरका पारदृश्वा, गुणवान्, गुणग्राहक, कृतज्ञ, मधुरालापी, पापकर्मसे विमुख, सत्यवचन, शौचागार, मितभाषी, विजितेन्द्रिय, रणांगणमें यमराजके तुल्य, सभामें दिग्गज विद्वान्, स्थिरता, धीरता आदिसे संपन्न, देशकालमें विचक्षण,

माननीय लोगोंका मान करनेवाला, समस्त दोषोंसे रहित था । उसके माथेके बाल सदैव यज्ञस्नानसे ओदेही रहतेथे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ वह अपने चित्तकी वृत्तिको भगवान् वासुदेवके चरणकमलमें लगाकर सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित निष्कंटक राज्य करता था ॥ ११ ॥ अलंघ्यशासन श्रीमान् अमित्रजित् विष्णुका परमभक्त होकर समस्त भोगोंको विष्णुके चरणोंमें समर्पण करकेही आप भोगता था ॥ १२ ॥ उस महाभाग्य शाली राजाके राज्यमें पद पदपर विष्णुके बडे ऊंचे ऊंचे मन्दिर प्रत्येक गृहोंमें विराजमान थे ॥ १३ ॥ उसके राज्यमें सर्वत्रही हे गोविन्द ! गोप ! गोपाल !

विनीतोनीतिसंपन्नःकुशलःसर्वकर्मसु ॥ विद्याब्धिपारदृश्वाचगुणवान्गुणिवत्सलः ॥ ६ ॥ कृतज्ञोमधुरालापःपापकर्मपराङ्मुखः ॥ सत्यवाक्शौचनिलयःस्वल्पवाग्विजितेंद्रियः ॥ ७ ॥ रणांगणेकृतांताभःसंख्यावांश्चसदोजिरे ॥ कामिनीकामकेलिज्ञोयुवापिस्थविरप्रियः ॥ ८ ॥ धर्मार्थैर्धितकोशश्चसमृद्धबलवाहनः ॥ सुभगश्चसुरूपश्चसुमेधाःसुप्रजाश्रयः ॥ ९ ॥ स्थैर्यधैर्यसमापन्नोदेशकालविचक्षणः ॥ मान्यमानप्रदोनित्यंसर्वदूषणवर्जितः ॥ १० ॥ वासुदेवांघ्रियुगलेचेतोवृत्तिंनिधायसः ॥ चकारराज्यंनिर्द्वंद्वंविष्वग्गीतिविवर्जितम् ॥ ११ ॥ अलंघ्यशासनःश्रीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ॥ अभुनक्प्रचुरान्भोगान्समंताद्विष्णुसात्कृतान् ॥ १२ ॥ हरेरायतनान्युच्चैःप्रतिसौधंपदेपदे ॥ तस्यराज्येसमभवन्महाभाग्यनिधेःशिवे ॥ १३ ॥ गोविंदगोपगोपालगोपीजनमनोहर ॥ गदापाणेगुणातीतगुणाढ्यगरुडध्वज ॥ १४ ॥ केशिहृत्कैटभारातेकंसारेकमलापते ॥ कृष्णकेशवकंजाक्षकीनाशभयनाशन ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तमपापारेपुंडरीकविलोचन ॥ पीतकौशेयवसनपद्मनाभपरात्पर ॥ १६ ॥ जनार्दनजगन्नाथजाह्नवीजलजन्मभूः ॥ जन्मिनांजन्महरणजंजपूकावनाशन ॥ १७ ॥ श्रीवत्सवक्षःश्रीकांतश्रीकरश्रेयसांनिधे ॥ श्रीरंगशार्ङ्गकोदंडशौरेशीतांशुलोचन ॥ १८ ॥

गोपीजन-चित्तचोर ! गदाधर ! गुणातीत ! गुणपूर्ण ! गरुडध्वज ॥ १४ ॥ केशिसूदन ! कैटभाराते ! कंसारे ! कमलापते ! कृष्ण ! केशव ! कमलनेत्र ! मृत्युभय नाशन ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तम ! पापारे ! पुंडरीकाक्ष ! पीतकौशेयवसन ! पद्मनाभ ! परात्पर ॥ १६ ॥ जनार्दन ! जगन्नाथ ! जाह्नवीजलजन्म भूमे ! जन्मिजन्मनिवारक ! यज्ञ कर्तृगणके पापापहारक ! ॥ १७ ॥ श्रीवत्सवक्षः ! श्रीकान्त ! श्रीकर ! श्रेयोनिधे ! श्रीरंग ! शार्ङ्गकोदंड ! शौरे ! शीतांशु

लोचन ! ॥ १८ ॥ दैत्यारे ! दानवाराते ! दामोदर ! दुरंतक ! देवकीहृदयानन्द ! शेषशायिन् ॥ १९ ॥ विष्णो ! वैकुंठनिलय ! बाणारे ! विष्टरश्रवः ! विष्वक्सेन ! विराधारे ! वनमालिन् ! वनप्रिय ! ॥ २० ॥ त्रिविक्रम ! त्रिलोकीनाथ ! चक्रपाणे ! चतुर्भुज इत्यादि मधुसूदनके मधुर और पवित्र नाम घर घरमें बाल, गोपाल, वृद्ध और स्त्रियोंके मुखसे उच्चारित होनेपर जहां तहां (सर्वत्रही) सुनाई पडते थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रत्येक गृहोंमें तुलसीके जंगलही दीख पडते, एवं बडी बडी अटारियोंकी भीतोंपर (चतुर) चितेरोंकी लिखीहुई भगवान् कमलापतिकी परमपवित्र और विचित्र चित्रकारियां दृष्टि गोचर होती थीं

दैत्यारेदानवारातेदामोदरदुरंतक ॥ देवकीहृदयानंददंदशूकेश्वरेशय ॥ १९ ॥ विष्णोवैकुंठनिलयबाणारेविष्टरश्रवः ॥ विष्वक्सेन विराधारेवनमालिन्वनप्रिय ॥ २० ॥ त्रिविक्रमत्रिलोकीशचक्रपाणेचतुर्भुज ॥ इत्यादीनिपवित्राणिनामानिप्रतिमंदिरम् ॥ २१ ॥ स्त्रीवृद्धबालगोपालवदनोदीरितानितु ॥ श्रूयंतेयत्रकुत्रापिरम्याणिमधुविद्विषः ॥ २२ ॥ सुरसाकाननान्येवविलोक्यंतेगृहेगृहे ॥ चरित्राणि विचित्राणिपवित्राण्यब्धिजापतेः ॥ २३ ॥ सौधभित्तिषुदृश्यंतेचित्रकृन्निर्मितानितु ॥ ऋतेहरिकथायास्तुनान्यावार्तानिशम्यते ॥ २४ ॥ हरिणानैवविध्यंतेहरिनामांशधारिणः ॥ तस्यराज्ञोभयाद्व्याधैररण्यसुखचारिणः ॥ २५ ॥ नमत्स्यानैवकमठानवराहाश्चकेनचित् ॥ हन्यंतेक्वापितद्भीत्यामत्स्यमांसाशिनापिवै ॥ २६ ॥ अप्युत्तानशयास्तस्यराष्ट्रेमित्रजितःक्वचित् ॥ स्तनपानंनकुर्वंतिसंप्राप्यहरिवासरम् ॥ ॥ २७ ॥ पशवोपितृणाहारंपरित्यज्यहरेर्दिने ॥ उपोषणपराजाताअन्येषांकाकथानृणाम् ॥ २८ ॥ महामहोत्सवःसर्वैःपुरौकोभिर्वितन्यते ॥ तस्मिन्प्रशासतिभुवंसंप्राप्तेहरिवासरे ॥ २९ ॥

(वहांपर) हरिकथासे भिन्न दूसरी बातही नहीं सुनाई देती थी ॥ २३ ॥ २४ ॥ भगवान् हरिके नामांशके लेशधारी होनेहीसे हरिनोंकोभी व्याध लोग उस राजाके भयसे नहीं मारतेथे ॥ इस कारणसे वे सब (हरिन) सुखसे वनमें विचरण करते थे ॥ २५ ॥ कोईभी मांस मछरी खानेवाला उसके भयसे मछरी कछुआ किंवा वराहको नहीं मारने पाता था ॥ २६ ॥ उस राजा अमित्रजितके राज्यभरमें कहींपर कोईभी दुधमुँहा बच्चा एकादशी आनेपर दूध नहीं पीता था ॥२७॥ मनुष्योंकी कौन बातहै, एकादशीके दिन तो पशुभी तृणाहार छोडकर उपवासही करते थे ॥ २८ ॥ उस राजाके

राज्यशासन समयमें एकादशी पहुँचनेपर सभी पुरवासी लोग बहुत बडा महोत्सव मनाते थे ॥ २९ ॥ राजा अमित्रजित्‌का एकमात्र भूतलपर प्राणदंड अथवा अर्थदंड वही पाता जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे रहित होता ॥ ३० ॥ उसके राज्यमें अंत्यज जातिके लोगभी विष्णुमंत्रसे दीक्षित हो, शंख, चक्रका, छाप धारण करके ब्राह्मणोंहीकी नाईं शोभा पाते थे ॥ ३१ ॥ लोग प्रतिदिन जितनेही अच्छे कर्म करते, उन सब कर्मोंको वे निष्कामभावसे वासुदेवको समर्पण करदेते ॥ ३२ ॥ कहींपर कोईभी परमानन्द (अच्युत) मुकुन्द गोविन्दको छोडकर दूसरे किसी देवताको न तो जपता न भजता, न मानताही था ॥ ३३ ॥ उस भूपतिके भगवान् कृष्णही परमदेवता, कृष्णही परमगति और कृष्णही परमबन्धुथे ॥ ३४ ॥ इस प्रकारसे राजा

सएवदंडचोऽभूत्तस्यराज्ञोमित्रजितःक्षितौ ॥ योविष्णुभक्तिरहितःप्राणैरपिधनैरपि ॥ ३० ॥ अंत्यजाअपितद्राष्ट्रेशंखचक्रांकधारिणः ॥ संप्राप्यवैष्णवींदीक्षांदीक्षिताइवसंबभुः ॥३१॥ शुभानियानिकर्माणिक्रियंतेऽनुदिनंजनैः ॥ वासुदेवेसमर्प्यंतेतानितैरफलेप्सुभिः ॥३२॥ विनामुकुंदंगोविंदंपरमानंदमच्युतम् ॥ नान्योजप्येतमन्येतनभज्येतजनैःक्वचित् ॥ ३३ ॥ कृष्णएवपरोदेवःकृष्णएवपरागतिः ॥ कृष्णएवपरोबंधुस्तस्यासीदवनीपतेः ॥३४॥ एवंतस्मिन्महीपालेराज्यंसम्यक्प्रशासति ॥ एकदानारदःश्रीमांस्तंदिदृक्षुःसमाययौ ॥३५॥ राज्ञासमर्चितःसोथमधुपर्कविधानतः ॥ नारदोवर्णयामासतममित्रजितंनृपम् ॥ ३६ ॥ ॥ नारदउवाच ॥ ॥ धन्योसिकृतकृत्योसि मान्योप्यसिदिवौकसाम् ॥ सर्वभूतेषुगोविंदंपरिपश्यन्विशांपते ॥ ३७ ॥ योवेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः ॥ योंतरात्मास्यजगतः कर्ताहर्ताविताविभुः ॥ ३८ ॥ तन्मयंपश्यतोविश्वंतवभूपालसत्तम ॥ दर्शनंप्राप्यशुभदंशुचित्वमगमंपरम् ॥ ३९ ॥

अमित्रजित्‌के सम्यग्रूपसे राज्यशासन करनेके समय एकबार श्रीमान् देवर्षिनारद उसको देखनेके लिए (वहां) आये ॥ ३५ ॥ अनंतर राजाने (बडे आदरके साथ) मधुपर्ककी विधिके अनुसार उनका पूजन किया, तदुपरान्त नारद राजा अमित्रजित्‌से कहने लगे ॥ ३६ ॥ नारद बोले—हे—नरपाल! तुम्हीं धन्य, तुम्हीं कृतार्थ और तुम्हीं देवतालोगोंकेभी मान्यहो, क्योंकि तुम समस्त भूतोंमें भगवान् गोविन्दहीको देखते रहते हो ॥ ३७ ॥ हे राजसत्तम ! जो वेदके प्रतिपाद्य पुरुष विष्णुहैं, और जो यज्ञपुरुष हरिहैं, एवं जो इस जगत्‌के अंतरात्मा, हर्ता, कर्ता, और पालयिताहैं ॥ ३८ ॥ उन्हीं विष्णुसे

व्याप्य अर्थात् विष्णुमय जगत्को तुम देखते हो, अतएव तुम्हारे शुभप्रद दर्शनको पाकर (आज) मैं बडाही पवित्र होगया ॥ ३९ ॥ इस क्षणभंगुर संसारमें सब कल्याणोंका देनेवाला, एकमात्र कमलाकान्तके चरणारविंदका भक्तिभावही सार पदार्थ है ॥ ४० ॥ जो बुद्धिमान् जन और सब कुछ त्यागकर केवल विष्णुहीको भजताहै, सब पदार्थ उसे आपसे आप सेवते हैं ॥ ४१ ॥ हृषीकेशके ऊपर जिसकी इंद्रियां स्थिर होरहती हैं, वही मनुष्य इस परम चंचल ब्रह्मांडमें स्थिरताको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ धन, यौवन, आयुष्य, आदिको कमलपत्रके जलबिन्दुसा अत्यन्त अस्थिर समझकर अकेले भगवान् अच्युतहीके आश्रयमें रहना चाहिये ॥४३॥ जिसके वचन और हृदयमें सर्वत्रही भगवान् जनार्दन विराजमान रहते हैं वह नररूपधारी जनार्दन

एकएवहिसारोत्रसंसारेक्षणभंगुरे ॥ कमलाकांतपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः ॥ ४० ॥ परित्यज्यहियःसर्वंविष्णुमेकंसदाभजेत् ॥ सुमेधसंभजंतेतंपदार्थाःसर्वएवहि ॥ ४१ ॥ हृषीकेशेहृषीकाणियस्यस्थैर्यंगतान्यहो ॥ सएवस्थैर्यमाप्नोतिब्रह्मांडेऽतीवचंचले ॥ ४२ ॥ यौवनंधनमायुष्यंपद्मिनीजलबिंदुवत् ॥ अतीवचपलंज्ञात्वाऽच्युतमेकंसमाश्रयेत् ॥ ४३ ॥ वाचिचेतसिसर्वत्रयस्यदेवोजनार्दनः ॥ सएवसर्वदावंद्योनररूपीजनार्दनः ॥ ४४ ॥ निर्व्याजप्रणिधानेनशीलयित्वाश्रियःपतिम् ॥ पुरुषोत्तमतांकोनप्राप्तवानिहभूतले ॥ ४५ ॥ अनयाविष्णुभक्त्यातेसंतुष्टेंद्रियमानसः ॥ उपकर्तुमनाब्रूयांतन्निशामयभूपते ॥ ४६ ॥ बालाविद्याधरसुतानाम्नामलयगंधिनी ॥ क्रीडंती पितुराक्रीडेहृताकंकालकेतुना ॥ ४७ ॥ कपालकेतुपुत्रेणदानवेनबलीयसा ॥ आगामिन्यांतृतीयायांतस्याःपाणिग्रहःकिल ॥ ४८ ॥ पातालेचंपकावत्यांनगर्यांसास्तिसांप्रतम् ॥ हाटकेशात्समागच्छंस्तयाहंसाश्रुनेत्रया ॥ ४९ ॥

सर्वदैव वन्दनीय हैं ॥ ४४ ॥ इस भूतलपर निश्छल ध्यानयोगके द्वारा श्रीपति विष्णुकी आराधना करके कौन नहीं पुरुषोत्तमताको प्राप्त हुआहै ? ॥ ४५ ॥ हे भूपते ! तुम्हारी ऐसी विष्णुकी भक्तिको देख परमसन्तुष्टचित्त होकर मैं जो कुछ तुम्हारा उपकार किया चाहताहूं उसे कहताहूं, तुम श्रवण करो ॥४६॥ मलयगंधिनीनामकी एक बालिका जो कि विद्याधरकी कन्याहै, अपने पिताकी वाटिकामें खेलती थी उसी बेला कपालकेतुका बेटा कंकालकेतुनामक एक बडे बलवान् दानवने उसे हरण करलिया, और आगामिनी तृतीया तिथिको उसका विवाह होना स्थिर हुआहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इस घडी

वह पातालकी चम्पावती नगरीमें निवास करती है, हाटकेश्वरसे होकर आतेहुए मुझसे उसने आंखोंमें आँसू भरकर देखतेही प्रणाम करके जो कुछ कहा उसे सुनो, " हे ब्रह्मचारिन् ! मुनिश्रेष्ठ ! गन्धमादनपर्वतपर मैं लडिकखेलवामें लगीथी, वहींसे यह दुराचारी कंकालकेतुनामक दानव मुझे हर लाया, वह युद्धमें दूसरे शस्त्रोंसे अजेयहै, केवल अपनेही त्रिशूलके आघातसे वह मरसकताहै, अन्यथा नहीं मारा जा सकता, वह दानव संसारभरको व्याकुल करके यहींपर निर्भय होकर सोया करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ यदि कोई कृतज्ञ मनुष्य इस दुष्ट दानवको मेरे दियेहुए त्रिशूलसे मारकर मुझको निकाल लेचलता तो बहुतही अच्छा होता ॥ ५३ ॥ हे महामुने ! यदि आप उपकार किया चाहते हैं, तो इस दुष्ट दानवसे मुझे

दृष्ट्वप्रणम्यविज्ञप्तोयथातच्चनिशामय ॥ ब्रह्मचारिन्मुनिश्रेष्ठगंधमादनशैलतः ॥५०॥ बालक्रीडनकासक्तांमोहयित्वानिनायसः ॥ कंकाल केतुर्दुर्वृत्तोदुर्जयोन्यास्त्रघाततः ॥ ५१ ॥ स्वस्यत्रिशूलघातेनम्रियतेनान्यथारणे ॥ जगत्पर्याकुलीकृत्यनिद्रात्यत्रविनिर्भयः ॥ ५२ ॥ यदिकोपिकृतज्ञोमांहत्वेमंदुष्टदानवम् ॥ मद्दत्तेनत्रिशूलेननयेद्भद्रंभवेन्नरः ॥ ५३ ॥ यदत्रोपचिकीर्षुस्त्वंरक्षमांदुष्टदानवात् ॥ ममापिहि वरोदत्तोभगवत्यामहामुने ॥ ५४ ॥ विष्णुभक्तोयुवाधीमान्पुत्रित्वांपरिणेष्यति ॥ आतृतीयातिथियथातद्वाक्यंतथ्यतांव्रजेत् ॥ ५५ ॥ तथानिमित्तमात्रंत्वंभवयत्नंसमाचर ॥ इतितद्वचनाद्राजन्विष्णुभक्तिपरायणम् ॥ युवानंचापिधीमंतंत्वामनुप्राप्तवानहम् ॥ ५६ ॥ तद्ग च्छकार्यसिद्धयैत्वंहत्वातंदुष्टदानवम् ॥ आनयाशुमहाबाहोशुभांमलयगंधिनीम् ॥ ५७ ॥ सातुविद्याधरीजीवेद्विलोक्यत्वांनरेश्वर ॥ पार्व तीवचनाद्दुष्टंघातयिष्यत्ययत्नतः ॥ ५८ ॥

बँचालीजिए, मुझे तो भगवतीने वरभी दियाहै कि ॥ ५४ ॥ " हे पुत्रि ! एक बडा विष्णुभक्त बुद्धिमान् जवान जन तृतीयातिथितक तुझे व्याहेगा" सो जिसमें भगवतीका वचन ठीक होजावे ॥ ५५ ॥ इसलिए आप निमित्तमात्र होकर इस विषयमें कुछ यत्न कीजिए। हे राजन् ! उसके कहनेहीसे मैं विष्णुभक्तिमें तत्पर, जवान और बुद्धिमान् (देखकर) आपके पास आयाहूं ॥ ५६ ॥ (सो) हे महाबाहो ! आप इस कार्यकी सिद्धिके लिए शीघ्रही यात्रा करें, और उस दुष्ट दानवको मारकर शुभलक्षणा मलयगंधिनीको लिवालावें ॥ ५७ ॥ हे नरनाथ ! वह (बिचारी) विद्याधरी आपका दर्शन

पाजानेहीसे जी सकेगी, और आप भगवती पार्वतीदेवीके वचनानुसार प्रयास उठाये विनाही उस दुष्टको मारसकेंगे ॥ ५८ ॥ इस भाँति नारदके वचनको सुनकर वह राजा अमित्रजित विद्याधरकी कन्याके पानेकी इच्छासे बडाही उत्सुक होउठा ॥ ५९ ॥ और चंपकावतीनगरीमें जानेका उपायभी पूछने लगा, हे गिरीन्द्रनन्दिनि ! तब तो फिर नारदने कहा ॥ ६० ॥ हे राजन् ! पूर्णिमाके दिन पोत (जहाज) पर चढकर शीघ्रही समुद्रमें चलेजानेपर आप एक रथके ऊपर कल्पवृक्षको लगाहुआ देखेंगे ॥६१॥ उसके ऊपर दिव्यपर्यंकपर विराजमान हो एक दिव्यांगना वीणा लेकर गातीहुई मधुरस्वरमें इस गाथाको गावेगी ॥ ६२ ॥ जिसने शुभ अथवा अशुभ (भला–वा–बुरा) चाहे कैसाही कर्म कियाहै उसे दैवकी डोरीमें बँधकर उसका फल अवश्यही

इतिनारदवाक्यंसानिशम्यामित्रजिन्नृपः ॥ अनल्पोत्कलिकोजातोविद्याधरसुतांप्रति ॥ ५९ ॥ उपायंचापिपप्रच्छगंतुंतांचंपकावतीम् ॥
नारदेनपुनःप्रोक्तःसराजागिरिराजजे ॥ ६० ॥ तूर्णमर्णवमासाद्यपूर्णिमादिवसेनृप ॥ भवान्द्रक्ष्यतिपोतस्थःकल्पवृक्षंरथस्थितम् ॥६१॥
तत्रदिव्यांगनाकाचिद्दिव्यपर्यंकसंस्थिता॥ वीणामादायगायंतीगाथांगास्यतिसुस्वरम् ॥ ६२ ॥ यत्कर्मविहितंयेनशुभंवाथशुभेतरम् ॥
सएवभुंक्तेतत्तथ्यंविधिसूत्रनियंत्रितः ॥ ६३ ॥ गाथामिमांसासंगीयसरथासमहीरुहा ॥ सपर्यंकाक्षणादेवमध्येसिंधुप्रवेक्ष्यति ॥ ६४ ॥
भवानप्यविशंकंचततःपोतान्महार्णवे ॥ तामनुव्रजतुक्षिप्रंयज्ञवाराहमास्तुवन् ॥ ६५ ॥ ततोद्रक्ष्यसिपातालेनगरींचंपकावतीम् ॥ महा
मनोहरांराजन्सहितांबालयानया ॥ ६६ ॥ इत्युक्त्वांतर्हितोदेविसचतुर्मुखनंदनः ॥ राजाप्यर्णवमासाद्ययथोक्तंपरिलक्ष्यच ॥ ६७ ॥
विवेशांतःसमुद्रंचनगरीमाससादताम् ॥ साथविद्याधरीबालानेत्रप्राघुणकीकृता ॥ ६८ ॥

भोगना पडताहै ॥ ६३ ॥ (बस) इस गाथा (कहावत) को गाकर, वह दिव्यकन्या, वृक्ष, रथ, और पर्यंकके सहित क्षणमात्रमें समुद्रके भीतर घुसजावेगी ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! उस घडी आपभी यज्ञवाराहको स्मरण करतेहुए, निःशंकचित्त होकर उस पोत (जहाज)से महासमुद्रमें तुरत (कूदकर) उसका अनुसरण कीजिएगा ॥ ६५ ॥ तदनंतर पातालमें (पहुँचकर) उस कन्याके सहित परममनोहर चंपकावती–नगरीको देखिएगा ॥ ६६ ॥ इन बातोंको बतियाकर ब्रह्माके पुत्र अन्तर्धान होगये, और राजाभी समुद्रपर पहुँच, कथनानुसार सबकुछ देखभालकर ॥ ६७ ॥ समुद्रके भीतर पैठ उस

नगरीमें जा पहुँचा, इसके पीछे उस विद्याधरी कन्याको अपनी आँखोंसे देखसका ॥ ६८ ॥ उसे देखतेही राजा अपने मनमें तर्क करने लगा, कि, क्या यही एकमात्र त्रैलोक्यभरकी सौन्दर्य लक्ष्मी है ? किंवा मेरे नेत्रोंका उत्सव करनेवाली पातालदेवताहै ? ॥ ६९ ॥ नहीं तो भगवान् विष्णुने ब्रह्माकी सृष्टिसे विलक्षण इसे बनाया होगा, ? अथवा अमावास्या और राहुके भयसे यह चन्द्रमाकी कान्ति तो स्त्री बनकर यहांपर निर्भय होकर नहीं छिपीहै ? इस प्रकारसे क्षणभर शोच विचार कर वह उसके पास गया ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इसके अनंतर वह कन्याभी परममधुराकृति; तुलसीकी मालासे बडे विशाल वक्षस्थलको शोभित करते ॥ ७२ ॥ शंख और चक्रके चिह्नको दोनों भुजोंपर धारण कियेहुए हरि नामाक्षर रूप सुधासे सुधौत दंतपंक्तियोंसे युक्त, ॥ ७३ ॥ एवं

तेनराज्ञात्रिजगतीसौंदर्यश्रीरिवैकिका ॥ पातालदेवतेयंवाममनेत्रोत्सवायकिम् ॥६९॥ निरणायिमधुद्वेष्ट्रास्रष्टुःसृष्टिविलक्षणा ॥ कुहूराहुभयादेषाकांतिश्चांद्रमसीकिमु ॥७०॥ योषिद्रूपंसमाश्रित्यतिष्ठतेऽत्राकुतोऽभया ॥ इत्थंक्षणंतांनिर्वर्ण्यसराजागात्तदंतिकम् ॥७१॥ साविलोक्याथतंबालानितरांमधुराकृतिम् ॥ विशालोरस्थलतलंप्रलंबतुलसीस्रजम् ॥७२॥ शंखचक्रांकसुभगभुजद्वयविराजितम् ॥ हरिनामाक्षरसुधासुधौतरदनावलिम् ॥ ७३ ॥ भवानीभक्तिबीजोत्थंभूरुहंपुरुषाकृतिम् ॥ मनोरथफलैःपूर्णमासीद्धृष्टतनूरुहा ॥ ७४ ॥ दोलापर्यंकमुत्सृज्यह्रीभरानम्रकंधरा ॥ वेपथुंचपरिष्टभ्यबालाप्रोवाचभूपतिम् ॥ ७५ ॥ कस्त्वमत्रकृतांतस्यभवनंमधुराकृते ॥ प्राप्तोमेमंदभाग्यायाश्चेतोवृत्तिंनिरुंधयन् ॥ ७६ ॥ यावन्नायातिसुभगसकठोरतराकृतिः ॥ अतिपर्याकुलीकृत्यत्रिलोकींदानवोमुहुः ॥ ७७ ॥ कंकालकेतुर्दुर्वृत्तस्त्ववध्यःपरहेतिभिः ॥ तावद्भुतंसमातिष्ठशस्त्रागारेतिगह्वरे ॥ ७८ ॥

भवानीके भक्तिबीजसे उत्पन्न पुरुषस्वरूप वृक्षको मनोरथ रूप फलोंसे परिपूर्ण (देखकर) रोमांचित शरीर होगई ॥ ७४ ॥ फिर तो हिंडोलाकी पलंग छोड मारे लज्जाके नम्रकंधर हो और देहकी कपकँपीको रोककर वह कन्या राजासे कहनेलगी ॥ ७५ ॥ हे मधुराकृते ! मुझ अभागिनीके चित्तवृत्तिको छेंकतेहुए आप कौनहैं ? जो यहांपर यमराजके घरमें चले आयेहैं ॥ ७६ ॥ हे सुभग ! जबलों वह महाकठोर स्वरूप, और दूसरेके शस्त्रोंसे अवध्य, परमदुराचारी कंकालकेतुनामक दानव त्रैलोक्यमात्रको व्याकुल करके फिर नहीं लौटता तबतक आप इस बडे गह्वर शस्त्रागारमें छिपे रहिए ॥७७॥७८॥

पार्वतीके वरदानसे वह मेरे कन्याव्रतको कभी नहीं तोडसकता, इसीसे परसों तीजकेदिन मेरा व्याह करलेना चाहताहै, सो वह दुरात्मा तो मेरेही शापसे गतजीवन हो चुकाहै, हे युवक ! आप उसका तनिकभी भय मतकरें वह काम बहुतही शीघ्र होजायगा ॥ ७९ ॥ ८० ॥ विद्याधरीके ऐसा कहनेपर वह वीर और महाबाहु राजा दानवके आगमनकी प्रतीक्षा करता शस्त्रागारमें छिपाहुआ ठहरा रहा ॥ ८१ ॥ इसके अनंतर सन्ध्याके समय वह परमभयंकर रूप दानव हाथमें मृत्युकेभी भय उपजानेवाले त्रिशूलको फेरताहुआ वहांपर आगया ॥८२॥ आतेही वह रौद्र दानव प्रलयमेघके समान गंभीरस्वरसे मदके

नमेकन्याव्रतंभंक्तुंससमर्थउमावरात् ॥ आगामिन्यांतृतीयायांपरश्वःपाणिपीडनम् ॥ ७९ ॥ संचिकीर्षतिदुष्टात्मागतायुर्ममशापतः ॥ मातद्भीतिंकुरुष्वयुवस्तत्कार्यंभविताचिरम् ॥८०॥ विद्याधर्येतिचोक्तःसशस्त्रागारेनिगूढवत् ॥ स्थितोवीरोमहाबाहुर्दानवागमनेक्षणः ॥८१॥ अथसायंसमायातोदानवोभीषणाकृतिः॥ त्रिशूलंकलयन्पाणौमृत्योरपिभयावहम् ॥ ८२ ॥ आगत्यदानवोरौद्रःप्रलयांबुदनिस्वनः॥ विद्याधरींजगादेतिमदाघूर्णितलोचनः ॥ ८३ ॥ गृहाणेमानिरत्नानिदिव्यानिवरवर्णिनि ॥ कन्यात्वंचपरश्वस्तेपाणिग्राहादपैष्यति॥८४॥ दासीनामयुतंप्रातर्दास्यामितवसुंदरि ॥ आसुरीणांसुरीणांचदानवीनांमनोहरम् ॥ ८५ ॥ गंधर्वीणांनरीणांचकिन्नरीणांशतंशतम् ॥ विद्याधरीणांनागीनांयक्षिणीनांशतानिषट् ॥ ८६ ॥ राक्षसीनांशतान्यष्टौशतमप्सरसांवरम् ॥ एतास्तेपरिचारिण्योभविष्यंत्यमलाशये ॥ ८७ ॥ यावत्संपत्तिसंभारोदिक्पालानांगृहेषुवै ॥ मत्परिग्रहतांप्राप्यतावतस्त्वमिहेश्वरी ॥ ८८ ॥

मारे आँखोंको घुमाताहुआ विद्याधरीसे यह कहनेलगा ॥ ८३ ॥ अयि सुन्दरि ! इन दिव्यरत्नोंको ग्रहण करो, पाणिग्रहण होजानेसे परसों तुम्हारा कन्यापन छूट जावेगा ॥ ८४ ॥ अयि वरवर्णिनि ! प्रातःकाल होतेही दस सहस्र दासियां तुम्हारे पास लगादूंगा, शत शत सुन्दरी आसुरी, दैवी, दानवी ॥ ८५ ॥ गन्धर्वी, किन्नरी, और मानुषी, एवं छःसौ विद्याधरी, यक्षिणी, और नागकन्यायें ॥ ८६ ॥ यँहींपर आठसौ राक्षसी और एकसौ अप्सरायें ये सब तुम्हारी लौडियां होंगी ॥ ८७ ॥ मेरे साथ व्याहकरलेनेसे इन्द्रादिक दिक्पालोंके घरमें जितनी संपत्तिहै उस सबकी तुम्हीं स्वामिनी

होजाओगी ॥८८॥ मेरे साथ विवाह होजानेपर तुम दिव्यभोगोंको भोगोगी, अहा !! वह परसों कब होगा ? जिस दिन विवाहकी विधि होजानेपर ॥८९॥ मैं तुम्हारे अंगस्पर्शरूप सुखकी धारामें डूबकर परमआनन्दका भोग करसकूंगा, यदि परसों नगिचायजाता तो ॥ ९० ॥ अपने हृदयमें जिन मनोरथोंको बहुत दिनोंसे पालरक्खाहै, परसोंही तुम्हारे संगम होजानेसे चरितार्थ करडालता ॥ ९१ ॥ हे मृगनयने ! इंद्रादिक देवतोंको युद्धमें जीतकर त्रैलोक्यभरकी समस्त ऐश्वर्य संपत्तिकी तुम्हींको स्वामिनी बनाऊंगा ॥ ९२ ॥ इस चालका प्रलाप कर नरमांसके भोजनसे हृष्टचित्त, वह दानव अपने त्रिशूलको गोदमें रख, निर्भय होकर, सो रहा ॥ ९३ ॥ तब वह विद्याधर कुमारी पार्वतीके वरदानको स्मरण करतीहुई, उस दानवको प्रमत्त और निःशंक हो, बहुतही

दिव्यान्भोगान्मयासार्धंभोक्ष्यसेमत्परिग्रहात् ॥ कदापरश्वोभवितायस्मिन्वैवाहिकोविधिः ॥ ८९ ॥ त्वदंगसंगसंस्पर्शसुखसंदोहमेदुरः ॥ परांनिर्वृतिमाप्स्यामिपरश्वोनिकटंयदि ॥ ९० ॥ मनोरथाश्चिरंयावद्येमेहृदिसमेधिताः ॥ तान्कृतार्थीकरिष्यामिपरश्वस्तवसंगमात् ॥ ९१ ॥ जित्वादेवान्रणेसर्वानिंद्रादीन्मृगलोचने ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसंपत्तेस्त्वांकरिष्यामिचेश्वरीम् ॥ ९२ ॥ आधायांकेत्रिशूलंस्वेसुष्वापेतिप्रलप्यसः ॥ नरमांसवसास्वादप्रमत्तोवीतसाध्वसः ॥ ९३ ॥ वरंस्मरंतीसागौर्याविद्याधरकुमारिका ॥ विज्ञायतंप्रमत्तंच सुसुप्तंचातिनिर्भयम् ॥ ९४ ॥ आहूयतंनरवरंवरंसर्वांगसुंदरम् ॥ विष्णुभक्तिकृतत्राणंप्राणनाथेतिजल्प्यच ॥ ९५ ॥ शूलंतदंकादादाय गृहाणेमंजहिद्रुतम् ॥ इतित्रिशूलंबालातोबालार्कसदृशद्युतिः ॥ ९६ ॥ समादायमहाबाहुःसतदामित्रजिन्नृपः ॥ जहर्षचजगादोच्चैर्बालायाश्चाभयंदिशन् ॥ ९७ ॥ वामपादप्रहारेणतमाताडचसनिर्भयः ॥ संस्मरंश्चक्रिणंचित्तेजगद्रक्षामणिंहरिम् ॥ ९८ ॥

निद्रित देखकर ॥ ९४ ॥ सर्वांगसुन्दर और अपने भावीवर एवं विष्णुभक्तिके द्वारा कृतत्राणा उस नरवरको " हे प्राणनाथ ! " ऐसा संबोधन देतीहुई पुकार ॥ ९५ ॥ इस दानवके गोदसे त्रिशूल लेकर (कहने लगी—कि) इसे झटपट लेकर इसको "मारडालो" तब तो वह बाल सूर्यके समान परमकान्तिमान् महाबाहु राजा अमित्रजित्, उस कन्याके हाथसे त्रिशूलको ले उसे अभयदान (तसल्ली) देताहुआ बडाही हर्षित होकर गरजनेलगा ॥९६॥ ॥ ९७ ॥ फिर तो उस राजाने निर्भय हो, उस दानवको बायें लातसे मारकर अपने हृदयमें जगत्के रक्षामणि भगवान् चक्रधर हरिको स्मरण करके ॥९८॥

कहा, कि अरे दुष्ट ! कन्याधर्षणेच्छु दानव ! उठ, यहींपर मेरे साथ युद्धकर, मैं सूतेहुए शत्रुको नहीं मारता ॥९९॥ इतना सुनतेही वह दानव चकमकाता हुआ "प्यारी मेरा त्रिशूल तो दो" यही वारंवार कहनेलगा ॥ १०० ॥ (हाय्) यह कौन मृत्युके घरमें चला आयाहै ? आज यमराज किसपर रुष्ट हुआहै ? आज किसकी आयु खोटी हुई जो यह मेरे पास आयाहै ? ॥ १ ॥ मेरे प्रचण्ड भुजदण्डोंकी खजुरी खुजलानेके योग्य यह नहीं है, यह तो महातुच्छ मनुष्यहै, हे सुन्दरि ! त्रिशूलका कौन प्रयोजनहै ? ॥ २ ॥ तुम तनिकभी मतडरो, इस घडी मेरा कौतुक देखो, मैं अभी इसे खाडालताहूं, मुझसे डरकर कालने स्वयं इसे मेरे लिये भेंट भेजदियाहै" ॥ ३ ॥ इन सब बातोंको कहकर उस दानवने पाषाणके समान कठोर राजाकी छातीपर

जगादोत्तिष्ठरेदुष्टकन्याधर्षणलालस ॥ युध्यस्वात्रमयासार्धंनसुप्तंहन्म्यहंरिपुम् ॥९९॥ इतिसंश्रुत्यसंभ्रांतउत्थायसदनोःसुतः ॥ त्रिशूलंदेहिमेकांतेप्रोवाचेतिमुहुर्मुहुः ॥१००॥ कोयंमृत्युगृहंप्राप्तःकस्यरुष्टोऽद्यचांतकः ॥ कआयुषाद्यसंत्यक्तोयःप्राप्तोममगोचरम् ॥ १ ॥ ममप्रचंडदोर्दंडकंडूकंडूयनक्षमः ॥ नाल्पोनरोयंभवितांकिंत्रिशूलेनसुंदरि ॥२॥ माभैर्मेकौतुकंपश्यभक्ष्योऽयंममसांप्रतम् ॥ कालेनमत्तोभीतेनस्वयमेवोपढौकितः ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वामुष्टिघातेनतेनोच्चैर्दनुसूनुना ॥ हृदयेनिहतोराजाशिलातिकठिनेद्रुतम् ॥ ४ ॥ सचक्रिणाकृतत्राणःपीडामल्पीयसीमपि ॥ नोवेदकठिनोरस्कस्तंत्करप्रत्युतानुदत् ॥ ५ ॥ अथकोपवताराज्ञाहतोवक्रेचपेटया ॥ आघूर्णितशिराभूमौपतित्वापुनरुत्थितः ॥ ६ ॥ उवाचचवचोधैर्यमवष्टभ्यमहाबली ॥ ॥ दानवउवाच ॥ ॥ ज्ञातंनत्वंमनुष्योसिनृरूपेणचतुर्भुजः ॥ ७ ॥ आयातच्छिद्रमासाद्यहंतुंमांदानवांतकः ॥ ८ ॥ एकंविधेहिमधुभिद्यदित्वंबलवानासि ॥ विहायैतन्महच्छूलंयुध्यस्वस्वायुधैर्मया ॥ ९ ॥

बडे वेगसे एक मुक्का मारा ॥ ४ ॥ परन्तु भगवान् चक्रपाणिके त्राण कर रखनेसे उस राजाको तनिक भी पीडा नहीं होनेपाई, वरन्, उसकी कठोर छातीसे टक्कर खाकर उसीका हाथ दुखनेलगा ॥ ५ ॥ तब तो राजानेभी क्रोधित होकर उसके मुखपर एक ऐसा थप्पड (तमाचा) लगाया कि वह महाबली दानव चक्कर खाकर पृथिवीपर गिरपडा, फिर उठकर धीरतापूर्वक यह कहने लगा दानवने कहा—समझा, तुम मनुष्य नहीं हो, तुम तो नररूपधारी चतुर्भुज हो ॥ ६ ॥ ७ ॥ और दानवोंके अंतकहो, तुम छिद्र (मोका) पाकर मुझे मारने आये हो ॥ ८ ॥ हे मधुरिपो ! यदि तुम अपनेको बलवान् लगातेहो

तो मेरे इस बडे त्रिशूलको रखदो और अपना आयुध लेकर मुझसे लडाई करो ॥ ९ ॥ तुमने कपटरूपहीसे महाबली कैटभ इत्यादि दैत्योंको संग्राममें छलकर मारा कुछ बलपूर्वक नहीं मारलिया था ॥ ११० ॥ तुम्हींने कपटपूर्वक नर वामन बनकर बलिको पातालमें डालदिया, और नरसिंह होकर हिरण्यकशिपुकोभी मारडाला था ॥ ११ ॥ तुम्हींने जटिल तपस्वी होकर रावणका नाश किया, और गोपालका वेष धरकर कंस इत्यादिको मारा ॥ १२ ॥ तुम्हीं तो मोहिनीमूर्ति धर, असुरोंको ठगकर अमृत उडा लेगये थे, फिर जलचर जन्तु बनकर शंख आदिक बहुतेरे असुरोंकोभी तुम्हींने माराहै ॥ १३ ॥ हे सर्वमर्मज्ञसाधक ! तुम समस्त मायावियोंके अग्रगण्यहो, (पर क्या हुआ) यदि तुम मेरा त्रिशूल रखदो तो मैं तुमसे तनिकभी नहीं डरसकता ॥ १४ ॥

त्वयाकपटरूपेणबलिनःकैटभादयः॥ नबलेनहताःसंख्येहताएवच्छलेनहि॥११०॥ बलिंपातालमनयस्त्वंनृवामनतांदधत् ॥ नृमृगत्वेनभवताहिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ११ ॥ त्वयाजटिलरूपेणलंकेशोविनिपातितः ॥ गोपालवेषमासाद्यकंसाद्याघातितास्त्वया ॥ १२ ॥ स्त्रीरूपेणाहरस्त्वंतुविप्रलाप्यासुरान्सुधाम् ॥ यादोरूपेणभवताशंखाद्यानिहताबहु ॥ १३ ॥ मायावीनामग्रगण्यसर्वमर्मज्ञसाधक ॥ नत्वत्तोहंबिभेम्यद्ययदिशूलंविहास्यसि ॥ १४ ॥ अथवादैन्यवचनःकिमेभिःकातरोचितैः ॥ नत्यक्ष्यसित्रिशूलंत्वंनत्वांजेष्याम्यहंरणे ॥ १५ ॥ अवश्यमेवमर्तव्यमद्यप्रातःशरीरिणा ॥ त्वत्करेणवरंमृत्युर्बलेनापिच्छलेनवा ॥ १६ ॥ इयंविद्याधरीकन्यानमयादूषितासती ॥ साक्षाच्छ्रीरेवमंतव्यातवार्थेरक्षितामया ॥ १७॥ इत्युक्त्वावामदोर्दंडप्रहारेणातिनिष्ठुरम् ॥ निजघानदनोःसूनुस्तंशिलोच्चयकंपिना ॥ १८॥ नृपोवक्षःप्रहारंतंविषह्यरणमूर्द्धनि ॥ लक्षीचकारतद्वक्षस्त्रिशूलंतोलयन्करे ॥ १९ ॥

परन्तु इन कातरोचित वचनोंका कोई प्रयोजन नहीं है, तुम त्रिशूलको न छोडोगे, और न मैं संग्राममें तुमको जीत सकूंगा ॥ १५ ॥ आज चाहे कल शरीरधारीको तो अवश्यही मरना पडेगा, फिर बलसे हो किंवा छलसे हो तुम्हारे हाथसे मरना हो तो बहुतही अच्छाहै ॥ १६ ॥ यह विद्याधरकी कन्या शुद्ध सती है, मैंने इसे दूषित नहीं कियाहै, इसे तुम साक्षात् लक्ष्मीही समझना, क्योंकि मैंने इसे तुम्हारेही लिए सुरक्षित कर रक्खा है ॥ १७ ॥ इतना कहकर उस दानवने पर्वत कँपादेनेवाले अपने वाम भुजदण्डसे बडीही निष्ठुरतापूर्वक राजाकी छातीपर प्रहार किया ॥ १८ ॥ महाबाहु राजानेभी

रणक्षेत्रमें उस विषम आघातको सह हाथमें त्रिशूलको लेकर, उसके वक्षःस्थलको लक्ष्य करके ॥ १९ ॥ ऐसा मारा कि वह दानव क्षणमात्रमें प्राण रहित होगया, इस प्रकारसे राजा अमित्रजित्‌ने देवतोंके हृदय हिलादेनेवाले कंकालकेतुको मारकर ॥ १२० ॥ रोमांचित शरीर और ताकतीहुई उस विद्याधरीसे कहा कि, "हे सुश्रोणि ! महर्षि नारदके कथनानुसार मैंने तुम्हारा वांछित कार्य कर दिया, हे कृतज्ञे ! अब मुझे क्या करना चाहिए उसे भी कहो," इस रीतिसे उस गंभीर हृदय राजाकी बात सुनकर वह कहनेलगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ मलयगंधिनीने कहा—हे जीवनदाताः ! उदारमते ! वीर ! अपने प्राणोंके पणसे इस अदूषित कुलकन्याकी रक्षा कीहै तब फिर मुझसे क्या पूछतेहैं ॥ २३ ॥ जब कि वह कन्या यह बात कह रहीथी, उसी घड़ी

निजघानमहाबाहुःसत्त्वप्राणाञ्जहौक्षणात् ॥ इत्थंकंकालकेतुंसनिहत्यसुरकंपनम् ॥ १२० ॥ विद्याधरींप्रपश्यंतींप्राहहृष्टतनूरुहाम् ॥ नारदस्यमुनेर्वाक्यात्तवसुश्रोणिवांछितम् ॥ २१ ॥ कृतंमयाकृतज्ञेकिंकरवाण्यधुनावद ॥ श्रुत्वेतितस्यसावाक्यंप्राहगंभीरचेतसः ॥२२॥ ॥ मलयगंधिन्युवाच ॥ ॥ अथोदारमतेवीरनिजप्राणैःपणीकृताम् ॥ किंमांपृच्छसिजीवातोकुलकन्यामदूषिताम् ॥ २३ ॥ इतिब्रुवत्यां कन्यायांपुनःस्वैरचरोमुनिः ॥ अतर्कितागमःप्राप्तोनारदोदेवलोकतः ॥ २४ ॥ ततस्तुतुषतुस्तौतुदृष्ट्वातंमुनिसत्तमम् ॥ कृतप्रणामौमुनिनापरिविश्राणिताशिषौ ॥ २५ ॥ पाणिग्रहेणविधिनाऽभिषिक्तौनारदेनतु ॥ जग्मतुर्नारदादिष्टवर्त्मनाकृतमंगलौ ॥ २६ ॥ तयामलयगंधिन्यायुतःसोऽमित्रजिन्नृपः ॥ पुरींवाराणसींप्राप्यपौरैर्विहितमंगलाम् ॥ २७ ॥ यद्वीक्षणादपिनरोनारकीनैवजातुचित् ॥ गतिमाप्नोतिमेधावीतांपुरीमविशन्नृपः ॥ २८ ॥

स्वेच्छाचारी नारद मुनि अनायासही देवलोकसे वहांपर जा पहुँचे ॥ २४ ॥ वे दोनोंही उन मुनिराजको देखतेही बडे संतुष्ट होकर प्रणाम करने लगे, तब महर्षि नारदने आशीर्वाद देकर ॥ २५ ॥ पाणिग्रहणकी विधिसे उन दोनोंको अभिषिक्त किया, फिर नारदहीके बताएहुए मार्गसे उन दोनोंने मंगलविधानके अनंतर प्रस्थान किया ॥ २६ ॥ इसके उपरांत मलयगंधिनीके सहित राजा अमित्रजित्‌के वाराणसीपुरीमें पहुँचजानेपर पुरवासी लोगोंने मंगलाचार किया ॥ २७ ॥ जिस नगरीके दर्शन करनेहीसे मनुष्य कदापि नरकमें नहीं पडता और उत्तमगतिको प्राप्त होजाताहै, राजाने उसीमें प्रवेश

किया ॥ २८ ॥ जिस कैवल्यजननीपुरीमें इन्द्रादिक देवतोंकोभी सहजहीमें प्रवेश नहीं मिलता अमित्रजितने उसी पुरीमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ जिस त्रैलोक्यकांक्षिता काशीपुरीके स्मरण करनेसेभी मनुष्य पापपंकसे लिप्त नहीं होता (आज) वह भूपति उसीमें जा पहुँचा ॥ १३० ॥ जिस नगरीमें प्रवेश करनेवाला मनुष्य महापातकोंसे भी तनिक नहीं दबता, राजा अमित्रजित् उसी काशीमें प्रविष्ट हुआ ॥ ३१ ॥ वह विद्याधरीभी दूरहीसे काशीकी समृद्धिको देखकर स्वर्गलोक और पातालपुरीकोभी धिक्कारने लगी ॥ ३२ ॥ वह विद्याधरी बधू राजा अमित्रजित्को पति पाकरभी वैसी हर्षित नहीं हुई

यस्यांपुर्यांप्रवेशंनलभंतेवासवादयः ॥ कैवल्यजनयित्र्यांहितांपुरीमविशन्नृपः ॥ २९ ॥ अपिस्मृत्त्वापुरींयांवैकाशींत्रैलोक्यकांक्षिताम् ॥ ननरोलिप्यतेपापैस्तांविवेशसभूपतिः ॥ १३० ॥ यस्यांपुर्यांप्रविष्टोनामहद्भिरपिपातकैः ॥ नाभिभूयेततांकाशींप्राविशत्सविशांपतिः ॥ ॥ ३१ ॥ सापिविद्याधरीकाशीसमृद्धिंवीक्ष्यदूरतः ॥ निर्निंदस्वर्गलोकंचपातालनगरीमपि ॥ ३२ ॥ प्राप्यामित्रजितंकांतंतथाहृष्टान सावधूः ॥ यथादृष्ट्वाप्यहोकाशींपरमानंदकेतनम् ॥ ३३ ॥ साकृतार्थमिवात्मानंमन्यमानामनस्विनी ॥ तेनपत्याचकाश्याचपरांनिर्वृति मायर्यो ॥ ३४ ॥ सोप्यमित्रजिदासाद्यपत्नींमलयगंधिनीम् ॥ धर्मप्रधानंसंसेव्यकामंप्रापोत्तमंसुखम् ॥३५॥ सैकदातंपतिंराज्ञीविष्णुभ क्तिपरायणम् ॥ रहोविज्ञापयांचक्रेपतिभक्तासुतार्थिनी ॥ ३६ ॥ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ ॥ भूपाभीष्टतृतीयायाश्चरिष्यामिमहाव्रतम् ॥ यद्यनुज्ञाभवेद्भर्तुःपुत्रकामार्थितप्रदम् ॥ ३७ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ देव्यभीष्टतृतीयायांव्रतंकीदृग्भवेद्वद ॥ कादेवतातत्रपूज्याविधानं चापिकिंफलम् ॥ ३८ ॥

जैसी कि परमानन्द मंदिर काशीपुरीके दर्शनसे प्रसन्न हुई थी ॥ ३३ ॥ उस पति और काशीधामके प्राप्त होनेसे वह मनस्विनी अपनेको कृतार्थ मानकर परमानन्दके सुखमें निमग्न होगयी ॥ ३४ ॥ राजा अमित्रजित्भी मलयगंधिनीको पत्नी पाकर, धर्मप्रधान कामके सेवनसे सर्वोत्तम सुखको प्राप्त हुआ ॥ ॥ ३५ ॥ एकबार परम पतिभक्ता उस रानीने सुतार्थिनी होकर एकांतमें असाधारण विष्णुके भक्त अपने पतिसे कहा ॥ ३६ ॥ रानी बोली—हे भूपते ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं पुत्र फलप्रदा अभीष्ट तृतीयाके महाव्रतका अनुष्ठान करूं ॥ ३७ ॥ राजाने कहा—हे देवि ! अभीष्टतृतीयाका

व्रत कैसा होताहै ? और उसमें किस देवताका पूजन करना चाहिए ? एवं उसका कौनसा विधान और क्या फल है ? ॥ ३८ ॥ जो स्त्री पतिकी आज्ञाके विनाही व्रत इत्यादिको करती है, वह जीते जी दुःखिनी होती, और शरीरांत होनेपर नरकमें पडतीहै ॥ ३९॥ राजाके इस कहनेपर वह पतिव्रता रानी उस व्रतमें जो जो करना पडताहै उसे रहस्यके साथ कहने लगी ॥ १४० ॥ दोहा—रम्य संकटा घाट पै, वीरेश्वर महराज । साधत निज जन हित सदा, सिद्धि करैं सब काज ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां वीरेश्वराविर्भाववर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

नारीपत्यननुज्ञाताया व्रतादि समाचरेत् ॥ जीवंतीदुःखिनीसास्यान्मृतानिरयमृच्छति ॥ ३९ ॥ इतिराज्ञोदिताराज्ञीप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ इतिकर्तव्यतांतस्यव्रतस्यसरहस्यकाम् ॥ १४० ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धे वीरेश्वराविर्भावेमित्रजित्पराक्रमोनामद्व्यशीतितमोध्यायः ॥ ८२ ॥ राज्युवाच ॥ ॥ अवधेहिधरानाथकथयामियथातथम् ॥ व्रतस्यास्यविधानंचफलंचाभीष्टदेवताम् ॥ १ ॥ पुरापुरःश्रीदपत्न्याःश्रीमुख्याब्रह्मसूनुना ॥ नारदेनसुतार्थिन्याव्रतमेतदुदीरितम् ॥ २ ॥ चीर्णं चाथतयादेव्यापुत्रोभून्नलकूबरः ॥ अन्याभिरपिबह्वीभिःपुत्राःप्राप्ताव्रतादितः ॥ ३ ॥ विधिनाप्यत्रसंपूज्यागौरीसर्वविधानवित् ॥ स्तनंधयेनसहिताधयतास्तनमुन्मुखम् ॥ ४ ॥ मार्गशीर्षतृतीयायांशुक्लायांकलशोपरि ॥ ताम्रपात्रंनिधायैकंतंडुलैःपरिपूरितम् ॥ ५ ॥ अविच्छिन्नंनवीनंचरजनीरागरंजितम् ॥ वासःपात्रोपरिन्यस्यसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंपरम् ॥ ६ ॥

रानीने कहा—हे महाराज ! सावधान हूजिए, मैं इस व्रतका विधान, फल और इष्ट देवताको यथार्थरूपसे कहती हूं ॥ १ ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माके पुत्र नारदमुनिने पुत्रार्थिनी कुबेरकी पत्नी श्रीमुखी देवीसे इस व्रतका वर्णन किया था॥ २॥इसके अनन्तर उस देवीके व्रत करनेपर उसे नलकूबरनामक पुत्र हुआ, औरभी बहुतेरी स्त्रियोंने इसी व्रतके प्रभावसे पुत्रलाभ किया है ॥ ३ ॥ हे सर्वविधानज्ञ ! इस व्रतमें दुग्धस्रावी स्तनको पीतेहुए बालकके सहित गौरी देवीकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ४ ॥ अगहन मासकी शुक्ला तृतीयाको कलसके ऊपर चावलसे भराहुआ एक तांबेका पात्र रखकर ॥ ५ ॥ उसके

ऊपर बिनाफाडा (दसीदार) और हरदीके रंगसे रंगाहुआ बहुतही सूक्ष्म (महीन) उत्तम नवीन वस्त्रको धरकर ॥ ६ ॥ फिर उसके ऊपर सूर्यके किरणोंसे खिलेहुए उत्तम कमलको रक्खे उस पद्मकी कर्णिकापर चार रुपये भर सोनेकी बनीहुई ब्रह्माकी मूर्तिको स्थापनकर, रत्न, पट्टवस्त्र, नानाभाँतिके रमणीय पुष्प, नारंगी इत्यादि फल ॥ ७ ॥ ८ ॥ कपूर, कस्तूरी (केशर) आदिसे सुगंधित चन्दन, विविध विधके उत्तमोत्तम पक्वानोंके नैवेद्य ॥ ९ ॥ एवं अगर आदिके धूपोंसे भक्तिपूर्वक सुन्दर पुष्पमण्डपमें ब्रह्माका पूजन करे, और रात्रिके समय निद्राको त्यागकर बडे उत्सवके साथ जागरण करे॥ १० ॥ फिर मन्त्रज्ञ द्विजको उचित है कि, एक हाथभरके कुंडमें घृत और मधुमें डुबायेहुए आपसे आप खिले एक सहस्र कमलके पुष्पोंको "जातवेदस" इत्यादि

तस्योपरिशुभंपद्मंरविरश्मिविकासितम् ॥ तत्कर्णिकायाउपरिचतुःस्वर्णविनिर्मितम् ॥७॥ विधिंसंपूजयेद्भक्त्यारत्नपट्टांबरादिभिः ॥ पुष्पैर्नानाविधैरम्यैःफलैर्नारंगमुख्यकैः ॥ ८ ॥ सुगंधैश्चंदनाद्यैश्चकर्पूरमृगनाभिभिः ॥ परमान्नादिनैवेद्यैःपक्वान्नैर्बहुभंगिभिः ॥ ९ ॥ धूपैरगुरुमुख्यैश्चरम्येकुसुममंडपे ॥ रात्रौजागरणंकार्यंविनिद्रैःपरमोत्सवैः ॥ १० ॥ हस्तमात्रमितेकुंडेजातवेदसइत्यृचा ॥ घृतेनमधुनाप्लुत्यजुहुयान्मंत्रविद्द्विजः ॥ ११ ॥ सहस्रंकमलानांचस्मेराणांस्वयमेवहि ॥ नवप्रसूतांकपिलांसुशीलांचपयस्विनीम् ॥ १२ ॥ दद्यादाचार्यवर्यायसालंकारांसलक्षणाम् ॥ उपोष्यदंपतीभक्त्यानवांबरविभूषितौ ॥ १३ ॥ प्रातःस्नात्वाचतुर्थ्यांचसंपूज्याचार्यमादृतः ॥ वस्त्रैराभरणैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितौ ॥ १४ ॥ सोपस्करांचतांमूर्तिमाचार्यायनिवेदयेत् ॥ समुच्चरन्निमंमंत्रंव्रतकृन्मिथुनंमुदा ॥ १५ ॥ नमोविश्वविधानज्ञेविधेविविधकारिणि ॥ सुतंवंशकरंदेहितुष्टासुष्माद्व्रताच्छुभात् ॥ १६ ॥

ऋचोंसे हवन करे, और आचार्य महाराजको नवप्रसूता, कपिला, सीधी, और अलंकृत दुधार गौका दान करे, एवं स्वयं सपत्नीक उपवास करके दूसरे दिन चतुर्थीके प्रातःकाल स्नानोपरान्त नवीन वस्त्रसे विभूषित होकर, बडे आदर और हर्षके साथ आचार्यको, वस्त्र, भूषण, माल्य, और दक्षिणा इत्यादिसे पूजित कर, सब सामग्रीके सहित उस मूर्तिको इस मंत्रका उच्चारण करताहुआ वह व्रती दंपती हर्षपूर्वक आचार्यको निवेदन करदेवे ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे विश्वविधानज्ञे ! विविधकारिणी ! विधिस्वरूपे ! देवि ! आपको नमस्कार है, आप इस शुभव्रतके अनुष्ठानसे सन्तुष्ट होकर (मुझे)

वंश चलानेवाला पुत्र दीजिए ॥ १६ ॥ इसके पीछे एक सहस्र ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन करावे तब उसी भुक्तशेष अन्नसे स्वयं पारण करे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकारसे इस व्रतको मैं आपके साथ किया चाहतीहूं, यदि अभीष्ट फल पानेके लिए आप मेरे इस परमप्रिय कार्यको करदेवें ॥ १८ ॥ हे मुने ! उस भूपालवर्यने इस कथाको प्रसन्नचित्तसे सुनकर उस व्रतका अनुष्ठान किया जिससे वह रानी गर्भवती होगई ॥ १९ ॥ तब गौरी, रानीकी भक्तिसे बडीही संतुष्ट हुई, फिर उस गर्भवती रानीने उनसे प्रार्थनाकी, (कि) हे महामाये ! साक्षात् विष्णुके अंशसे उत्पन्न पुत्र मुझको प्रदान कीजिए ॥ २० ॥ जो जन्मतेही स्वर्गको जासके और फिरकर यहां लौट आवे, शिवका सदैव भारी भक्त बनारहे एवं समस्त भूमंडलमें वह प्रसिद्ध होवे ॥ २१ ॥

सहस्रंभोजयित्वाथद्विजानांभक्तिपूर्वकम् ॥ भुक्तशेषेणचान्नेनकुर्यांद्वैपारणंततः ॥ १७ ॥ इत्थमेतद्व्रतंराजंश्चिकीर्षामित्वयासह ॥ कुरुष्वे तत्प्रियंमह्यमभीष्टफललब्धये ॥ १८ ॥ इतिभूपालवर्येणश्रुत्वासंहृष्टचेतसा ॥ मुनेव्रतंसमाचीर्णंसांतर्वत्नीबभूवह ॥ १९ ॥ तयाथप्रार्थितागौरीगर्भिण्याभक्तितोषिता ॥ पुत्रंदेहिमहामायेसाक्षाद्विष्णवंशसंभवम् ॥ २० ॥ जातमात्रोव्रजेत्स्वर्गंपुनरायातिचात्रवै ॥ भक्तः सदाशिवेऽत्यर्थंप्रसिद्धःसर्वभूतले ॥ २१ ॥ विनैवस्तन्यपानेनषोडशाब्दाकृतिःक्षणात् ॥ एवंभूतःसुतोगौरियथामेस्यात्तथाकुरु ॥ २२ ॥ मृडान्यापितथेत्युक्ताराज्ञीभक्त्यातितुष्टया ॥ अथकालेनतनयंमूलर्क्षेसाप्यजीजनत् ॥ २३ ॥ हितैरमात्यैरथसाविज्ञप्तारिष्टसंस्थिता ॥ देविराजार्थिनीचेत्त्वंत्यजदुष्टर्क्षजंसुतम् ॥ २४ ॥ सामंत्रिवाक्यमाकर्ण्यकेवलंपतिदेवता ॥ अत्याक्षीत्तंतथाप्राप्तंतनयंनयकोविदा ॥२५॥ धात्रेयिकांसमाकार्यप्राहेदंसानृपांगना ॥ पंचमुद्रेमहापीठेविकटानाममातृका ॥ २६ ॥

जो कि दुग्धपान करनेके विनाही क्षणभरमें सोलह वर्षकी अवस्थाका जानपडे, हे गौरि ! ऐसा पुत्र जिसमें मुझको मिले वह (कृपा) कीजिए ॥ २२ ॥ रानीकी भक्तिसे संतुष्ट होकर भवानीदेवीने भी तथास्तु कहदिया, तदनंतर कालक्रमसे मूल नक्षत्रमें उसे पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥ तब तो हितैषी मंत्री लोगोंने आकर सूतिकागृहहीमें रानीसे कहा कि, हे देवि ! यदि आप राजाको चाहती हैं तो इस दुष्ट नक्षत्रमें उत्पन्न पुत्रको त्याग दीजिए ॥ २४ ॥ एकमात्र पतिदेवता, नीति निपुण, उस राजमहिषीने मंत्रियोंकी बात सुनकर उस कष्टप्राप्त पुत्रको त्यागदिया ॥ २५ ॥ रानीने धायको बुलाकर यह

कहा कि हे धात्रेयिके ! पंचमुद्रनामक महापीठस्थलमें विकटानामकी मातृका हैं ॥ २६ ॥ उनके आगे इस बालकको रखकर यह कहना कि, " गौरी देवीके दियेहुए इस बालकको राजाका प्रिय चाहने वाली रानीने मंत्रियोंके द्वारा पुत्रत्यागके लिए उपदिष्ट होकर आपके सन्मुख निवेदित करदिया है " । पश्चात् वह धायभी रानीकी कहीहुई बातें सुन उस सुन्दर चन्द्र सम बालकको विकटा देवीके आगे रखकर घरपर लौट आई । तदनंतर उस विकटा देवीने योगिनियोंको बुलाकर ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ कहा कि, इस बच्चेको मातृगणके पास अभी ले जाओ, और उन लोगोंकी आज्ञाका पालन,

तदग्रेस्थापयित्वामुंबालंधात्रेयिकेवद ॥ गौर्यादत्तःशिशुरसौतवाग्रेविनिवेदितः ॥ २७ ॥ राज्ञ्यापत्युःप्रियैषिण्यामंत्रिविज्ञप्तितुन्नया ॥ सापिराज्ञ्युदितंश्रुत्वाशिशुंलास्यशशिप्रभम् ॥ २८ ॥ विकटायाःपुरःस्थाप्यगृहंधात्रेयिकागता ॥ अथसाविकटादेवीसमाहूयचयोगिनीः ॥ २९ ॥ उवाचनयतक्षिप्रंशिशुंमातृगणाग्रतः ॥ तासामाज्ञांचकुरुतरक्षतामुंप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ योगिन्योविकटावाक्यात्खेचर्यस्ताःक्षणेनतम् ॥ निन्युर्गगनमार्गेणब्राह्म्याद्यायत्रमातरः ॥ ३१ ॥ प्रणम्ययोगिनीवृंदंतंशिशुंसूर्यवर्चसम् ॥ पुरोनिधायमातॄणांप्रोवाचविकटोदितम् ॥ ३२ ब्रह्माणीवैष्णवीरौद्रीवाराहीनारसिंहिका ॥ कौमारीचापिमाहेंद्रीचामुंडाचैवचंडिका ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वातंबालकंरम्यंविकटाप्रेषितंततः ॥ पप्रच्छुर्युगपर्ड्डिंभंकस्तेतातःप्रसूश्चका ॥ ३४ ॥ मातृभिश्चेतिपृष्टःसयदाकिंचिन्नवक्तिच ॥ तदातद्योगिनीचक्रंप्राहमातृगणास्त्विति ॥ ३५ ॥

एवं इस बच्चेका रक्षण बडे प्रयत्नसे करो ॥ ३० ॥ सब खेचरी योगिनियां भी विकटा देवीके कथनसे उस लडकेको जहांपर ब्राह्मी इत्यादि मातृकायें विराजमान थीं क्षणमात्रमें आकाश मार्गसे लेगईं ॥ ३१ ॥ योगिनियोंने उन सब मातृकाओंको प्रणाम कर उस सूर्य सम तेजस्वी बालकको उनके आगे रख विकटा देवीकी बातें कह सुनाईं ॥ ३२ ॥ तब तो ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री, वाराही, नारसिंही, कौमारी, ऐन्द्री, चामुंडा और चंडिका प्रभृति मातृकाओंने ॥ ३३ ॥ विकटा देवीके भेजेहुए उस सुन्दर बच्चेको देखकर उससे एकसाथही यह पूँछा कि, "तुम्हारे माता पिता कौन हैं ? " ॥ ३४ ॥ मातृकाओंके

पूँछनेपरभी जब वह लडका कुछ नहीं बोला तब मातृगणने उस योगिनी मंडलसे यह कहा कि, ॥ ३५ ॥ उत्तमोत्तम लक्षणोंसे परिपूर्ण यह बालक तो राजा होनेके योग्य है, सो हे योगिनियो ! इसे झटपट वहीं पहुँचा देना चाहिए ॥ ३६ ॥ जहाँपर इच्छितफल देनेवाली पंचमुद्रा महादेवी विराज रही हैं, जिनकी सेवा करनेसे मनुष्योंके लिये मोक्षलक्ष्मीभी दूर नहीं रहजाती ॥ ३७ ॥ यद्यपि शुभ कारिणी काशीपुरीमें मुक्ति तो पद पदपर सर्वत्रही होतीहै, तथापि वह पीठ विशेष रूपसे समस्त सिद्धियोंका करनेवाला है ॥ ३८ ॥ इस षोडशवार्षिक रूपवान् बालककी परमसिद्धि विश्वेश्वरकी परमानुकम्पासे उसी

राजयोग्योभवत्येषमहालक्षणलक्षितः ॥ पुनस्तत्रैवनेतव्योयोगिन्यस्त्वविलंबितम् ॥३६॥ पंचमुद्रामहादेवीतिष्ठतेयत्रकाम्यदा ॥ यस्याः संसेवनान्नृणांनिर्वाणश्रीरदूरतः ॥ ३७ ॥ सर्वत्रशुभजान्मिन्यांकाश्यांमुक्तिःपदेपदे ॥ तथापिसविशेषंहितत्पीठंसर्वसिद्धिकृत् ॥ ३८ ॥ तत्पीठसेवनादस्यषोडशाब्दाकृतेःशिशोः ॥ सिद्धिर्भवित्रीपरमाविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ ३९ ॥ एवंमातृगणाशीर्भिर्योगिनीभिःक्षणे नहि ॥ प्रापितोमातृवाक्येनपंचमुद्रांकितंपुनः ॥ ४० ॥ संप्राप्यतन्महापीठंस्वर्गलोकादिहागतः ॥ आनंदकाननेदिव्यंतताप विपुलं तपः ॥ ४१ ॥ तपसातीवतीव्रेणनिश्चलेंद्रियचेतसः ॥ तस्यराजकुमारस्यप्रसन्नोभूदुमाधवः ॥ ४२ ॥ आविर्बभूवपुरतोलिंगरूपेणशंकरः ॥ प्रोवाचचप्रसन्नोस्मिवरंब्रूहिनृपांगज ॥ ४३ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ सर्वज्योतिर्मयंलिंगंपुरतोवीक्ष्यवाङ्मयम् ॥ सप्तपातालसुद्धियस्थितंबृहदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥

पीठके सेवन करनेसे होनेवाली है ॥ ३९ ॥ योगिनियोंने इस भाँति मातृकाओंसे आशीर्वादित उस बालकको मातृगणके वचनानुसार फिर पंचमुद्रानामक पीठपर पहुँचा दिया ॥ ४० ॥ स्वर्गलोकसे इस लोकको लौटाहुआ वह लडका आनंदवनके उस महापीठमें पहुँचकर बडी कठोर दिव्य तपस्याको करने लगा ॥ ४१ ॥ निश्चलेन्द्रिय, दृढचित्त उस राजकुमारके अत्यंततीव्र तपसे भगवान् उमापति (बडे) प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥ फिरतो शंकर भगवान् उसके सन्मुख ही लिंगरूपसे प्रकट होकर कहने लगे कि, हे राजकुमार ! मैं प्रसन्न हूं, तुम वर मांगो ॥ ४३ ॥ स्कन्द बोले—परम अनुग्रहसे सातों पातालोंके

तलको भेदकर उठेहुए अशेष ज्योतियोंसे परिपूर्ण वाङ्मय उस लिंगको अपने आगेही देखकर ॥ ४४ ॥ (वह राजपुत्र) बडे हर्षसे भूमिपर दण्डवत् प्रणाम कर जन्मांतरके अभ्यस्त रुद्रसूक्तमन्त्रोंसे महादेवका स्तुतिगान करने लगा ॥ ४५ ॥ तबतो देवादिदेव वृषभध्वज भगवान् शंकर बडी प्रसन्नताके साथ उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर कहने लगे ॥ ४६ ॥ महादेवने कहा—तुम वरदानकी प्रार्थना करो, तुमने तो अपने इस बालक शरीरसे कठोर तपस्याका अनुष्ठान कर अपनी देहको बडीही क्लेशित करदिया और इसीसे मेरे मनको वशीभूत करलिया है ॥ ४७ ॥ इस प्रकारसे वरदानके विषयमें वारंवार शिवका कथन सुनकर रोमांचित शरीर होकर वह राजपुत्र वरदानकी प्रार्थना करने लगा ॥ ४८ ॥ कुमारने कहा—हे देवादिदेव ! महादेव ! यदि

प्रणम्यदंडवद्भूमौपरितुष्टावधूर्जटिम् ॥ सूक्तैर्जन्मांतराभ्यस्तैःसुहृष्टोरुद्रदैवतैः ॥ ४५ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्देवदेवोमहेश्वरः ॥ संतुष्टस्तपसातस्यप्रोवाचवृषभध्वजः॥ ४६ ॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ वरंवरयसंतप्ततपसाक्लेशितंवपुः ॥ त्वयेदंबालवपुषावशीकृतंमनोमम ॥ ४७ ॥ शिवोक्तंचसमाकर्ण्यवरदानंपुनःपुनः ॥ वरंचप्रार्थयांचक्रेपरिहृष्टतनूरुहः ॥ ४८ ॥ ॥ कुमारउवाच ॥ ॥ देवदेवमहादेवयदिदेयोवरोमम ॥ तदत्रभवतास्थेयंभवतापहृतासदा ॥ ४९ ॥ अस्मिँल्लिंगेस्थितःशंभोकुरुभक्तसमीहितम् ॥ विनामुद्रादिकरणंमंत्रेणापिविनाविभो ॥५०॥ दिशसिद्धिंपरामत्रदर्शनात्स्पर्शनान्नतेः ॥ अस्यलिंगस्ययेभक्तामनोवाक्कायकर्मभिः ॥ ५१ ॥ सदैवानुग्रहस्तेषुकर्तव्योवरएषमे ॥ इतितद्वरमाकर्ण्यलिंगरूपोवदत्प्रभुः ॥ ५२ ॥ एवमस्तुयदुक्तंतेवीरवैष्णवसूनुना ॥ जनेतुर्विष्णुभक्ताच्चराज्ञोऽमित्रजितोभवान् ॥ ५३ ॥

मुझको वर देनाही है तो यही मिले कि, आप संसारके तापोंके नाशक होकर यहांपर सदैव रहाकरें ॥ ४९ ॥ हे शंभो ! आप इस लिंगमें विराजमान रहकर भक्तलोगोंका अभीष्ट मुद्रा आदि करनेके बिना और मंत्र जपके बिनाही दिया (कीजिए) ॥ ५० ॥ हे विभो ! यहाँपर केवल दर्शन, स्पर्शन और प्रणाम करनेहीसे आप उत्तम सिद्धिको देवें, और जो लोग मनसा वचसा कर्मणा और शरीरसे इस लिंगके भक्त होवें ॥ ५१ ॥ आप उनपर सदैव अनुग्रह करें (बस) मैं यही वर मांगताहूं इस भाँतिसे उसका वरदान सुनकर लिंगस्वरूप भगवान्ने यह कहा कि ॥ ५२ ॥ हे वीर ! तुम वैष्णवके

पुत्र हो, सो जो कुछ तुमने कहा है सो वैसाही होगा, हे मद्भक्त तनूज ! विष्णुभक्त राजा अमित्रजित्से तुम साक्षात् विष्णुके अंशही उत्पन्न हुए हो, अतएव हे वीर ! तुम्हारेही नामसे यह लिंग वीरेश्वर संज्ञक होवेगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और काशीमें यह लिंग भक्तलोगोंके चिंतित अभीष्टोंको देता रहेगा, हे वीर ! आजके दिनसे मैं सर्वदैव इस लिंगमें बना रहूंगा ॥ ५५ ॥ और आश्रितजनोंको परम सिद्धिका दान करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, परन्तु कलियुगमें कोईभी मेरी महिमाको नहीं समझ सकेगा ॥ ५६ ॥ और जिस किसीको भाग्यवश कुछ समझाई पडजावेगी उसे परम सिद्धि लाभ

विष्ण्वंशएवमुत्पन्नोममभक्तिपरांगज ॥ वीरवीरेश्वरंनामालिंगमेतत्त्वदाख्यया ॥ ५४ ॥ काश्यांदास्यत्यभीष्टानिभक्तानांचिंतितान्यहो ॥ अस्मिल्लिंगेसदावीरस्थास्याम्यद्यदिनावधि ॥ ५५ ॥ दास्यामिचपरांसिद्धिमाश्रितेभ्योनसंशयः ॥ परंनमहिमानंमेकलौकश्चिद्वेत्स्यति ॥ ५६ ॥ यस्तुवेत्स्यतिभाग्येनसपरांसिद्धिमाप्स्यति ॥ अत्रजप्तंहुतंदत्तंस्तुतमर्चितमेववा ॥ ५७ ॥ जीर्णोद्धारादिकरणमक्षय्यफलहेतुकम् ॥ त्वंतुराज्यंपरंप्राप्यसर्वभूपालदुर्लभम् ॥ ५८ ॥ भुक्त्वाभोगांश्चविपुलानंतेसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ पुरीवाराणसीरम्यासर्वस्मिञ्जगतीतले ॥ ५९ ॥ पुण्यस्तत्रापिसंभेदःसरितोरसिगंगयोः ॥ ततोऽपिचहयग्रीवंतीर्थंचैवातिपुण्यदम् ॥ ६० ॥ यत्रविष्णुर्हयग्रीवोभक्तचिंतितमर्पयेत् ॥ हयग्रीवाच्चवैतीर्थाद्गजतीर्थंविशिष्यते ॥ ६१ ॥ यत्रवैस्नानमात्रेणगजदानफलंलभेत् ॥ कोकावराहतीर्थंचपुण्यदंगजतीर्थतः ॥ ६२ ॥

होगा, यहांपर जप, हवन, दान, स्तुति और पूजन ॥ ५७ ॥ तथा जीर्णोद्धार इत्यादिका करना अक्षय्य फलका कारण होगा, और तुम (तो) समस्त राजाओंसे दुर्लभ बडा भारी राज्य पाकर ॥ ५८ ॥ एवं विपुल भोगोंके भोगलेनेपर अन्तमें सिद्धिको पावोगे । समस्त संसारभरमें यह वाराणसी पुरी बडीही रमणीय है ॥ ५९ ॥ फिर उसमेंभी गंगा और असिनदीका संगम पुण्यप्रदहै, उससेभी हयग्रीव तीर्थ बडाही पुण्यदायक है ॥ ६० ॥ जहांपर भगवान् विष्णु हयग्रीव रूप होकर भक्तोंके मनोरथोंको देते हैं, हयग्रीव तीर्थसेभी विशेष गजतीर्थ है ॥ ६१ ॥ जहांपर केवल स्नान करनेहीसे गजदानका फल

मिलता है, गजतीर्थसेभी अधिक पुण्यद कोकावराह तीर्थ है ॥ ६२ ॥ वहांपर कोकावराहका पूजन करनेसे मनुष्य फिर जन्मभागी नहीं होता, कोकावराहसेभी दिलीपेश्वरके समीपहीमें ॥६३॥ दिलीपतीर्थ बहुत श्रेष्ठ है, जो तुरतही परमपापनाशकहै, तदनंतर सगर तीर्थ है जो सगरेश्वरके पासमें है ॥ ६४ ॥ जहांके स्नानकरनेसे मनुष्य कभी दुःखसागरमें नहीं डूबता सगरतीर्थकी अपेक्षा सप्तसागरतीर्थ औरभी शुभप्रदहै ॥ ६५ ॥ मनुष्यमात्र जहांपर स्नानकरनेसे सातों समुद्रोंमें स्नानकरनेका पुण्य पाताहै, उस सप्तसागरसेभी महोदधितीर्थ विख्यातहै ॥ ६६ ॥ जहांपर एकबारके स्नान करनेसेभी बुद्धिमानूजन अपने

कोकावराहमभ्यर्च्यतत्रनोजन्मभाग्जनः ॥ अपिकोकावराहाच्चदिलीपेश्वरसन्निधौ ॥ ६३ ॥ दिलीपतीर्थंसुश्रेष्ठंसद्यःपापहरंपरम् ॥ ततःसगरतीर्थंचसगरेशसमीपतः ॥ ६४ ॥ यत्रमज्जन्नरोमज्जेन्नभूयोदुःखसागरे ॥ सप्तसागरतीर्थंचशुभंसगरतीर्थतः ॥ ६५ ॥ सप्ताब्धिस्नानजंपुण्यंयत्रस्नात्वानरोलभेत् ॥ महोदधीतिविख्यातंतीर्थंसप्ताब्धितीर्थतः ॥ ६६ ॥ सकृद्यत्राप्लुतोधीमान्दहेदघमहोदधिम् ॥ चौरतीर्थंततःपुण्यंकपिलेश्वरसन्निधौ ॥ ६७ ॥ पापंसुवर्णचौर्यादियत्रस्नात्वाक्षयंव्रजेत् ॥ हंसतीर्थंततोपीडयंकेदारेश्वरसन्निधौ ॥ ६८ ॥ हंसस्वरूपीयत्राहंनयामिब्रह्मदेहिनः ॥ ६९ ॥ ततस्त्रिभुवनाख्यस्यकेशवस्यातिपुण्यदम् ॥ तीर्थंयत्राप्लुतामर्त्यामर्त्यलोकंविशंतिन ॥ ७० ॥ गोव्याघ्रेश्वरतीर्थंचततोप्यधिकमेवहि ॥ स्वभाववैरमुत्सृज्ययत्रोभौसिद्धिमापतुः ॥ ७१ ॥ ततोपिहिवरंवीरतीर्थंमांधातृसंज्ञितम् ॥ चक्रवर्तिपदंयत्रप्राप्तंतेनमहीभुजा ॥ ७२ ॥

अघमहोदधिको भस्म करडालताहै, उससेभी (बडा) पुनीत कपिलेश्वरके निकटमें चौर तीर्थ है ॥ ६७ ॥ जहांके नहानेसे सुवर्ण चौर्यादिक पापोंका क्षय होजाताहै उससेभी हंसतीर्थ जो केदारेश्वरके समीपमें बडा पूजनीयहै ॥६८॥ जहांपर मैं स्वयं हंसस्वरूप होकर देहधारियोंको ब्रह्मपदपर पहुँचा देता हूं ॥६९॥ तदनंतर त्रिभुवनकेशवका तीर्थ है, जो अत्यंत पुण्यप्रद है, जहाँ स्नान करनेवाले लोग फिर मर्त्यलोकमें कभी नहीं प्रवेश करते ॥७०॥ उससेभी गोव्याघ्रेश्वरतीर्थ अधिक है (क्योंकि) वहांपर गौ और बाघ दोनोंहीने अपने स्वाभाविक वैरको त्यागकर सिद्धिको प्राप्त कियाथा ॥ ७१ ॥ हे वीर !

मांधातृनामक तीर्थ उससेभी श्रेष्ठ है, राजा मांधाताने वहींपर चक्रवर्त्तीका पद प्राप्त कियाथा ॥ ७२ ॥ फिर मुचुकुन्द तीर्थ तदपेक्षा औरभी पुण्यदायक है, वहांपर स्नान करनेसे मनुष्य कभी शत्रुओंसे पराजित नहीं होता ॥ ७३ ॥ उससेभी बढकर परमकल्याणसाधन पृथुतीर्थ है, वहांपर पृथ्वीश्वर लिंगके दर्शन करनेसे मनुष्य पृथ्वीपति होताहै ॥ ७४ ॥ तदनंतर अतीव सिद्धिप्रद परशुरामतीर्थ है, वहींपर जमदग्नि नन्दनने क्षत्रियोंकी हत्यासे छुटकारा पायाथा ॥ ७५ ॥ आजतक ज्ञानसे हो अथवा अज्ञानसे हो वहांपर एकबारके स्नान करनेहीसे क्षत्रियवधका पाप छूटजाताहै ॥ ७६ ॥

ततोपिमुचुकुंदाख्यंतीर्थंचातीवपुण्यदम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुरिपुभिर्नाभिभूयते ॥ ७३ ॥ पृथुतीर्थंततोप्युच्चैःश्रेयसांसाधनंपरम् ॥ पृथ्वीश्वरंयत्रदृष्ट्वानरःपृथ्वीपतिर्भवेत् ॥ ७४ ॥ ततःपरशुरामस्यतीर्थंचातीवसिद्धिदम् ॥ यत्रक्षत्रवधात्पापाज्जामदग्न्योविमुक्तवान् ॥ ७५ ॥ अद्यापिक्षत्रवधजंपापंतत्रप्रणश्यति ॥ एकेनस्नानमात्रेणज्ञानाज्ञानकृतेनच ॥ ७६ ॥ ततोपिश्रेयसांकर्तृतीर्थंकृष्णाग्रजस्यहि ॥ यत्रसूतवधात्पापाद्बलदेवोविमुक्तवान् ॥ ७७ ॥ दिवोदासस्यवैतीर्थंतत्रराज्ञोऽतिमेधसः ॥ तत्रस्नातोनरोजातुनज्ञानाच्च्यवतेंऽततः ॥ ७८ ॥ ततोपिहिमहातीर्थंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ यत्रभागीरथीसाक्षान्मूर्तिरूपेणतिष्ठति ॥ ७९ ॥ स्नात्वाभागीरथीतीर्थेकृत्वाश्राद्धंविधानवित् ॥ दत्त्वादानंचपात्रेभ्योनभूयोगर्भभाग्भवेत् ॥ ८० ॥ हरपापंचभोवीरतीर्थंभागीरथीतटे ॥ तत्रस्नात्वाक्षयंयांतिमहापापकुलान्यपि ॥ ८१ ॥

कृष्णाग्रज बलरामका तीर्थ उससेभी श्रेयस्कर है, बलदेवने वहींपर सूतके वध जनित पापसे मुक्तिलाभ कियाथा ॥ ७७ ॥ वहींपर परमबुद्धिमान् राजा दिवोदासका तीर्थ है मनुष्य वहांपर स्नान करनेसे अन्तकालमें ज्ञानसे हीन नहीं होनेपाता ॥ ७८ ॥ सर्व पातकनाशक भागीरथीतीर्थ उससेभी बडा है, जहांपर भगवती भागीरथी साक्षात् मूर्तिमती बनकर बैठीरहती हैं ॥ ७९ ॥ विधानवेत्ताजन भागीरथीतीर्थमें स्नान श्राद्ध और सत्पात्रोंको दान करके फिर जन्मभागी नहीं होता ॥ ८० ॥ हे वीर ! भागीरथीके तीरहीपर हरपाप (नामक केदार कुण्ड) तीर्थ है, वहांके स्नान करनेसे महापातक पुञ्जका

नाश होजाताहै ॥८१॥ जो कोई वहांपर निष्पापेश्वर लिंगका दर्शन करताहै हे वीर ! उस लिंगदर्शनके प्रभावसे वह क्षणमात्रमें निष्पाप होजाताहै ॥८२॥ दशाश्वमेधतीर्थ तो उससेभी बडा चढा है, वहांपर स्नान करनेसे दश अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलताहै ॥८३॥ हे वीर ! बन्दीतीर्थ उससेभी अधिक शुभप्रद कहाजाताहै क्योंकि वहां स्नान करनेवाला मनुष्य संसारबन्धनसेभी छूटजाताहै ॥ ८४ ॥ पूर्वकालमें देवतालोग हिरण्याक्ष दैत्यके द्वारा बहुत बार बेडियां डालकर बन्धुए बनाये गयेथे, तब उन सबोंने जगदम्बाकी स्तुति कीथी ॥ ८५ ॥ तदनंतर सिकडीके बंधनसे छूटकर जबसे उन लोगोंने जगज्जननीकी

योनिष्पापेश्वरंलिंगंतत्रपश्यतिमानवः ॥ निष्पापोजायतेवीरसतल्लिंगेक्षणात्क्षणात् ॥ ८२ ॥ दशाश्वमेधतीर्थंचततोपिप्रवरंमतम् ॥दशानामश्वमेधानांयत्रस्नात्वाफलंलभेत् ॥ ८३ ॥ ततोपिशुभदंवीरबंदीतीर्थंप्रचक्षते ॥ यत्रस्नातोनरोमुच्येदपिसंसारबंधनात् ॥ ८४ ॥ हिरण्याक्षेणदैत्येनबहुशोदेवताःपुरा ॥ बंदीकृतानिगडितास्तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ ८५ ॥ ततोविश्रृंखलीभूतैर्वंदितायज्जगज्जनिः ॥ तदाप्रभृतिबंदीतिगीयतेद्यापिमानवैः ॥८६॥ बंदीतीर्थंतुतत्रैवमहानिगडखंडनम् ॥ तत्रस्नातोविमुच्येतसर्वस्मात्कर्मपाशतः ॥ ८७ ॥ बंदीतीर्थं महाश्रेष्ठंकाशिपुर्यांविशांपते ॥ तत्रस्नातोनरोयायाद्विमुक्तिंदेव्यनुग्रहात् ॥ ८८ ॥ ततोपिहिश्रेष्ठतरंप्रयागमितिविश्रुतम् ॥ प्रयागमाधवो यत्रसर्वयागफलप्रदः ॥ ८९ ॥ क्षोणीवराहतीर्थंचततोपिशुभदंपरम् ॥ तत्रस्नातोनरोजातुतिर्यग्योनिंनगच्छति ॥ ९० ॥ ततःकालेश्वरं तीर्थंवीरश्रेष्ठतरंपरम् ॥ कलिकालोनबाधेतयत्रस्नातंनरोत्तमम् ॥ ९१ ॥

स्तुति की तबसे आजतक लोग उनको बन्दीदेवी कहते जाते हैं ॥ ८६ ॥ वहींपर महानिगडखंडन बन्दीतीर्थ है, वहांके नहानेसे सब प्रकारके कर्मपाशसे छुट्टी मिलजातीहै ॥ ८७ ॥ हे राजन् ! काशीपुरीमें बन्दी तीर्थ बहुतही श्रेष्ठ है, क्योंकि वहां स्नान करनेसे मनुष्य देवीके अनुग्रहसे मुक्तिको प्राप्त करता है ॥ ८८ ॥ जहांपर समस्त यज्ञोंके फलदाता प्रयागमाधव विराजमान हैं, वह प्रयागनामसे विख्याततीर्थ औरभी श्रेष्ठतर है ॥ ८९ ॥ तदनन्तर परम शुभदायक क्षोणीवराहतीर्थ है मनुष्य वहांपर स्नान करनेसे कभी तिर्यग्योनिमें नहीं पडता ॥ ९० ॥ हे वीर ! उसके आगे परम श्रेष्ठतर कालेश्वर तीर्थ

है, वहांके नहानेवाले उत्तम नरको कलि और काल कभी नहीं बाधा करसकते ॥ ९१ ॥ वहींपर अशोक तीर्थ औरभी शुभप्रद है, वहां स्नान करनेसे मनुष्य कभी शोकसागरमें नहीं पडता ॥ ९२ ॥ हे नृपनन्दन ! शुक्रतीर्थ तो एतदपेक्षा औरभी बडाही निर्मल है वहांके नहानेसे उत्तमजन फिर कभी शुक्र (वीर्य) के द्वारा जन्म नहीं लेता ॥ ९३ ॥ राजन् ! उत्तम भवानीतीर्थ उससेभी अधिक पुण्यप्रद है, वहांपरभी स्नानकर भवानी और शिवके दर्शन करनेसे फिर जन्म नहीं लेना पडता ॥ ९४ ॥ प्रभासतीर्थ लोगोंमें उससेभी विशेष शुभप्रद विख्यात है, सोमेश्वरके सन्मुख उस तीर्थमें स्नान कर लेनेसे गर्भभागी नहीं होना पडता ॥ ९५ ॥ तदनन्तर संसाररूप विषका नाशक गरुडतीर्थ है, वहांपर नहाकर गरुडेश्वरकी पूजा करनेसे फिर कुछ नहीं

अशोकतीर्थंतत्रैवततोप्यतितरांशुभम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुनापतेच्छोकसागरे ॥ ९२ ॥ ततोतिनिर्मलतरंशुक्रतीर्थंनृपांगज ॥ शुक्रद्वारा नजायेतयत्रस्नातोनरोत्तमः ॥ ९३ ॥ ततोऽपिपुण्यदंराजन्भवानीतीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रस्नात्वाभवानीशौदृष्ट्वानैवपुनर्भवेत् ॥ ९४ ॥ प्रभासतीर्थंविख्याततंततोपिशुभदंनृणाम् ॥ सोमेश्वरस्यपुरतस्तत्रस्नातोनगर्भभाक् ॥ ९५ ॥ ततोगरुडतीर्थंचसंसारविषनाशनम् ॥ गरुडेशंसमभ्यर्च्यतत्रस्नात्वानशोचति ॥ ९६ ॥ ब्रह्मतीर्थंततःपुण्यंवीरब्रह्मेश्वरात्पुरः ॥ ब्रह्मविद्यामवाप्नोतितत्रस्नानेनमानवः ॥ ९७ ॥ ततोवृद्धार्कतीर्थंचविधितीर्थंततःपरम् ॥ तत्राप्लुतोनरोयातिरविलोकंसुनिर्मलम् ॥ ९८ ॥ ततोनृसिंहतीर्थंचमहाभयनिवारणम् ॥ कालादपिकुतस्तत्रस्नात्वापरिबिभेतिच ॥ ९९ ॥ ततोपिपुण्यदंनृणांतीर्थंचित्ररथेश्वरम् ॥ यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचचित्रगुप्तंनपश्यति ॥ १०० ॥ धर्मतीर्थंततःपुण्यंधर्मेशपुरतःस्थितम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वापितृणामनृणोभवेत् ॥ १ ॥

शोच करना पडता ॥ ९६ ॥ हे वीर ! ब्रह्मेश्वरके आगे उससेभी पवित्र ब्रह्मतीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य ब्रह्मविद्याका अधिकारी होजाताहै ॥ ९७ ॥ उससेभी वृद्धार्कतीर्थ एवं तदपेक्षा विधितीर्थ श्रेष्ठ है, वहांके स्नान करनेसे मनुष्य निर्मल सूर्यलोकमें चलाजाता है ॥ ९८ ॥ महाभयनिवारक नृसिंहतीर्थ उससेभी उत्तम है, क्योंकि वहां स्नान करनेसे कालकाभी कुछ भय नहीं रहजाता ॥ ९९ ॥ मनुष्योंके लिए उससेभी अधिक पुण्यप्रद चित्ररथेश्वरतीर्थ है, जहांपर स्नान और दान करनेसे चित्रगुप्तको नहीं देखना पडता ॥ १०० ॥ धर्मेश्वरके सन्मुख जो धर्मतीर्थ है वह तो औरभी पवित्र है, वहांपर

श्राद्ध इत्यादि करनेसे पितरोंके ऋणसे उद्धार पायाजाताहै ॥ १ ॥ उससेभी विशाल फलोंका देनेवाला, विमल, विशाल तीर्थ है, वहांपर स्नान और विशालाक्षीके दर्शन करनेसे फिर कभी गर्भमें वास नहीं करना पडता ॥ २ ॥ जरासन्धेश्वरके समीपहीमें जरासन्धेशतीर्थ है; वहांके स्नान करनेसे संसारज्वरकी पीडाओंसे मोहित नहीं होनेपाता ॥ ३ ॥ ललितातीर्थ उससेभी बडाभारी सौभाग्यवर्द्धन है वहांपर स्नान तथा ललिताके दर्शन करनेसे कोईभी दरिद्र और दुःखभागी नहीं होता ॥ ४ ॥ समस्त पापोंका विशोधक गौतमतीर्थ उससेभी श्रेष्ठ है, वहांपर स्नान करके पिंडदान करनेसे कदापि कहीं भी पश्चात्ताप नहीं करना पडताहै ॥ ५ ॥ उसके आगे गंगाकेशव तीर्थ, फिर अगस्त्यतीर्थ, पश्चात् योगिनी तीर्थ तदनंतर त्रिसन्ध्यनामक तीर्थहै ॥ ६ ॥

विशालतीर्थंविमलंविशालफलदंततः ॥ तत्रस्नात्वाविशालाक्षींदृष्ट्वागर्भेनजायते ॥ २ ॥ जरासंधेशतीर्थंचजरासंधेशसन्निधौ ॥ संसारज्वरपीडाभिस्तत्रस्नातोनमुह्यति ॥ ३ ॥ ततोऽपिललितातीर्थंमहासौभाग्यवर्धनम् ॥ स्नात्वार्चयित्वाललितांनदरिद्रोनदुःखभाक् ॥ ४ ॥ ततोगौतमतीर्थंचसर्वपापविशोधनम् ॥ स्नात्वापिंडान्विनिर्वाप्ययत्रशोचतिनक्कचित् ॥ ५ ॥ गंगाकेशवतीर्थंचतीर्थं चागस्त्यसंज्ञकम् ॥ ततस्तुयोगिनीतीर्थंत्रिसंध्याख्यंततःपरम् ॥ ६ ॥ ततस्तुनार्मदंतीर्थंततआरुंधतेयकम् ॥ वासिष्ठंचततस्तीर्थंमार्कंडेयमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ ज्ञेयान्येतानितीर्थानिपुण्यदान्युत्तरोत्तरम् ॥ खुरकर्तरिसंज्ञंचततस्तीर्थमनुत्तमम् ॥ ८ ॥ तत्रश्राद्धादिकरणान्नरोमुच्येतकिल्बिषैः ॥ ततोभगीरथंतीर्थंराजर्षेरतिपुण्यदम् ॥ ९ ॥ तत्राल्पमपियच्छेद्यत्कल्पांतेप्यक्षयंहितत् ॥ एतेभ्योपिहितीर्थेभ्यो लिंगकोटित्रयादपि ॥ ११० ॥ वीरवीरेश्वरंलिंगंमहाश्रेष्ठंभविष्यति ॥ वीरतीर्थेनरःस्नात्वावीरेशंपरिपूज्यच ॥ ११ ॥

उसके उपरान्त नर्मदा तीर्थ, एवं अरुंधती तीर्थ, तब वसिष्ठ तीर्थ, फिर सबसे उत्तम मार्कण्डेय तीर्थ है ॥ ७ ॥ इन सब तीर्थोंको उत्तरोत्तर अधिक पुण्यप्रद समझना चाहिए, और खुरकर्तरि तीर्थ तदपेक्षा और भी उत्तम है ॥ ८ ॥ वहांपर श्राद्ध इत्यादि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूटजाताहै, तदनंतर राजर्षि भगीरथका परम पुण्यदायक तीर्थ है ॥ ९ ॥ वहांपर अल्पमात्रभी जो कुछ दिया जावे वह कल्पान्तमेंभी क्षयको नहीं प्राप्त होता, हे वीर ! इन सब तीर्थोंसे तथा तीन कोटि लिंगोंसेभी ॥ ११० ॥ यह वीरेश्वर लिंग बहुतही श्रेष्ठ होगा, वीरतीर्थमें स्नानकर वीरेश्वरका पूजन करनेसे मनुष्य ॥ ११ ॥

इन समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फलभागी होताहै, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, जो कोई रात्रिसमयमें वीरेश्वरकी पूजा करेगा, उसे तीन कोटि लिंगोंके पूजन करनेका फल यहींपर मिलजावेगा ॥ १२ ॥ जो कोई भुक्ति और मुक्ति देनेवाली लक्ष्मीकी कामना करे उसे बडे प्रयत्नके साथ वीरेश्वर लिंगको सेवना चाहिए ॥ १३ ॥ जो चतुर्दशी तिथिको जागरण करके वीरेश्वरका पूजन करता है, वह फिर कभी पांचभौतिक शरीरको नहीं धारण करता ॥ १४ ॥ जो लोग सिद्धिके साधनेकी इच्छा रखतेहों उनको तो सदैव इस लिंगकी सेवा करनी चाहिए, क्योंकि इसके सेवनसे ऐहिक और पारलौकिक सभी कामनायें पूर्ण होजातीहैं ॥ १५॥ जो मनुष्य इस वीरेश्वर लिंगको पंचामृतसे नहवायेगा उसे पल पलमें करोडों घडोंका फल प्राप्त होवेगा॥ १६॥

तीर्थेष्वेतेषुसर्वेषुस्नातोभवतिनान्यथा॥ यस्तुवीरेश्वरंलिंगंनक्तमभ्यर्चयिष्यति ॥ तेनत्रिकोटिसंख्यानिलिंगानीहार्चितानिवै ॥ १२ ॥ यस्तुकामयतेलक्ष्मींमुक्तिदांभुक्तिदामपि ॥ तेनवीरेश्वरंलिंगंसंसेव्यमतियत्नतः ॥ १३ ॥ विधायैकंजागरणंनरोवीरेशमर्चयन् ॥ भूतायांनैवगृह्णातिशरीरंपांचभौतिकम् ॥ १४ ॥ इदंलिंगंसदाभ्यर्च्यंसिद्धैःसांसिद्धिकामुकैः ॥ ऐहिकामुष्मिकान्यस्मात्सर्वान्कामान्समर्थयेत् ॥ ॥ १५ ॥ पंचामृतेनस्नपनंयःकरिष्यतिमानवः ॥ पलेपलेफलंतस्यवीरेशेघटकोटिजम् ॥ १६ ॥ यदन्यत्रफलंलिंगेकोटिपुष्पप्रदानतः ॥ तदेकेनैवपुष्पेणवीरेशेनात्रसंशयः ॥ १७ ॥ एकामप्याहुतिंदत्त्वावीरेश्वरसमीपतः ॥ कोटिहोमफलंसम्यङ्नात्रकार्याविचारणा ॥ १८ ॥ सिक्थेसिक्थेचनैवेद्येकोटिसिक्थफलंभवेत् ॥ अत्यल्पमपिवीरेशेकृतमक्षयतांव्रजेत् ॥ १९ ॥ अप्येकंयोमहारुद्रंजपेद्वीरेशसन्निधौ ॥ जापयेद्वाभवेत्तस्यकोटिरुद्रफलंध्रुवम् ॥१२०॥ व्रतोत्सर्गादिवीरेशेयत्कृतंव्रतिभिर्नृभिः ॥ तत्कोटिगुणसंख्याकंभवत्येवनसंशयः ॥२१॥

दूसरे लिंगोंपर करोड पुष्प चढानेसे जो फल होताहै इस वीरेश्वर लिंगपर वही पुण्य केवल एकही पुष्पसे प्राप्त होताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥ वीरेश्वरके समीपमें एकभी आहुतिके देनेसे कोटि होमका पूर्ण फल निस्सन्देह मिलजाता है ॥ १८ ॥ एक एक कण नैवेद्यभी- यदि वीरेश्वरपर चढा दियाजावे तो अत्यंत थोडा होनेपरभी कोटि कोटि फल अक्षय होजाता है ॥ १९ ॥ यदि कोई वीरेश्वरके समीपमें एकही महारुद्रमंत्रका जप करे अथवा जपवावे तो उसे ध्रुवकरके कोटिरुद्र जपका फल मिलता है ॥ १२० ॥ व्रतानुष्ठायी जो लोग वीरेश्वरपर व्रतोत्सर्ग इत्यादि करतेहैं, वह सब

निस्सन्देह कोटिगुण होजाताहै ॥ २१ ॥ जिस किसीने वीरेश्वरके आगे आठभी नमस्कार करलिये उसे आठकरोड दण्डवत्प्रणाम करनेका फल होताहै इसमें तनिकभी सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ हे वीर ! मेरे वरदानके प्रभावसे यह वीरेश्वरलिंग समस्त सम्पत्तियोंका (आकर) स्थान होगा इस विषयमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥ इस लिंगके सेवनसे जीतेजी लोगोंको तारकज्ञान मेरी आज्ञासे उत्पन्न होजावेगा, अतएव शुभार्थी लोगोंको उसकी सेवा करनी चाहिए ॥ २४ ॥ (स्कन्दने) कहा अमित्रजित्का पुत्र वह वीर नामक बालक पूर्णमनोरथ होकर इन बातोंके सुननेपर देवदेवको प्रणाम करके फिर

कृताअष्टौनमस्कारायेनवीरेश्वराग्रतः ॥ अष्टकोटिनमस्कारफलंतस्यनसंशयः ॥ २२ ॥ सर्वासांसंपदांस्थानमिदंलिंगंभविष्यति ॥ वीरेश्वरंनसंदेहोवीरमेवरदानतः ॥ २३ ॥ ज्ञानमुत्पत्स्यतेपुंसांतारकाख्यंममाज्ञया ॥ जीवतामेवतत्सेव्यमेतल्लिंगंशुभार्थिभिः ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वापुनःप्राहवीरोमित्रजितःसुतः ॥ प्रणम्यदेवदेवेशंपरिपूर्णमनोरथः ॥ २५ ॥ तीर्थान्येतानिदेवेशयान्युक्तानिममाग्रतः ॥ कृपया पुनरप्येवतदन्यानिवदप्रभो ॥ २६ ॥ आदिकेशवमारभ्यतत्तीर्थाच्चभगीरथात् ॥ येषांश्रवणमात्रेणनिष्पापोजायतेनरः ॥ २७ ॥ इति श्रुत्वामहेशानोमहीपतनयोदितम् ॥ पुनस्तीर्थानिगंगायांवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ १२८ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेवीरेश्वराविर्भावोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

कहनेलगा ॥ २५ ॥ हे देवेश ! मेरे आगे जिन जिन तीर्थोंका वर्णन कियाहै, इनसे भिन्न आदिकेशवसे लेकर भगीरथतीर्थपर्य्यन्त जो जो प्रधान तीर्थ हैं, जिनका नाम सुननेसेभी मनुष्य निष्पाप होजाताहै, हे प्रभो ! कृपाकरके उन सबोंकोभी वर्णन कीजिए ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे उस राजकुमारका कथन सुनकर भगवान् महादेव फिर गंगाके (तटस्थ) तीर्थोंका कीर्तन करनेलगे ॥ १२८ ॥ दोहा—करी बीरने बीरता, बीरेशहिं प्रकटाय । वही धन्य जग जीव जेहि, पर उपकार सोहाय ॥ १ ॥ इति श्रीस्कंदमहापुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

स्कन्दने कहा—हे विप्रवर ! गंगा और वरुणाके पवित्र संगमस्थलसे महादेवने जिन तीर्थोंको बनाया है, उनको श्रवण करो ॥ १ ॥ उस संगममें स्नानकर संगमेश्वरकी पूजाकरनेसे मनुष्य कभी माताके गर्भका संगी नहीं होनेपाता ॥ २ ॥ वहींपर पादोदकतीर्थ है, जहांपर भगवान् विष्णुने मंदराचलसे आकर पहिले पहिल अपने पैरोंको धोयाथा ॥ ३ ॥ उस विष्णुपादोदकतीर्थमें जो कोई व्यतीपात योगपर स्नान तर्पण इत्यादि जलकृत्योंको करता है उसे फिर संसारकी दुर्गतिमें नहीं पडना होता ॥ ४ ॥ काशीमें जो उत्तम जन पादोदकतीर्थमें स्नान एवं आदिकेशवका पूजन करलेताहै उसे संसारवासका दुःख नहीं

स्कंदउवाच ॥।॥ आकर्णयक्षोणिसुरयथास्थाणुरचीकरत् ॥ गंगावरणयोःपुण्यात्संभेदात्तीर्थभूमिकाम् ॥ १ ॥ संगमेतत्रनिष्णातःसंगमेशंसमर्च्यच ॥ नरोनजातुजननीगर्भसंगमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ तत्रपादोदकंतीर्थंयत्रदेवेनशार्ङ्गिणा ॥ आदौपादौक्षालितौतुमंदराच्चागतेन यत् ॥ ३ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेवारिकार्यंकरोतियः ॥ व्यतीपातेननियतंभूयःसांसारिकीगतिः ॥ ४ ॥ कृतपादोदकस्नानःकृतकेशवपूजनः ॥ वीतसंसारवसतिःकाश्यामासीन्नरोत्तमः ॥ ५ ॥ काश्यांसाभूमिरुद्दिष्टाश्वेतद्वीपइतिद्विजैः ॥ तत्रपुण्यार्जनंकृत्वाश्वेतद्वीपाधिपोभवेत् ॥ ६ ॥ ततःपादोदकात्तीर्थात्तीर्थंक्षीराब्धिसंज्ञकम् ॥ तत्रार्जितमहापुण्योवसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ७ ॥ क्षीरोदाद्दक्षिणेभागे तीर्थंशंखाख्यमुत्तमम् ॥ तत्रस्नातोभवेन्नूनंनाशंखादिनिधेःपतिः ॥८॥ अर्वाक्चशंखतीर्थाद्वैचक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ संसारचक्रेनपतेत्तत्तीर्थजलमज्जनात् ॥ ९ ॥ गदातीर्थंतदग्रेतुसंसारगदनाशनम् ॥ तत्रश्राद्धादिकरणात्पश्येद्देवंगदाधरम् ॥ १० ॥

भोगना पडता ॥ ५ ॥ काशीमें ब्राह्मणलोग उस भूमिको श्वेतद्वीप कहते हैं, अतएव जो कोई वहांपर पुण्योपार्जन करता है वह श्वेतद्वीपका स्वामी होताहै ॥ ६ ॥ उस पादोदकतीर्थसे आगे क्षीराब्धिनामक तीर्थ है, वहांपर पुण्यकर्म करनेवाला क्षीरसमुद्रके तीरपर वास करता है ॥ ७ ॥ क्षीरोदतीर्थसे दक्षिणभागमें उत्तम शंखतीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य शंख इत्यादि निधियोंका अधिपति होताहै ॥ ८ ॥ शंखतीर्थके पीछे सर्वोत्तम चक्रतीर्थहै, उस तीर्थके जलमें नहालेनेसे मनुष्य कभी संसारचक्रमें नहीं गिरनेपाता ॥ ९ ॥ उसके आगे (बढकर) संसाररूप गद (रोग) का नाशक गदातीर्थ है, वहांपर श्राद्ध

इत्यादिके करनेसे गदाधर भगवान्का दर्शन मिलजाताहै ॥ १० ॥ उसके आगे पितरोंकी तृप्तिका करनेवाला, और सर्व सम्पत्तिजनक (स्वयं पद्मादेवीका बनाया हुआ) पद्मतीर्थ है, वहांपर स्नान इत्यादिके करनेसे पापोंका क्षय होजाताहै ॥ ११ ॥ उसके अनन्तर महापुण्यप्रद महालक्ष्मीतीर्थ है, वहांपर महालक्ष्मीकी आराधना करनेसे निर्वाणलक्ष्मी प्राप्त होतीहै ॥१२॥ तदनन्तर गारुत्मतीर्थ है, जो संसाररूप गरलका नाशक है, वहांपर उदकक्रियाओंका करनेवाला वैकुंठमें वास पाताहै ॥ १३ ॥ फिर ब्रह्मविद्याका एकमात्र कारण नारदतीर्थ है, वहांपर स्नान करके नारदकेशवके दर्शन करनेसे मुक्तिलाभ होताहै ॥ १४ ॥ उसके दक्षिणओर बडाभक्तिरूप फलका दाता प्रह्लादतीर्थ है, वहांके केवल स्नानहीसे विष्णुका बडा प्यारा होजाताहै ॥ १५ ॥

पद्माकृत्पद्मतीर्थंचतदग्रेपितृतृप्तिकृत् ॥ तत्रस्नानादिकरणात्प्राप्नुयादघसंक्षयम् ॥ ११ ॥ ततस्तीर्थंमहालक्ष्म्यामहापुण्यफलप्रदम् ॥
तत्राभ्यर्च्यमहालक्ष्मींनिर्वाणकमलांलभेत् ॥१२॥ ततोगारुत्मतंतीर्थंसंसारगरनाशनम् ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रवैकुंठेवसतिंलभेत् ॥१३॥
ततोनारदतीर्थंचब्रह्मविद्यैककारणम् ॥ तत्रस्नानेनमुक्तःस्याद्दृष्ट्वानारदकेशवम् ॥ १४ ॥ प्रह्लादतीर्थंतद्याम्येमहाभक्तिफलप्रदम् ॥
तत्रवैस्नानमात्रेणविष्णोःप्रियतरोभवेत् ॥ १५ ॥ अंबरीषंततस्तीर्थंमहापातकनाशनम् ॥ तत्रवैशुभकर्माणोजनानोगर्भभाजनम् ॥१६॥
आदित्यकेशवंनामतदग्रेतीर्थमुत्तमम् ॥ कृताभिषेकस्तत्रापिलभेत्स्वर्गाभिषेचनम् ॥ १७ ॥ दत्तात्रेयस्यतत्रास्तितीर्थंत्रैलोक्यपावनम् ॥
योगसिद्धिंलभेत्तत्रस्नानमात्रेणभावतः ॥ १८ ॥ तदग्रेभार्गवंतीर्थंमहाज्ञानसमर्पकम् ॥ तत्रस्नानविधानेनभवेद्भार्गवलोकभाक् ॥ १९ ॥
ततोवामनतीर्थंचविष्णुसान्निध्यहेतुकम् ॥ तत्रश्राद्धविधानेनमुच्यतेपितृजादृणात् ॥ २० ॥

तब फिर महापातकनाशक अम्बरीषतीर्थ है, वहांपर शुभकर्म करनेवाले लोग कभी गर्भभागी नहीं होते ॥ १६ ॥ उसके आगे आदित्यकेशवनामक उत्तम तीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य स्वर्गराज्यमें अभिषिक्त होजाताहै, ॥ १७ ॥ उसीके निकटमें त्रैलोक्यपावन दत्तात्रेयतीर्थ है, वहांपर भक्तिभावसे केवल स्नान करलेनेहीसे (मनुष्य) योगसिद्धिको प्राप्त करलेताहै ॥ १८ ॥ उससे आगे बढतेही परम ज्ञान समर्पक भार्गवतीर्थ है, वहांपर स्नान विधानसे भार्गवलोकका भागी होताहै ॥१९॥ तदनन्तर जो वामनतीर्थ है वहांपर स्नान करनेसे मनुष्य पितरोंके ऋणसे छूटता और विष्णुके समीप पहुँचताहै ॥२०॥

फिर नरनारायणतीर्थ है जो बडाही शुभप्रद है, वहांके नहानेसे लोगोंको गर्भवास नहीं करना पडता ॥ २१ ॥ उससे दक्षिणओर शुभमय यज्ञवराहतीर्थ है, जहांके नहानेवाले पुरुषोंको राजसूययज्ञका फल ध्रुव करके प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ वहींपर बडा पवित्र विदारनारसिंहनामक तीर्थ है, जहांके केवल एकही बार नहालेनेसे सैकडों जन्मके पातक नष्ट होजातेहैं ॥ २३ ॥ तदनंतर विष्णुलोकका दाता गोपीगोविन्दतीर्थ है, जिसमें स्नान करके विद्वान् जन गर्भवेदनाको फिर नहीं जानसकता ॥ २४ ॥ गोपीगोविन्दतीर्थके दक्षिणभागमें लक्ष्मीनृसिंहतीर्थ है, जहांके नरोत्तमको निर्वाणलक्ष्मीभी वरलेतीहै ॥ २५ ॥

नरनारायणाख्यंहिततस्तीर्थंशुभप्रदम् ॥ तत्तीर्थमज्जनात्पुंसांगर्भवासःसुदुर्लभः ॥ २१ ॥ यज्ञवाराहतीर्थंचततोदक्षिणतःशुभम् ॥
यत्रस्नातस्यवैपुंसांराजसूयफलंध्रुवम् ॥२२॥ विदारनारसिंहाख्यंतीर्थंतत्रास्तिपावनम् ॥ यत्रैकस्नानतोनश्येदघंजन्मशतार्जितम् ॥२३॥
गोपीगोविंदतीर्थंचततोवैष्णवलोकदम् ॥ यस्मिन्स्नातोनरोविद्वान्नविंद्याद्गर्भवेदनम् ॥ २४ ॥ लक्ष्मीनृसिंहतीर्थंचगोपीगोविंददक्षिणे ॥
निर्वाणलक्ष्म्यायत्रत्योव्रियतेतुनरोत्तमः ॥२५॥ तद्दक्षिणायांकाष्ठायांशेषतीर्थमनुत्तमम् ॥ महापापौघशेषोपिनतिष्ठेद्यन्निमज्जनात् ॥२६॥
शंखमाधवतीर्थंचतद्याम्यांदिशिचोत्तमम् ॥ तत्तीर्थसेवनान्नृणांकुतःपापभयंमहत् ॥ २७ ॥ ततोपिपावनतरंतीर्थंतत्क्षणसिद्धिदम् ॥
नीलग्रीवाख्यमतुलंतत्स्नायीसर्वदाशुचिः ॥ २८ ॥ तत्रोद्दालकतीर्थंचसर्वाघौघविनाशनम् ॥ ददातिमहतीमृद्धिंस्नानमात्रेणतन्नृणाम् ॥
॥ २९ ॥ ततःसांख्याख्यतीर्थंचसांख्येश्वरसमीपतः ॥ तत्तीर्थसेवनात्पुंसांसांख्ययोगःप्रसीदति ॥ ३० ॥

उससे दक्षिणदिशामें एक बडाही उत्तम शेषतीर्थ है जिसके स्नानहीसे घोर पापसमूहका शेष नहीं बँचने पाता ॥ २६ ॥ उसकेभी दक्षिण उत्तम शंखमाधवतीर्थहै, उस तीर्थके सेवन करनेसे फिर लोगोंको संसारका बडा भय कहां रहजाताहै ॥ २७ ॥ उससेभी परमपवित्र, एवं तत्क्षणही सिद्धिदायक, अतुलनीय नीलग्रीव नामक तीर्थ है वहांका नहानेवाला सर्वदैव पवित्र रहताहै ॥ २८ ॥ वहींपर सर्व पापनाशक उद्दालक तीर्थ है, जो केवल स्नानही करनेसे लोगोंको बडीभारी समृद्धि देदेताहै ॥ २९ ॥ तदनंतर सांख्येश्वरके समीपहीमें सांख्यतीर्थ है, उस तीर्थके सेवन करनेसें लोगोंका सांख्ययोग सिद्ध होजाताहै ॥ ३० ॥

उसके निकटहीमें स्वर्लीनेश्वरके पास स्वर्लीनतीर्थ है जो स्वर्गलोकसे आकर वहांपर स्वयं भगवान् उमापतिके लीन होरहनेसे स्वर्लीननामक प्रसिद्ध है ॥ ३१ ॥ वहांपर श्रद्धापूर्वक स्नान दान ब्राह्मणभोजन जप होम और पूजन इत्यादि करनेसे सब कुछ अक्षय होजाताहै ॥ ३२ ॥ उसके समीपहीमें परम पावन महिषासुरतीर्थ है, जहांपर उस दैत्यराजने तपस्या करके समस्त देवतोंको जीताथा ॥ ३३ ॥ उस तीर्थका सेवक आजतक न तो कभी शत्रुओंसे हारता, न बडेसे बडे पातकोंसे दबताहै, वरं इच्छितफलको प्राप्त करताहै ॥ ३४ ॥ उसके समीपहीमें (बाणासुरको) सहस्रभुजाओंका देनेवाला बाणतीर्थ है, वहांके नहा

स्वर्लोकाद्यत्रसंलीनःस्वयंदेवउमापतिः॥ अतःस्वर्लीनतीर्थंचस्वर्लीनेश्वरसन्निधौ ॥ ३१ ॥ तत्रस्नानेनदानेनश्रद्धयाद्विजभोजनैः ॥ जपहोमार्चनैःपुंसामक्षयंसर्वमेवहि ॥ ३२ ॥ महिषासुरतीर्थंचतत्समीपेतिपावनम् ॥ यत्रतप्त्वासदैत्येंद्रोविजिग्येसकलान्सुरान् ॥ ३३ ॥ तत्तीर्थसेवकोद्यापिनारिभिःपरिभूयते ॥ नपातकैर्महद्भिश्चप्रार्थितंचफलंलभेत् ॥ ३४ ॥ बाणतीर्थंचतस्याराात्तत्सहस्रभुजप्रदम् ॥ तत्रस्नातोनरोभक्तिंप्राप्नुयाच्छांभवींस्थिराम् ॥ ३५ ॥ गोप्रतारेश्वरंनामतदग्रेतीर्थमुत्तमम् ॥ अपुत्रोपितरेद्यत्रस्नातोवैतरणींसुखम् ॥ ३६ ॥ तीर्थंहिरण्यगर्भाख्यंतद्याम्येसर्वपापहृत् ॥ तत्रस्नातोहिरण्येनमुच्यतेनकदाचन ॥ ३७ ॥ ततःप्रणवतीर्थंचसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ जीवन्मुक्तोभवेत्तत्रस्नानमात्रेणमानवः ॥ ३८ ॥ ततःपिशंगिलातीर्थंदर्शनादपिपापहृत् ॥ मुनेममाधिष्ठानंवैतदगस्तेऽतिसिद्धिदम् ॥ ३९ ॥ स्नात्वापिशंगिलातीर्थेदत्त्वादानंचकिंचन ॥ किंशोचतिकृतात्पापादन्यत्रापिमृतोयदि ॥ ४० ॥

नेसे मनुष्य शिवकी दृढभक्तिको प्राप्त होजाता है ॥ ३५ ॥ उसके आगे चलकर उत्तम गोप्रतार तीर्थ है, जहांपर स्नान करनेसे अपुत्र पुरुषभी सुखपूर्वक वैतरणीके पार होजाताहै ॥ ३६ ॥ उसके दक्षिणभागमें हिरण्यगर्भनामक तीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य कभी सुवर्णसे हीन नहीं होता ॥ ३७ ॥ तदनंतर समस्त तीर्थोंसे परमोत्तम प्रणवतीर्थ है, वहांपर केवल स्नान करनेहीसे मनुष्य जीवन्मुक्त होजाताहै ॥ ३८ ॥ फिर तो पिशंगिलातीर्थ है, जो दर्शन करनेसेभी पापोंको हरलेता है, (हे अगस्त्यमुने !) वह मेरे निज रहनेका परम सिद्धिप्रद स्थान है ॥ ३९ ॥ पिशंगिलातीर्थमें स्नान और कुछ

थोडा बहुत दान करनेसे यदि वह अन्यत्र कहींपर मृत्युको प्राप्त हो तो पापोंसे कोई शोच नहीं करना पडता ॥ ४० ॥ जो कोई पिशंगिलातीर्थमें नहाकर मेरी पूजा करेगा वह सूर्यके समान तेजस्वी होकर मेरा मित्र बनजावेगा ॥ ४१ ॥ उसके पासहीमें पिलपिलातीर्थ है जो त्रिविष्टपलिंगकी दृष्टि पडनेसे वहांके समस्त भूभागको निर्मलकरताहुआ मनके मलकोभी शुद्ध करदेता है ॥ ४२ ॥ वहांपर श्राद्धादिकके करने और दीन और अनाथ लोगोंके संतुष्ट करनेसे मनुष्य बडी स्थिर बहुत भारी सम्पत्तिको पाताहै ॥ ४३ ॥ तदनंतर नागेश्वरतीर्थ है, जो बडेसे पापोंका शोधक है, उस तीर्थमें मज्जनकरनेहीसे समस्त पापोंका क्षय होजाताहै ॥ ४४ ॥ उसके दक्षिणभागमें परमपवित्र और सर्वोत्तम कर्णादित्यनामक तीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य

योवैपिशंगिलातीर्थेस्नात्वामामर्चयिष्यति ॥ भविष्यतिसमेमित्रंमित्रतेजःसमप्रभम् ॥ ४१ ॥ तत्रत्रैविष्टपीदृष्टिर्निर्मलीकृतपुष्कलम् ॥ तीर्थंपिलिपिलाख्यंवैमनोमलविनाशनम् ॥ ४२ ॥ तत्रश्राद्धादिकरणाद्दीनानाथप्रतर्पणात् ॥ महतींश्रियमाप्नोतिमानवोतीवनिश्च लाम् ॥ ४३ ॥ ततोनागेश्वरंतीर्थंमहाघपरिशोधनम् ॥ तत्तीर्थमज्जनादेवभवेत्सर्वाघसंक्षयः ॥ ४४ ॥ तद्दक्षिणेमहापुण्यंकर्णादित्याख्य मुत्तमम् ॥ तीर्थंयत्राप्लुतोमर्त्योभास्करींश्रियमावहेत् ॥ ४५ ॥ ततोभैरवतीर्थंचमहाघौघक्षयप्रदम् ॥ चतुर्थोदयकरंसर्वविघ्ननिवार णम् ॥४६॥ भौमाष्टम्यांतत्रनरःस्नात्वासंतर्पयेत्पितॄन् ॥ दृष्ट्वाचभैरवंकालंकलिंकालंचसंजयेत् ॥ ४७ ॥ तीर्थंखर्वनृसिंहाख्यंतीर्थाद्भै रवतःपुरः ॥ तत्रस्नातस्यवैपुंसःकुतोघजनितंभयम् ॥ ४८ ॥ मृकंडस्यमुनेस्तीर्थंतद्याम्यामतिनिर्मलम् ॥ तत्रस्नानेनमर्त्यानांनापा यमरणंक्वचित् ॥ ४९ ॥ ततःपंचनदाख्यंवैसर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ तीर्थंयत्रनरःस्नात्वानसंसारीपुनर्भवेत् ॥ ५० ॥

सूर्यकी नाई तेजस्वी होजाताहै ॥ ४५ ॥ फिर महापातकोंका क्षय करदेनेवाला भैरवतीर्थ है, जो कि चारों पुरुषार्थोंका दाता और सब विघ्नोंका निवारक है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य वहांपर भौमवारकी अष्टमीको स्नानके उपरान्त पितरोंका तर्पण और कालभैरवका दर्शन करै वह काल और कलि दोनोंहीको जीत लेता है ॥ ४७ ॥ भैरवतीर्थके आगे खर्वनृसिंह तीर्थ है, वहांके नहानेवाले पुरुषको पापका भय कहां रहजाताहै ? ॥ ४८ ॥ उसके दक्षिणभागमें अति निर्मल मार्कण्डेय तीर्थ है वहांके नहानेसे अकालमृत्युका भय कहीं नहीं रहजाता ॥ ४९ ॥ तत्पश्चात पंचनदतीर्थ है, जिसका समस्त तीर्थ सेवन करतेहैं,

वहांके स्नान करनेसे मनुष्य फिर कभी संसारी नहीं होता ॥ ५० ॥ ब्रह्मांडोदरवर्ती जितने तीर्थ हैं वे सब कार्तिकमासमें चारोंओरसे अपने पापपुंजको छुडानेके लिये वहां आते हैं ॥ ५१ ॥ जहांपर समस्त तीर्थ श्रेष्ठ अपनी निर्मलताके लिये प्रत्येक दशमीसे तीन दिनतक निवास करते हैं ॥ ५२ ॥ यद्यपि काशीके मध्यमें तो पद पदपर बहुतेरे तीर्थ पडे हैं परन्तु पंचनदतीर्थकी महिमा कहींभी किसी तीर्थको नहीं प्राप्त होसकती ॥ ५३ ॥ वहांपर जिन लोगोंने कार्तिकमासका एक दिन भी जप, होम, पूजन, और दानसे सफल किया, वे सर्वथा कृतकृत्य होजाते हैं ॥ ५४ ॥ यदि एक ओर संसारभरके समस्त तीर्थ और दूसरी ओर यह पंचनद तीर्थ रखकर तौलाजावे तो भी वे सब इसकी कलामात्रकी तुल्यता नहीं करसकते ॥ ५५ ॥ बुद्धिमान्

ब्रह्मांडोदरवर्तीनियानितीर्थानिसर्वतः ॥ ऊर्जेयत्रसमायांतिस्वाघौघपरिनुत्तये ॥ ५१ ॥ सर्वदायत्रसर्वाणिदशम्यादिदिनत्रयम् ॥ तिष्ठंतितीर्थवर्याणिनिजनैर्मल्यहेतवे ॥ ५२ ॥ भूरिशःसर्वतीर्थानिमध्येकाशिपदेपदे ॥ परंपांचनदःकैश्चिन्महिमानापिकुत्रचित् ॥ ५३ ॥ अप्येकंकार्तिकस्याहस्तत्रवैसफलीकृतम् ॥ जपहोमार्चनादानैःकृतकृत्यास्तएवहि ॥ ५४ ॥ सर्वाण्यपिचतीर्थानियुगपत्तुलितान्यपि ॥ नाधिजग्मुःपंचनद्याःकलायाअपितुल्यताम् ॥ ५५ ॥ स्नात्वापांचनदेतीर्थेदृष्ट्वावैबिंदुमाधवम् ॥ नजातुजायतेधीमाञ्जननीजठराजिरे ॥ ५६ ॥ ततोज्ञानह्रदंतीर्थंजडानामपिजाड्यहृत् ॥ तत्रस्नातोनरोजातुज्ञानभ्रंशंनचाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ तत्रज्ञानह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाज्ञानेश्वरंनरः ॥ ज्ञानंतदधिगच्छेद्वैयेननोबाध्यतेपुनः ॥ ५८ ॥ ततोस्तिमंगलंतीर्थंसर्वामंगलनाशनम् ॥ तत्रावगाहनंकृत्वाभवेन्मंगलभाजनम् ॥ ५९॥ अमंगलानिनश्येयुर्भवेयुर्मंगलानिच ॥स्नातुर्वैमंगलेतीर्थेनमस्कर्तुश्चमंगलम् ॥ ६० ॥

जन यदि पंचनदतीर्थमें स्नान करके भगवान् बिन्दुमाधवका दर्शन करलेवे तो फिर कभी माताकी कोखमें नहीं जानेपाता ॥५६॥ तदनंतर जडजीवोंकी जडताका हरणकरनेवाला ज्ञानह्रद तीर्थ है, वहांके स्नान करनेसे कभी ज्ञानभ्रंश नहीं होता ॥ ५७ ॥ उस ज्ञानह्रदमें नहाकर ज्ञानेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यको वह ज्ञान प्राप्त होजाताहै जिससे वह फिर कभी बाधाको नहीं पाता ॥ ५८ ॥ उसके आगे समस्त अमंगलोंका नाशक मंगलतीर्थ है, वहांके स्नान करनेसे मनुष्य मंगलका भाजन होजाता है ॥ ५९ ॥ उस मंगलतीर्थमें नहानेवालेके अमंगलोंका तो नाश होजाता है, और बहुतेरे मंगल होने

लगते हैं, एवं नमस्कार करनेवालेका भी मंगल ही होता है ॥ ६० ॥ उसके आगे बढते ही मलनाशक गभस्तिमालीका तीर्थ है, वहांपर नहाकर गभस्तीश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य विमल होजाता है ॥ ६१ ॥ वहींपर मखेश्वरके पासमें मखतीर्थ है, वहांके नहानेसे उत्तम जन यज्ञोंके करनेका फलभागी होजाता है ॥ ६२ ॥ उसके समीपहीमें परमज्ञानका कारण एक बिन्दुतीर्थ है, वहांपर श्राद्ध इत्यादिके करनेसे बडा भारी पुण्य होताहै ॥ ६३ ॥ उससे दक्षिण दिशामें पिप्पलाद मुनिका तीर्थ विराजमान है, वहांपर शनैश्चरके दिन स्नानकर पिप्पलेश्वरका दर्शन करके ॥ ६४ ॥ "अश्वत्थ" इत्यादि

मयूखमालिनस्तीर्थंतदग्रेमलनाशनम् ॥ तत्राप्लुतोगभस्तीशंविलोक्यविमलोभवेत् ॥ ६१ ॥ मखतीर्थंतुतत्रैवमखेश्वरसमीपतः ॥ मखजं पुण्यमाप्नोतितत्रस्नातोनरोत्तमः ॥ ६२ ॥ तत्पार्श्वेबिंदुतीर्थंचपरमज्ञानकारणम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वालभेत्सुकृतमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ पिप्पलादस्यचमुनेस्तीर्थंतद्याम्यदिक्स्थितम् ॥ स्नात्वाशनेर्दिनेतत्रदृष्ट्वावैपिप्पलेश्वरम् ॥ ६४ ॥ पिप्पलंतत्रसेवित्वाअश्वत्थइतिमंत्रतः ॥ शनिपीडांनलभतेदुःस्वप्नंचापिनाशयेत् ॥ ६५ ॥ ततस्ताम्रवराहाख्यंतीर्थंचैवातिपावनम् ॥ यत्रस्नानेनदानेननमज्जेदघसागरे ॥६६॥ तदग्रेकालगंगाचकलिकल्मषनाशिनी ॥ तस्यांस्नात्वानरोधीमांस्तत्क्षणान्निरघोभवेत् ॥ ६७ ॥ इंद्रद्युम्नंमहातीर्थमिंद्रद्युम्नेश्वराग्रतः ॥ तोयकृत्यंतत्रकृत्वालोकमैंद्रमवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ ततस्तुरामतीर्थंचवीररामेश्वराग्रतः ॥ तत्तीर्थस्नानमात्रेणवैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥६९॥ ततऐक्ष्वाकवंतीर्थंसर्वाघौघविनाशनम् ॥ तत्रस्नानेनपूतात्माजायतेमनुजोत्तमः ॥ ७० ॥

मंत्रके द्वारा पीपल वृक्षके सेवन करनेसे शनिग्रहकी पीडा नहीं होती और दुःस्वप्नोंका भी नाश होजाता है ॥ ६५ ॥ तदनंतर परम पावन ताम्रवराहनामक तीर्थ है, जहांके स्नान और दान करनेसे पापसागरमें नहीं डूबना पडता ॥ ६६ ॥ उसके आगे कलिकल्मषनाशिनी कालगंगा है, बुद्धिमान् नर उसमें नहातेही उसी क्षणमें निष्पाप होजाता है ॥ ६७ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरके सन्मुख ही इन्द्रद्युम्ननामक महातीर्थ है वहांपर जलक्रियाके करनेसे इन्द्रलोक प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥ हे वीर ! तदनंतर रामेश्वरके आगे रामतीर्थ है; उसमें केवल स्नान करनेहीसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है ॥ ६९ ॥ फिर समस्त

अघसमूहोंका नाशक इक्ष्वाकुतीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य पवित्रात्मा होजाताहै ॥ ७० ॥ उसी प्रांतमें मरुत्तेश्वरके पास मरुत्ततीर्थ है वहांपरभी नहाकर उस लिंगकी पूजा करनेसे बडा ऐश्वर्य मिलता है ॥ ७१ ॥ तब फिर, महापातकनाशन मैत्रावरुण तीर्थ है, वहांपर पिंडदान करनेसे पितरोंका बडा प्यारा होताहै ॥ ७२ ॥ अनन्तर अग्नीश्वरके आगे बडा विमल अग्नितीर्थ है, उस तीर्थमें स्नान करनेसे अग्निलोकमें चलाजाता है ॥७३॥ वहींपर अंगारेश्वरके समीपमें अंगारतीर्थ है, वहांपर अंगारचतुर्थीके दिन स्नान करनेसे निष्पापता मिलजाती है ॥ ७४ ॥ फिर आगे बढकर कलशेश्वरके पासमें वैकलतीर्थ

मरुत्ततीर्थंतत्प्रांतेमरुत्तेश्वरसन्निधौ ॥ तत्रस्नात्वातमभ्यर्च्येशंमहदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ मैत्रावरुणतीर्थंचततःपातकनाशनम् ॥ तत्रपिंडप्रदानेनपितॄणांभवतिप्रियः ॥ ७२ ॥ ततोग्नितीर्थंविमलमग्नीशपुरतोमहत् ॥ अग्निलोकमवाप्नोतितत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ ७३ ॥ अंगारतीर्थंतत्रैवअंगारेश्वरसन्निधौ ॥ तत्रांगारचतुर्थ्यांतुस्नात्वानिष्पापतामियात् ॥ ७४ ॥ ततोवैकलतीर्थंचकलशेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वातल्लिंगमभ्यर्च्यकलिकालान्नबिभ्यति ॥ ७५ ॥ चंद्रतीर्थंचतत्रैवचंद्रेश्वरसमीपतः ॥ तत्रस्नात्वार्च्यचंद्रेशंचंद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ तदग्रेवीरतीर्थंचवीरेश्वरसमीपतः ॥ यदुक्तंप्राक्तवपुरस्तीर्थानामुत्तमंपरम् ॥ ७७ ॥ विघ्नेशतीर्थंचततःसर्वविघ्नविघातकृत् ॥ जातुचित्तत्रसंस्नातोनविघ्नैरभिभूयते ॥ ७८ ॥ हरिश्चंद्रस्यराजर्षेस्ततस्तीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुनसत्याच्च्यवतेक्वचित् ॥७९॥ हरिश्चंद्रस्यतीर्थेतुयच्छ्रेयःसमुपार्जितम् ॥ तदक्षयफलंवीरइहलोकेपरत्रच ॥८० ॥

है, वहां नहाकर उस लिंगके पूजन करनेसे कलिकालका कुछ डर नहीं रहजाता ॥ ७५ ॥ वहींपर चन्द्रेश्वरके निकटमें चन्द्रतीर्थ है, जहांपर स्नानकर चन्द्रेश्वरके पूजन करनेसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ उसके आगे वीरेश्वरके समीपमें वीरतीर्थ है, जिसको मैं पहिलेही तुमसे समस्त तीर्थोंसे परम उत्तम कहचुकाहूं ॥ ७७ ॥ तदनन्तर सर्व विघ्नविघातक विघ्नेश्वरतीर्थ है, वहांके स्नान करनेसे कभी कोई विघ्नोंसे पराभूत नहीं होता ॥ ७८ ॥ उसके आगे राजर्षि हरिश्चन्द्रका उत्तम तीर्थ है, जहांके स्नानकरनेसे मनुष्य कहींभी सत्यसे च्युत नहीं होनेपाता ॥ ७९ ॥ हे वीर ! हरिश्चन्द्रके तीर्थमें जो कुछ

सत्कर्म कियाजाता है वह इस लोक और परलोकमेंभी अक्षय फल देताहै ॥ ८० ॥ तदनन्तर पर्वतेश्वरके पासमें पर्वत तीर्थ है, वहां चाहे पर्वपर नहाय चाहे विना पर्वके स्नान करे उसे समस्त पर्वोंमें स्नान करनेका फल मिलजाता है ॥ ८१ ॥ वहींपर सब प्रकारके विषोंका हरनेवाला कम्बलाश्वतर तीर्थ है, वहांके नहानेसे मनुष्य गीतविद्यामें विशारद होजाताहै ॥ ८२ ॥ तदनंतर समस्त विद्याओंका संपादक सारस्वत तीर्थ है, वहांपर देवता और ऋषियोंके साथ पितरलोग वास करते हैं ॥ ८३ ॥ वहींपर समस्त शक्तियोंसे समन्वित उमातीर्थ है उसमें स्नानमात्र करलेनेसे उमालोक अवश्यमेव प्राप्त होजाता है॥ ८४॥ हे वीर ! उसके पासहीमें त्रैलोक्यभरमें सर्वत्र विख्यात, और त्रैलोक्य मात्रके उद्धार करदेनेमें समर्थ, परमश्रेष्ठ, मणिकर्णिकानामक तीर्थ है ॥ ८५ ॥

ततःपर्वततीर्थंचपर्वतेशसमीपतः ॥ सर्वपर्वफलंतस्यस्नात्वापर्वण्यपर्वणि ॥ ८१ ॥ कंबलाश्वतरंतीर्थंतत्रसर्वविषापहम् ॥ तत्रस्नातोभवेन्मर्त्योगीतविद्याविशारदः ॥ ८२ ॥ ततःसारस्वतंतीर्थंसर्वविद्योपपादकम् ॥ तिष्ठेयुःपितरस्तत्रसहदेवर्षिमानवैः ॥ ८३ ॥ उमातीर्थंतुतत्रैवसर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ औमेयलोकप्राप्त्यैस्यात्स्नानमात्रेणनिश्चितम् ॥ ८४ ॥ ततस्त्रिलोकीविख्यातंत्रिलोक्युद्धरणक्षमम् ॥ तीर्थश्रेष्ठतरंवीरयदाख्यामणिकर्णिका ॥८५॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंतदादौविष्णुनाकृतम् ॥ तदाख्याकर्णनादेवसर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥८६॥ स्वर्गौकसस्त्रिसंध्यंवैजपंतिमणिकर्णिकाम् ॥ यन्नामग्रहणंपुंसांश्रेयसेपरमायहि ॥ ८७ ॥ यैःश्रुतायैःस्मृतावीरयैर्दृष्टामणिकर्णिका ॥ तएवकृतिनोलोकेकृतकृत्यास्तएवहि ॥ ८८ ॥ त्रिलोकेयेजपंतीहमानवामणिकर्णिकाम् ॥ जपामितानहंवीरत्रिकालंपुण्यकर्मणः ॥८९॥ इष्टंतेनमहायज्ञैःसहस्रशतदक्षिणैः ॥ पंचाक्षरीमहाविद्यायेनोक्तामणिकर्णिका ॥ ९० ॥

पहिले तो उसे भगवान् विष्णुने चक्रपुष्करिणीतीर्थ बनाया उसके केवल नामही सुनलेनेसे समग्र पाप छूटजाते हैं ॥ ८६ ॥ स्वर्गवासी देवतागण त्रिकाल मणिकर्णिकाको जपते रहते हैं इसीसे उसका नाम लेनेसे मनुष्यमात्रका कल्याण होता है ॥ ८७ ॥ हे वीर ! जिनने मणिकर्णिकाको सुना, स्मरण किया, अथवा देखलिया, इस मर्त्यलोकमें वेही लोग सुकृती और कृतार्थ हैं ॥ ८८ ॥ हे राजन् ! इस त्रैलोक्यभरमें जो लोग मणिकर्णिकाको जपते हैं, उन पुण्यकर्मा लोगोंको मैंभी त्रिकालमें जपता रहताहूं ॥ ८९ ॥ जो कोई " मणिकर्णिका " इस पंचाक्षरी महाविद्याको मुखसे उच्चारण करता है, उसे

शतसहस्र दक्षिणाओंसे परिपूर्ण असंख्य महायज्ञोंके करनेका फल प्राप्त होजाताहै ॥ ९० ॥ हे वीर ! मणिकर्णिकापर पहुँचकर जिस पुण्यकर्माने मेरा पूजन करदिया, वह बडेसे बडे दानोंको करचुका, यह निश्चितहै ॥ ९१ ॥ गयातीर्थमें मधु और पायस आदिसे पितरोंके श्राद्ध करनेका जो फल है, मणिकर्णिकाके जलसे तर्पण करनेमेंभी वही फल प्राप्त होताहै ॥ ९२ ॥ जिसने शुद्धबुद्धि होकर मणिकर्णिकाका जलपान किया, उसे पुनरावृत्तिके कारण सोमपान करनेका कौन प्रयोजनहै ? ॥ ९३ ॥ बडे बडे पर्वोंपर महातीर्थोंमें अनेकबार स्नान करनेसे जो फल मिलताहै, अथवा बहुतेरे यज्ञोंके अवभृथ स्नान करनेका जो पुण्यहै, एकबार मणिकर्णिकाके स्नान करनेसेभी वही फल प्राप्त होताहै ॥ ९४ ॥ जिन लोगोंने सुवर्ण पुष्प और रत्नोंके द्वारा मणिक

महादानानिदत्तानितेनवैपुण्यकर्मणा ॥ येनाहमर्चितोवीरसंप्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ९१ ॥ मणिकर्ण्यंबुभिर्येनतर्पिताःप्रपितामहाः ॥
तेनश्राद्धानिदत्तानिगयायांमधुपायसैः ॥९२॥ मणिकर्णीजलंयेनसंपीतंशुद्धबुद्धिना ॥ किंतस्यसोमपानैस्तैःपुनरावृत्तिलक्षणैः ॥९३॥
तेस्नाताःसर्वतीर्थेषुमहापर्वसुभूरिशः ॥ तथाचसर्वावभृथैर्यैःस्नातामणिकर्णिका ॥ ९४ ॥ तैःसुराःपूजिताःसर्वेब्रह्मविष्णुमुखामखैः ॥
यैःस्वर्णकुसुमैरत्नैरर्चितामणिकर्णिका ॥९५॥ अहंतेनोमयासार्धंदीक्षांसंप्राप्यशांभवीम् ॥ अर्चितःप्रत्यहंयेनपूजितामणिकर्णिका ॥९६॥
तपांसितेनतप्तानिशीर्णपर्णादिनाचिरम् ॥ सेविताश्रद्धयायेनश्रीमतीमणिकर्णिका ॥ ९७ ॥ दत्त्वादानानिभूरीणिमखानिष्ट्वातुभूरिशः ॥
चिरंतप्त्वाप्यरण्येषुस्वर्गैश्वर्यान्महींपुनः ॥९८॥ विपुलेत्रमहीपृष्ठेपंचक्रोश्यांमनोहरा ॥ संश्रितामणिकर्णीयैस्तेयाताश्चानिवर्तकाः ॥९९॥

र्णिकाका पूजन किया उनका क्या कहनाहै ? वे लोग तो यज्ञोंके द्वारा ब्रह्मा और विष्णु इत्यादि सब देवतोंकी पूजाका फल प्राप्तही करलेतेहैं ॥ ९५ ॥ जिस किसीने प्रतिदिन मणिकर्णिकाकी पूजाकी, वह तो शैवी दीक्षा पाकर पार्वतीके सहित मेरी अर्चना करचुका ॥ ९६ ॥ जो कोई श्रद्धापूर्वक श्रीमती मणिकर्णिकाको सेवताहै, उसे बहुत दिनोंतक सूखे पत्तोंके भोजनकी तपस्याका फल प्राप्त होताहै ॥ ९७ ॥ जो कोई बडे बडे दानोंको कर, बहुतेरे यज्ञोंको समाप्त कर, एवं बडे घोर जंगलोंमें बहुत दिनतक कठोर तपस्याके फलसे स्वर्गका ऐश्वर्य भोगकर जब फिर पृथिवीपर आतेहैं तब ॥ ९८ ॥ इस विपुल

भूपृष्ठपर पंचक्रोशीके भीतर परममनोहारिणी मणिकर्णिकाका आश्रय कर पातेहैं, और वेही लोग मरनेपर पुनरावृत्तिके दुःखसे छूट जाते हैं ॥ ९९ ॥ मेरी समझमें दान, व्रत, यज्ञ और तपस्याओंका एकमात्र यही फलहै जो (अन्तमें) मणिकर्णिका प्राप्त होजावे ॥ १०० ॥ यह श्रीमती मणिकर्णिका साक्षात् मोक्षलक्ष्मी है, इसकी समग्र महिमाको प्रायः मैं भी नहीं जान सकाहूं ॥ १ ॥ मणिकर्णिकाके दक्षिण परमप्रधान पाशुपततीर्थ, रुद्रवासतीर्थ, और विश्वतीर्थ विराजमान है, तदनन्तर ॥२॥ रमणीय और उत्तम मुक्तितीर्थ, अविमुक्ततीर्थ, तारकतीर्थ, स्कन्दतीर्थ, एवं ढुंढितीर्थ अवस्थित है ॥३॥

दानानांचव्रतानांचक्रतूनांतपसामपि ॥ इदमेवफलंमन्येयदाप्यामणिकर्णिका ॥ १०० ॥ मोक्षलक्ष्मीरियंसाक्षाच्छ्रीमतीमणिकर्णिका ॥ प्रायोस्यामहिमानंवैनवेद्म्यहमपिस्फुटम् ॥१॥ अवाच्यांमणिकर्ण्याश्चतीर्थंपाशुपतंपरम् ॥ तीर्थंतुरुद्रवासाख्यंविश्वतीर्थमतःपरम् ॥ २ ॥ मुक्तितीर्थंततोरम्यमविमुक्तमथोत्तमम् ॥ तीर्थंचतारकंस्कांदंढुंढेस्तीर्थंततोपिच ॥ ३ ॥ भवानेयमथैशानंज्ञानतीर्थमथोत्तमम् ॥ नंदितीर्थं विष्णुतीर्थंतीर्थंपैतामहंततः ॥ ४ ॥ नाभितीर्थमिदंचैवब्रह्मनालमतःपरम् ॥ ततोभागीरथंतीर्थंयत्तवाग्रेपुराकथि ॥ ५ ॥ तीर्थान्युत्तरवाहिन्यांस्वर्धुन्यांकाशिसन्निधौ ॥ संत्यनेकानिपुण्यानिमयोक्तान्यल्पशःपुनः ॥ ६ ॥ तत्रापिनितरांश्रेष्ठापंचतीर्थीनृपांगज ॥ यस्यां स्नात्वानरोभूयोगर्भवासंनसंस्मरेत् ॥ ७ ॥ प्रथमंचासिसंभेदंतीर्थानांप्रवरंपरम् ॥ ततोदशाश्वमेधाख्यंसर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ ८ ॥ ततःपादोदकंतीर्थमादिकेशवसन्निधौ ॥ ततःपंचनदंपुण्यंस्नानमात्रादघौघहृत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर भवानीतीर्थ, ईशानतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, नन्दितीर्थ, विष्णुतीर्थ और पितामहतीर्थ सुशोभितहै ॥ ४ ॥ उसके पश्चात् नाभितीर्थब्रह्मनालहै उसके आगे वही भगीरथतीर्थ जिसका वर्णन मैं तुमसे पहिलेही कहचुकाहूं ॥ ५ ॥ काशीके भीतर उत्तरवाहिनी गंगामें बहुतेरे पवित्रतीर्थ पडेहैं, पर मैंने तो थोडेहीसे तुमसे कहदिये हैं ॥ ६ ॥ हे नृपनन्दन ! इन सबोंमें पंचतीर्थही सबोंसे श्रेष्ठहै, जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य फिर कभी गर्भवासके दुःखको नहीं स्मरण करताहै ॥ ७ ॥ पहिले तो सब तीर्थोंमें प्रधान असिसंगमहै, तब फिर समस्ततीर्थोंसे सेवित दशाश्वमेध अवस्थितहै ॥ ८ ॥ तदनन्तर आदि

केशवके समीपमें पादोदक तीर्थ है, फिर समस्त पापौघनाशक, पवित्र पंचनद (पंचगंगा) तीर्थहै ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! इन चारों तीर्थोंकापंच (प्रधान) मणिकर्णिकातीर्थ है जो मन और इंद्रियोंकोभी शुद्ध करदेताहै ॥ ११० ॥ पर्वोंपर नित्यही मैंभी ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र इत्यादि देवता और ऋषियोंके साथ यहींपर स्नान करताहूं ॥ ११ ॥ इसी कारणसे स्वर्गवासी और पातालवासी लोग सर्वदैव वेदसम्मत इस गाथा (कहावत) को कहा करतेहैं कि ॥ १२॥ "यह बात सर्वथा सत्यहै कि, ब्रह्मांड गोलकमें मणिकर्णिकाके समान कोईभी तीर्थ नहीं है, यही सत्य सत्य है" ॥ १३ ॥ काशीके पंचतीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्यको पांचभौतिक शरीर नहीं धारण करना पडता और जो कदाचित् शरीरधारी हुआभी तो साक्षात् पंचवदन शिवही होजाताहै ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे

एतेषामपितीर्थानांचतुर्णामपिसत्तम ॥ पंचमंमणिकर्ण्याख्यंमनोवयवशुद्धिदम् ॥ ११० ॥ अहंस्नाम्यत्रसततमुमयासहपर्वसु ॥ ब्रह्मणा विष्णुनासार्धंसहेंद्रादिसुरर्षिभिः ॥ ११ ॥ अतएवात्रगीयेतगाथेयंश्रुतिसंमता ॥ नागलोककृतावासैःस्वर्गौकोभिश्चसंततम् ॥ १२ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वमिदंवचः ॥ मणिकर्णीसमंतीर्थंनास्तिब्रह्मांडगोलके ॥ १३ ॥ पंचतीर्थ्यांनरःस्नात्वानदेहंपांचभौतिकम् ॥ गृह्णातिजातुचित्काश्यांपंचास्योवाथजायते ॥१४॥ इतिदत्त्वावरान्देवोवीरस्यांतर्दधेहरः ॥ सचवीरोपिवीरेशंप्राच्यर्प्राप्तःसमीहितम्॥१५॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ तीर्थाध्यायमिमंपुण्यमगस्तेयोनिशामयेत् ॥ तस्याघंसंक्षयंयायाद्यदपिजन्मशतार्जितम् ॥ १६ ॥ इतिवीरेश्वरा ख्यानंतीर्थाख्यानप्रसंगतः ॥ कथितंतेपुरागस्तेकामेशंकथयाम्यतः ॥ ११७ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धेवीरेश्वराख्यानंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ॥ छ ॥

(तीर्थोंका माहात्म्य कह और) राजा वीरको बहुतसे वरदानोंको देकर भगवान् हर अन्तर्धान होगये, और उस राजा वीरनेभी वीरेश्वरका पूजन करके अपने इष्ट मनोरथको प्राप्त करलिया ॥१५॥ स्कन्दने कहा—हे अगस्त्य ! जो कोई इस पवित्र तीर्थाध्यायको सुनेगा उसके सैकडों जन्मके बटोरेहुए अघोंका क्षय होजावेगा ॥१६॥ हे मुने ! मैंने तीर्थाख्यानके प्रसंगसे वीरेश्वरका माहात्म्य तुमसे कहा, अब कामेश्वरकी कथाको कहताहूं ॥११७॥ दोहा—तीर्थाध्याय पुनीत यह,पढ़ै सुनै जो कोय । काशीके सब घाटसे, परिज्ञात सो होय ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडेउत्तरार्धे भाषाटीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

स्कन्द बोले—हे अगस्त्य मुने ! जगदम्बा पार्वतीसे भगवान् त्रिपुरारिने जिस पवित्र कथाको कथन कियाथा उसे मैं तुमसे वर्णनकरताहूं ॥ १ ॥ पुरातन समयमें एकवार महाक्रोधी, अत्यंततेजस्वी, परमतपस्वी, दुर्वासाऋषि, समुद्र-पर्वत-जंगल-नदी-ग्राम-पुर और पत्तनोंसे परिपूर्ण सागरान्त इस समग्रभूमंडलमें परिभ्रमण करके महादेवके आनन्दवनमें जा पहुँचे ॥ २ ॥ ३ ॥ अनेकप्रकारके प्रासाद, कुंड और तडागोंसे मण्डित महेश्वरके उस समस्त आराम (बगीचा) को देखकर वह बडेही संतुष्ट हुए ॥ ४ ॥ वहांपर कालके महाभयकोभी जीत लेनेवाले मुनियोंके रमणीय पर्णकुटीरों

॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ जगज्जनन्याःपार्वत्याःपुरोगस्तेपुरारिणा ॥ यथाख्यायिकथापुण्यातथातेकथयाम्यहम् ॥ १ ॥ पुरामहीमिमांसर्वांससमुद्राद्रिकाननाम् ॥ ससरित्कांसार्णवांचसग्रामपुरपत्तनाम् ॥ २ ॥ परिभ्रम्यमहातेजामहामर्षोमहातपाः ॥ दुर्वासाः संपरिप्राप्तःशंभोरानंदकाननम् ॥ ३ ॥ विलोक्याक्रीडमखिलंबहुप्रासादमंडितम् ॥ बहुकुंडतडागंचशंभोस्तोषमुपागमत् ॥ ४ ॥ पदेपदेमुनीनांचजितकालमहाभियाम् ॥ दृष्ट्वोटजानिरम्याणिदुर्वासाविस्मितोभवत् ॥ ५ ॥ सर्वर्तुकुसुमान्वृक्षान्सुच्छायस्निग्धपल्लवान् ॥ सफलान्सुलताश्लिष्टान्दृष्ट्वाप्रीतिमगान्मुनिः ॥ ६ ॥ दुर्वासाश्चातिहृष्टोभूद्दृष्ट्वापाशुपतोत्तमान् ॥ भूतिभूषितसर्वांगाञ्जटाजटितमौलिकान् ॥ ७ ॥ कौपीनमात्रवसनान्स्मरारिध्यानतत्परान् ॥ कक्षीकृतमहालाबून्हुडुत्काराजितांबुदान् ॥ ८ ॥ करंडदंडपानीयपात्रमात्रपरिग्रहान् ॥ क्वाचित्त्रिदंडिनोदृष्ट्वानिःसंगान्निष्परिग्रहान् ॥ ९ ॥

मडइयोंको पद पदपर देखनेसे दुर्वासा बडेही विस्मित हुए ॥ ५ ॥ वहांके सब ऋतुओंमें पुष्पित, छतनार और कोमलपल्लव एवं फलोंसे लदे, तथा सुन्दर लताओंसे लिपटेहुए वृक्षोंकी (शोभा) देखकर वे मुनि बहुत प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ तदनंतर दुर्वासा, कौपीनमात्र वस्त्रधारी, सर्वांगमें भस्मसे भूषित, मस्तकपर जटाजूटसे मंडित, कांखमें तुम्बीको दवाये हुडुत्कारध्वनिसे मेघके गर्जनको जीतनेवाले स्मरारिके ध्यानमें लीन उत्तम शैव (पाशुपत) लोगोंके दर्शनसे बडेही हृष्ट हुए ॥ ७ ॥ ८ ॥ वे कहींपर निस्संग अकृतदारपारिग्रह, देवसंपुट, दंड, और कमण्डलु, मात्रधारी त्रिदण्डियोंको कालसेभी निश्शंक होकर विश्वेश्वरके

शरणागत हुए देखकर तथा (किसी) किसी स्थानपर वेदोंके रहस्यवेत्ता आबालब्रह्मचारी, नित्यही गंगास्नानसे पिंगल बालवाले ब्राह्मणोंके देखनेसे काशीमें दुर्वासा बहुतही हर्षित हुए ॥९॥१०॥११॥ काशीमें पशुओंपर जैसी तुष्टता, मृगगणमें जैसी द्युति, और पक्षियोंपरभी जैसी हृष्टता है, दूसरे किसी स्थानमेंभी वैसी नहीं है ॥१२॥ जहांके (निवासी) पक्षी इत्यादि जातिवालोंमेंभी जो परमानन्दकी समृद्धि छायी है भला स्वर्गवासी देवतालोगोंके मध्यमें वह असीम शुभसंपदा कहां है ? ॥ १३ ॥ आनन्दवनमें विचरण करनेवाले ये सब पशुगणनन्दनवनविहारी देवताओंकी अपेक्षा बहुतही अच्छेहैं क्यों कि ये सब सदानन्दमय होगयेहैं और देवते तो नहीं है ॥ १४ ॥ अन्तकालमें शुभ परिणाम होनेसे काशीपुरीमें रहनेवाला म्लेच्छजनभी उत्तमहै, पर मुक्तिके पात्र

कालादपिनिरातंकान्विश्वेशशरणंगतान् ॥ क्वचिद्वेदरहस्यज्ञानाबाल्यब्रह्मचारिणः ॥ १० ॥ नित्यंभागीरथीस्नानपीतपिंगलमूर्धजान् ॥ विलोक्यकाश्यांदुर्वासाब्राह्मणान्मुमुदेतराम् ॥ ११ ॥ पशुष्वपिचयातुष्टिर्मृगेष्वपिचयाद्युतिः ॥ तिर्यक्ष्वपिचयाहृष्टिःकाश्यांनान्यत्रसा स्फुटम् ॥ १२ ॥ इदंसुश्रेयसोव्युष्टिःक्वामरेषुत्रिविष्टपे ॥ यत्रत्येष्वपितिर्यक्षुपरमानंदवर्धिनी ॥ १३ ॥ वरमेतेपिपशवआनंदवनचारिणः ॥ सदानंदाःपुनर्देवाननंदनवनाश्रिताः ॥ १४ ॥ वरंकाशीपुरीवासीम्लेच्छोपिहिशुभायतिः ॥ नान्यत्रत्योदीक्षितोपिसहिमुक्तेरभाजनम् ॥ १५ ॥ वैश्वेश्वरीपुरीचैषायथामेचित्तहारिणी ॥ सर्वापिनतथाक्षोणीनस्वर्गोनैवनागभूः ॥ १६ ॥ स्थैर्यंबबंधनक्वापिभ्रमतोमेमनोगतिः ॥ सर्वस्मिन्नपिभूभागेयथास्थैर्यमगादिह ॥ १७ ॥ रम्यापुरीभवेदेषाब्रह्मांडादखिलादपि ॥ परिष्टुत्येतिदुर्वासाश्चतोवृत्तिमवापह ॥१८॥ तप्यमानोपिहितपःसुचिरंसमहातपाः ॥ यदानापफलंकिंचिच्चुकोपचतदाभृशम् ॥ १९ ॥

न होनेसे अन्यत्रका दीक्षित (ब्राह्मण) भी श्रेष्ठ नहीं होसकता ॥ दोहा—काशी बसिकै मुक्ति लहि, म्लेच्छहु उत्तम होय । पै अन्तहिकर दीक्षितहुं, मुक्तिपात्र नहिं सोय ॥ १५ ॥ जैसी कि यह विश्वनाथपुरी मेरी मनोहारिणी है ऐसी तो समस्त पृथिवी क्या स्वर्ग और पाताललोकभी नहीं है ॥ १६ ॥ मैंने समस्तभूभागमें भ्रमण किया पर मेरे मनकी गति कहींपरभी वैसी स्थिर नहीं हुई जैसी कि यहां होगई ॥ १७ ॥ सारे ब्रह्मांडभरसे यह पुरी रमणीय है—यही सब काशीकी बडाई गाकर दुर्वासा ऋषि तपस्या करनेमें प्रवृत्तहुए ॥ १८ ॥ वह महातपस्वी बहुत दिनोंतक (कठोर) तपस्या करने परभी जब

कुछ फल नहीं पासके तब तो बडेही क्रुद्ध होकर कहने लगे कि, ॥१९॥ मुझ दुष्ट तापसको धिक्कारहै और मेरे इस दुश्वर तपको धिक्कार है, फिर महादेवके इस क्षेत्रकोभी धिक्कार है, जो कि सब लोगोंका प्रतारक (वंचक बन बैठा) है ॥ २० ॥ अच्छा तो अब मैं ऐसाही करूं जिसमें यहांपर किसीकी मुक्ति नहीं होसके (गी), इस प्रकारसे जब वह शाप देनेके लिये उद्यत होगये तब भगवान् शिव हँसने लगे ॥ २१ ॥ वहांपर प्रहसितेश्वरनामक एक प्रसिद्ध लिंग प्रकट होगया, जिसके दर्शन करनेसे लोगोंको पद पदपर आनन्द मिलताहै ॥ २२ ॥ अनन्तर भगवान् महेश्वर विस्मयान्वित होकर मनही मन कहने लगे कि, ऐसे तपस्वियोंको तो बारंबार नमस्कारहै ॥ २३ ॥ ये द्विजलोग जहां तपस्या करने बैठते हैं, किंवा जहांपर अपना आश्रम बनालेतेहैं,

धिक्चमांतापसंदुष्टंधिक्चमेदुश्चरंतपः ॥ धिक्चक्षेत्रमिदंशंभोःसर्वेषांचप्रतारकम् ॥२०॥ यथानमुक्तिरत्रस्यात्कस्यापिकरवैतथा ॥ इति शप्तुंयदोद्युक्तःसंजहासतदाशिवः ॥२१॥ तत्रलिंगमभूदेकंख्यातंप्रहसितेश्वरम् ॥ तल्लिंगदर्शनात्पुंसामानंदःस्यात्पदेपदे ॥२२॥ उवाचविस्मयाविष्टोमनस्येवमहेशिता ॥ ईदृशेभ्यस्तपस्विभ्योनमोस्त्वितिपुनःपुनः ॥ २३ ॥ यत्रैवहितपस्यंतियत्रैवविहिताश्रमाः ॥ लब्धप्रतिष्ठायत्रैवतत्रैवामार्षिणोद्विजाः ॥ २४ ॥ मनाक्चिंतितमात्रंतुचेल्लभंतेनतापसाः ॥ क्रुधातदैवजीर्यंतेहारिण्यातपसांश्रियः ॥ २५ ॥ तथापितापसामान्याःस्वश्रेयोवृद्धिकांक्षिभिः ॥ अक्रोधनाःक्रोधनावाकाचिंताहितपस्विनाम् ॥ २६ ॥ इतियावन्महेशानोमनस्येवविचिंतयेत् ॥ तावत्तत्क्रोधजोवह्निर्व्यानशेव्योममंडलम् ॥ २७ ॥ तत्क्रोधानलधूमौघैर्व्यापितंयन्नभोंगणम् ॥ तद्धातिनभोव्यापिनीलिमानंमहत्तरम् ॥ २८ ॥

अथवा जहांपर प्रतिष्ठाभी पालेते हैं उसी (स्थान) से डाह करनेलग जाते हैं—दोहा—जहां तपस्या करतहैं, जहँ आश्रम करिलीन । लहहिं प्रतिष्ठा यत्र द्विज, तहँ अमर्षि परवीन ॥ २४ ॥ ये सब तापस जब अपने अभीष्ट फलको कुछभी नहीं पाते तो तपश्श्रीके नाश करनेवाले क्रोधहीसे जीततेहैं ॥ २५ ॥ पर, तो भी अपने कल्याणकी वृद्धि चाहनेवालेके ये तपस्वी लोग सर्वथा माननीयही हैं, ये सब चाहे क्रोधी हों अथवा अक्रोधी हों पर तपस्वियोंके लिए कौन चिन्ता है ? ॥ २६ ॥ भगवान् महादेव जबलों मनहीमन यह सोच रहेथे तबलों दुर्वासाके क्रोधानलसे आकाशमंडल भरगया ॥२७॥ उस क्रोधाग्निसे

जो धूमावली उठी, वह आजतक आकाशमंडलमें व्याप्त होकर उसे बहुतही नीलवर्ण कररहीहै ॥ २८ ॥ तदनंतर (उस धूमावलीको देखकर महादेवके) गणलोग प्रलयवेलाके समुद्र जलकी नांई क्षुब्ध होने लगे और परस्पर यह कहते हुए कि, "ओह ! यह क्या ? यह क्या ?" ॥ २९ ॥ चारोंओरसे गर्जते और तर्जतेहुए हाथोंमें शस्त्र ले लेकर शिवपुरीके इधर उधर दौडने लगे ॥ ३० ॥ फिर तो महादेवके वे सब पारिषदलोग इस प्रकारसे ललकारतेहुए कि, क्या यम, क्या काल, क्या मृत्यु, क्या अंतक, क्या विधाता, अथवा समस्त देवगण (किंवा विष्णुही क्यों न हों) हम लोगोंके क्रुद्ध होजानेपर कौन ठहर सकता है ? ॥ ३१ ॥ हम लोग (चाहें) तो अग्निको पानीकी नांई पीडालें, अथवा समस्त पर्वतोंको चकचूर कर (धूरमें) उडादेवें, किंवा सातों

ततोगणाःपरिक्षुब्धाःप्रलयार्णवनीरवत् ॥ आःकिमेतत्किमेतद्वैभाषमाणाःपरस्परम् ॥ २९ ॥ गर्जंतस्तर्जयंतश्चप्रोद्यतायुधपाणयः ॥ प्रमथाःपरितस्थुस्तेपरितोधामशांभवम् ॥ ३० ॥ कोयमःकोथवाकालःकोमृत्युःकस्तथांतकः ॥ कोवाविधाताकेलेखाःक्रुद्धेष्वस्मासुकःपरः ॥ ३१ ॥ अग्निंपिबामोजलवच्चूर्णीकुर्मोखिलान्गिरीन् ॥ सप्तापिचार्णवांस्तूर्णंकरवाममरुस्थलीम् ॥ ३२ ॥ पातालंचानयामोर्ध्वमधोदध्मोथवादिवम् ॥ एकमेवहिवाग्रासंगगनंकरवामहे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मांडभांडमथवास्फोटयामःक्षणेनहि ॥ आस्फालयामोवान्योन्यंकालंमृत्युंचतालवत् ॥ ३४ ॥ ग्रसामोवाथभुवनंमुक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ यत्रमुक्ताभवंत्येवमृतमात्रेणजंतवः ॥ ३५ ॥ कुतोऽयंधूमसंभारोज्वालावल्यःकुतस्त्वमूः ॥ कोवामृत्युंजयंरुद्रंनोविद्यान्मदमोहितः ॥ ३६ ॥

समुद्रोंको अभी (सुखवाकर) मरुस्थली बनादेवें ॥ ३२ ॥ अथवा पातालको ऊपर उठालावें और स्वर्गको नीचे धरदेवें, किंवा आकाशको एकही ग्रास करडालें ॥ ३३ ॥ अथवा इस ब्रह्मांडरूप भांडको क्षणमात्रमें फोरडालें, किंवा काल और मृत्युको (पकडकर) ताड (के फल) की नांई एक दूसरेसे टकरादेवें ॥ ३४ ॥ अथवा, जहांपर केवल मरनेहीसे सब जन्तुओंकी मुक्ति होजातीहै, एकमात्र उस वाराणसीपुरीको छोडकर समस्त भुवनमंडलको ग्रसलेवें ॥ ३५ ॥ यह धूआंका पहाड और इतनी बडी ज्वालामाला कहांसे उठ रही है ? ऐसा कौनहै जो मदसे मोहित होकर भगवान् मृत्युंजय रुद्रको

नहीं जानता ? ॥ ३६ ॥ इस भाँतिसे महाभयकेभी भयंकर होकर वे सब एक गगनस्पर्शी घेरा बनाने लगे ॥ ३७ ॥ और उस प्रलयानलको पत्थरकी नाई बहुतही टुकडे टुकडे करके, नन्दी, नन्दिषेण, सोमनन्दी, महोदर ॥ ३८ ॥ महाहनु, महाग्रीव, महाकाल, जितांतक, मृत्युप्रकंपन, भीम, घंटाकर्ण, महाबल, ॥ ३९ ॥ क्षोभण द्रावण, जम्भी, पंचास्य, पंचलोचन, द्विशिरा, त्रिशिरा, सोम, पंचहस्त, दशानन, ॥ ४० ॥ चंड, भृंगिरिटि, तुण्डी, प्रचंड, तांडवप्रिय, पिचिंडिल, स्थूलशिरा, स्थूलकेश, गभस्तिमान् ॥ ४१ ॥ क्षेमक, क्षेमधन्वा, वीरभद्र, रणप्रिय, चंडपाणि, शूलपाणि, पाशपाणि, कृशोदर, ॥ ४२ ॥

इतिपारिषदाःशंभोर्महाभयभयप्रदाः ॥ जल्पंतःकल्पयामासुःप्राकारंगगनस्पृशम् ॥ ३७ ॥ शकलीकृत्यबहुशःशिलावत्प्रलयानलम् ॥ नंदीचनंदिषेणश्चसोमनंदीमहोदरः ॥ ३८ ॥ महाहनुर्महाग्रीवोमहाकालोजितांतकः ॥ मृत्युप्रकंपनोभीमोघंटाकर्णोमहाबलः ॥ ३९ ॥ क्षोभणोद्रावणोजृंभीपंचास्यःपंचलोचनः ॥ द्विशिरास्त्रिशिराःसोमःपंचहस्तोदशाननः ॥ ४० ॥ चंडोभृंगिरिटिस्तुडीप्रचंडस्तांडवप्रियः ॥ पिचिंडिलःस्थूलशिराःस्थूलकेशोगभस्तिमान् ॥ ४१ ॥ क्षेमकःक्षेमधन्वाचवीरभद्रोरणप्रियः ॥ चंडपाणिःशूलपाणिःपाशपाणिःकृशोदरः ॥ ४२ ॥ दीर्घग्रीवोथपिंगाक्षःपिंगलःपिंगमूर्धजः ॥ बहुनेत्रोलंबकर्णःखर्वःपर्वतविग्रहः ॥ ४३ ॥ गोकर्णोगजकर्णश्चकोकिलाख्योगजाननः ॥ अहंवैनैगमेयश्चविकटास्योट्टहासकः ॥ ४४ ॥ सीरपाणिःशिवारावोवैणिकोवेणुवादनः ॥ दुराधर्षोदुःसहश्चगर्जनोरिपुतर्जनः ॥ ४५ ॥ इत्यादयोगणेशानाःशतकोटिदुरासदाः ॥ काश्यांनिवारयामासुरपिप्राभंजनींगतिम् ॥ ४६ ॥ क्षुब्धेषुतेषुवीरेषुचकंपेभुवनत्रयम् ॥ दुर्वाससश्चकोपाग्निज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम् ॥ ४७ ॥

दीर्घग्रीव, पिंगाक्ष, पिंगल, पिंगमूर्द्धज, बहुनेत्र, लंबकर्ण, खर्व, पर्वतविग्रह, ॥ ४३ ॥ गोकर्ण, गजकर्ण, कोकिलाख्य (क्ष) गजानन, मैंनैगमेय, विकटास्य, अट्टहासक ॥ ४४ ॥ सीरपाणि, शिवाराव, वैणिक, वेणुवादन, दुराधर्ष, दुस्सह, गर्जन, और रिपुतर्जन ॥ ४५ ॥ प्रभृति शतकोटि दुरासद गणेश्वरोंने काशीमें (उस घेरेसे) वायुकी गतिकाभी रोक कर दिया ॥ ४६ ॥ दुर्वासा ऋषिके क्रोधानलसे व्याकुल तीनों भुवन उस घडी उन वीरोंके क्षुब्ध होनेपर

(थरथर) काँपने लगे ॥ ४७ ॥ वह समयभी ऐसा था, कि, काशीमें गणोंकी आज्ञा बिना पाये उन सबोंके तेजसे हतप्रभ होकर सूर्य और चन्द्रमाभी प्रवेश नहीं करने पाते थे ॥ ४८ ॥ (यह देखकर) भगवान् उमापतिने परमक्षुब्ध प्रमथ लोगोंको निवारित करके कहा "यह अनसूयानन्दन मुनि तो हमाराही अंश है" ॥ ४९ ॥ उधर दुर्वासाके स्थापित लिंगसेभी महातेजोमय कृपानिधि भगवान् शंभु (काशी) पुरीकी रक्षा करतेहुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ५० ॥ जिसमें काशीमें मुनिका शाप मोक्षका प्रतिबन्धक न होने पावे बस इसी दयासे भगवान् उनके प्रत्यक्ष हुए ॥ ५१ ॥ और बोले कि, हे महाक्रोधन ! तापस ! मैं प्रसन्नहूं तुम निश्शंक होकर कहो तुमको कौनसा वर दियाजावे ॥ ५२ ॥ हे अगस्त्य ! तब तो शापप्रदानके लिये उद्यत होनेसे

तदाविविशतुःकाश्यांसूर्याचंद्रमसावपि ॥ नगणैरकृतानुज्ञौततेजःशमितप्रभौ ॥ ४८ ॥ निवार्यप्रमथानीकमतिक्षुब्धमुमाधवः ॥ मदंशएवहिमुनीरानसूयेयएषवै ॥ ४९ ॥ अथोदुर्वाससोलिंगादाविरासीत्कृपानिधिः ॥ महातेजोमयःशंभुर्मुनिशापात्पुरीमवन् ॥ ५० ॥ माभूच्छापोमुनेःकाश्यांनिर्वाणप्रतिबंधकः ॥ इत्यनुक्रोशतोदेवस्तस्यप्रत्यक्षतांगतः ॥ ५१ ॥ उवाचचप्रसन्नोस्मिमहाक्रोधनतापस ॥ वरयस्ववरःकस्तेमयादेयोविशंकितः ॥ ५२ ॥ ततोविलज्जितोगस्त्यशापोद्यतकरोमुनिः ॥ अपराद्धंबहुमयाक्रोधांधेनेतिदुर्धिया ॥ ५३ ॥ उवाचचेतिबहुशोधिङ्मांक्रोधवशंगतम् ॥ त्रैलोक्याभयदांकाशींशप्तुमुद्यतचेतसम् ॥ ५४ ॥ दुःखार्णवनिमग्नानांयातायातेतिखेदिनाम् ॥ कर्मपाशितकंठानांकाश्येकामुक्तिसाधनम् ॥ ५५ ॥ सर्वेषांजंतुजातानांजनन्येकैवकाशिका ॥ महामृतस्तन्यदात्रीनेत्रीचपरमंपदम् ॥ ५६ ॥

दुर्वासा मुनि बडेही लज्जित हुए, और कहने लगे कि, क्रोधांध होनेसे हतबुद्धि होकर मैंने बडाही अपराध किया, अतएव क्रोध (शत्रु) के वशीभूत मुझको वारंवार धिक्कार है, क्योंकि मैं त्रैलोक्यमात्रको अभय देनेवाली काशीहीको शाप देनेके लिये उद्यतचित्त होगया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ जो लोग सर्वदैव संसारसागरमें डूबे पडे हैं, और जो लोग निरंतर आवागमनके कारण खेदित हो रहे हैं, एवं जिन लोगोंका कण्ठ कर्मपाशमें जकडाहै, उन जीवोंकी मुक्तिका साधन एकमात्र काशीधामही है ॥ ५५ ॥ यह काशीतो समस्त जीवमात्रकी माताहै, क्योंकि यही तो महामृतरूप स्तन्यको पिलाती और परमपदपर पहुँचा

देती है ॥५६॥ पर माताके साथ काशीकी उपमा कभी नहीं होसकती, क्योंकि माता तो (थोडे दिनोंतक) गर्भमें धारण करती है, पर यह काशी (सर्वदाके लिये) गर्भदुःखसे छुड़ा देती है ॥५७॥ ऐसी काशीको जो दूसरा कोईभी शाप देवेगा, तो उस शापका फल उसीको मिलेगा काशीका कुछ नहीं होसकेगा॥५८॥ इस प्रकारसे दुर्वासाका वचन सुनकर भगवान् त्रिलोचन काशीकी बडाई करनेसे हर्षित होकर बडेही संतुष्ट होगये ॥ ५९ ॥ (और कहनेलगे कि) जो बुद्धिमान् काशीकी बडाई गाता एवं उसे हृदयमें धारण करताहै, उसीको कठोर तपस्या अथवा करोडों यज्ञोंके करनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥ "काशी" ये दोनों अक्षर जिसकी जिह्वाके टोंकेपर वर्तमान रहतेहैं उस बुद्धिमान्को कदापि गर्भमें वास नहीं करना पडता ॥६१॥ जो कोई प्रातःकाल

जनन्यासहनोकाशीलभेदुपमितिंक्वचित् ॥ धारयेज्जननीगर्भेकाशीगर्भाद्विमोचयेत् ॥ ५७ ॥ एवंभूतातुयःकाशीमन्योपिहिशपिष्यति ॥ तस्यैवशापोभवितानतुकाश्याःकथंचन॥५८॥ इतिदुर्वाससोवाक्यंश्रुत्वादेवस्त्रिलोचनः॥ अतीवतुषितोजातःकाशीस्तवनलब्धमुत्॥५९॥ यःकाशींस्तौतिमेधावीयःकाशींहृदिधारयेत् ॥ तेनततंतपस्तीव्रंतेनेष्टंक्रतुकोटिभिः ॥ ६० ॥ जिह्वाग्रेवर्ततेयस्यकाशीत्यक्षरयुग्मकम् ॥ नतस्यगर्भवासःस्यात्क्वचिदेवसुमेधसः॥६१॥ योमंत्रंजपतिप्रातःकाशीवर्णद्वयात्मकम् ॥ सतुलोकद्वयंजित्वालोकातीतंव्रजेत्पदम्॥६२॥ आनुसूयेयतेज्ञानंकाशीस्तवनपुण्यतः ॥ यथेदानींसमुत्पन्नंतथानतपसःपुरा ॥ ६३ ॥ मुनेनमेप्रियस्तद्वद्दीक्षितोममपूजकः ॥ यादृक्प्रियतरःसत्यंकाशीस्तवनलालसः ॥ ६४ ॥ तादृक्तुष्टिर्नमेदानैस्तादृक्तुष्टिर्नमेमखैः॥ नतुष्टिस्तपसातादृग्यादृशीकाशिसंस्तवैः ॥६५॥

(उठकर) दो अक्षरोंके "काशी" इस मंत्रको जपताहै, वह दोनों लोकोंको जीतकर अलौकिकपदको प्राप्त करताहै ॥ ६२ ॥ हे अनसूयानन्दन ! जैसा कि इस घडी काशीकी स्तुति करनेके पुण्यसे तुमको ज्ञान उत्पन्न होगयाहै, वैसा पूर्वमें (कठोर) तपस्या करनेसेभी नहीं हुआथा ॥ ६३ ॥ हे मुने ! दीक्षित होकरभी मेरी पूजा करनेवाला मुझको वैसा प्यारा नहीं है जैसा कि काशीकी स्तुतिमें लालसा रखनेवाला प्रियतरहै, यह बात सर्वथा सत्यहै ॥ ६४ ॥ विविधदान, यज्ञ, और तपस्याके करनेसेभी मुझे वैसा संतोष नहीं होता, जैसा कि काशीकी बडाई करनेसे होताहै ॥ ६५ ॥

जिस सुहृदयने इस आनन्दवनकी स्तुतिकी, वह वेदोक्त सब सूक्तोंसे मेरी स्तुति (को) करचुका ॥ ६६ ॥ हे आनसूयेय ! तापस ! तुम्हारी सभी कामनायें संपन्न होवेंगी, और तुमको वह उत्तम ज्ञान होगा, जो महामोहोंका विनाशक है ॥ ६७ ॥ हे अनघ ! अब तुम औरभी कुछ वरदानकी प्रार्थना करो कि तुमको क्या दिया जाय, (तुम क्रोध करनेके कारण लज्जित मत हो) क्योंकि सज्जनलोग तुम्हारेही ऐसे मुनियोंकी बडाई गाते हैं ॥ ६८ ॥ इस संसारमें जिसे तपका सामर्थ्य है वही क्रोधभी कर सकताहै, नहीं तो असमर्थ पुरुष क्षीणवृत्तिकी नाईं क्या कर सकताहै ? ॥ ६९ ॥ यह सुनतेही दुर्वासा ऋषि

आनंदकाननंयेनस्तुतमेतत्सुचेतसा ॥ तेनाहंसंस्तुतःसम्यक्सर्वैःसूक्तैःश्रुतीरितैः ॥ ६६ ॥ तवकामाःसमृद्धाःस्युरानुसूयेयतापस ॥ ज्ञानंतेपरमंभाविमहामोहविनाशनम् ॥ ६७ ॥ अपरंचवरंब्रूहिकिंदातव्यंतवानघ ॥ त्वादृशाएवमुनयःश्लाघनीयायतःसताम् ॥ ६८ ॥ यस्यास्त्येवहिसामर्थ्यंतपसःक्रुद्ध्यतीहसः ॥ कुपितोप्यसमर्थस्तुकिंकर्ताक्षीणवृत्तिवत् ॥६९॥ इतिश्रुत्वापरिष्टुत्यदुर्वासाःकृत्तिवाससम् ॥ वरंचप्रार्थयामासपरिहृष्टतनूरुहः ॥ ७० ॥ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ ॥ देवदेवजगन्नाथकरुणाकरशंकर ॥ महापराधविध्वंसिन्नंधकारेस्मरांतक ॥७१॥ मृत्युंजयोग्रभूतेशमृडानीशत्रिलोचन ॥ यदिप्रसन्नोमेनाथयदिदेयोवरोमम ॥७२॥ तदिदंकामदंनामलिंगमस्त्विहधूर्जटे ॥ इदंचपल्वलंमेत्रकामकुंडाख्यमस्तुवै ॥ ७३ ॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ एवमस्तुमहातेजोमुनेपरमकोपन ॥ यत्त्वयास्थापितंलिंगंदुर्वासेश्वरसंज्ञितम् ॥ ७४ ॥

रोमांचित शरीर होकर महादेवकी बडी स्तुति करनेके उपरांत वरदानकी प्रार्थना करने लगे ॥७०॥ दुर्वासाने कहा हे देवदेव ! जगन्नाथ ! करुणाकर ! शंकर ! महापराधविध्वंसक ! अन्तकान्तक ! स्मरारिपो ! ॥ ७१ ॥ मृत्युञ्जय ! उग्र ! भूतनाथ ! मृडानीवल्लभ ! त्रिलोचन ! नाथ ! यदि आप मुझपर प्रसन्नहैं, और यदि मुझे वरदान किया चाहते हैं तो ॥ ७२ ॥ हे धूर्जटे ! इसी स्थानपर यह लिंग कामदनामक होवे, और मेरी यह गडही कामकुंडनामसे विख्यात होवे ॥ ७३ ॥ देवदेव कहने लगे—हे परमकोपन ! महातेजस्विमुने ! "एवमस्तु"—यह जो तुम्हारा स्थापित दुर्वासेश्वरनामक लिंगहै ॥७४॥

सो लोगोंकी कामना पूर्ण करनेसे यहांपर वही कामेश्वर संज्ञक होजावे, और जो कोई शनिवारकी त्रयोदशीमें प्रदोषकी वेलामें ॥ ७५ ॥ तुम्हारे बनायेहुए इस कामकुण्डमें स्नान करेगा, और जो बुद्धिमान् नर तुम्हारे स्थापित कामेश्वर लिंगका दर्शन करेगा ॥ ७६ ॥ वह कामजनित दोषोंके कारण यमयातनाको कभी नहीं भोगने पावेगा, अनेकजन्मके संचित बहुतेरे पाप ॥ ७७ ॥ कामकुंडके जलसे स्नान करतेही क्षणमात्रमें बिलाय जायँगे, एवं कामेश्वरके सेवनसे उसकी समस्त कामनायें परिपूर्ण होजावेंगी ॥ ७८ ॥ भगवान् शंभु इस भाँतिसे दुर्वासाको वरोंका दानकर उसी लिंगमें लीन होगये । स्कन्द बोले—

तदेवकामकृन्नृणांकामेश्वरमिहास्त्विति ॥ यःप्रदोषेत्रयोदश्यांशनिवासरसंयुजि ॥ ७५ ॥ संस्नास्यतिनरोधीमान्कामकुंडेत्वदास्पदे ॥ त्वत्स्थापितंचकामेशंलिंगंद्रक्ष्यतिमानवः ॥ ७६ ॥ सवैकामकृताद्दोषाद्यामींनाप्स्यतियातनाम् ॥ बहवोपिहिपाप्मानोबहुभिर्जन्मभिःकृताः ॥ ७७ ॥ कामतीर्थांबुसंस्नानाद्यास्यंतिविलयंक्षणात् ॥ कामाःसमृद्धिमाप्स्यंतिकामेश्वरनिषेवणात् ॥ ७८ ॥ इति दत्त्वावरान्शंभुस्तल्लिंगेलयमाययौ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ तल्लिंगाराधनात्कामाःप्राप्तादुर्वाससाभृशम् ॥ ७९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाश्यांकामेश्वरःसदा ॥ पूजनीयःप्रयत्नेनमहाकामाभिलाषुकैः ॥८०॥ कामकुंडकृतस्नानैर्महापातकशांतये ॥ इदंकामेश्वराख्यानंयःपठिष्यतिपुण्यवान् ॥ यःश्रोष्यतिचमेधावीतौनिष्पापौभविष्यतः ॥ ८१ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धेदुर्वाससोवरप्रदानंनामपंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ॥ विश्वकर्मेश्वरंलिंगंयत्काश्यांप्रथितंपरम् ॥ तस्यलिंगस्यकथयदेवदेवसमुद्भवम् ॥ १ ॥

उसी लिंगकी आराधनासे दुर्वासाकी समस्त कामनायें पूर्ण हुईं ॥ ७९ ॥ अतएव काशीमें कामाभिलाषी लोगोंको सदैव प्रयत्नपूर्वक कामेश्वरका पूजन करना चाहिए ॥ ८० ॥ और महापातकोंकी शन्तिके लिये कामकुण्डमें स्नान करना चाहिए । जो पुण्यवान् मेधावी इस कामेश्वराख्यानको पढेगा, अथवा सुनेगा वे दोनोंही निष्पाप होजावेंगे ॥ ८१ ॥ दोहा—करैं कामना सिद्धि सब, कामेश्वर भगवान । जैसे दुरवासा लहे, बहुतेरे वरदान ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥ पार्वतीने पूछा—हे देवदेव ! काशीपुरीमें जो विश्वकर्मेश्वरनामक

परमप्रसिद्ध लिंगहै, उसके प्रकट होनेकी कथा कहिए ॥ १ ॥ देवाधिदेवने कहा—हे देवि ! मैं विश्वकर्मेश्वरलिंगकी पातकनाशिनी और मनोहर उत्पत्ति कथाको कहताहूं, तुम श्रवण करो ॥ २ ॥ पूर्वकालमें त्वष्टानामक प्रजापतिके पुत्र, और ब्रह्माके दूसरे शरीर, एवं सब कर्मोंमें अति निपुण विश्वकर्मा हुएथे ॥ ३ ॥ वे यज्ञोपवीत होजानेपर बाल्यावस्थाहीमें केवल भिक्षाके द्वारा भोजन करके गुरुकुलमें टिककर गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ४ ॥ एकबार वर्षाकाल उपस्थित होनेपर उनके गुरुने आज्ञा दी कि, (बेटा !) तुम मेरे लिए एक ऐसी पर्णकुटी बनादो जिसमें मुझे वर्षाका क्लेश न होनेपावे ॥ ॥ ५ ॥ और वह कुटिया न तो कभी टूटे और न पुरानी होवे । फिर गुरुपत्नीनेभी कहा कि हे, त्वष्टनन्दन ! मेरे शरीरके योग्य एक चोलिया बनादोपर

॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामिकथांपातकनाशिनीम् ॥ विश्वकर्मेशलिंगस्यप्रादुर्भावंमनोहरम् ॥ २ ॥ विश्वकर्माभवत्पूर्वंब्रह्मणस्त्वपरातनुः ॥ त्वष्टुःप्रजापतेःपुत्रोनिपुणःसर्वकर्मसु ॥ ३ ॥ पनयनःसोथबालोगुरुकुलेवसन् ॥ चकारगुरुशुश्रूषांभिक्षान्नकृतभोजनः ॥४॥ एकदातद्गुरुःप्राहप्रावृट्कालेसमागते ॥ कुरूटजंमदर्थत्वंयथाप्रवृण्नबाधते ॥ ५ ॥ यत्कदाचिन्नभज्येतनपुरातनतांव्रजेत् ॥ गुरुपत्न्यात्वभिहितोरेत्वाष्ट्रकुरुकंचुकम् ॥६॥ ममांगयोग्यंनोगाढंनश्लथंचप्रयत्नतः ॥ विनैववासस्ताचारुवाल्कलंचसदोज्ज्वलम् ॥ ७ ॥ गुरुपुत्रेणचाज्ञप्तोममार्थंपादुकेकुरु ॥ यदारूढस्यमेपादौनपंकःसंस्पृशेत्क्वचित् ॥ ८ ॥ चर्मादिबंधनिर्मुक्तेधावतोमेसुखप्रदे ॥ याभ्यांचसंचरेवारिस्थलभूमाविवद्रुतम् ॥ ९ ॥ गुरुकन्यापितंप्राहत्वाष्ट्रमेश्रवणोचिते ॥ भूषणेस्वेनहस्तेनकुरुकांचननिर्मिते ॥ १० ॥

वह बडी अथवा ढीली न होनेपावे, और ऐसा प्रयत्न करो जिसमें वह बिना कपडाके होनेपरभी सुन्दरहो, और वल्कलकीही बने पर सदैव उज्ज्वल रहे ॥६॥७॥ फिर तो गुरुपुत्रनेभी आज्ञा सुनादी कि, मेरे लियेभी ऐसी एक जोडी पादुका (खडाऊं) बनादो, जिसके पहिरनेसे कीचड (धूर) कभी मेरे पैरोंपर नहीं पडने पावे ॥ ८ ॥ पर उसमें चमडेका बंधन न लगे और दौडनेमेंभी वह सुखदेवे, एवं जिसे पहिन कर मैं जलपरभी स्थलहीके समान तेजीके साथ घूम फिर सकूं ॥९॥ तदनंतर गुरुकन्याभी कहने लगी किं, हे त्वाष्ट्र ! मेरे कानोंके योग्य एक जोडा सोनेका करनफूल अपने हाथसे बनादो, ॥१०॥

और हाथीदांतके बनेहुए लडकियोंके खेलौनेभी अपने हाथसे रचकर मुझको दो, ॥ ११ ॥ हे सुबुद्धे ! गृहस्थीके उपकरण मूसल ओखरी इत्यादिको ऐसा बनादो जो कभी टूट नहीं सकें ॥ १२ ॥ और हे सत्तम ! कुछ ऐसी वटलोही बनादो जिनके माँजनेके बिनाही ऊपरका भाग सदैव उज्ज्वल (साफ) बना रहे ॥ १३ ॥ हे त्वष्टनन्दन ! मुझे ऐसी रसोंई करने सिखादो जिसमें मेरी अंगुरियां नहीं जरने पावें और रसोईभी बढिया बनजावे ॥ १४ ॥ और एक लकडीका एकही खम्भेपर ऐसा उत्तमघर बनादो जिसे मैं जहां चाहूं, तहां लेजासकूं ॥ १५ ॥ विश्वकर्माके वयोज्येष्ठ सब सहाध्यायी लोगभी उन्हींके

कुमारीक्रीडनीयानिकौतुकानिचदेहिमे ॥ दंतिदंतमयान्येवस्वहस्तरचितानिच ॥ ११ ॥ गृहोपकरणंद्रव्यंमुसलोलूखलादिकम् ॥ तथाघटयमेधाविन्यथात्रुटचतिनकचित् ॥ १२ ॥ अक्षालितान्यपियथानित्यंपीठानिसत्तम ॥ उज्ज्वलानिभवंत्येवस्थालिकाश्चत थाकुरु ॥ १३ ॥ सूपकर्मण्यपिचमांप्रशाधित्वष्टनंदन ॥ यथांगुल्योनदह्यंतेपाकःस्याच्चयथाशुभः ॥ १४ ॥ एकस्तंभमयंगेहमेकदारु विनिर्मितम् ॥ तथाकुरुवरंत्वाद्यत्रेच्छातत्रधारये ॥ १५ ॥ येसहाध्यायिनोप्यस्यवयोज्येष्ठाश्चतेपिहि ॥ सर्वेसर्वसमीहंतेकर्मतत्कृत मेवहि ॥ १६ ॥ तथेतिसंप्रतिज्ञायसर्वेषांपुरतोद्विजे ॥ मध्येवनंप्राविशच्चमहाचिंताभयार्दितः ॥ १७ ॥ किंचित्कर्तुंनजानातिप्रतिज्ञातं चतेनवै ॥ सर्वेषांपुरतःसर्वंकरिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ १८ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकोमेसाहाय्यमर्पयेत् ॥ बुद्धेरपिवनस्थस्यशरणंकंव्रजा मिच ॥ १९ ॥ अंगीकृत्यगुरोर्वाक्यंगुरुपत्न्यागुरोःशिशोः ॥ योननिष्पादयेन्मूढःसभवेन्निरयीनरः ॥ २० ॥ गुरुशुश्रूषणंधर्मएकोहि ब्रह्मचारिणाम् ॥ अनिष्पाद्यतुतद्वाक्यंकथंमोनिष्कृतिर्भवेत् ॥ २१ ॥

बनाये हुए कामोंकी अभिलाषा रखने लगे ॥ १६ ॥ हे गिरिकिशोरि ! उस घडी विश्वकर्मा कुछभी नहीं जानतेथे पर सभीलोगोंसे बना देनेकी प्रतिज्ञा कर वे बडी चिंता और भयसे उद्विग्न हो वनमें चलेगये ॥ १७ ॥ वे सभी लोगोंसे सब कुछ बनादेनेकी प्रतिज्ञा तो कर बैठे पर कुछभी बनाने नहीं जानते थे (इसीसे सोचने लगे) ॥ १८ ॥ "क्या करूं ? कहां जाऊं ? इस वनमें मुझे कौन बुद्धिकी सहायता देगा ? किसकी शरणागत होऊं ॥ १९ ॥ जो मूर्ख गुरु, गुरुपत्नी, और गुरुसन्तानकी बात स्वीकार करके फिर उसे नहीं करता वह अवश्यही नरकभागी होताहै ॥ २० ॥ क्यों कि ब्रह्मचारियोंका

एकमात्र गुरुसेवनही धर्म है, तो फिर उनकी बात पूरी किये विना मेरा निस्तार कैसे होसकता है ? ॥ २१ ॥ गुरुलोगोंकी आज्ञा पालन करनेहीसे समस्त मनोरथ सिद्ध होतेहैं अन्यथा नहीं होसकते, अतएव उनका वचन अवश्यही करना चाहिये ॥ २२ ॥ मैं इस वनमें बैठकर गुरुकी कैसे आज्ञाका पालन करसकूंगा, और यहांपर मुझ निर्बुद्धिका कौन सहायक होसकताहै ? ॥ २३ ॥ गुरुकी बात तो दूर रहनेदो, जो कोई एक छोटे मनुष्यसेभी स्वीकार करके उस कामको नहीं करता, वह अधोगतिको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ मैं तो सर्वथा अज्ञ और असहाय हूं, फिर इन कर्मोंको कैसे कर सकूंगा, ? हां उन लोगोंके डरसे अंगीकार तो मैंने करलिया पर हे भवितव्यते ! तुमको नमस्कारहै" ॥ २५ ॥ जब कि, विश्वकर्मा वनमें यह चिन्ता कररहेथे, उसी घडी उनने देखा कि,

गुरूणांवाक्यकरणात्सर्वएवमनोरथाः ॥ सिद्ध्यंतीतरथानैवतस्मात्कार्यंहितद्वचः ॥ २२ ॥ कथंतद्वचसःसिद्धिंप्राप्स्याम्यत्रवनेस्थितः ॥ कश्चमेत्रसहायीस्याद्धिषणादुर्बलस्यवै ॥ २३ ॥ आस्तांगुरुकथादूरंयोऽन्यस्यापिलघोरपि ॥ ओमित्युक्त्वानकुरुतेकार्यंसोथव्रजत्यधः ॥ २४ ॥ कथमेतानिकर्माणिकरिष्येऽज्ञोऽसहायवान् ॥ अंगीकृतानितद्भीत्यानमस्तेभवितव्यते ॥ २५ ॥ यावदित्थंचिंतयतिसत्वाष्ट्रोवनमध्यगः ॥ तावत्तदैवसंप्राप्तस्तेनैकोऽदर्शितापसः ॥ २६ ॥ अथनत्वासतंप्राहवनेदृष्टंतपस्विनम् ॥ कोभवान्मानसंमेयोनितरांसुखयत्यहो ॥ २७ ॥ त्वद्दर्शनेनमेगात्रंचिंतासंतापतापितम् ॥ हिमानीगाहनेनेवशीतलंभवतिक्षणम् ॥ २८ ॥ किंत्वंमेप्राक्तनंकर्मप्राप्तंतापसरूपधृक् ॥ अथवा करुणावार्धिराविर्भूतःशिवोभवान् ॥ २९ ॥ योसिसोसिनमस्तुभ्यमुपदेशेनयुंक्ष्वमाम् ॥ गुरूक्तंगुरुपत्न्युक्तंगुर्वपत्योक्तमेवच ॥ ३० ॥

एकजन तपस्वी वहांपर चले आरहेहैं ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर विश्वकर्माने वनमें आतेहुए उस तपस्वीको देख, प्रणामपुरस्सर कहा कि, (भगवन् ! आपके दर्शन होतेही चिंतानलसे दग्ध मेरा शरीर क्षणही भरमें पालामें डबोये हुएकी नांई शीतल (ठंढा) होगया । मेरे हृदयको बडाही सुख मिल रहाहै । सो आप कौन हैं ? क्या आप तपस्वीका रूप धरकर मेरे पूर्व जन्मके कर्म तो नहीं हो आये हैं ? अथवा दयासागर भगवान् शिव तो नहीं प्रकट हुए हैं ? ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ अच्छा आप जो चाहें सो होवें, आपको नमस्कारहै, अब आप यह उपदेश कीजिए कि, मैं गुरु, गुरुपत्नी और गुरु सन्तानोंके कहेहुए

कामको कैसे करसकताहूं ? आप इस निर्जनवनमें मुझे बन्धुरूपसे मिलेहैं तो इस अद्भुतकर्मके लिये मुझे बुद्धिसे सहायता दीजिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वे करुणामयचित्त तपस्वी ब्रह्मचारी विश्वकर्माके ऐसा कहनेपर उपयुक्त उपदेश देने लगे (क्यों कि) ॥ ३२ ॥ आप्तरूपसे पूँछेजानेपर जो कोई दुर्बुद्धि देताहै, वह (मनुष्य) कल्पान्त पर्यंत घोर नरकमें वास करताहै ॥ ३३ ॥ तपस्वीने कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! जो मैं कहताहूं उसे तुम सुनो, तुम्हारा यह कार्य कौन आश्चर्यकर है, विश्वेश्वरहीके अनुग्रहसे ब्रह्माभी सृष्टि रचनेमें निपुण हुएहैं ॥ ३४ ॥ हे त्वाष्ट्र ! यदि तुम काशीमें विश्वेश्वरकी आराधना करसकोगे,

कथंकर्तुमहंशक्तःकर्मतत्रदिशाद्भुतम् ॥ कुरुमेबुद्धिसाहाय्यंनिर्जनेबंधुतांगतः ॥ ३१ ॥ इत्युक्तस्तेनसवनेतापसोब्रह्मचारिणा ॥ कारुण्यपूर्णहृदयोयथोक्तमुपदिष्टवान् ॥ ३२ ॥ यआप्तत्वेनसंपृष्टोदुर्बुद्धिंसंप्रयच्छति ॥ सयातिनरकंघोरंयावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३३ ॥ तापसउवाच ॥ ॥ ब्रह्मचारिञ्छृणुब्रूयांकिमद्भुततरंत्विदम् ॥ विश्वेशानुग्रहाद्ब्रह्माप्यभवत्सृष्टिकोविदः ॥ ३४ ॥ यदित्वंत्वाष्ट्रसर्वज्ञंकाश्यामाराधयिष्यसि ॥ ततस्तेविश्वकर्मेतिनामसत्यंभविष्यति ॥ ३५ ॥ विश्वेशानुग्रहात्काश्यामभिलाषानदुर्लभाः ॥ सुलभोदुर्लभोप्यत्रयत्रमोक्षस्तनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥ सृष्टेःकरणसामर्थ्यंसृष्टिरक्षाप्रवीणता ॥ विधिनाविष्णुनाप्रापिविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ ३७ ॥ याहिविश्वेश्वरंसद्मपद्मयासमधिष्ठितम् ॥ निर्वाणसंज्ञयाबालायदीच्छेःस्वान्मनोरथान् ॥ ३८ ॥ सहिसर्वप्रदःशंभुर्याचितश्चोपमन्युना ॥ पयोमात्रंददौतस्मैसर्वंक्षीराब्धिमेवच ॥ ३९ ॥ आनंदकाननेशंभोःकिंकिंकेननलभ्यते ॥ यत्रवासकृतांपुंसांधर्मराशिःपदेपदे ॥ ४० ॥

तो सत्यही तुम्हारा नाम विश्वकर्मा होगा ॥ ३५ ॥ काशीमें विश्वेश्वरकी कृपासे कोईभी अभिलाष दुर्लभ नहीं है क्यों कि, वहांपर तो परम दुर्लभ मोक्षभी शरीर त्यागनेवालोंको सुलभ होजाताहै॥ ३६॥ विश्वेश्वरहीकी परमानुकम्पासे ब्रह्माने सृष्टि रचनेका सामर्थ्य और विष्णुने सृष्टिरक्षामें प्रवीणतापाई है॥ ३७॥ हे वत्स ! यदि तुम अपने मनोरथोंको पूर्ण किया चाहते हो, तो निर्वाणलक्ष्मीसे अधिष्ठित काशीपुरीमें चले जाओ ॥ ३८ ॥ वेही भगवान् शंकर समस्त मनोवांछाको पूर्ण कर देतेहैं, उपमन्युके थोडासा दूध मांगनेपर उनने समस्त क्षीरसागर उनको देदिया ॥ ३९ ॥ जहांपर वास करनेवालोंको पद पदपर

धर्मकी ढेर मिलतीहै, महादेवके उस आनन्दवनमें किसको क्या नहीं मिल सकताहै? ॥४०॥ जहांपर केवल गंगाके जलका स्पर्श होतेही महापातकावलीका तुरत क्षय होजाताहै, उस काशीका कौन नहीं आश्रय लेता ॥ ४१ ॥ करोडों यज्ञ करनेसेभी वैसी धर्मराशि नहीं मिलसकती, जैसी कि, काशीकी गलियोंमें घूमनेसे पद पदपर आपसे आप प्राप्त होजातीहै करोडों यज्ञ करनेसे जो धर्म नहीं होता है वही काशीकी गलियोंमें टहलनेहीसे मिलताहै ॥ ४२ ॥ यदि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके पानेकी इच्छा हो तो त्रैलोक्यपावनी काशीपुरीकी यात्रा करो ॥ ४३ ॥ तभी लोगोंकी समस्त कामनाओंका फल मिल जाताहै जब कि, काशीमें सर्वस्वदाता भगवान् विश्वनाथका आश्रयण कर लेवे ॥ ४४ ॥ विश्वकर्मा तापसकी बात सुन प्रसन्न होकर उन्हींसे

स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेणमहापातकसंततिः ॥ यत्रसंक्षयतिक्षिप्रंतांकाशींकोनसंश्रयेत् ॥४१॥ नताहृग्धर्मसंभारोलभ्यतेक्रतुकोटिभिः ॥ याहृग्वाराणसीवीथीसंचारेणपदेपदे ॥ ४२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यत्रास्तिमनोरथः ॥ तदावाराणसींयाहियाहित्रैलोक्यपावनीम् ॥ ४३ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिस्तदैवस्याद्धुवंनृणाम् ॥ यदैवसर्वदःसर्वःकाश्यांविश्वेश्वरःश्रितः ॥ ४४ ॥ सतापसोक्तमाकर्ण्यत्वाष्ट्रइत्थंसुहृष्टवान् ॥ काशीसंप्राप्त्युपायंचतमेवसमपृच्छत ॥ ४५ ॥ त्वाष्ट्रउवाच ॥ ॥ तदानंदवनंशंभोःक्कास्तितापससत्तम ॥ यत्रनोदुर्लभंकिंचित्साधकानांत्रयीस्थितम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गेवामर्त्यलोकेवाबलिसद्मनिवामुने ॥ क्कतदानंदगहनंयत्रानंदपयोब्धिजा ॥ ४७ ॥ यत्रविश्वेश्वरोदेवोविश्वेषांकर्णधारकः ॥ व्याचष्टेतारकंज्ञानंयेनतन्मयतांययुः ॥ ४८ ॥ सुलभायत्रनियतमानंदवनचारिणः ॥ अपिनैःश्रेयसीलक्ष्मीःकिमन्येल्पमनोरथाः ॥ ४९ ॥ कस्तांमांप्रापयेच्छंभोःकथंयामितथावद ॥ सतपस्वीतितद्वाक्यमाकर्ण्यश्रद्धयान्वितम् ॥ ५० ॥

काशीकी प्राप्तिका उपाय पूछने लगे ॥४५॥ विश्वकर्मा बोले—हे तापससत्तम ! जिस काशीमें साधकलोगोंको त्रैलोक्यभरके सभी पदार्थसुलभहैं, महादेवका वह आनंदकानन कहांपर है ? ॥४६॥ हे मुने ! जहांपर स्वयं आनन्दलक्ष्मी विराजमान रहतीहै, वह आनन्दवन स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, अथवा पाताललोकमें कहांहै ? ॥४७॥ जहांपर संसारके पारकरनेवाले भगवान् विश्वेश्वर जीवोंको उस तारकज्ञानका उपदेश दे देतेहैं, जिससे वे सब तन्मयहोतेहैं ॥४८॥ फिर जिस आनन्दवनमें विचरण करनेवालेको मोक्षलक्ष्मीही सुलभ है, वहांपर दूसरे छोटे छोटे मनोरथोंकी कौनसी बातहै ॥ ४९ ॥ (अच्छातो अब)

आप यह बतादेवें कि, मुझे उस काशीमें कौन पहुँचावेगा अथवा मैं कैसे जासकताहूंवह तपस्वी विश्वकर्माकी इस भक्तिभरी बातको सुनकर ॥ ५० ॥
बोला कि, चलो मैंहीं तुमको वहां लेचलूंगा, क्योंकि, मेरी इच्छाभी वहीं जानेकी है, कारण, यदि दुर्लभ मनुष्यतन पाकरभी काशीका सेवन न होसका
तो ॥ ५१ ॥ फिर कहां यह मनुष्यदेह मिलेगा और कहां कर्मबंधननाशिनी श्रेयोभूमी काशी मिलेगी ? यदि काशीकी प्राप्ति नहीं होनेसे यह मनुष्यजन्म
वृथा गया तो ॥ ५२ ॥ समस्त आयुष्य और भविष्य (जन्म) सबकुछ वृथाही हुआ, अतएव मैं अत्यंत चंचल इस मनुष्यजन्मको सफल करनेके
लिये ॥ ५३ ॥ काशीको जाऊंगा सो तुमभी मायाको छोडकर मेरे साथ चले चलो, इस भाँतिसे विश्वकर्मा उस दयालु तपस्वीके साथ ॥ ५४ ॥

प्राहागच्छनयामित्वांयियासुरहमप्यहो ॥ दुर्लभंप्राप्यमानुष्यंयदिकाशीनसेविता ॥५१॥ पुनःक्वनृत्वंश्रेयोभूःक्वकाशीकर्मबंधहृत् ॥ वृथा गतेहिमानुष्येकाशीप्राप्तिविवर्जनात् ॥ ५२ ॥ आयुष्यंचभविष्यंचसर्वमेववृथागतम् ॥ अतोहंसफलीकर्तुंमानुष्यंचातिचंचलम् ॥ ५३ ॥ यास्यामिकाशीमायाहिमायांहित्वात्वमप्यहो ॥ इतितेनसहत्वाष्ट्रोमुनिनातिकृपालुना ॥५४॥ पुरींवैश्वेश्वरींप्राप्तोमनःस्वास्थ्यमवापच ॥ ततःप्राप्यतांकाशींतापसःक्वाप्यतर्कितम् ॥५५॥ जगामकुंभसंभूतसत्वाष्ट्रोपीत्यमन्यत ॥ अवश्यंसहिविश्वेशःसर्वेषांचिंतितप्रदः॥५६॥ सत्पथस्थिरवृत्तीनांदूरस्थोपिसमीपगः ॥ यस्मिन्प्रसन्नश्त्र्यक्षस्तंदविष्ठमपिध्रुवम् ॥ ५७ ॥ मुनेदिष्टंकरोत्येवस्वयंवर्त्मोपदेशयन् ॥ क्वा हंतत्रवनेबालश्चिंताकुलितमानसः ॥ क्वतापसःसयोमांवैसूपदिश्येहचानयत् ॥ ५८ ॥

विश्वनाथकी नगरीमें जा पहुँचे और (वहांके जानेसे) उनके मनकी बडीही शांतिभी हुई तदनंतर विश्वकर्माको काशीमें पहुँचाकर वह तपस्वी न जाने
कहां ॥५५॥ चलगया, हे कुम्भयोने ! तब तो विश्वकर्मानेभी यही समझलिया कि, सब लोगोंके अभीष्टदाता भगवान् विश्वनाथही निस्सन्देह वे तपस्वी
थे ॥ ५६ ॥ जिन लोगोंकी चित्तवृत्ति सत्पथपर दृढ रहती है, वे दूरस्थ होनेपरभी उन्हींके निकटमें वर्तमान रहते हैं, भगवान् त्र्यक्ष जिसपर कृपाकटाक्ष
फेरदेते हैं, उसे बहुत दूर रहनेपरभी स्वयं मार्ग बताकर निकटवर्ती बनालेते हैं यह बात सर्वथा ध्रुव है ॥ ५७ ॥ भगवान् त्रिलोचनकी यह अद्भुत लीलाहै
कि, उनका भक्त चाहे जहां रहे, पर उसके लिए कुछभी दुर्लभ नहीं है, क्योंकि कहांतो वनमें चिंतासे व्याकुल चित्त होकर मैं ज्ञानहीन होरहाथा, और कहां

धर्मकी ढेर मिलतीहै, महादेवके उस आनन्दवनमें किसको क्या नहीं मिल सकताहै? ॥४०॥ जहांपर केवल गंगाके जलका स्पर्श होतेही महापातकावलीका तुरत क्षय होजाताहै, उस काशीका कौन नहीं आश्रय लेता ॥ ४१ ॥ करोडों यज्ञ करनेसेभी वैसी धर्मराशि नहीं मिलसकती, जैसी कि, काशीकी गलियोंमें घूमनेसे पद पदपर आपसे आप प्राप्त होजातीहै करोडों यज्ञ करनेसे जो धर्म नहीं होता है वही काशीकी गलियोंमें टहलनेहीसे मिलताहै ॥ ४२ ॥ यदि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके पानेकी इच्छा हो तो त्रैलोक्यपावनी काशीपुरीकी यात्रा करो ॥ ४३ ॥ तभी लोगोंकी समस्त कामनाओंका फल मिल जाताहै जब कि, काशीमें सर्वस्वदाता भगवान् विश्वनाथका आश्रयण कर लेवे ॥ ४४ ॥ विश्वकर्मा तापसकी बात सुन प्रसन्न होकर उन्हींसे

स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेणमहापातकसंततिः ॥ यत्रसंक्षयतिक्षिप्रंतांकाशींकोनसंश्रयेत् ॥४१॥ नताद्दग्धर्मसंभारोलभ्यतेक्रतुकोटिभिः ॥ याद्दग्वाराणसीवीथीसंचारेणपदेपदे ॥ ४२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यत्रास्तिमनोरथः ॥ तदावाराणसींयाहियाहित्रैलोक्यपावनीम् ॥ ४३ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिस्तदैवस्याद्ध्रुवंनृणाम् ॥ यदैवसर्वदःसर्वःकाश्यांविश्वेश्वरःश्रितः ॥ ४४ ॥ सतापसोक्तमाकर्ण्यत्वाष्ट्रइत्थंसुहृष्टवान् ॥ काशीसंप्राप्त्युपायंचतमेवसमपृच्छत ॥ ४५ ॥ त्वाष्ट्रउवाच ॥ ॥ तदानंदवनंशंभोःक्वास्तितापससत्तम ॥ यत्रनोदुर्लभंकिंचित्साधकानांत्रयीस्थितम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गेवामर्त्यलोकेवाबलिसद्मनिवामुने ॥ क्वतदानंदगहनंयत्रानंदपयोब्धिजा ॥ ४७ ॥ यत्रविश्वेश्वरोदेवोविश्वेषांकर्णधारकः ॥ व्याचष्टेतारकंज्ञानंयेनतन्मयतांययुः ॥ ४८ ॥ सुलभायत्रनियतमानंदवनचारिणः ॥ अपिनैःश्रेयसीलक्ष्मीःकिमन्येल्पमनोरथाः ॥ ४९ ॥ कस्तांमांप्रापयेच्छंभोःकथंयामितथावद ॥ सतपस्वीतितद्वाक्यमाकर्ण्यश्रद्धयान्वितम् ॥ ५० ॥

काशीकी प्राप्तिका उपाय पूछने लगे ॥४५॥ विश्वकर्मा बोले–हे तापससत्तम ! जिस काशीमें साधकलोगोंको त्रैलोक्यभरके सभी पदार्थसुलभहैं, महादेवका वह आनंदकानन कहांपर है ? ॥४६॥ हे मुने ! जहांपर स्वयं आनन्दलक्ष्मी विराजमान रहतीहै, वह आनन्दवन स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, अथवा पाताललोकमें कहांहै ? ॥४७॥ जहांपर संसारके पारकरनेवाले भगवान् विश्वेश्वर जीवोंको उस तारकज्ञानका उपदेश दे देतेहैं, जिससे वे सब तन्मयहोतेहैं ॥४८॥ फिर जिस आनन्दवनमें विचरण करनेवालेको मोक्षलक्ष्मीही सुलभ है, वहांपर दूसरे छोटे छोटे मनोरथोंकी कौनसी बातहै ॥ ४९ ॥ (अच्छातो अब)

आप यह बतादेवें कि, मुझे उस काशीमें कौन पहुँचावेगा अथवा मैं कैसे जासकताहूंवह तपस्वी विश्वकर्माकी इस भक्तिभरी बातको सुनकर ॥ ५० ॥ बोला कि, चलो मैंहीं तुमको वहां लेचलूंगा, क्योंकि, मेरी इच्छाभी वहीं जानेकी है, कारण, यदि दुर्लभ मनुष्यतन पाकरभी काशीका सेवन न होसका तो ॥ ५१ ॥ फिर कहां यह मनुष्यदेह मिलेगा और कहां कर्मबंधननाशिनी श्रेयोभूमी काशी मिलेगी ? यदि काशीकी प्राप्ति नहीं होनेसे यह मनुष्यजन्म वृथा गया तो ॥ ५२ ॥ समस्त आयुष्य और भविष्य (जन्म) सबकुछ वृथाही हुआ, अतएव मैं अत्यंत चंचल इस मनुष्यजन्मको सफल करनेके लिये ॥ ५३ ॥ काशीको जाऊंगा सो तुमभी मायाको छोडकर मेरे साथ चले चलो, इस भाँतिसे विश्वकर्मा उस दयालु तपस्वीके साथ ॥ ५४ ॥

प्राहागच्छनयामित्वांयियासुरहमप्यहो ॥ दुर्लभंप्राप्यमानुष्यंयदिकाशीनसेविता ॥५१॥ पुनःक्वनृत्वंश्रेयोभूःक्वकाशीकर्मबंधहृत् ॥ वृथा गतेहिमानुष्येकाशीप्राप्तिविवर्जनात् ॥ ५२ ॥ आयुष्यंचभविष्यंचसर्वमेववृथागतम् ॥ अतोहंसफलीकर्तुंमानुष्यंचातिचंचलम् ॥ ५३ ॥ यास्यामिकाशीमायाहिमायांहित्वात्वमप्यहो ॥ इतितेनसहत्वाष्ट्रोमुनिनातिकृपालुना ॥५४॥ पुरींवैश्वेश्वरींप्राप्तोमनःस्वास्थ्यमवापच ॥ ततःप्रापय्यतांकाशींतापसःक्वाप्यतर्कितम् ॥५५॥ जगामकुंभसंभूतसत्वाष्ट्रोपीत्यमन्यत ॥ अवश्यंसहिविश्वेशःसर्वेषांचिंतितप्रदः॥५६॥ सत्पथस्थिरवृत्तीनांदूरस्थोपिसमीपगः ॥ यस्मिन्प्रसन्नदृक्त्र्यक्षस्तंदविष्ठमपिध्रुवम् ॥ ५७ ॥ सुनेदिष्ठंकरोत्येवस्वयंवर्त्मोपदेशयन् ॥ क्वा हंतत्रवनेबालश्चिंताकुलितमानसः ॥ क्वतापसःसयोमांवैसूपदिश्येहचानयत् ॥ ५८ ॥

विश्वनाथकी नगरीमें जा पहुँचे और (वहांके जानेसे) उनके मनकी बडीही शांतिभी हुई तदनंतर विश्वकर्माको काशीमें पहुँचाकर वह तपस्वी न जाने कहां ॥५५॥ चलागया, हे कुम्भयोने ! तब तो विश्वकर्मानेभी यही समझलिया कि, सब लोगोंके अभीष्टदाता भगवान् विश्वनाथही निस्सन्देह वे तपस्वी थे ॥ ५६ ॥ जिन लोगोंकी चित्तवृत्ति सत्पथपर दृढ रहती है, वे दूरस्थ होनेपरभी उन्हींके निकटमें वर्तमान रहते हैं, भगवान् त्र्यक्ष जिसपर कृपाकटाक्ष फेरदेते हैं, उसे बहुत दूर रहनेपरभी स्वयं मार्ग बताकर निकटवर्ती बनालेते हैं यह बात सर्वथा ध्रुव है ॥ ५७ ॥ भगवान् त्रिलोचनकी यह अद्भुत लीलाहै कि, उनका भक्त चाहे जहां रहे, पर उसके लिए कुछभी दुर्लभ नहीं है, क्योंकि कहांतो वनमें चिंतासे व्याकुल चित्त होकर मैं ज्ञानहीन होरहाथा, और कहां

उस तपस्वीने सदुपदेश देकर मुझको इस काशीपुरीमें पहुँचा दिया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें कभी भगवान् शंकरकी आराधना नहीं की क्योंकि शरीरधारी होनेहीसे इस बातका अनुमान निश्चय ज्ञात होजाताहै ॥ ६० ॥ और इस जन्ममें तो अबतक लडकपनहीके कारणसे कुछभी आराधना नहीं होसकी यह बात प्रत्यक्ष स्पष्टही है, फिर शिवकी यह अनुग्रहबुद्धि मुझपर कैसे हुई ? ॥ ६१ ॥ जानपडता है कि, मेरी गुरुभक्तिही महादेवके प्रसादका हेतुहै, जिसके कारणसे भगवान् विश्वेश्वरने कृपालु होकर मुझे यहांपर पहुँचादेनेकी दया दिखलाई है ॥ ६२ ॥ अथवा अन्य देवतोंकी नाईं महेश्वरभी कारणको नहीं ढूंढते, केवल कृपाहीके कारण दरिद्रोंपरभी अनुग्रह करते हैं ॥६३॥ यदि मुझपर उनकी कृपा नहीं होती तो तपस्वीका संग कैसे होता ?

खेलोयमस्यत्र्यक्षस्ययस्यभक्तस्यकुत्रचित् ॥ नदुर्लभतरंकिंचिदहोकाहंककाशिका ॥५९॥ नाराधितोमयाशंभुःप्राक्तनेजन्मनिकचित् ॥ शरीरित्वानुमानेनज्ञातमेतदसंशयम् ॥ ६० ॥ अस्मिन्जन्मनिबालत्वान्नचैवाराधितःस्फुटम् ॥ प्रत्यक्षमेवमेवैतत्कुतोनुग्रहधीर्मयि ॥६१॥ आज्ञातंगुरुभक्तिर्मेहेतुःशंभुप्रसादने ॥ ययेहानुगृहीतोस्मिविश्वेशेनकृपालुना ॥ ६२ ॥ अथवाकारणापेक्षस्त्र्यक्षस्त्वितरदेववत् ॥ रंकमप्यनुगृह्णातिकेवलंकारणंकृपा ॥ ६३ ॥ यदिनोमय्यनुक्रोशःकथंतापससंगतिः ॥ तद्रूपेणस्वयंशंभुरानिनायेहमांध्रुवम् ॥ ६४ ॥ नदानानिनवैयज्ञानतपांसिव्रतानिच ॥ शंभोःप्रसादहेतूनिकारणंतत्कृपैवहि ॥ ६५ ॥ दयामपितदाकुर्यादसौविश्वेश्वरःपराम् ॥ यदाश्रुत्युक्तमध्वानंसद्भिःक्षुण्णंनसंत्यजेत् ॥६६॥ अनुक्रोशंसमर्थ्येतिसत्वाष्ट्रःशांभवंशुचिः ॥ संस्थाप्यलिंगमीशस्याराधयत्स्वस्थमानसः॥६७॥ आनीयपुष्पसंभारमार्तवंकाननाद्बहु ॥ स्नात्वाभ्यर्चयतीशानंकंदमूलफलाशनः ॥ ६८ ॥

स्वयं महादेवही उस रूपसे मुझको यहांपर लिवालाये यह बात ध्रुवहै ॥ ६४ ॥ केवल दान, यज्ञ, तप, और व्रताचरण इत्यादिसे, शिवकी प्रसन्नता नहीं होसकती, तब उनकी कृपाही उनकी प्रसन्नताका एकमात्र कारणहै ॥ ६५ ॥ जो कोई साधुसम्मत वेदविहित मार्गको कभी नहीं छोडता, तभी विश्वेश्वर उसपर परम दया करतेहैं ॥ ६६ ॥ इस प्रकारसे विश्वेश्वरकी कृपाका समर्थन कर त्वष्टपुत्र विश्वकर्मा पवित्र और स्वस्थचित्तहो, शिवलिंगकी स्थापना करके (उसकी) आराधना करने लगे ॥ ६७ ॥ वे कन्दमूल, और फलभोजी होकर नित्यही वनसे ऋतूद्भव बहुतेरे पुष्पोंके संभारको लाकर स्नानके

उपरांत पूजन करने लगे ॥ ६८ ॥ इस रूपसे तीन वर्षतक विश्वकर्माके लिंगाराधनमें दत्तचित्त रहनेपर कृपानिधि शंकर उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ ६९ ॥ महादेव उसी लिंगसे प्रकट होकर बोले कि, हे त्वष्टनन्दन तुम्हारी ! इस दृढभक्ति तथा गुरुके प्रयोजनार्थ दत्तचित्ततासे मैं बडा प्रसन्नहूं सो, हे बेटा ! तुम वर मांगो, और तुम्हारे गुरु, गुरुपत्नी, और गुरुके दोनों लडकोंने जो कुछ तुमसे कहाहै उसके बनादेनेकी सामर्थ्य तुमको होजावेगी ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ हे त्वाष्ट्र ! तुम्हारे इस आश्चर्यमय लिंगके विधिवत् पूजनसे मैं बहुतही संतुष्टहूं, अतएव औरभी जो जो वर देताहूं उनको श्रवण करो ॥७३॥

इत्थंत्वष्टृतनूजस्यलिंगाराधनचेतसः ॥ त्रिहायनात्प्रसन्नोभूत्तस्येशःकरुणानिधिः ॥ ६९ ॥ तस्मादेवहिलिंगाच्चप्रादुर्भूयभवोऽब्रवीत् ॥ वरंवरयरेत्वाष्ट्रदृढभक्त्यानयातव ॥ ॥ ७० ॥ प्रसन्नोस्मिभृशंबालगुर्वर्थकृतचेतसः ॥ गुरुणागुरुपत्न्याचगुर्वपत्यद्वयेनच ॥ ७१ ॥ यथा र्थितंतथाकर्तुंतेसामर्थ्यंभविष्यति ॥७२॥ अन्यान्वरांश्चतेदद्यांत्वाष्ट्रतुष्टस्त्वदर्चया ॥ तान्शृणुष्वमहाभागलिंगस्यास्याद्भुतश्रियः॥७३॥ त्वंसुवर्णादिधातूनांदारूणांदृषदामपि ॥ मणीनामपिरत्नानांपुष्पाणामपिवाससाम् ॥ ७४ ॥ कर्पूरादिसुगंधीनांद्रव्याणामप्यपामपि ॥ कंदमूलफलानांचद्रव्याणामपिचत्वचाम् ॥७५॥ सर्वेषांवस्तुजातानांकर्तुंकर्मप्रवेत्स्यसि ॥ यस्ययस्यरुचिर्यत्रसद्मदेवालयादिषु ॥७६॥ तस्यतस्येहतुष्ट्यैत्वंतथाकर्तुंप्रवेत्स्यसि ॥ सर्वनेपथ्यरचनासर्वाःसूपस्यसंस्कृतीः ॥७७॥ सर्वाणिशिल्पिकार्याणितौर्यत्रिकमथापिच ॥ सर्वज्ञास्यसिकर्तुंत्वंद्वितीयइवपद्मभूः ॥७८॥ नानाविधानियंत्राणिनानायुधविधानकम् ॥ जलाशयानांरचनाःसुदुर्गरचनास्तथा ॥७९॥

सुवर्ण इत्यादि धातु, काष्ठ, पत्थर, मणि, रत्न, पुष्प, वस्त्र ॥ ७४ ॥ कर्पूर आदिक सुगंध, द्रव्य, जल, कंद, मूल, फल, त्वचा, प्रभृति पदार्थ ॥ ७५ ॥ और सब प्रकारके वस्तुओंके बनानेका काम तुम जानसकोगे, जिस जिसकी जहांकहीं मन्दिर अथवा देवालय इत्यादि पर ॥ ७६ ॥ जैसी रुचि होगी उसके संतोषार्थ तुम वैसाही बना देसकोगे विविधभाँतिके भूषणोंकी रचना, रसोईकी क्रिया ॥ ७७ ॥ सब प्रकारके शिल्पकर्म, और तौर्यत्रिक इत्यादिको तुम दूसरे ब्रह्माकी नाईं बनाने जान जाओगे ॥ ७८ ॥ नानाविधिके यंत्र, अनेक आयुध विधान, जलाशय निर्माण और सुन्दर दुर्गकी रचनायें ॥ ७९ ॥

उस तपस्वीने सदुपदेश देकर मुझको इस काशीपुरीमें पहुँचा दिया ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ मैंने पूर्वजन्ममें कभी भगवान् शंकरकी आराधना नहीं की क्योंकि शरीरधारी होनेहीसे इस बातका अनुमान निश्चय ज्ञात होजाताहै ॥ ६० ॥ और इस जन्ममें तो अबतक लडकपनहीके कारणसे कुछभी आराधना नहीं होसकी यह बात प्रत्यक्ष स्पष्टही है, फिर शिवकी यह अनुग्रहबुद्धि मुझपर कैसे हुई ? ॥ ६१ ॥ जानपडता है कि, मेरी गुरुभक्तिही महादेवके प्रसादका हेतुहै, जिसके कारणसे भगवान् विश्वेश्वरने कृपालु होकर मुझे यहांपर पहुँचादेनेकी दया दिखलाई है ॥ ६२ ॥ अथवा अन्य देवतोंकी नाईं महेश्वरभी कारणको नहीं ढूंढते, केवल कृपाहीके कारण दरिद्रोंपरभी अनुग्रह करते हैं ॥६३॥ यदि मुझपर उनकी कृपा नहीं होती तो तपस्वीका संग कैसे होता ?

खेलोयमस्यत्र्यक्षस्ययस्यभक्तस्यकुत्रचित् ॥ नदुर्लभतरंकिंचिदहोकाहंककाशिका ॥५९॥ नाराधितोमयाशंभुःप्राक्तनेजन्मनिक्कचित् ॥ शरीरित्वानुमानेनज्ञातमेतदसंशयम् ॥ ६० ॥ अस्मिन्जन्मनिबालत्वान्नैवाराधितःस्फुटम् ॥ प्रत्यक्षमेवमेवैतत्कुतोनुग्रहधीर्मयि ॥६१॥ आज्ञातंगुरुभक्तिर्मेहेतुःशंभुप्रसादने ॥ ययेहानुगृहीतोस्मिविश्वेशेनकृपालुना ॥ ६२ ॥ अथवाकारणापेक्षस्त्र्यक्षस्त्वितरदेववत् ॥ रंकमप्यनुगृह्णातिकेवलंकारणंकृपा ॥ ६३ ॥ यदिनोमय्यनुक्रोशःकथंतापससंगतिः ॥ तद्रूपेणस्वयंशंभुरानिनायेहमांध्रुवम् ॥ ६४ ॥ नदानानिनवैयज्ञानतपांसिव्रतानिच ॥ शंभोःप्रसादहेतूनिकारणंतत्कृपैवहि ॥ ६५ ॥ दयामपितदाकुर्यादसौविश्वेश्वरःपराम् ॥ यदाश्रुत्युक्तमध्वानंसद्भिःक्षुण्णंनसंत्यजेत् ॥६६॥ अनुक्रोशंसमर्थ्यैतिसत्वाष्ट्रःशांभवंशुचिः ॥ संस्थाप्यलिंगमीशस्याराधयत्स्वस्थमानसः॥६७॥ आनीयपुष्पसंभारमार्तवंकाननाद्बहु ॥ स्नात्वाभ्यर्चयतीशानंकंदमूलफलाशनः ॥ ६८ ॥

स्वयं महादेवही उस रूपसे मुझको यहांपर लिवालाये यह बात ध्रुवहै ॥ ६४ ॥ केवल दान, यज्ञ, तप, और व्रताचरण इत्यादिसे, शिवकी प्रसन्नता नहीं होसकती, तब उनकी कृपाही उनकी प्रसन्नताका एकमात्र कारणहै ॥ ६५ ॥ जो कोई साधुसम्मत वेदविहित मार्गको कभी नहीं छोडता, तभी विश्वेश्वर उसपर परम दया करतेहैं ॥ ६६ ॥ इस प्रकारसे विश्वेश्वरकी कृपाका समर्थन कर त्वष्टृपुत्र विश्वकर्मा पवित्र और स्वस्थचित्तहो, शिवलिंगकी स्थापना करके (उसकी) आराधना करने लगे ॥ ६७ ॥ वे कन्दमूल, और फलभोजी होकर नित्यही वनसे ऋतूद्भव बहुतेरे पुष्पोंके संभारको लाकर स्नानके

उपरांत पूजन करने लगे ॥ ६८ ॥ इस रूपसे तीन वर्षतक विश्वकर्माके लिंगाराधनमें दत्तचित्त रहनेपर कृपानिधि शंकर उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ ६९ ॥ महादेव उसी लिंगसे प्रकट होकर बोले कि, हे त्वष्टनन्दन तुम्हारी ! इस दृढभक्ति तथा गुरुके प्रयोजनार्थ दत्तचित्ततासे मैं बडा प्रसन्नहूं सो, हे बेटा ! तुम वर मांगो, और तुम्हारे गुरु, गुरुपत्नी, और गुरुके दोनों लडकोंने जो कुछ तुमसे कहाहै उसके बनादेनेकी सामर्थ्य तुमको होजावेगी ॥ ७० ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ ७२ ॥ हे त्वाष्ट्र ! तुम्हारे इस आश्चर्यमय लिंगके विधिवत् पूजनसे मैं बहुतही संतुष्टहूं, अतएव औरभी जो जो वर देताहूं उनको श्रवण करो ॥७३॥

इत्थंत्वष्टृतनूजस्यलिंगाराधनचेतसः ॥ त्रिहायनात्प्रसन्नोभूत्तस्येशःकरुणानिधिः ॥ ६९ ॥ तस्मादेवहिलिंगाच्चप्रादुर्भूयभवोऽब्रवीत् ॥ वरंवरयरेत्वाष्ट्रदृढभक्त्यानयातव ॥ ॥ ७० ॥ प्रसन्नोस्मिभृशंबालगुर्वर्थकृतचेतसः ॥ गुरुणागुरुपत्न्याचगुर्वपत्यद्वयेनच ॥ ७१ ॥ यथा र्थितंतथाकर्तुंतेसामर्थ्यंभविष्यति ॥७२॥ अन्यान्वरांश्चतेदद्यांत्वाष्ट्रतुष्टस्त्वदर्चया ॥ तान्शृणुष्वमहाभागलिंगस्यास्याद्भुतश्रियः॥७३॥ त्वंसुवर्णादिधातूनांदारूणांदृषदामपि ॥ मणीनामपिरत्नानांपुष्पाणामपिवाससाम् ॥ ७४ ॥ कर्पूरादिसुगंधीनांद्रव्याणामप्यपामपि ॥ कंदमूलफलानांचद्रव्याणामपिचत्वचाम् ॥७५॥ सर्वेषांवस्तुजातानांकर्तुंकर्मप्रवेत्स्यसि ॥ यस्ययस्यरुचिर्यत्रसद्मदेवालयादिषु ॥७६॥ तस्यतस्येहतुष्ट्यैत्वंतथाकर्तुंप्रवेत्स्यसि ॥ सर्वनेपथ्यरचनासर्वाःसूपस्यसंस्कृतीः ॥७७॥ सर्वाणिशिल्पिकार्याणितौर्यत्रिकमथापिच ॥ सर्वज्ञास्यसिकर्तुंत्वंद्वितीयइवपद्मभूः ॥७८॥ नानाविधानियंत्राणिनानायुधविधानकम् ॥ जलाशयानांरचनाःसुदुर्गरचनास्तथा ॥७९॥

सुवर्ण इत्यादि धातु, काष्ठ, पत्थर, मणि, रत्न, पुष्प, वस्त्र ॥ ७४ ॥ कर्पूर आदिक सुगंध, द्रव्य, जल, कंद, मूल, फल, त्वचा, प्रभृति पदार्थ ॥ ७५ ॥ और सब प्रकारके वस्तुओंके बनानेका काम तुम जानसकोगे, जिस जिसकी जहांकहीं मन्दिर अथवा देवालय इत्यादि पर ॥ ७६ ॥ जैसी रुचि होगी उसके संतोषार्थ तुम वैसाही बना देसकोगे विविधभाँतिके भूषणोंकी रचना, रसोईकी क्रिया ॥ ७७ ॥ सब प्रकारके शिल्पकर्म, और तौर्यत्रिक इत्यादिको तुम दूसरे ब्रह्माकी नाईं बनाने जान जाओगे ॥ ७८ ॥ नानाविधिके यंत्र, अनेक आयुध विधान, जलाशय निर्माण और सुन्दर दुर्गकी रचनायें ॥ ७९ ॥

जैसी तुम बनासकोगे, वैसी और किसीकी बनाई नहीं बनसकेगी एवं मेरे वरदानके प्रभावसे तुम समस्त कलाओंको स्वयं जान जाओगे ॥ ८० ॥ सब प्रकारकी इन्द्रजाल संबंधिनी विद्या तुम्हारे आधीन रहेंगी, सब कामोंमें कौशल्य और बुद्धिमानोंमें प्रधानता तुम्हींको मिलेगी ॥८१॥ मेरे इसी वरदानसे तुम सब लोगोंकी मनोवृत्तिको समझ जाओगे, बहुत कहांतक कहें स्वर्ग, पाताल और इस मर्त्यलोकमें जो कुछ ॥८२॥ लोकोत्तर कर्म है उस सबको तुम आपसे आप जान सकोगे ॥ ८३ ॥ हे अनघ ! समस्त भुवनोंमें विश्वभरके सब कर्मोंके जानलेनेसे तुम्हारा नाम विश्वकर्मा होगा ॥ ८४ ॥ अहो ! लिंगपूजनमें

तादृक्कर्तुंपुरावेत्सियादृङ्नान्योऽधियास्यति ॥ कलाजातंहिसर्वंत्वमवयास्यसिमेवरात् ॥ ८० ॥ सर्वेंद्रजालिकीविद्यात्वदधीनाभविष्यति ॥ सर्वकर्मसुकौशल्यंसर्वबुद्धिवरिष्ठताम् ॥ ८१ ॥ सर्वेषांचमनोवृत्तिंत्वंज्ञास्यसिवरान्मम ॥ किंबहूक्तेनयत्स्वर्गेयत्पाताले यदत्रच ॥ ८२ ॥ अतिलोकोत्तरंकर्मतत्सर्ववेत्स्यासिस्वयम् ॥ ८३ ॥ विश्वेषांविश्वकर्माणिविश्वेषुभुवनेषुच ॥ यतोज्ञास्यसितन्नामविश्वकर्मेतितेऽनघ ॥ ८४ ॥ अपरःकोवरोदेयस्तवतंप्रार्थयाश्वहो ॥ तवादेयंनमेकिंचिल्लिंगार्चनरतस्यहि ॥ ८५ ॥ अन्यत्रापिहियोलिंगं समर्चयतिसन्मतिः ॥ तस्यापिवांछितंदेयंकिंपुनर्योविकाशिकम् ॥ ८६ ॥ येनकाश्यांसमभ्यर्चियेनकाश्यांप्रतिष्ठितम् ॥ येनकाश्यांस्तुतंलिंगंसमेरूपायदर्पणः॥ ८७ ॥ तत्त्वंस्वच्छोसिमुकुरोममनेत्रत्रयस्यहि ॥ काश्यांलिंगार्चनात्त्वाष्ट्रवरंवरयसुव्रत ॥ ८८ ॥ काश्यांयोराजधान्यांमेहित्वामामन्यमर्चयेत् ॥ सवराकोल्पधीर्मुष्टोऽल्पतुष्टिर्मुक्तिवर्जितः ॥ ८९ ॥

लगे रहनेके कारण तुम्हारे लिए मुझे कुछभी अदेय नहीं है, सो जो वर लेनाहो मुझसे अभी मांगलो ॥ ८५ ॥ जो सन्मतिमान् जन दूसरे किसी स्थानपरभी मेरे लिंगका पूजन करताहै, मैं उसेभी वांछितफल देताहीहूं, फिर जो काशीमें हो तो उसका क्या कहनाहै ॥ ८६ ॥ इस काशीपुरीमें जिसने लिंगकी पूजा अथवा प्रतिष्ठा किंवा स्तुतिही की वह मेरे रूपधारणके लिये मानो दर्पणही होजाताहै ॥ ८७ ॥ अतएव हे सुव्रत ! त्वाष्ट्र ! काशीमें लिंगकी पूजा करनेसे तुम मेरे तीनों नेत्रोंके निर्मल मुकुर (चश्मा) होगयेहो ॥ ८८ ॥ जो मन्दमति वराक जन, मेरी राजधानी काशीपुरीमें मुझे छोडकर दूसरे किसीका पूजन

करताहै वह मूढ सदैव मुक्तिसे वर्जित बनारहताहै ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, चन्द्र, और इन्द्र इत्यादि देवगणभी यहांपर मुझसे भिन्न अन्य किसीको नहीं पूजते, अतएव मोक्षार्थी लोगोंको उचितहै कि, इस आनंदवनमें मेरीही पूजा करें ॥ ९० ॥ जैसे तुमने आनंदवनमें आकर मेरी पूजा कीहै वैसेही औरभी कितनेही पुण्यकर्मालोग मेरा पूजन करके मुझको पाचुकेहैं ॥ ९१ ॥ तुम मेरे परम अनुग्रह भाजनहो, इसलिये अत्यंत दुर्लभभी वरदान पासकतेहो, सो जो तुम चाहते हो उसे मिलाही हुआ समझो, और अब विलम्ब मत करो शीघ्रतासे बोलो ॥ ९२ ॥ विश्वकर्माने कहा—हे शंकर ! मैंने अज्ञ होनेपरभी जो इस लिंगको स्थापित कियाहै, सो दूसरे लोगभी इस लिंगकी आराधना करके उत्तम बुद्धिसे संपन्न हुआ करें ॥ ९३ ॥ हे नाथ ! मेरी यह एक औरभी

तदानंदवनेह्यत्रसमच्र्योहंमुमुक्षुभिः ॥ द्रुहिणोपेंद्रचंद्रेंद्रैरिहान्योनसमर्च्यते ॥ ९० ॥ यथानंदवनंप्राप्यत्वंमामार्चितवानसि ॥ तथान्ये पुण्यकर्माणोमामभ्यर्च्यैवमामिताः ॥ ९१ ॥ अनुग्राह्योऽसिनितरांततोवरयदुर्लभम् ॥ आणितंतदवेहित्वंवदमाचिरयस्वभोः ॥ ९२ ॥ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ ॥ इदंयत्स्थापितंलिंगंमयाज्ञेनापिशंकर ॥ तल्लिंगमन्येप्याराध्यसंतुसद्बुद्धिभाजनम् ॥ ९३ ॥ अन्यच्चनाथप्रार्थ्योसितच्चविश्राणयिष्यसि ॥ भवान्मयाविनिर्मापयितास्वंप्रासादंकदाभव ॥ ९४ ॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ एवमस्तुयदुक्तंतेतव लिंगसमर्चकाः ॥ सद्बुद्धिभाजनंवैस्युःस्युश्चनिर्वाणदीक्षिताः ॥ ९५ ॥ यदाचराजाभविता दिवोदासोविधेर्वरात् ॥ तदामेवचनात्तातप्रासादंमेविधास्यति ॥ ९६ ॥ नवीकृत्यपुनःकाशीनिर्विष्टातेनभूभुजा ॥ गणेशमाययाराज्यात्परिनिर्विण्णचेतसा ॥ ९७ ॥ विष्णोः सदुपदेशाच्चमामेवशरणंगतः ॥ निर्वाणलक्ष्मीःप्राप्तेहहित्वाराज्यश्रियंचलाम् ॥ ९८ ॥

प्रार्थनाहै, जिसे आप अवश्यही देवेंगे, वह यहीहै कि, आप मुझसे अपना मंदिर कब बनवावेंगे ? ॥ ९४ ॥ महादेवने कहा—एवमस्तु, जैसा कि तुमने कहा तुम्हारे स्थापित लिंगके आराधक लोग सद्बुद्धिके भाजन और मोक्षदीक्षित होवेंगे ॥ ९५ ॥ हे तात ! जब ब्रह्माके वरदानसे दिवोदास यहांका राजा होवेगा और बहुत दिनोंतक राज्यभोग करके फिर गणेशकी मायासे बडाही विरक्त चित्त हो विष्णुके उपदेशानुसार चंचल राजलक्ष्मीको त्यागकर मेरी आराधनासे निर्वाणलक्ष्मीको यहींपर प्राप्त होजावेगा, तब उसी घडी तुम मेरे लिये नया प्रासाद बनादेना ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

हे विश्वकर्मन् ! अब तुम चलेजाओ, और गुरुकी आज्ञाके पूर्ण करनेका प्रयत्न करो, क्योंकि जो लोग गुरुकी भक्ति करतेहैं, वे निस्सन्देह मेरेही भक्तहैं॥९९॥ जो लोग गुरुका अपमान करतेहैं, मैंभी उन सबोंका अपमानही करताहूं, सो तुम (जाकर) शिष्योचित गुरुके आदेशका प्रतिपालन करो ॥ १०० ॥ तदनन्तर वहांसे लौटनेपर मेरे पास आकर पवित्रचित्तसे देवतोंका हिताचरण करतेहुए जबलों मुक्ति नहीं होगी तबलों रहोगे॥ १ ॥ तुम्हारे स्थापित इस लिंगमें मैं सदा वर्तमान रहकर अभीष्टफल देता रहूंगा और इस लिंगके भक्तोंको मोक्षलक्ष्मीभी समीपहीमें रहेगी ॥ २ ॥ अंगारेश्वरसे उत्तरदिशामें जो लोग

विश्वकर्मन्व्रजगुरोःशासनाययतस्वच ॥ गुरुभक्तिकृतोयस्मान्मद्भक्तानात्रसंशयः ॥ ९९ ॥ येगुरुंचावमन्यंतेतेवमान्यामयाप्यहो ॥ तस्माद्गुरूपदिष्टंहिकुरुशिष्यसमीहितम् ॥ १०० ॥ ततआगत्यमेपार्श्वंयावन्निर्वाणमेष्यसि ॥ तावत्स्थास्यसिशुद्धात्मादेवानांहितमाचरन् ॥ १ ॥ तवात्रलिंगेसततंस्थास्याम्यहमभीष्टदः ॥ अस्यलिंगस्यभक्तानांनिर्वाणश्रीरदूरतः ॥ २ ॥ अंगारेशादुदीच्यांयेत्वल्लिंगस्य समर्चकाः ॥ तेषांमनोरथावाप्तिर्भविष्यतिपदेपदे ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वांतर्दधेदेवस्त्वाष्ट्रोपिगुरुमाप्तवान् ॥ गुरोःसमीहितंभूरिविधायसगृहान्ययौ ॥ ४ ॥ गृहेपिमातापितरौसंतोष्यनिजकर्मणा ॥ तदुक्ताज्ञांसमाधायपुनःकाशींसमाययौ ॥ ५ ॥ स्वलिंगाराधनासक्तोनाद्यापित्वष्टनंदनः ॥ काशींत्यजतिमेधावीसर्वदेवप्रियंचरन् ॥ ६ ॥ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ॥ पृष्टानियानिलिंगानित्वयादेविगिरींद्रजे ॥ काशीमुक्तौसमर्थानितान्युक्तानिमयातव ॥ ७ ॥

इस लिंगकी पूजा करेंगे पद पदपर उनके मनोरथोंकी प्राप्ति होवेगी ॥ ३ ॥ यह कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान होगये, और विश्वकर्माभी अपने गुरुके निकट चलेगये, एवं वहांपर उन सब लोगोंके अभिलषित कार्यको संपादन करके अपने घर चले गये ॥ ४ ॥ वहांभी अपने कर्मसे माता और पिताको सन्तुष्टकर उनकी आज्ञा लेकर फिर काशीमें लौटआये ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् त्वष्टनन्दन समस्त देवतोंका प्रिय आचरण करतेहुए आजतक निज प्रतिष्ठित लिंगकी आराधनामें आसक्त रहकर काशीहीमें विराजमानहैं ॥६॥ महादेवने कहा—हे गिरीन्द्रकिशोरि ! देवि ! काशीके मुक्ति देनेमें समर्थ जिन लिंगोंको

तुमने पूछाथा उनको मैंने तुमसे कहदिया ॥ ७ ॥ ओंकारेश्वर, त्रिलोचन, महादेव, कृत्तिवासेश्वर, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, ॥ ८ ॥ केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर विश्वकर्मेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर ॥ ९ ॥ और मेरेभी पूज्य अविमुक्तेश्वर, एवं विश्वविदित, समस्त सौख्यप्रदमन्नामक विश्वेश्वर (येही चौदहों प्रधान लिंगहैं) ॥ ११० ॥ जो कोई अविमुक्तक्षेत्रमें आकर विश्वनाथकी पूजा करलेताहै सैकडों करोड कल्प बीतजानेपर भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ११ ॥ संयमी संन्यासियोंको एकही स्थानपर एक वर्षभर वास नहीं करना चाहिये, उन सबको चारमास एक स्थानपर रहकर आठमास विचरण करना उचित है ॥ १२ ॥ परन्तु जो लोग काशीमें प्रविष्ट होचुके हों उनको भ्रमण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यहांपर तो

लिंगमोंकारसंज्ञंचतथादेवंत्रिविष्टपम् ॥ महादेवःकृत्तिवासारत्नेशश्चंद्रसंज्ञकः ॥ ८ ॥ केदारश्चापिधर्मेशस्तथावीरेश्वराभिधः ॥ कामेशविश्वकर्मेशौमणिकर्णीश्वरस्तथा ॥९॥ ममार्च्यमविमुक्ताख्यंततोदेविममाख्यकम् ॥ विश्वनाथेतिविश्वस्मिन्प्रथितंविश्वसौख्यदम् ॥११०॥ अविमुक्तंसमासाद्ययेनविश्वेश्वरोर्चितः ॥ नतस्यास्तिपुनर्जन्मकल्पकोटिशतेष्वपि ॥ ११ ॥ अष्टौमासान्विहारःस्याद्यतीनांसंयतात्मनाम् ॥ एकत्रचतुरोमासानब्दंनावासइष्यते ॥ १२ ॥ अविमुक्तेप्रविष्टानांविहारोनैवयुज्यते ॥ मोक्षोप्यसंशयश्चात्रतस्मात्त्याज्यानकाशिका ॥ १३ ॥ आनंदकाननंहित्वानान्यद्गच्छेत्तपोवनम् ॥ तपोयोगश्चमोक्षश्चयतोत्रैवमदाश्रयात् ॥ १४ ॥ कृपयासर्वजंतूनांक्षेत्रमेतन्मयाकृतम् ॥ अवश्यमेवसिद्ध्यंतिक्षेत्रेस्मिन्सिद्धिकांक्षिणः ॥ १५ ॥ अतीतंवर्तमानंचज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम् ॥ यदेनस्तत्क्षयंयायादानंदवनवीक्षणात् ॥ १६ ॥ अत्युग्रैश्चतपोभिर्यन्महादानैर्महाव्रतैः ॥ नियमैश्चयमैःसम्यक्स्वयोगेनमहामखैः ॥ १७ ॥

मोक्ष निश्चितही है, अतएव काशीको कभी नहीं छोडना चाहिए ॥ १३ ॥ आनन्दवनको त्यागकर दूसरे किसी तपोवनमें नहीं जाना चाहिए, क्योंकि यहांपर मेरे आश्रयणसे तप, योग, और मोक्ष सबकुछ प्राप्त होजाताहै ॥ १४ ॥ समस्त जन्तुओंपर कृपा करकेही मैंने इस क्षेत्रका निर्माण किया है, इस क्षेत्रमें साधकलोग अवश्यही सिद्ध होजातेहैं ॥ १५ ॥ क्योंकि अतीत हो अथवा वर्तमानहो, एवं ज्ञानकृत हो किंवा अज्ञानकृतहो सभी प्रकारके पाप आनन्दवनके दर्शन होतेही विलाय जातेहैं ॥ १६ ॥ अत्युग्र तपस्या, महादान, कठोरव्रत, यम नियम, अध्यात्म योगाभ्यास, महायज्ञ ॥ १७ ॥

और समस्त उपनिषदोंके साथ वेदान्तशास्त्रके अभ्याससे जो फल होताहै, इस क्षेत्रमें वह अनायासही मिल जाताहै ॥ १८ ॥ जीवोंको तभीतक कर्मसूत्रमें बंधकर (संसारमें) भ्रमण करना पडताहै, जबतक मेरी इस विश्वेश्वरपुरीमें शरीरका त्याग नहीं बनपडता ॥ १९ ॥ हे देवि ! इस काशीमें मैं अपनी लीलाहीसेतिर्यक् योनिवाले जीवोंकोभी अन्तमें जो पद दे देताहूं वहांपर बडे बडे याज्ञिकोंकी पहुँच नहीं होने पाती ॥१२०॥ इस मुक्तक्षेत्रमें निवास करनेसे चारोंप्रकारके भूतग्रामको कालानुसार मरनेपर परमगति प्राप्त होजाती है ॥ २१ ॥ अत्यन्त विषयासक्त चित्त और धर्मपराङ्मुख व्यक्तिभी यहांपर कालक्रमसे शरीर त्यागकरनेपर फिर कभी संसारमें प्रवेश नहीं करता ॥ २२ ॥ हे देवि ! माघमासके उषःकालमें तीर्थराज प्रयागमें स्नान करनेसे जो फल

वेदांतशास्त्राभ्यसनैःसर्वोपनिषदाश्रयात् ॥ एभिर्वैयदवाप्येतेतत्काश्यांहेलयाप्यते ॥ १८ ॥ कर्मसूत्रेणबद्धावैभ्राम्यंतेतावदेवहि ॥ यावद्विश्वेश्वरेधाम्निममनैवतनुत्यजः ॥१९॥ काश्यांस्वलीलयादेवितिर्यग्योनिजुषामपि ॥ ददामिचांतेतत्स्थानंयत्रयांतिनयाज्ञिकाः॥१२०॥ भूतग्रामोऽखिलोप्यत्रमुक्तिक्षेत्रेकृतालयः ॥ कालेननिधनंयातोयात्येवपरमांगतिम् ॥ २१ ॥ विषयासक्तचित्तोपित्यक्तधर्मरतिस्त्वपि ॥ कालेनोज्झितदेहोऽत्रनसंसारंपुनर्विशेत् ॥ २२ ॥ प्रयागेयत्फलंदेविमाघेचोषसिमज्जनात् ॥ तत्फलंकोटिगुणितंवाराणस्यांक्षणेक्षणे ॥ ॥ २३ ॥ अस्यक्षेत्रस्यमहिमाकोपिवाचामगोचरः ॥ उद्देशमात्रमाख्यायिमयातेप्रीतिकाम्यया ॥ २४ ॥ चतुर्दशानांलिंगानांश्रुत्वाख्यानानिसत्तमः ॥ चतुर्दशसुलोकेषुपूजांप्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ १२५ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेविश्वकर्मेशप्रादुर्भावोनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥ छ ॥

होताहै, वाराणसीमें वही फल करोड गुना अधिक क्षण क्षणपर मिला करताहै ॥ २३ ॥ इस क्षेत्रकी महिमा वचनके द्वारा नहीं कही जासकती, यहतो तुम्हारी प्रसन्नताके लिए मैंने उद्देश्यमात्र कहदियाहै ॥ २४ ॥ उत्तम जन इन चतुर्दश लिंगोंके आख्यानोंको सुनकर चौदहों भुवनोंमें सर्वोत्तम पूजाको पावेगा ॥१२५॥ दोहा—कथा विश्वकर्मेशकी, यह है परम पुनीत। ज्ञात होत बातैं बहुत, ओ गुरुजनकी नीत (रीत) ॥१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अगस्त्य बोले—हे सर्वज्ञपुत्र ! सर्वार्थकुशल ! प्रभो ! षडानन ! इन सब मुक्तिदायक लिंगोंकी उत्पत्तिकी कथाको सुनकर ॥ १ ॥ अमृतपीनेसे देवतोंकी नाईं मैं अत्यन्तही परितृप्त होगया, (वास्तवमें) यह आनन्दकानन इन सब ओंकारेश्वर प्रभृति लिंगोंके द्वारा ॥ २ ॥ इस लोकमें पापियोंको भी आनन्दही देताहै, और मुझे तो इन सब लिंगोंका विवरण सुननेसे बडाही आनन्द हुआ ॥ ३ ॥ मैं तो (काशी) क्षेत्रका तत्त्व सुनकर जीवन्मुक्तसा होगयाहूं । हे स्कन्द ! वहांके दक्षेश्वर इत्यादि जिन चतुर्दश लिंगोंको आपने कहाहै उनकाभी समस्त माहात्म्य वर्णन कीजिए ॥ ४ ॥ जिन दक्षप्रजापतिने देवतोंकी सभाके बीचमें भगवान् शिवकी निन्दा कीथी, उनने फिर क्यों शिवलिंगकी स्थापना की, यह तो बडी विचित्र बातहै ॥ ५॥ हे सूत! इस प्रकारसे

॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ सर्वज्ञसूनोषड्वक्रसर्वार्थकुशलप्रभो ॥ प्रादुर्भावंनिशम्यैषांलिंगानांमुक्तिदायिनाम् ॥ १ ॥ नितरांपरितृप्तोस्मि सुधांपीत्वेवनिर्जरः ॥ ओंकारप्रमुखैर्लिंगैरिदमानंदकाननम् ॥ २ ॥ आनंदमेवजनयेदपिपापजुषामिह ॥ परानंमहंप्राप्तःश्रुत्वैतल्लिंगकीर्तनम् ॥३॥ जीवन्मुक्तइवास्मिहिक्षेत्रतत्त्वश्रुतेरहम् ॥ स्कंददक्षेश्वरादीनिलिगानीहचतुर्दश ॥ यान्युक्तानिसमाचक्ष्वतत्प्रभावमशेषतः ॥४॥ योदक्षोगर्हयामासमध्येदेवसभंविभुम् ॥ सकथंलिंगमीशस्यप्रत्यस्थापयदद्भुतम् ॥ ५ ॥ इतिश्रुत्वाशिखिरथःकुंभयोनेरुदीरितम् ॥ सूतसंकथयामासदक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ आकर्णयमुनेवच्मिकथांकल्मषहारिणीम् ॥ पुरश्चरणकामोसौदक्षः काशींसमाययौ ॥ ७ ॥ छागवक्त्रोविरूपास्योदधीचिपरिधिक्कृतः ॥ प्रायश्चित्तविधानार्थंसूपदिष्टःस्वयंभुवा ॥ ८ ॥ एकदादेवदेवस्यसेवार्थंशशिमौलिनः ॥ कैलासमगमाद्विष्णुःपद्मयोनिपुरस्कृतः ॥ ९ ॥

अगस्त्यका कथन सुनकर मयूरवाहन स्कन्द दक्षेश्वरकी उत्पत्ति कथाको कहनेलगे ॥ ६ ॥ स्कन्दने कहा—हे मुने ! मैं कल्मषहारिणी उस कथाको कहताहूं तुम श्रवण करो । दक्षप्रजापति, दधीचि मुनिके धिक्कारनेपर छागवक्त्र होनेसे विरूप मुख होकर प्रायश्चित्त करनेके लिये ब्रह्माके पास गये, फिर ब्रह्माके उपदेशसे पुरश्चरण करनेकी इच्छासे काशीपुरीमें समागत हुए, ॥ ७ ॥ ८ ॥ (इसकी जड यह है कि) एकबार देवाधिदेव चन्द्रमौलिकी सेवाके लिए भगवान् विष्णु, ब्रह्माके साथ और इंद्रादिक लोकपाल, विश्वेदेवा, मरुद्गण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विद्याधर, नागगण, महर्षिवृंद, अप्सरोगण, यक्ष, गंधर्व,

सिद्ध और चारण गणके सहित कैलासमें गये, उन लोगोंने रोमांचित शरीर होकर भगवान् शंकरकी नानाप्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति की, शिवनेभी उन सब लोगोंका वडा आदर किया, फिर वे लोग उन्हींके मुखकी ओर दृष्टि लगाकर आसनोंपर बैठ गये ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ उन सब लोगोंके बैठ जानेपर भगवान् शिवने विष्णुको हाथसे स्पर्श करके वडे आदरके साथ (उनसे) पूछा कि, ॥ १३ ॥ हे दानववंशदावानल ! श्रीवत्सलांछन ! हरे ! तुम्हारी त्रैलोक्य पालनकी शक्ति तो अकुंठितहै ? ॥ १४ ॥ रणस्थलमें दुष्ट दैत्य और दानवोंका शासन करतेहो ? क्रुद्ध ब्राह्मणोंको तो मेरे समान

इंद्रादयोलोकपालाविश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविद्याधरोरगाः ॥१०॥ ऋषयोऽप्सरसोयक्षागंधर्वाःसिद्धचारणाः ॥ तैर्नतोदेवदेवेशःपरिहृष्टतनूरुहैः ॥ ११ ॥ स्तुतश्चनानास्तुतिभिःशंभुनापिकृतादराः ॥ विविशुश्चासनश्रेण्यांतन्मुखासक्तदृष्टयः ॥ १२ ॥ अथतेषूपविष्टेषुशंभुनाविष्टरश्रवाः ॥ कृतहस्तपरिस्पर्शमानःपृष्टोमहादरम् ॥ १३ ॥ श्रीवत्सलांछनहरेदैत्यवंशदवानल ॥ कच्चित्पालयितुंशक्तिस्त्रिलोकीमस्त्यकुंठिता ॥१४॥ दितिजान्दनुजान्दुष्टान्कच्चिच्छासिरणांगणे ॥ अपिक्रुद्धान्महीदेवान्मामिवप्रतिमन्यसे॥१५॥ बाधयारहितागावःकच्चित्संतिमहीतले ॥ स्त्रियःसंतिहिसुश्रीकाःपतिव्रतपरायणाः ॥ १६ ॥ विधियज्ञाःप्रवर्तंतेपृथिव्यांबहुदक्षिणाः ॥ निराबाधंतपःकच्चिदस्तिशश्वत्तपस्विनाम् ॥ १७ ॥ निष्प्रत्यूहंपठंत्येवसांगान्वेदान्द्विजोत्तमाः ॥ महीपालाःप्रजाःकच्चित्पांतित्वमिवकेशव ॥ १८ ॥ स्वेषुस्वेषुचधर्मेषुकच्चिद्वर्णाश्रमास्तथा ॥ निष्ठावंतोहितिष्ठंतिप्रहृष्टेंद्रियमानसाः ॥ १९ ॥ धूर्जटिःपरिपृच्छ्येतिहृष्टंवैकुंठनायकम् ॥ ब्रह्माणंचापिपप्रच्छब्राह्मंतेजःसमेधते ॥ २० ॥

रुद्ररूप मानतेहो ? ॥ १५ ॥ भूतलमें गायें तो बाधारहित हैं न ? स्त्रियां श्रीसे संपन्न और पतिव्रतमें तत्पर तो रहती हैं न ? ॥ १६ ॥ पृथिवीपर बडी दक्षिणावाले विधियज्ञ तो होते हैं न ? तपस्वियोंकी तपस्यामें तो कोइ विघ्न नहीं पडने पाता ? ॥१७॥ द्विजातिगण आनन्दपूर्वक साङ्ग वेदको तो पढसकते हैं न ? और हे केशव ! राजालोग तो तुम्हारे ऐसा अपनी प्रजाओंका पालन करते हैं न ? ॥१८॥ एवं चारों वर्ण और आश्रमके लोग प्रसन्नेन्द्रिय चित्तसे अपने अपने धर्मोंपर निष्ठापूर्वक स्थित तो हैं न ? ॥ १९ ॥ भगवान् धूर्जटीने इस भाँतिसे हृष्टमन वैकुंठनाथसे पूछ (ताछ) कर ब्रह्मासेभी पूछा कि,

हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मतेजकी तो बढती है न ? ॥ २० ॥ (तुम्हारे) त्रैलोक्यमंडपमें सत्यधर्म तो अस्खलितरूपसे बना है न ? हे विधे ! कहींपर कोईभी तीर्थोंमें रोकटोंक तो नहीं करनेपाता है न ? ॥२१॥ हे इन्द्रादिक देवतागण ! तुम लोग तो कृष्णके भुजदंड (के प्रताप) से पालित होकर अपने अपने नगरोंमें स्वस्थतापूर्वक राज्यशासन करते हो न ? ॥ २२ ॥ भगवान् भूतनाथ योंहीं उन सब प्रत्येक देवतोंसे आदरपूर्वक पूछकर और उनके आगमनका कारण जान उन लोगोंका मनोरथ परिपूर्ण करके ॥ २३ ॥ विसर्जन (विदा) करनेके उपरान्त स्वयं अपने सौधमें चलेगये, अनंतर प्रसन्नचित्त देवतोंके अपने अपने स्थानपर प्रस्थान करनेपर, ॥ २४ ॥ सती देवीके पिता दक्षप्रजापति मार्गहीमें चिंता करनेलगे कि, मुझेभी सब देवतोंके समानही मान मिला कुछ

सत्यमस्खलितंकच्चिदस्तित्रैलोक्यमंडपे ॥ तीर्थावरोधोनक्कापिकेनचित्क्रियतेविधे ॥ २१ ॥ इंद्रादयःसुराःकच्चित्स्वेषुस्वेषुपुरेष्वहो ॥ राज्यंप्रशासतिस्वस्थाःकृष्णदोर्दंडपालिताः ॥ २२ ॥ प्रत्येकंपरिपृच्छ्येशःसर्वानित्थंकृतादरान् ॥ पृष्ट्वागमनकार्यंचतेषांकृत्वामनोरथान् ॥ २३ ॥ विससर्जाथतान्सर्वान्देवःसौधंसमाविशत् ॥ गतेष्वथचदेवेषुस्वस्वधिष्ण्येषुहृष्टवत् ॥ २४ ॥ मध्येमार्गंसचिंतोभूद्दक्षः सत्याःपितातदा ॥ अन्यदेवसमानंसमानंप्राप्यनचाधिकाम् ॥ २५ ॥ अतीवक्षुब्धचित्तोभून्मंदराघाततोऽब्धिवत् ॥ उवाचचमनस्येतन्महाक्रोधवशांधदृक् ॥ २६ ॥ अतीवगर्वितोजातःसतींमेप्राप्यकन्यकाम् ॥ कस्यचिन्नाप्यसौप्रायोनकोस्यापिक्कचित्पुनः ॥ २७ ॥ किंवंश्यस्त्वेषकिंगोत्रःकिंदेशीयःकिमात्मकः ॥ किंवृत्तिःकिंसमाचारोविषादीवृषवाहनः ॥ २८ ॥ नप्रायशस्तपस्व्येषकृतपःकास्त्रधारणम् ॥ नगृहस्थेषुगण्योसौश्मशाननिलयोयतः ॥ २९ ॥

अधिकता नहीं हुई ॥ २५ ॥ (बस इसी शोचमें पडकर) वह मन्दराचलके आघातसे समुद्रकी नाईं बडेही क्षुब्धचित्त होपडे, बडेही क्रोधान्ध होकर वे मनहीमन यह कहनेलगे कि, ॥ २६ ॥ यह शिव तो मेरी बेटी सतीके पाजानेसे बडाही अहंकारी होगया, प्रायः न तो यही किसीका (स्वजन) है, और न कोईभी कहीं इसीका (स्वजन) है ॥ २७ ॥ (नहीं जानते) इसका किस वंशमें जन्म है कौनसा गोत्र है ? किस देशका वासी है ? कैसी इसकी प्रकृति है ? कौनसा जीवनोपाय है ? और कैसा आचरण है ? यह तो विष खाता और बैलपर चढकर घूमता रहता है ॥ २८ ॥ प्रायःकरके यह तप

स्त्रियोंमेंभी नहीं समझाजासकता क्योंकि कहां तो तपस्या ? और कहां अस्त्रधारण ? फिर इसकी गिनती गृहस्थोंमेंभी नहीं होसकती क्योंकि सदैव श्मशानहीपर डेरा डाले पडारहता है ॥२९॥ जब कि इसने विवाह करलिया है तो यह ब्रह्मचारीभी नहीं है फिर जब यह ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त होरहाहै तो वानप्रस्थ कैसे होसकता है ? ॥ ३० ॥ वेदके नहीं जाननेसे यह ब्राह्मणभी नहीं है, प्रायः अस्त्र शस्त्रके लियेरहनेसे इसे क्षत्रिय कहनाभी ठीक नहीं है ॥३१॥ क्योंकि क्षत्रिय होनेसे क्षत (विपद्) से परित्राण करना चाहिए, फिर यह तो प्रलयकर्ताहीहै, तब यदि इसे वैश्य कहें तो इसके सभी व्यवहार दरिद्रोंहीसे होतेहैं ॥३२॥ गलेमें नागयज्ञोपवीतके धारण करनेसे इसे शूद्रभी नहीं कहाजासकता, इस प्रकारसे तो चारोंही वर्ण और आश्रमोंसे अतीत होनेके

असौनब्रह्मचारीस्यात्कृतपाणिग्रहस्थितिः ॥ वानप्रस्थ्यंकुतश्चास्मिन्नैश्वर्यमदमोहिते ॥ ३० ॥ नब्राह्मणोभवत्येषयतोवेदोनवेत्त्यमुम् ॥ शस्त्रास्त्रधारणात्प्रायःक्षत्रियःस्यान्नसोप्ययम् ॥ ३१ ॥ क्षतात्संत्राणनात्क्षत्रंतत्क्वास्मिन्प्रलयप्रिये ॥ वैश्योपिनभवेदेषसदानिर्धनचेष्टनः ॥ ३२ ॥ शूद्रोपिनभवेत्प्रायोनागयज्ञोपवीतवान् ॥ एवंवर्णाश्रमातीतःकोसौसम्यङ्नकीर्त्यते ॥ ३३ ॥ सर्वःप्रकृत्याज्ञायेतस्थाणुःप्रकृतिवर्जितः ॥ प्रायशःपुरुषोनासावर्धनारीवपुर्यतः ॥ ३४ ॥ योषापिनभवेदेषयतोसौश्मश्रुलाननः ॥ नपुंसकोपिनभवेल्लिंगमस्ययतोर्च्यते॥३५॥ बालोपिनभवत्येषयतोऽयंबहुवार्षिकः॥ अनादिवृद्धोलोकेषुगीयतेचोग्रएषयत् ॥३६॥ अतोयुवत्वंसंभाव्यंनात्रनूनंचिरंतने ॥ वृद्धोऽपिनभवत्येषजरामरणवर्जितः॥३७॥ ब्रह्मादीन्संहरेत्प्रांतेतथापिचनपातकी ॥ पुण्यलेशोपिनास्त्यस्मिन्ब्रह्ममौलिच्छिदिक्रुधा॥३८॥

कारण नहीं जानपडता कि इसे क्या कहाजाय ॥ ३३ ॥ सब कोई प्रकृतिहीसे चीन्हा जाता है पर यह तो प्रकृतिसे रहित होनेहीके कारण स्थाणु (उकठाकाठ) है, फिर यह पुरुषभी नहीं है क्योंकि इसके अर्धांगमें स्त्री वर्तमानहै ॥ ३४ ॥ और इसे स्त्रीभी नहीं कहसकते क्योंकि इसके मुखपर दाढी मोछें उगीं हैं सर्वत्रही इसका लिंग पूजाजाता है इससे इसे नपुंसकभी नहीं कहते बनता ॥ ३५ ॥ यह लडकाभी नहीं है क्योंकि सब लोकोंमें यही बहुत वर्षोंका पुराना अनादिवृद्ध और उग्र कहलाता है ॥ ३६ ॥ इसीसे इस पुराने बुड्ढेपर युवा होनेकीभी संभावना नहीं की जासकती, फिर जरा और मरणसे रहित होनेके कारण इसे बूढाभी नहीं कहते बनता ॥ ३७ ॥ प्रलयकालमें ब्रह्मा इत्यादि देवतोंकेभी संहार करडालनेपर यह पातकी नहीं होता,

फिर क्रुद्ध होकर ब्रह्माका मस्तक काटलेनेसे इसमें तनिकभी पुण्यका लेश नहीं पायाजाता ॥ ३८ ॥ यह तो सदैव हड्डियोंहीका गहना पहिनता और कपडाको त्यागकर नंगाही रहताहै तो फिर इसमें पवित्रता कहां है ? कहांतक कहें, इसकी चेष्टा अथवा चरित्र कुछभी तो नहीं जानाजासकता ॥ ३९ ॥ ओह ! ! इस जटिलकी कैसी बडी और अद्भुत धृष्टता देखपडी जो पूजनीय श्वशुर होनेपरभी मुझे देखकर यह आसनपरसे (तनिकभी) नहीं उठा ॥ ४० ॥ प्रायः जो लोग माता पितासे हीन निर्गुण और अकुलीन होते हैं वे इसी रीतिपर कर्मभ्रष्ट और निरंकुश होजाते हैं ॥ ४१ ॥ वे लोग स्वच्छन्दचारी और असहाय होनेपरभी सर्वत्रही अपना अहंकार करते हैं, और परम दरिद्र होनेपरभी अपनेको बडाही ऐश्वर्यशाली समझते हैं ॥ ४२ ॥ विशेषतः जामाता

अस्थिनेपथ्यवतिचक्कशुचित्वंविवाससि ॥ किंबहूक्तेननोकिंचिज्ज्ञायतेऽस्यविचेष्टितम् ॥ ३९ ॥ अहोधार्ष्ट्यमहद्दृष्टंजटिलस्याद्यचाद्भुतम् ॥ यदासनान्नोत्थितोसौदृष्ट्वामांश्वशुरंगुरुम् ॥ ४० ॥ एवंभूताभवंत्येवमातापितृविवर्जिताः ॥ निर्गुणाअकुलीनाश्चकर्मभ्रष्टानिरंकुशाः ॥ ४१ ॥ स्वच्छंदचारिणोऽनाथाःसर्वत्रस्वाभिमानिनः ॥ अकिंचनाअपिप्रायस्तथापीश्वरमानिनः ॥ ४२ ॥ जामातॄणांस्वभावोयंप्रायशोगर्वभाजनम् ॥ किंचिदैश्वर्यमासाद्यभवत्येवनसंशयः ॥ ४३ ॥ द्विजराजःसगर्विष्ठोरोहिणीप्रेमनिर्भरः ॥ कृत्तिकादिषुचास्नेहीमयाशप्तःक्षयीकृतः ॥ ४४ ॥ अस्याहंगर्वसर्वस्वंहरिष्याम्येवशूलिनः ॥ यथावमानितश्चाहमनेनास्यगृहंगतः ॥ ४५ ॥ तथास्याहंकरिष्यामिमानहानिंचसर्वतः ॥ संप्रधार्येतिबहुशःसतुदक्षःप्रजापतिः ॥ ४६ ॥ प्राप्यस्वभवनंदेवानाजुहावसवासवान् ॥ अहंयियक्षुर्यूयंमेयज्ञसाहाय्यकारिणः ॥ ४७ ॥

लोगोंका ऐसा स्वभावही होताहै, जो वे सब थोडासाभी ऐश्वर्य पाजानेसे निस्सन्देह बडेही गर्वभाजन (बनकर मदमत्त) होजाते हैं ॥ ४३ ॥ द्विजराजभी वडा गर्विष्ठ होकर (मेरी बेटियोंमें) केवल रोहिणीहीको चाहनेलगा और कृत्तिका इत्यादिपर कुछभी प्रेम नहीं करताथा, इसीसे मैंने उसे शाप देकर क्षयरोगी बनादिया ॥ ४४ ॥ आज जैसें इस त्रिशूलीने अपने घरपर जानेसे मेरा अपमान किया है, वैसेही मैंभी इसके गर्वसर्वस्वको खर्व करदूंगा ॥ ४५ ॥ और सब प्रकारसे इसकीभी मानहानि करूंगा, योंही बहुतभाँतिसे मनही मन तर्क वितर्क करके उस दक्षप्रजापतिने ॥ ४६ ॥ अपने घरपर पहुँचतेही इन्द्रादिक

देवतोंको बुलाकर कहा कि, "मैं यज्ञ करना चाहता हूं, सो आपलोग यज्ञकी सहायता कीजिए ॥ ४७ ॥ और शीघ्रतापूर्वक यज्ञकी सामग्रियोंको इकट्ठां करादीजिए" तदनंतर दक्षने श्वेतद्वीपमें जाकर भगवान् अच्युत चक्रपाणिको उस महायज्ञका निरीक्षक एवं यज्ञपुरुष बनालिया, समस्त ब्रह्मवादी (वेदाध्यायी) ऋषिलोग उस यज्ञमें उसके ऋत्विक् नियुक्त हुए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ फिरतो दक्षप्रजापतिका वह महायज्ञ प्रारंभ हुआ, तदनंतर दक्षके उस विशाल यज्ञस्थलमें ब्रह्माने सब देवतोंको तो देखा पर साक्षात् परमेश्वरहीको नहीं देखनेके कारण किसी व्याजसे वे अपने लोकको चलेगये । दधीचि मुनिनेभी समस्त त्रैलोक्यवासियोंको दक्षके यज्ञमें समागत और वस्त्रालंकारसे सम्मानित होतेदेख एवं महादेव और सतीको वहांपर नहीं देखपानेपर दक्षके शुभपरिणाम

भवंतुयज्ञसंभारानानयंतुत्वरान्विताः ॥ श्वेतद्वीपमथोगत्वाचक्रेचक्रिणमच्युतम् ॥ ४८ ॥ महाक्रतूपद्रष्टारंयज्ञपुरुषमेवच ॥ तस्यर्त्विजोभवन्सर्वेऋषयोब्रह्मवादिनः ॥ ४९ ॥ प्रावर्ततततस्तस्यदक्षस्यचमहाध्वरः ॥ दृष्ट्वादेवनिकायांश्चतस्मिन्दक्षमहाध्वरे ॥ ५० ॥ अनीश्वरांस्ततोवेधाव्याजंकृत्वागृहंययौ ॥ दधीचिरथसंवीक्ष्यसर्वांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ ५१ ॥ दक्षयज्ञेसमायातान्सतीश्वरविवर्जितान् ॥ प्राप्तसंमानसंभारान्वासोलंकृतिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ दक्षस्यहिशुभोदर्कमिच्छन्प्रोवाचचेतिवै ॥ ॥ दधीचिरुवाच ॥ ॥ दक्षप्रजापतेदक्षसाक्षाद्धातृस्वरूपधृक् ॥ ५३ ॥ नचास्तितवसामर्थ्यंक्वापिकस्यापिनिश्चितम् ॥ यादृशःक्रतुसंभारस्तवचेहसमीक्ष्यते ॥ ५४ ॥ नतादृङ्नेदसिप्रायःक्वापिज्ञातोमहामते ॥ क्रतुस्तुनैवकर्तव्योनास्तिक्रतुसमोरिपुः ॥ ५५ ॥ कर्तव्यश्चेत्तदाकार्यःस्याच्चेत्संपत्तिरीदृशी ॥ साक्षादग्निःस्वयंकुंडेसाक्षादिंद्रादिदेवताः ॥ ५६ ॥

होनेकी इच्छासे यह कहा । दधीचि कहनेलगे—हे दक्षप्रजापते ! आपतो साक्षात् (वि) धाताकी मूर्तिहीहैं ॥५०॥॥५१॥५२॥५३॥ निस्संदेह आपके ऐसा सामर्थ्य तो कहींपर किसीकाभी नहीं है, हे महामते ! आपके यहां जैसी यज्ञकी सामग्रियां दिखाई पडती हैं, वैसी तो आजकल कहींभी नहीं सुनाई देतीं परन्तु यज्ञ सर्वथा नहीं करना चाहिये, क्योंकि यज्ञके समान कोईभी शत्रु (हानिकारक) नहीं है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हां यदि आपके ऐसी संपत्ति पासमें हो तो अवश्यही करना उचित है, आपके यज्ञमें स्वयं अग्निदेव कुंडमें साक्षात् विराजरहेहैं इन्द्रादिक देवतालोगभी साक्षात् वर्तमान हैं ॥५६॥

समस्त मंत्रगण साक्षात् मूर्तिधरकर बैठे हैं, ये भगवान् यज्ञपुरुष स्वयं विराजमान हैं, स्वयं देवाचार्य बृहस्पतिहीने आचार्यका आसन ग्रहण किया है यह कर्मकांडके परमविज्ञ स्वयं भृगु साक्षात् ब्रह्मा हैं ॥ ५७ ॥ यह पूषा, भग, और सरस्वती देवी आपही यहांपर सुशोभित हैं, और ये सब दिक्पाल लोग आपसे आप यज्ञके रक्षणावेक्षणमें लगे हैं ॥ ५८ ॥ आपने स्वयमेव शतरूपा देवीके सहित इस यज्ञकी उत्तम दीक्षाको ग्रहण किया है, आपके यह जामाता स्वयं धर्म, अपनी दशों पत्नियोंके साथ ॥ ५९ ॥ आपही प्रयत्नपूर्वक सर्व धर्म कर्मको कररहे हैं । ये आपके जामाताओंमें प्रधान परम विद्वान् द्विजराज ओषधीनाथभी अपनी सत्ताईसों भार्याओंके सहित आपका सब कार्य संपादन और औषधियोंको पूरण कररहे हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

साक्षाच्चसर्वेमंत्रावैसाक्षाद्यज्ञपुमानसौ ॥ आचार्यपदवीमेषदेवाचार्यःस्वयंचरेत् ॥ साक्षाद्ब्रह्मास्वयंचैषभृगुर्वैकर्मकांडवित् ॥ ५७ ॥ अयं पूषाभगस्त्वेषइयंदेवीसरस्वती ॥ एतेचसर्वदिक्पालायज्ञरक्षाकृतःस्वयम् ॥ ५८ ॥ त्वंचदीक्षांशुभांप्राप्तोदेव्याचशतरूपया ॥ जामातात्वे षतेधर्मःपत्नीभिर्दशभिःसह ॥ ५९ ॥ स्वयमेवहिकुर्वीतधर्मकार्यंप्रयत्नतः ॥ ओषधीनामयंनाथस्तवजामातृषूत्तमः ॥ ६० ॥ सप्तविंश तिभिःसार्धंपत्नीभिस्तवकार्यकृत् ॥ ओषधीःपूरयेत्सर्वाद्विजराजोमहासुधीः ॥६१॥ दीक्षितोराजसूयस्यदत्तत्रैलोक्यदक्षिणः ॥ मारीचः कश्यपश्चासौप्रजापतिषुसत्तमः ॥ त्रयोदशमिताभिश्चभार्याभिस्तवकार्यकृत् ॥ ६२ ॥ हविःकामदुघासूतेकल्पवृक्षःसमित्कुशान् ॥ दारु पात्राणिसर्वाणिशकटंमंडपादिकम् ॥६३॥ विश्वकर्माप्यलंकारान्कुरुतेभ्यागतर्त्विजाम् ॥ वसूनिचाऽपिवासांसिवसवोष्टौददत्यपि ॥६४॥ स्वयंलक्ष्मीरलंकुर्याद्यावैचात्रसुवासिनीः ॥ ६५ ॥

राजसूय यज्ञसे दीक्षित, त्रैलोक्यमात्रकी दक्षिणा देनेवाले, प्रजापतियोंमें सर्वश्रेष्ठ यह मरीचिके पुत्र कश्यप स्वयं अपनी तेरहों भार्याओंके साथ आपका कार्य साधन कररहे हैं ॥ ६२ ॥ स्वयं कामधेनु हवि (घी) देरही है, कल्पवृक्ष समिधा और कुश एवं चमसादिक समस्त दारुपात्र और शकट तथा मंडप इत्यादिको जुटा रहाहै ॥ ६३ ॥ विश्वकर्मा अभ्यागत और ऋत्विक् इत्यादिकोंके लिये अलंकारोंको बनारहे हैं, एवं आठों वसुभी धन और वस्त्र लाकर देरहे हैं ॥ ६४ ॥ (कहांतक कहें जब कि,) यहांपर स्वयं लक्ष्मीही सौभाग्यवती कुलवधुओंका शृंगार (पटार) कररही हैं ॥ ६५ ॥

हे दक्ष ! इन सबोंको चारोंओरसे देखनेपर मेरे सुखकी सीमा नहीं रहगई, किन्तु एकही बातका मुझे दुःख होताहै जिसे आप कदाचित् भूलगये हैं॥६६॥ जैसे देह अनेक भूषणोंसे भूषित होनेपरभी जीवहीन होनेसे नहीं शोभता, वैसेही ईश्वरके विना यह यज्ञ श्मशानसा दीखता है ॥६७॥ इस प्रकारसे दधीचि मुनिका वचन सुनकर दक्षप्रजापति घृत पडनेसे अग्निके समान (मारे) क्रोधसे बहुतही जाज्वल्यमान होगये ॥ ६८ ॥ दधीचिने स्तुति करनेसे जिसे पूर्वमें बडाही प्रसन्न होते देखाथा उस घडी उसीको मुखसे क्रोधाग्नि वमन करतेहुए देखा ॥ ६९ ॥ फिर तो दक्षप्रजापति (मारे) क्रोधसे समस्त शरीरको थरथर कँपातेहुए मानो उस ब्राह्मणको मारनेके लिए उद्यत होकर यह उत्तर देनेलगे ॥ ७० ॥ दक्षने कहा—हे दधीचे ! तुम ब्राह्मण हो, और मैं भी यज्ञकी दीक्षा

सर्वेसुखायमेदक्षवीक्षमाणस्यसर्वतः ॥ एकंदुःखाकरोत्येवयत्त्वंविस्मृतवानसि ॥ ६६ ॥ जीवहीनोयथादेहोभूषितोपिनशोभते ॥ तथेश्वरंविनायज्ञःश्मशानमिवलक्ष्यते ॥६७॥ इत्थंदधीचिवचनंश्रुत्वादक्षःप्रजापतिः ॥ भृशंजज्वालकोपेनहविषाकृष्णवर्त्मवत् ॥६८॥ पूर्वस्तुत्यातिसंहृष्टोदृष्टोयोसौदधीचिना ॥ सएवचापिकोपाग्निमुद्वमन्वीक्षितोमुखात् ॥ ६९ ॥ प्रत्युवाचाथतंविप्रंवेपमानांगयष्टिकः ॥ दक्षःप्रजापतीरोषाज्जिघांसुरिवतंद्विजम् ॥ ७० ॥ ॥ दक्षउवाच ॥ ॥ ब्राह्मणोसिदधीचेत्वंकिंकरोमितवात्रवै ॥ दीक्षामहमहोप्राप्तःकर्तुंनायातिकिंचन ॥ ७१ ॥ भवान्केनसमाहूतोयदत्रागान्महाजडः ॥ आगतोपिहिकेनत्वंपृष्टइत्थंब्रवीषियत् ॥ ७२ ॥ सर्वमंगलमांगल्योयत्रश्रीमानयंहरिः ॥ स्वयंवैयज्ञपुरुषःसमखःकिंश्मशानवत् ॥ ७३ ॥ यत्रवज्रधरःशक्रःशतयज्ञैकदीक्षितः ॥ त्रयस्त्रिंशतिकोटीनाममराणांपतिःस्वयम् ॥ ७४ ॥ तंत्वंचोपमिमोषेसुंश्मशानेनमहामखम् ॥ धर्मराट्चस्वयंयत्रधर्माधर्मैककोविदः ॥७६॥

लेचुका हूं, इसीसे अवश हूं, नहीं तो तुम देखते कि आज तुम्हारा क्या होजाता ? ॥ ७१ ॥ हे महाजड ! तुझे किसने यहां बुलाया था जो तू यहां चलाआया, और फिर आयाभी तो तुझसे किसने पूछा है जो यह बकबक कररहा है ? ॥ ७२ ॥ जहांपर समस्त मंगलोंकेभी मंगलदाता श्रीमान् भगवान् हरिही स्वयं यज्ञपुरुष बने हैं वह यज्ञ क्या श्मशानके समान है ? ॥ ७३ ॥ जिस यज्ञमें तेंतीस करोड देवतोंके अधिपति और स्वयं शतक्रतु वज्रधर इन्द्र विराजमान हों ॥७४॥ उस महायज्ञकी तू श्मशानसे उपमा देता है ? । जहांपर स्वयं धर्मराजही धर्माधर्मके एकमात्र विवेचक हों ॥ ७५ ॥

एवं स्वयं धनदही जिसमें धनदाता हों, किंवा जहांपर अग्निदेव साक्षात् वर्तमान रहें उस यज्ञको तू उस अमंगलभूमीसे तुलना करताहै ? ॥ ७६ ॥ जहांपर स्वयं देवाचार्यही आचार्यके आसनपर आसीन हैं उस यज्ञको तू अभिमानवश श्मशान कहता है ? ॥ ७७ ॥ जिसमें ये सब वसिष्ठ प्रभृति महर्षि लोग ऋत्विकका कार्य कररहे हैं उस यज्ञको तू परेतभूमिके ऐसा कहता है ॥ ७८ ॥ यह सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ दधीचि मुनिने फिर कहा कि, (हे दक्ष ! यद्यपि) यह यज्ञपुरुष हरि सब मंगलोंके मंगलदाता हैं ॥ ७९ ॥ तथापि वेदमें विष्णुको शांभवी शक्तिही कहकर निर्देश किया है, आदिदेवके वामांग विष्णु और दक्षिणांग ब्रह्मा कहेजाते हैं ॥ ८० ॥ फिर यह जो सौ अश्वमेधोंके दीक्षित वज्रायुधधारी इन्द्र हैं, इनको (शिवहीके अंशभूत) दुर्वासा मुनिने

श्रीदोस्तियत्रश्रीदातासाक्षाद्यत्राशुशुक्षणिः ॥ तंयज्ञमुपमासित्वममंगलभुवातया ॥ ७६ ॥ देवाचार्यःस्वयंयत्रक्रतोराचार्यतांगतः ॥ अभिमानवशात्तंत्वमाख्यासिपितृकाननम् ॥ ७७ ॥ यत्रार्त्विज्यंभजंतेऽमीवसिष्ठप्रमुखर्षयः ॥ तमध्वरंसमाचक्षेमंगलेतरभूमिवत् ॥७८॥ निशम्येतिमुनिःप्राहदधीचिर्ज्ञानिनांवरः ॥ सर्वमंगलमांगल्योभवेद्यज्ञपुमान्हरिः ॥ ७९ ॥ तथापिशांभवीशक्तिर्वेदेविष्णुःप्रपठ्यते ॥ वामांगंस्त्रष्टुराद्यस्यहरिस्तदितरद्विधिः॥८०॥ दीक्षितोयोश्वमेधानांशतस्यकुलिशायुधः॥ दुर्वाससाक्षणेनापिनीतोनिःश्रीकतांहिसः॥८१॥ पुनराराध्यभूतेशंप्रापैकाममरावतीम् ॥ यस्त्वयाधर्मराजोत्रकथितःक्रतुरक्षकः ॥ ८२ ॥ बलंतस्याखिलैर्ज्ञातंश्वेतंपाशयतःपुरा ॥ धनदरूयं बकसखस्तच्चक्षुश्चाशुशुक्षणिः ॥ ८३ ॥ पार्ष्णिग्राह्यभवद्रुद्रोदेवाचार्यस्यवैतदा ॥ यदातारामधार्षीत्सद्विजराजोऽतिसुंदरीम् ॥ ८४ ॥ तंविदंतिवसिष्ठाद्यास्तवार्त्विज्यंभजंतिये ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयःसंविदानाअपीतिहि ॥ ८५ ॥

एक क्षणमात्रमें हतश्री करदिया था ॥ ८१ ॥ फिर इन्होंने उन्हीं भूतनाथकी आराधना करके अपनी अमरावतीपुरी पायी है । जिस धर्मराजको तुम इस यज्ञका रक्षक कहते हो ॥ ८२ ॥ उसका बल तो राजा श्वेतकेतुके बांधनेकी वेलामें सभी लोगोंने समझलिया है । फिर धनद (कुबेर) जो हैं सो तो त्रिलोचनके मित्रही हैं, और यह अग्निभी उन्हींके नेत्रस्वरूप हैं ॥८३॥ रहे देवाचार्य बृहस्पति सो तो जब उनकी परमसुन्दरी पत्नी ताराको चन्द्रमाने धर्षण किया था तब रुद्रही उनकेभी पृष्ठपोषक हुए थे ॥ ८४ ॥ तुम्हारे ऋत्विक् वसिष्ठ इत्यादिभी उनको विशिष्टरूपसे जानते हैं कि, एकमात्र रुद्रदेवही

सर्वत्र विराजमान हैं दूसरा कोईभी नहीं है ॥ ८५ ॥ इस बातको ये सब दूसरे ऋषिलोगभी जो तुम्हारे गौरवसे इस यज्ञमें लगे हैं भलीभाँतिसे समझते हैं, अस्तु यदि आप अबभी इस ब्राह्मणकी एक हितभरी बात सुनलेवें तो ॥ ८६ ॥ यज्ञोंके फल स्वामी भगवान् विश्वेश्वरको (अवश्य) बुलावें। क्योंकि उनके नहीं रहनेसे इस यज्ञका करना और नहीं करना दोनोंही समान हैं ॥ ८७ ॥ उस विश्वभरके एकमात्र साक्षी महादेवके वर्तमान रहनेसे आपका और इन सबलोगोंका मनोरथ फलीभूत होगा ॥ ८८ ॥ जैसे जडस्वरूप बीज आपसे आप अंकुरित नहीं होसकते, वैसेही समस्त जड कर्म ईश्वरके बिना फलीभूत नहीं होते ॥ ८९ ॥ जैसे अर्थहीन वचन धर्महीन शरीर, पतिहीना नारीकी शोभा नहीं होती वैसेही शिवके बिना सब क्रियाभी व्यर्थ होजातीहै ॥९०॥

प्रावर्ततर्षयोन्येपिगौरवात्तवतेक्रतौ ॥ यदिमेब्राह्मणस्यैकंशृणोषिवचनंहितम् ॥ ८६ ॥ तदाक्रतुफलाधीशंविश्वेशंत्वंसमाह्वय ॥ विनातेनक्रतुरसौकृतोप्यकृतएवहि ॥ ८७ ॥ सतितस्मिन्महादेवेविश्वकर्मैकसाक्षिणि ॥ तवापिचैषांसर्वेषांफलिष्यंतिमनोरथाः ॥ ८८ ॥ यथाजडानिबीजानिनफलंतिस्वयंतथा ॥ जडानिसर्वकर्माणिनफलंतीश्वरंविना ॥ ८९ ॥ अर्थहीनायथावाणीधर्महीनायथातनुः ॥ पतिहीनायथानारीशिवहीनातथाक्रिया ॥९०॥ गंगाहीनायथादेशाःपुत्रहीनायथागृहाः ॥ दानहीनायथासंपच्छिवहीनातथाक्रिया ॥९१॥ मंत्रिहीनंयथाराज्यंश्रुतिहीनायथाद्विजाः ॥ योषाहीनंयथासौख्यंशिवहीनातथाक्रिया ॥९२ ॥ दर्भहीनायथासंध्यातिलहीनंचतर्पणम् ॥ हविर्हीनोयथाहोमःशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९३ ॥

जैसे गंगासे हीन देश, पुत्रशून्य गृह, और दानरहित संपत्ति होती है तैसेही शिवहीन क्रियायेंभी हैं ॥ ९१ ॥ मंत्रहीन राज्य, वेदशून्य ब्राह्मण और नारीहीन भोगकी जो दशा होती है, शिवसे रहित सब कर्मोंकीभी वही दशा समझनी चाहिए ॥ ९२ ॥ कुशके विना सन्ध्या, तिलके विना तर्पण, और घृतके बिना हवन जैसे वृथा होताहै, महादेवके विना समस्त कार्यभी वैसेही निष्फल होजाते हैं ॥ ९३ ॥ कवित्त—अर्थहीन बानी जैसी, पतिहीन नारी जैसी, दानहीन संपदा रु, भूमि गंगहीनहै। धर्महीन देह जैसी, पुत्रहीन गेह जैसो, मन्त्रिहीन राज जैसो, विप्र वेदहीनहै। नारिहीन भोग जैसो, दर्भहीन सन्ध्या जैसी, तिलहीन तर्पन रु, होम घृतछीनहै ॥ दक्षजू! सो देखलेहु आज परतक्षतुम शम्भु महाराज बिनु वृथा यज्ञ कीनाहै ॥ ९०—९३ ॥

महादेवकी महामायासे विमोहित होकर दक्ष होनेपरभी दक्ष प्रजापतिने दधीचिके कहेहुए उस वचनको किसी प्रकारसे ग्रहण नहीं किया ॥ ९४ ॥ वरन् औरभी क्रुद्ध होकर कहा कि, मेरे यज्ञकी तुझे कौनसी चिंता पडी है ? इस संसारमें यज्ञ इत्यादि जितने कर्म हैं; वे सब यथार्थरीतिसे करनेपर अवश्यही सिद्ध होजाते हैं, और अनुचित प्रकारसे किया जावे तो ईश्वरकाभी कोई काम नहीं सिद्ध होसकता ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ फिर अपनी कार्यसिद्धिके लिये तो सभी कोई ईश्वर है, रहा जो तूने यह कहा कि, " ईश्वर सब कर्मोंका साक्षी है " ॥ ९७ ॥ सो बात ठीक है, पर साक्षी तो अपने पाससे कहींभी अर्थ नहीं देता ॥ ९८ ॥ फिर जो तूने यह कहा कि " कर्म तो सब जडरूप हैं, वे सब ईश्वरके विना फलित नहीं होसकते " सो उस विषयमें मैं

इत्थंदधीचिनाख्यातंजग्राहवचनंनतत् ॥ दक्षोदक्षोपितत्रैवशंभोर्मायाविमोहितः ॥ ९४ ॥ प्रोवाचचभृशंक्रुद्धःकाचिंतातवमेक्रतोः ॥ क्रतुमुख्यानिसर्वाणियानिकर्माणिसर्वतः ॥ ९५ ॥ तानिसिद्ध्यंतिनियतंयथार्थकरणादिह ॥ अयथार्थविधानेनसिद्ध्येत्कर्मापिनेशितुः ॥ ९६ ॥ स्वकर्मसिद्ध्येचाथसर्वएवहिचेश्वरः ॥ ईश्वरःकर्मणांसाक्षीयत्त्वयापीतिभाषितम् ॥ ९७ ॥ तत्तथास्तुपरंसाक्षीनार्थंदद्याच्चकुत्रचित् ॥ ९८ ॥ जडानिसर्वकर्माणिनफलंतीश्वरंविना ॥ यदुक्तंभवतातत्राप्यहोदृष्टांतयाम्यहम् ॥ ९९ ॥ जडान्यपिचबीजानिकालंसंप्राप्यचात्मनः ॥ अंकूरयंतिकालाच्चपुष्प्यंतिचफलंतिच ॥ १०० ॥ विनापीशंतथाकर्मस्वयंकालात्फलत्यहो ॥ किमीश्वरेणतेनात्रमहामंगलमूर्तिना ॥ १ ॥ ॥ दधीचिरुवाच ॥ ॥ यथार्थकरणात्सिद्धमपिकार्यंकदाचन ॥ ईश्वरप्रातिकूल्याच्चसिद्धमेवाशुनश्यति ॥ २ ॥ ईश्वरेच्छाबलात्कर्मकृतमप्यविधानतः ॥ संसिद्ध्येत्तदधीनाश्चकथंसर्वइहेश्वराः ॥ ३ ॥

एक दृष्टान्त देताहूं (सुन) ॥ ९९ ॥ जैसे सब बीज जड होनेपरभी अपने कालके अनुसार अँखुवाते, फूलते और फलते हैं ॥ १०० ॥ तैसेही ईश्वरके विनाभी कालानुसार सब कर्म आपसे आप सफल होजाते हैं, अतएव उस महामंगल मूर्ति ईश्वरका यहांपर कौन प्रयोजन है ? ॥ १ ॥ दधीचिने कहा— यथार्थ रीतिसे करनेपर यद्यपि कभी कभी कार्य सिद्ध होताहै, पर ईश्वरके प्रतिकूल होनेसे सिद्ध कार्यभी तुरतही विनष्ट होजाताहै ॥ २ ॥ फिर अयथार्थ रीतिसेभी सम्पादित कर्म ईश्वरेच्छाके बलसे सिद्ध होजाताहै, यदि ऐसा न होता तो ये सब देवतालोग स्वयं समर्थ होनेपरभी उन्हींके आधीन

कैसे रहते? ॥ ३ ॥ सामान्य साक्षियोंके समान ईश्वरभी सब लोगोंके सब कर्मोका साक्षी नहीं होता, क्योंकि वह सन्देहरहित साक्षीही नहीं वरन् फलका प्रतिभू (जामिनदार) भी रहता है ॥ ४ ॥ वह सर्वकर्ता ईश्वर भूमि और जल इत्यादिके स्वरूपसे बीजके भीतर पैठ, स्वयं कालरूप बनकर अँखुओंको उगाता है ॥ ५ ॥ और जो तुमने यह कहा कि, " ईश्वरके विनाही कालानुसार कर्म आपही फलता है " सो सर्वकर्ता भगवान् महेश्वरही वह काल हैं ॥ ६ ॥ और एक बात जो तुमने यह कही कि, " उस महामंगलमूर्ति ईश्वरका यहां कौन प्रयोजन है सो तो बहुतही ठीक है ॥ ७ ॥ क्योंकि जो

सामान्यसाक्षिवन्नेशःसर्वेषांसर्वकर्मणाम् ॥ साक्षीभवेदसंदिग्धःफलस्यप्रतिभूरपि ॥ ४ ॥ भूजलादिस्वरूपेणबीजमाविश्यसर्वकृत् ॥ स्वयंकालस्वरूपेणविदध्यादंकुरोदयम् ॥ ५ ॥ यत्त्वयोक्तंविनापीशंकालेकर्मफलेत्स्वयम् ॥ सएवकालोभगवान्सर्वकर्तामहेशिता ॥ ६ ॥ अन्यच्चभवताप्रोक्तंतदेकंतथ्यमेवतत् ॥ किमीश्वरेणतेनात्रमहामंगलमूर्तिना ॥ ७ ॥ येमहांतोभवंत्येवयेचमंगलमूर्तयः ॥ ईश्वराख्याचयेष्वस्तिकिंतैरत्रतवांतिके ॥ ८ ॥ उत्तरादुत्तरंचेतिप्रत्युत्तरयतिद्विजे ॥ दधीचौचुक्रुधेऽत्यंतंदक्षोगर्वातिसुश्रिया ॥ ९ ॥ आदिदेशसमीपस्थानालोक्यपरितस्त्विति ॥ ब्राह्मणापसदंचामुंपरिदूरयताशुवै ॥ १० ॥ अमुष्मादध्वरश्रेष्ठादवरिष्ठमनोगतम् ॥ इत्थंदधीचिराकर्ण्यप्रोवाचप्रहसन्निव ॥ ११ ॥ किंमांदूरयसेमूढदूरीभूतोभवानपि ॥ सर्वेभ्योमंगलेभ्यश्चसर्वैरेभिःसमंध्रुवम् ॥ १२ ॥ अकांडेक्रोधजोदंडस्तवमूर्ध्निपतिष्यति ॥ महेशितुस्त्रिजगतीपरिशास्तुःप्रजापते ॥ १३ ॥

लोग महान् हैं " किंवा मंगलमूर्ति हैं, अथवा जो लोग ईश्वर कहेजाते हैं भला उन सबका यहांपर तुम्हारे पासमें कौन प्रयोजन है? ॥८॥ इस प्रकारसे दधीचिमुनिके उत्तर प्रत्युत्तर करते रहनेसे विभवमदसे मत्त दक्षप्रजापति बडेही क्रुद्ध होगये ॥ ९ ॥ और इधर उधर देखकर पासवर्ती लोगोंसे कहने लगे कि, इस नीच बुद्धि अधम ब्राह्मणको इस उत्तम यज्ञके बीचसे अभी दूर हटाओ यह सुनतेही दधीचिने हँसकर कहा कि, ॥ १० ॥ ११ ॥ अरे मूढ ! तू मुझे क्या दूरकरेगा ? वरन् इन सबोंके साथ तूही समस्त मंगलोंसे अवश्य दूर होरहा है ॥ १२ ॥ हे प्रजापते ! त्रैलोक्यनायक महेश्वरके

क्रोधका दण्ड अकालहीमें तेरे माथेपर गिराचाहता है ॥ १३ ॥ दधीचि मुनि यह कहकर उस यज्ञस्थानसे तुरत निकलगये, उनके निकलतेही दुर्वासा, च्यवन, आप (अगस्त्य) ॥१४॥ उत्तंक, उपमन्यु, ऋचीक, उद्दालक, मांडव्य, वामदेव, गालव, गर्ग, गौतम, ॥ १५ ॥ औरभी जो लोग शिवतत्त्वके ज्ञाता थे, वे सब कोई दक्षके यज्ञसे चलेगये ! दधीचि मुनिके चलेजानेपर (फिरसे) यज्ञकार्य आनन्दपूर्वक होनेलगा ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मणलोग वहांपर रहगये उन लोगोंको दक्षप्रजापतिने दुगुनी दक्षिणा, और दूसरे लोगोंकोभी बहुत अधिक धनदान किया ॥ १७ ॥ उनने अपने जामाताओंकोभी असीम

इत्युक्त्वानिर्जगामाशुयज्ञवाटात्ततोद्विजः ॥ तस्मिन्निर्यातिनिर्यातोदुर्वासाश्च्यवनोभवान् ॥१४॥ उत्तंकउपमन्युश्चऋचीकोद्दालकावपि ॥ मांडव्योवामदेवश्चगालवोगर्गगौतमौ ॥ १५ ॥ शिवतत्त्वविदोन्योपिदक्षयज्ञाद्विनिर्ययुः ॥ गतेदधीचौसानंदंप्रावर्ततमहामखः ॥ १६ ॥ येस्थिताब्राह्मणास्तत्रतेभ्योद्विगुणदक्षिणाम् ॥ प्रादात्प्रजापतिर्दक्षस्त्वन्येभ्योप्यधिकंवसु ॥१७॥ सर्वेजामातरस्तेनतोषिताभूरिशोधनैः ॥ कन्याश्चालंकृताःसर्वामहाविभवविस्तरैः ॥ १८ ॥ ऋषिपत्न्योपिबहुशोदेवपत्न्योप्यनेकशः ॥ तथापुरांगनाःसर्वास्तेनमानभुवः कृताः ॥ १९ ॥ ब्रह्मघोषेणतोरणव्योमशब्दगुणंस्फुटम् ॥ कारितंतेनदक्षेणविप्राणांहृष्टचेतसाम् ॥ १२० ॥ अग्निर्मंदाग्निरभवत्तस्मिन्जुह्वतिदीक्षिते ॥ हविःपरिमलेनैवपरितृप्तादिगंगनाः ॥ २१ ॥ स्वाहाकारैर्वषट्कारैःसुराजाताःपिचंडिलाः ॥ रचिताग्गिरयस्तेनस दन्नानांपदेपदे ॥ २२ ॥

धन देकर सन्तुष्ट किया, एवं बडेभारी विभवविस्तारसे अपनी समस्त कन्याओंको अलंकृत किया ॥ १८ ॥ इसी प्रकारसे समस्त ऋषिपत्नी, देवनारी और बहुतेरी पुरांगनाओंकेभी सम्मान करनेमें कोई त्रुटि नहीं की ॥ १९ ॥ दक्षने प्रसन्नचित्त ब्राह्मणोंके उच्च वेदध्वनिसे आकाशके शब्दगुणको स्पष्ट करदिखाया ॥ १२० ॥ उनके दीक्षाग्रहण करके आहुति देनेसे अग्निकोभी मंदाग्नि (अजीर्ण–रोग) होगया, और हविके सुगंधहीसे समस्त दिशायें भरउंठीं ॥२१॥ स्वाहाकार और वषट्कारके मारे देवतालोगभी तोंदइल होगये उनने पद पदपर सहस्रशः उत्तम अन्नोंकी ढेरके पर्वत घृतकुल्या, मधुकुल्या,

दूधका बडाभारी सरोवर, दधिका महाह्रद, वस्त्रोंकी राशियां, और रत्नोंके शिखर बनाडाले उस यज्ञकी समस्तभूमि सोने चान्दीकी करडाली ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ उस यज्ञमें खोजनेपरभी भिक्षुक नहीं मिलते थे, उनके पारिचारक लोगभी बडेही हृष्ट और पुष्ट होगये थे ॥ २५ ॥ मंगलगीतकी ध्वनिसे समग्र आकाश भरगया था, एवं अप्सरा, गन्धर्व, और विद्याधरगण बडेही आनंदित हुए और वसुधाभी सातिशय वर्द्धित हुई । इस प्रकारसे जब वह दक्षका महायज्ञ बडे विभवविस्तारसे होनेलगा तब नारदमुनि कैलासपर्वतपर गये ॥ २६ ॥१२७॥ दोहा—धूमधामसे यज्ञ वह, करनलगे जब दच्छ।

घृतकुल्याःकृतास्तेनमधुकुल्याःसहस्रशः ॥ महासरांसिपयसांद्रप्सस्यापिमहाह्रदाः ॥ २३ ॥ राशयश्चदुकूलानांरत्नानांशिखराणिच ॥ यज्ञबाटस्यवसुधास्वर्णरूप्यमयीकृता ॥२४॥ नलभ्यंतेक्रतौतस्यमार्गिताअपिमार्गणाः ॥ हृष्टाःपुष्टाःसमभवन्नपितत्परिचारकाः ॥२५॥ ध्वनिर्मंगलगीतानांव्यानशेगगनांगणम् ॥ जहृषेचाप्सरोवृंदैर्गंधर्वैर्मुमुदेतराम् ॥ २६ ॥ विद्याधरैर्ननंदेचवसुधाववृधेभृशम् ॥ महाविभवसंभारेतस्मिन्दाक्षेमहाक्रतौ ॥ इत्थंप्रवृत्तेऽथमुनिःकैलासंनारदोययौ ॥१२७॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेदक्षयज्ञप्रादुर्भावोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ शिवलोकंसमासाद्य मुनिनाब्रह्मसूनुना ॥ किंचक्रेब्रूहिषड्वक्त्रकथांकौतुकशालिनीम् ॥ १ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ शृणुकुंभजवक्ष्यामिनारदेनमहात्मना ॥ यत्कृतंतत्रगत्वाशुकैलासंशंकरालयम् ॥२॥ मुनिर्गगनमार्गेणप्राप्यतद्धामशांभवम् ॥ दृष्ट्वाशिवौप्रणम्याथशिवेनविहितादरः ॥ ३ ॥ तदुद्दिष्टासनंभेजेपश्यंस्तत्क्रीडनंपरम् ॥ क्रीडंतौतौतुचाक्षाभ्यांयदानचाविरेमतुः ॥ ४ ॥

जात भये नारद तबै, कैलासहिं अति स्वच्छ (करि पच्छ) ॥१॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥ अगस्त्य बोले—हे षड्वदन! ब्रह्मपुत्र नारद ऋषिने शिवलोकमें जाकर क्या किया ? उस कौतुकभरी कथाको आप वर्णन करें ॥ १ ॥ स्कन्दने कहा—हे कुम्भज मुने ! महात्मा नारदऋषिने उस घडी शिवलोक कैलासमें जाकर जो किया उसे मैं वर्णन करता हूं, श्रवण करो ॥२॥ उस ऋषिवरने आकाशमार्गसे शिवधाम कैलासमें पहुँच, देवी और महादेवको देखकर प्रणाम किया, तदुपरांत शिवने आदरपूर्वक आसन दिखादिया ॥ ३ ॥ नारदभी उन लोगोंका

परम क्रीडन देख तेहुए निर्दिष्ट आसनपर बैठगये। पर जब वे लोग पाँसा खेलतेही रहगये तनिकभी विरत नहीं हुए तब ॥ ४ ॥ नारदसे उत्सुकताके मारे नहीं रहागया अन्ततो गत्वा वे कहने लगे। नारद बोले हे देवदेव ! यह समग्र ब्रह्मांडमंडलही आपका खेलवाड है, आपके ब्रह्मांडरूप चौपडमें ये बारहों मासही तो गोटियोंके धरनेके घर हैं ॥ ५ ॥ फिर ये सब शुक्ल और कृष्णा तिथियांही जो मासभरेमें तीस होती हैं येही गोटियां हैं, और दोनों अयनही पाँसे हैं ॥ ६ ॥ एवं सृष्टि और प्रलयनामक हारजतिके दोनों दाँवहैं, देवीकी जीतसे सृष्टि और महादेवके जयसे प्रलय होताहै ॥ ७ ॥ आप लोगोंके खेलका जो समय है, वही सृष्टिका पालन है, इस भाँतिसे यह समस्त ब्रह्मांडमण्डल आपही दोनों जनका खेलवाड है ॥ ८ ॥ न तो देवीही

तदौत्सुक्येनसमुनिःप्रेर्यमाणउवाचह ॥ ॥ नारदउवाच ॥ ॥ देवदेवतवक्रीडाखिलंब्रह्मांडगोलकम् ॥ मासाद्वादशयेनाथतेसारिफलके गृहाः ॥ ५ ॥ कृष्णाःकृष्णेतरायावैतिथयस्ताश्चसारिकाः ॥ द्विपंचदशमासेयास्त्वक्षयुग्मंतथायने ॥ ६ ॥ सृष्टिप्रलयसंज्ञौद्वौग्लहौज यपराजयौ ॥ देवीजयेभवेत्सृष्टिरसृष्टिर्धूर्जटेर्जये॥७॥ भवतोःखेलसमयोयःसास्थितिरुदाहृता॥ इत्थंक्रीडैवसकलमेतद्ब्रह्मांडमीशयोः॥८॥ नदेवींजेष्यतिपतिंनेशःशक्तिंविजेष्यति ॥ किंचिद्विज्ञप्तुकामोस्मितन्मातरवधार्यताम् ॥ ९ ॥ देवःसर्वज्ञनाथोपिनकिंचिदवबुध्यति ॥ मानापमानयोर्यस्माद्सौदूरेव्यवस्थितः ॥१०॥ लीलात्मागुणवानेषविचारादतिनिर्गुणः ॥ कुर्वन्नपिहिकर्माणिबाध्यतेनैवकर्मभिः ॥११॥ मध्यस्थोपिहिसर्वस्यमाध्यस्थ्यमवलंबते ॥ सर्वत्रायंमहेशानोमित्राऽमित्रसमानदृक् ॥ १२ ॥ त्वंशक्तिरस्यदेवस्यसर्वेषांमान्यभूःपरा ॥ दक्षस्यापित्वयामानोदत्तोपत्यनिमित्तकः ॥ १३ ॥

पतिको जीतेंगी, और न प्रभुही शक्तिको जीतेंगे पर मैं कुछ थोडीसी प्रार्थना करनेकी इच्छासे उपस्थित हुआहूं, हे मातः ! आप उसे सुनलेवें ॥ ९ ॥ महादेव सर्वज्ञनाथ होनेपरभी कुछ नहीं समझते, क्योंकि, ये तो मान अपमान दोनोंहीसे बहुत दूर रहाकरते हैं ॥ १० ॥ यद्यपि ये लीलात्मक होनेसे सगुण होजाते हैं पर विचारनेसे परम निर्गुण हैं, कारण यही है ये कर्मोंके करते रहनेपरभी उन कर्मोंसे कभी बाधित नहीं होते ॥ ११ ॥ ये स्वयं उदासीन होनेपरभी सब किसीकी मध्यस्थताको अवलम्बन करतेहैं, इसीसे ये महेश्वर शत्रु और मित्रपर सर्वत्रही समान दृष्टि रखते हैं ॥१२॥ हे देवि ! आप

इन भगवान्‌की शक्ति होनेके कारण सभी लोगोंकी परम मान्य भूमि हैं । आपहीने संतान बनकर दक्षकोभी मान दिया है ॥ १३ ॥ पर वास्तवमें समस्त जगत्‌की एकमात्र जननी आपही हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, ब्रह्मा विष्णु और इंद्र इत्यादि सभीलोग आपहीसे उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥ पर महादेवकी मायासे विमोहित होनेहीसे आप अपनेको नहीं जानसकती हैं, इसी कारणसे मेरा चित्त बहुतही दुःखित रहताहै ॥ १५ ॥ आपके ऐसी औरभी जो पतिव्रता स्त्रियां हैं, वेभी पति देवताके चरणोंको छोडकर और दूसरा कुछभी नहीं जानतीं ॥ १६ ॥ अच्छा तो अब इस बातको रहने दीजिए, अब मैं प्रस्तुत विषयको निवेदन करताहूं, आज हरिद्वारके समीपहीमें नीलाचलपर एक अपूर्वघटना देख बडे आश्चर्य और विषादके साथ

परंत्वंसर्वजगतांजनयित्र्येकिकाध्रुवम् ॥ त्वत्तआविर्भवंत्येवधातृकेशववासवाः ॥ १४ ॥ त्वमात्मानंनजानासित्र्यक्षमायाविमोहिता ॥ अतएवहिमेचित्तंदुनोत्यतितरांसति ॥१५॥ अन्याअपिहियाःसत्यःपातिव्रत्यपरायणाः ॥ ताभर्तृचरणौहित्वाकिंचिदन्यन्नमन्वते ॥१६॥ अथवास्तामियंवार्ताप्रस्तुतंप्रब्रवीम्यहम् ॥ अद्यनीलगिरेस्तस्माद्धरिद्वारसमीपतः ॥ १७ ॥ अपूर्वमिवसंवीक्ष्यपरिप्राप्तस्तवांतिकम् ॥ अत्याश्चर्यविषादाभ्यांकिंचिद्वक्तुमिहोत्सुकः ॥ १८ ॥ आश्चर्यहेतुरेवायंयत्पुंजातंत्रयीतले ॥ तद्दृष्टंसकलत्रंचदक्षस्याध्वरमंडपे ॥ १९ ॥ सालंकारंसमानंचसानंदमुखपंकजम् ॥ विस्मृताखिलकार्यंचदक्षयज्ञप्रवर्तकम् ॥ २० ॥ विषादेकारणंचैतद्यतोजातमिदंजगत् ॥ यस्मिन्प्रवर्ततेयत्रलयमेष्यतिचध्रुवम् ॥ २१ ॥ तदेवतत्रनोदृष्टंभवद्वंद्वंभवापहम् ॥ प्रायोविषादजनकंभवतोर्यददर्शनम् ॥ २२ ॥

उत्कण्ठित होकर मैं कुछ कहनेहीके लिये यहांपर आपके पास उपस्थित हुआहूं ॥ १७ ॥ १८ ॥ आश्चर्यका कारण तो यही है कि, त्रैलोक्यभरमें जितने पुरुषमात्र हैं वे सबके सब अपनी अपनी पत्नियोंके सहित दक्षके यज्ञमण्डपमें अलंकृत, संमानित, आनन्दसे प्रसन्न मुख कमल, एवं और सब कामोंको भूलकर दक्षके उसी यज्ञमें लगेहुए दिखाई पडे ॥ १९ ॥ २० ॥ पर विषाद यह हुआ कि, जिससे समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, फिर जिससे पालागया, और अन्तमें अवश्यही जिसमें लीन होजावेगा, ॥२१॥ उसी भवभयहारी आपकी युगलमूर्तिका दर्शन वहांपर नहीं मिला, प्रायः आप लोगोंका अदर्शनही विषादजनक

होताहै ॥ २२ ॥ पर वहां तो आपलोगोंका दर्शन हुआही नहीं, फिर जो हुआ सो कुछ औरही हुआ उसको मैं तो नहीं कहसकता पर हां उसके कहनेवाले वही दक्षही हैं ॥ २३ ॥ उन वचनोंको सुनकर ब्रह्मा तो पहिलेही वहांसे चलदिये, पीछेसे महर्षि दधीचिने उसे बहुतही धिक्कारा ॥ २४ ॥ और देवता और ऋषियोंके देखतेही प्रजापतिको शापभी दिया, मैंनेभी उस निन्दाभरी बातको सुनकर अपने कानोंको ढांप लिया, ॥ २५ ॥ दधीचिके संगसे दुर्वासा इत्यादि कितनेही विप्रगण महादेवकी निन्दा सुनतेही (वहांसे उठकर) चलेगये ॥ २६ ॥ इसके उपरांत हृष्ट पुष्ट लोगोंसे भराहुआ वह यज्ञ फिरसे होनेलगा

तदेवनाभवत्तत्रसमभूदन्यदेवहि ॥ तच्चवक्तुंनशक्येततद्वक्तादक्षएवसः ॥ २३ ॥ तानिवाक्यानिचाकर्ण्यद्रुहिणेनययेततः ॥ महर्षिणादधीचेनधिक्कतोनितरांहिसः ॥ २४ ॥ शप्तश्चवीक्षमाणानांदेवर्षीणांप्रजापतिः ॥ मयाचकर्णौपिहितौश्रुत्वातद्गर्हणागिरः ॥ २५ ॥ दधीचिनासमंकेचिद्दुर्वासःप्रमुखाद्विजाः ॥ भवनिंदांसमाकर्ण्यकियंतोपिविनिर्ययुः ॥ २६ ॥ प्रावर्ततमहायागोहृष्टपुष्टमहाजनः ॥ तथाद्रष्टुंनशक्तोमिततआगतवानिह ॥ २७ ॥ भगिन्योपिचयादेवितवतत्रसभर्तृकाः ॥ तासांगौरवमालोक्यनकिंचिद्वक्तुमुत्सहे ॥ २८ ॥ इतिदेवीसमाकर्ण्यसतीदक्षकुमारिका ॥ करादक्षौसमुत्सृज्यदध्यौकिंचित्क्षणंहृदि ॥ २९ ॥ उवाचचभवत्वेवंशरणंभवएवमे ॥ संप्रधार्येतिमनसिसतीदाक्षायणीततः ॥ ३० ॥ द्रुतमेवसमुत्तस्थौप्रणनामचशंकरम् ॥ मौलावंजलिमाधायदेवीदेवंव्यजिज्ञपत् ॥ ३१ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ विजयस्वांधकध्वंसिंस्त्र्यंबकत्रिपुरांतक ॥ चरणौशरणंतेमेदेह्यनुज्ञांसदाशिव ॥ ३२ ॥

यह सब मुझसे नहीं देखागया इसीसे मैं वहांसे यहांपर चलाआया ॥ २७ ॥ हे देवि ! वहांपर आपकी भगिनीलोगभी अपने अपने स्वामियोंके साथ जो आदर पारहीं हैं उसे देखकर मुझसे कुछ नहीं कहते बनता ॥ २८ ॥ इन बातोंको सुनकर दक्षकुमारी सती देवी हाथसे पाँसोंको रखकर क्षणभर मनमें सोचती रहीं ॥ २९ ॥ इसके अनंतर दाक्षायणी देवीने कहा कि, मेरे तो महादेवही रक्षक हैं, बस इस बातको मनमें स्थिर करके ॥ ३० ॥ तुरत उठ खडी हुई, और शंकरको प्रणामकर मस्तकपर अंजलि बांध देवी महादेवसे प्रार्थना करने लगीं ॥ ३१ ॥ देवीने कहा हे अंतकध्वंसक ! त्रिलोचन ! त्रिपुरारे ! आपका

जय हो, हे सदाशिव ! आपहीके चरणारविन्द मेरे रक्षक हैं, अतएव मुझे आप आज्ञा दीजिए ॥ ३२ ॥ मैं प्रार्थना करती हूँ आप मुझे निषेध मत करें, मैं पिताके पास जायाचाहती हूं, यह कहकर महादेवके चरणकमलोंपर मस्तक रखदिया ॥ ३३ ॥ फिर तो महादेवने कहा हे भामिनि ! मृडानि ! उठो, हे सौभाग्यसुन्दरि ! भला यहांपर तुमको क्या घटाहुआ है, उसे तो कहो ॥ ३४ ॥ हे ईश्वरि ! लक्ष्मीको सौभाग्य, ब्रह्माणीको उत्तमकांति और इन्द्राणीको नित्य यौवन तुम्हीने दिया है ॥ ३५ ॥ हे देवि ! इस विशाल ऐश्वर्यके रक्षणमें तुम्हारेही संगसे मैं शक्तिमान् हुआ हूं, फिर अपनी लीलाके अनुसार रूप धारिणी शक्ति तुम्हींको पाकर मैं ॥ ३६ ॥ तुम्हारी लीलाके अनुसार इस संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करता हूं, हे वामार्धधारिणि ! देवि ! तुम

मानिषेधीःप्रार्थयामियास्यामिपितुरंतिकम् ॥ उक्त्वेतिमौलिमदधादंधकारिपदांबुजे ॥ ३३ ॥ अथोक्ताशंभुनादेवीमृडान्युत्तिष्ठभामिनि॥ किमपूर्णंतवास्त्यत्रवदसौभाग्यसुंदरि ॥ ३४ ॥ लक्ष्म्याअपिचसौभाग्यंब्रह्माण्यैकांतिरुत्तमा ॥ शच्यैनित्यनवीनत्वंभवत्यादत्तमीश्वरि ॥ ३५ ॥ त्वयाचशक्तिमानस्मिमहदैश्वर्यरक्षणे ॥ त्वांचशक्तिंसमासाद्यस्वलीलारूपधारिणीम् ॥ ३६ ॥ एतत्सृजामिपाम्यद्मित्वल्लीलाप्रेरितोंगने ॥ कुतोमांहातुमिच्छेस्त्वंममवामार्धधारिणि ॥ ३७ ॥ शिवाशिवोदितंचेतिश्रुत्वाप्याहमहेश्वरम् ॥ जीवितेशविहायत्वां नक्वापिपरियाम्यहम् ॥ ३८ ॥ मनोमेचरणद्वंद्वेतवस्थास्यतिनिश्चलम् ॥ क्रतुंद्रष्टुंपितुर्यामिनैक्षियज्ञोमयाकचित् ॥ ३९ ॥ शंभुःकात्यायनीवाक्यमितिश्रुत्वातदाब्रवीत् ॥ क्रतुस्त्वयानेक्षितश्चेदाहरामिततःक्रतुम् ॥४०॥ मच्छक्तिधारिणीत्वंवासृजैवान्यांक्रतुक्रियाम् ॥ अन्यो यज्ञपुमानस्तुसंत्वन्येलोकपालकाः ॥४१॥ अन्यानाशुविधेहित्वमृषीनार्त्विज्यकर्मणि ॥ पुनर्जगाददेवीतिश्रुत्वाशंभोरुदीरितम् ॥४२॥

मुझको क्यों छोडना चाहती हो॥ ३७॥ महादेवके इस वचनको सुनकर सतीदेवीने कहा कि, हे जीवितेश्वर ! मैं आपको छोडकर कहीं नहींजातीहूं॥ ३८॥ मेरा मन तो आपके चरणोंहीमें निश्चल होकर बैठा रहेगा पर मैंने कभी यज्ञ नहीं देखाहै, इस लिये पिताका यज्ञ देखनेको जायाचाहती हूं ॥ ३९ ॥ दाक्षायणीदेवीकी इस बातपर महादेवने कहा कि, यदि तुमको यज्ञ देखनेकी इच्छा है तो यहींपर यज्ञका उद्योग करदेताहूं ॥ ४० ॥ नहीं तो तुम मेरी शक्तिस्वरूपा हो अतएव दूसरीही यज्ञक्रिया बनाडालो, (जिसमें) दूसराही यज्ञ पुरुष रहे और दूसरेही दूसरे लोकपाल होवें ॥ ४१ ॥ योंही ऋत्विक्का

काम करनेके लिये दूसरेही ऋषियोंकोभी अभी उत्पन्न करदो, इस भाँतिसे शिवके कथनको सुनकर भगवतीने फिर कहा कि, ॥ ४२ ॥ हे नाथ ! आज तो मैं पिताका यज्ञोत्सव देखनेके लिये अवश्य जाऊंगी, आप इस विषयमें बाधा न देकर आज्ञा देदीजिए ॥ ४३ ॥ हे नाथ ! नीचेकी ओर झुँकेहुए चित्त अथवा जलके वेगको कौन फेरदे सकता है ? अतएव आज आप मुझे मत रोकिए ॥ ४४ ॥ यह सुनकर भूतनाथ सर्वज्ञ भगवान्‌ने फिर कहा कि, हे देवि ! मुझे छोडकर मत जाओ, नहीं तो फिर मुझसे नहीं मिलसकोगी ॥ ४५ ॥ हे प्रिये ! आजका शनैश्वरवार, ज्येष्ठा नक्षत्र और नवमी तिथि तुमको पूर्वदिशामें यात्रा करनेको निषेध कररही है ॥ ४६ ॥ तिस परभी आज व्यतीपातयोग है, आजका वियोग होना अच्छा नहीं है, तुम धनिष्ठानक्षत्रके मध्यमें

पितुर्यज्ञोत्सवोनाथद्रष्टव्योऽत्रमयाध्रुवम् ॥ देह्यनुज्ञांगमिष्यामिमामेकार्षीर्वचोन्यथा ॥ ४३ ॥ कःप्रतीपयितुंशक्तश्चेतोवाजलमेववा ॥
निम्नायाभ्युद्यतंनाथमाद्यमांप्रतिषेधय ॥४४॥ निशम्येतिपुनःप्राहसर्वज्ञोभूतनायकः ॥ मायाहिदेविमांहित्वागताचनमिलिष्यसि॥४५॥
अद्यप्राचींयियासुंत्वांवारयेत्पंगुवासरः ॥ नक्षत्रंचतथाज्येष्ठातिथिश्चनवमीप्रिये ॥ ४६ ॥ अद्यसप्तदशोयोगोवियोगोद्यतनोऽशुभः ॥
धनिष्ठार्धसमुत्पन्नेतवताराद्यपंचमी ॥ ४७ ॥ मागादेविगताद्यत्वंनहिद्रक्षसिमांपुनः ॥ पुनर्देवीबभाषेसायदिनाम्नाप्यहंसती ॥ ४८ ॥
तदातन्वंतरेणापिकरिष्येतवदासताम् ॥ ततोभवःपुनःप्राहकोवावारयितुंप्रभुः ॥ ४९ ॥ परिक्षुब्धमनोवृत्तिंस्त्रियंवापुरुषंतुवा ॥
पुनर्नदर्शनंदेविमयासत्यंब्रवीम्यहम् ॥ ५० ॥ परंनदेविगंतव्यंमहामानधनेच्छुभिः ॥ अनाहूततयाकांतिमातापितृगृहानपि ॥ ५१ ॥

उत्पन्न हुई हो, इससे आज तुम्हारी पंचमी तारा होगई है ॥ ४७ ॥ सो हे देवि ! तुम मत जाओ, आजके जानेसे फिर मुझे नहीं देखपाओगी, (यह सुनकर) फिर भगवतीने कहा कि, यदि मेरा नाम सती है तो ॥ ४८ ॥ फिर दूसरे शरीरसेभी आपहीकी दासी बनूंगी,तब तो महादेवने फिर कहा (कि यदि ऐसाही है) तो फिर कौन स्त्री अथवा पुरुषके मनोवेगको फेरदेसकता है ? पर हे देवि ! इतना मैं सत्यही कहेदेता हूं कि फिर मुझसे साक्षात्कार नहीं हो सकेगा ॥ ४९ ॥५०॥ हे देवि ! (और एक बात है कि) जो लोग अपने मानमर्यादारूप धनको बनाये रक्खा चाहते हैं,हे कांते !

विना बुलाये माता पिताके घरपरभी उनको नहीं जानाचाहिए ॥ ५१ ॥ जैसे नदी समुद्रमें जाकर फिर नहीं लौटती, तैसेही आजके जानेसे फिर तुम्हारा लौटना नहीं होवेगा ॥ ५२ ॥ देवीने कहा—(हे भगवन् !) यदि मैं आपके चरणारविन्दोंकी सची अनुरागिनी होऊंगी, तो फिर दूसरे जन्ममेंभी अवश्य आपही मेरे स्वामी होवेंगे ॥ ५३ ॥ यह कहकर सतीदेवी क्रोधके मारे अन्धलोचना होकर वहांसे निकलगई, यात्रार्थीलोगोंको कार्य सिद्धिकेलिये जो कुछ करना उचित है वहभी नहीं करसकीं ॥ ५४ ॥ उनने महादेवको प्रणाम अथवा प्रदक्षिणाभी नहीं की, इस कारणसे वह देवी चली तो गई

यथासिंधुगतासिंधुर्नपुनःपरिवर्तते ॥ तथाद्यगंत्र्यानोजातुतवागमनमिष्यते ॥ ५२ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ अवश्यंयद्यहं रक्तातवपादांबुजद्वये ॥ तथात्वमेवमेनाथोभविष्यसिभवांतरे ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वानिर्ययौदेवीकोपांधीकृतलोचना ॥ यियासुभिश्चकार्यार्थं यत्कर्तव्यंनतत्कृतम् ॥ ५४ ॥ ननामनमहादेवंनचचक्रेप्रदक्षिणम् ॥ अतएवहिसादेवीनगतापुनरागता ॥ ५५ ॥ अप्रणम्यमहेशानम कृत्वापिप्रदक्षिणम् ॥ अद्यापिननिवर्ततेगताःप्राग्वासराइव ॥ ५६ ॥ तथाचरणचारिण्याराज्ञ्यात्रिभुवनेशितुः ॥ अपितत्पावनंवर्त्ममेनेति कठिनंबहु ॥ ५७ ॥ देवोपितांसतींयांतींदृष्ट्वाचरणचारिणीम् ॥ अतीवविव्यथेचित्तेगणांश्चाथसमाह्वयत् ॥ ५८ ॥ गणाविमानं नयतमनःपवनचक्रिणम् ॥ पंचास्यायुतसंयुक्तंरत्नसानुध्वजोच्छ्रितम् ॥ ५९ ॥ महावातपताकंचमहाबुद्बुदचक्षलक्षितम् ॥ नर्मदालकनं दाचयत्रेषादंडतांगते ॥ ६० ॥

पर फिर नहीं लौटसकीं ॥ ५५ ॥ आजलों जो लोग महादेवको प्रणाम किंवा प्रदक्षिणा किये विना ही गमन करतेहैं वे सब व्यतीत दिनके समान फिर नहीं लौटते ॥ ५६ ॥ वह त्रैलोक्यनाथकी रानी पदचारिणी होनेसे उस पवित्र मार्गकोभी बडा कठोर समझने लगीं ॥ ५७ ॥ तब तो भगवान् शिव सती देवीको पैदलही जातीहुई देखकर चित्तमें बहुत व्यथित हुए, और गणोंको पुकारकर कहने लगे कि, ॥ ५८ ॥ तुम लोग ऐसा विमान लाओ जिसमें मन और पवनकी दोनों पहिया हों, दशसहस्र सिंह लगे हों, रत्नसानुकी ध्वजासे उच्छ्रित हो, ॥ ५९ ॥ महावातहीकी पताका हो, मह

तत्त्वके अक्ष (कमानी) से युक्त हो, नर्मदा अलकनन्दाओंका ईषा डंडा लगारहे ॥ ६० ॥ सूर्य और चन्द्र छत्र होवें, उत्तम वाराहीशक्ति मगरमुहांके स्थानपर हो, ॥ ६१ ॥ स्वयं गायत्रीही धूरा बने, तक्षक इत्यादि सर्पगण रज्जु हों, प्रणवही सारथि बने, और प्रणवध्वनिहीकी घर्घराहट रहे ॥ ६२ ॥ वेदांग रक्षक (सहीस) हों, एवं वरूथ (टप्) सातों छन्द बनें, इस प्रकार महादेवकी आज्ञानुसार गणलोग तुरत रथको ले आये ॥ ६३ ॥ फिर शिवके पार्षदोंने उस विमानपर सतीदेवीको बैठाकर उन दिव्य तेजोमयी महादेवीके पीछे पीछे गमन किया ॥ ६४ ॥ क्षणमात्रमें वह त्रिलोचनकी महिषी देवी दक्षके यज्ञमण्डपमें जापहुँचीं, और उसे देखतेही आकाशस्थ विमानपरसे बडे वेगके साथ उतरपडीं ॥ ६५ ॥ उस घडी रक्षकलोग चकित होकर उनको

छत्रीभूतौचयत्रस्तःसूर्याचंद्रमसावपि ॥ यस्मिन्मकरतुंडंचवाराहीशक्तिरुत्तमा ॥ ६१ ॥ धूःस्वयंचापिगायत्रीरज्जवस्तक्षकादयः ॥ सारथिःप्रणवोयत्रझेंकारःप्रणवध्वनिः ॥६२॥ अंगानिरक्षकायत्रवरूथश्छंदसांगणः ॥ इत्याज्ञप्तागणास्तूर्णंरथंनिन्युर्हराज्ञया ॥ ६३ ॥ देव्यासनाथंतंकृत्वाविमानंपार्षदादिवि ॥ अनुजग्मुर्महादेवींदिव्यांतेजोविजृंभिणीम् ॥ ६४ ॥ साक्षणंत्र्यक्षरमणीवीक्ष्यदक्षसभांगणम् ॥ नभोंऽगणाद्विमानस्थात्ततोवेगादवातरत् ॥ ६५ ॥ अविशद्यज्ञवाटंचचकितंरक्षिवीक्षिता ॥ कृतमंगलनेपथ्यांप्रसूंदृष्ट्वाकिरीटिनीम् ॥ ६६ ॥ सभर्तृकाश्चभगिनीर्नवालंकृतिशालिनीः ॥ साश्चर्याश्चसगर्वाश्चसानंदाश्चससाध्वसाः ॥ ६७ ॥ अचिंतितात्वनाहूताविमानाद्धरवल्लभा ॥ कथमेषापरिप्राप्ताक्षणमित्थंप्रपश्यतीः ॥ ६८ ॥ असंभाष्यापिताःसर्वागतादक्षांतिकंसती ॥ पित्रापृष्टातुमात्रापिभद्रंजातंत्वदागमे ॥ ६९ ॥

देखनेलगे पर वह सूधे यज्ञस्थानमें चलीगईं, (वहांपर) मांगलिकवेष बनाये किरीट पहिने माताको देखकर (आगे बढीं) ॥ ६६ ॥ (तो) नये भूषणोंसे सुसज्जित अपने अपने पतियोंके सहित अपनी सब भगिनियोंकोभी देखा, जो कि आश्चर्य, गर्व, आनन्द और भयके साथ (परस्पर) यह कहरहीं थीं कि ॥ ६७ ॥ " यह हरवल्लभा विना बुलायेही अकस्मात् विमानके द्वारा क्षणमात्रमें यहां कैसे चली आई " यही सोचतीहुई उनकी ओर ताक रहींथीं ॥ ६८ ॥ पर सतीदेवी उन सबोंसे कुछ बोले (बतलाये) विना सीधे दक्षके पास चलीगईं तब तो उनके पिता और मातानेभी कहा कि, "तुम्हारे

आजानेसे बहुत अच्छा हुआ" ॥६९॥ तब सतीने कहा कि, हे पितः ! यदि मेरा आना अच्छाहुआ, तो आपने मेरी सहोदराओंके ऐसा मुझेभी क्यों नहीं बुलाया ? ॥ ७० ॥ दक्षने कहा—अयि महाधन्ये ! कन्ये ! तू तो सर्वश्रेष्ठा, और सर्वमंगला है; इसमें तुम्हारा कुछभी दोष नहीं है, वरन् सर्वथा मेराही दोष है ॥ ७१ ॥ अपनीही अज्ञतासे मैंने तुमको वैसे पतिको देदिया, जिस निरीश्वरको मैंने पहिले ईश्वरही समझरक्खा था ॥ ७२ ॥ मैं यदि उस मायावीको जानलेता तो फिर तुमको उसके हाथमें क्यों देता ? मैं तो उसके शिवनामहीसे सन्तुष्ट होगया पर उसका अशिवरूप नहीं समझ सका था ॥७३॥ पितामह ब्रह्माने मुझसे बहुतबार उसे "शंकर" "शम्भु" "पशुपति" और "शिव" कहकर वर्णन किया था ॥ ७४ ॥ "और उन्हींने यहभी कहाथा

॥ सत्युवाच ॥ ॥ यदिभद्रंजनेतर्मेसमागमनतोभवेत् ॥ कथंनाहंसमाहूतायथैतामेसहोदराः ॥ ७० ॥ ॥ दक्षउवाच ॥ ॥ अयिकन्येमहाधन्येह्यनन्येसर्वमंगले ॥ अयंतेनमनाकूदोषोदोषएषममैवहि ॥ ७१ ॥ तादृग्विधाययत्पत्येमयादत्ताज्ञबुद्धिना ॥ यदहंतंसमाज्ञास्यमीश्वरोसौनिरीश्वरः ॥ ७२ ॥ तदाकथमदास्यंत्वांतस्मैमायास्वरूपिणे ॥ अहंशिवाख्ययातुष्टोनजानेशिवरूपिणम् ॥७३॥ पितामहेनबहुधावर्णितोसौममाग्रतः ॥ शंकरोयमयंशंभुरसौपशुपतिःशिवः ॥ ७४ ॥ श्रीकंठोसौमहेशोऽसौसर्वज्ञोसौवृषध्वजः ॥ अस्मैकन्यांप्रयच्छत्वंमहादेवायधन्विने॥७५॥ वाक्याच्छतधृतेस्तस्मात्तस्मैदत्तामयानघे ॥ नजानेतंविरूपाक्षमुक्षगंविषभक्षिणम्॥७६॥ पितृकाननसंवासंशूलिनंचकपालिनम् ॥ द्विजिह्वसंगसुभगंजलाधारंकपर्दिनम् ॥ ७७ ॥ कलंकिकृतमौलिंचधूलिधूसरचर्चितम् ॥ क्वचित्कौपीनवसनंनग्नंवातूलवत्क्वचित् ॥ ७८ ॥ क्वचिच्चचर्मवसनंक्वचिद्भिक्षाटनप्रियम् ॥ विटंकभूतानुचरंस्थाणुमुग्रंतमोगुणम् ॥७९॥

कि ये श्रीकंठ, महेश, सर्वज्ञ, और वृषध्वज हैं, सो तुम इन्हीं धनुर्धारी महादेवको अपनी कन्याका दान करदो" ॥ ७५ ॥ हे वत्से ! बस मैंने उन ब्रह्माहीकी बातमें पडकर, तुमको उसे देदिया, पर यह नहीं समझसका कि वह विरूपाक्ष, वृषवाहन, विषभोजी ॥७६॥ श्मशानवासी, त्रिशूली, कपालमाली, सर्पधारी और जलाधारजटावाला है ॥ ७७ ॥ वह तो अपने कपारपर कलंकीको बैठाये, और समस्त शरीरको धूलिसे धूसरित किये रहता है, कभी तो पागलोंसा नंगा रहता कभी कौपीन पहिन लेता ॥ ७८ ॥ कभी चमडा ओढता, और कभी भीख मांगनेसे प्रसन्न होता है, उस तमोगुणी उग्र स्थाणुके

भयंकर भूतलोगही अनुचर हैं ॥ ७९ ॥ वह स्वयं तो रुद्र हैही पर उसके संगी साथीभी सब रुद्रही हैं, वह महाकालमूर्ति मनुष्यकी हड्डियोंको धारण करता है और उसके जाति और गोत्रका कोई ठिकाना नहीं है ॥ ८० ॥ उसको पूर्णरीतिसे कोईभी नहीं जानसकता और मैं तो (जानबूझकर) धोखा खागया, हे नयशालिनि तनये ! उसके विषयमें कहांतक कहूं, ॥ ८१ ॥ भस्म और मनुष्यकी खोपडियां तो उसके अलंकार हैं, और सर्पगण उसके भुजबंध हैं, एवं उसकी लंबी जटा बिथरी रहतीहैं ॥ ८२ ॥ एक टुकडा चन्द्रमाको माथेमें मढकर सदैव डमरू बजानेमें वह व्यग्र बना और नाचनेके लिए अफनाताहुआ समस्त अमंगल चेष्टाओंसे सुसज्जित रहता है ॥८३॥ हे मृडानि ! भला वह हर इस मंगलमय यज्ञमें बुलानेके योग्य है? हे सर्वमंगले !

रुद्रंरौद्रपरीवारंमहाकालवपुर्धरम् ॥ नृकरोटीपरिकरंजातिगोत्रविवर्जितम् ॥ ८० ॥ नसम्यग्वेत्तितंकश्चिज्जानानोपिप्रतारितः ॥ किंबहूक्तेनतनयेसमस्तनयशालिनि ॥ ८१ ॥ कपांसुलपटच्छन्नोमहाशंखविभूषणः ॥ प्रबद्धसर्पकेयूरःप्रलंबितजटासटः ॥ ८२ ॥ डमड्डमरुकव्यग्रहस्ताग्रःखंडचंद्रभृत् ॥ तांडवाडंबररुचिःसर्वामंगलचेष्टितः ॥ ८३ ॥ मृडानिसहरःकाऽयमध्वरोमंगलालयः ॥ अतएवसमाहूतानेहत्वंसर्वमंगले ॥ ८४ ॥ दुकूलान्यनुकूलानिरत्नालंकृतयःशुभाः ॥ प्रागेवधारितास्तेत्रपश्यागत्यगृहाणच ॥ ८५ ॥ इहमंगलवेशेषुदेवेंद्रेषुसशूलधृक् ॥ कथमर्होभवेच्चेतिमंगलेविषमेक्षणः ॥ ८६ ॥ इत्याकर्ण्यसतीसाध्वीजनेतुरुदितंतदा ॥ अत्यंतदूनहृदयावक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ८७ ॥ ॥ सत्युवाच ॥ ॥ नाकर्णितंमयाकिंचित्त्वयिप्रब्रुवतिप्रभो ॥ पदद्वयींसमाकर्ण्यतांचतेकथयाम्यहम् ॥ ८८ ॥

इसीकारणसे मैंने तुमको यहां नहीं बुलाया ॥८४॥ तुम्हारे लिए उत्तम वस्त्र और रत्नोंके सुन्दर भूषण इत्यादि मैंने पहिलेहीसे धररक्खेहैं सो तुम आओ उनको देखकर गृहण करो ॥ ८५ ॥ इस मंगलकर्ममें जब कि इन्द्रादि समस्त देवतागण मांगलिकवेषसे सुशोभित हैं तो इनके बीचमें उस शूलधारी विरूपाक्षका बुलाना भला क्योंकर योग्य होता ? ॥ ८६ ॥ इस प्रकारसे वह परमसाध्वी सतीदेवी पिताका वचन सुनकर, बहुतही दुःखितचित्तसे कहने लगीं ॥ ८७ ॥ सती बोलीं—हे प्रभो ! आप जो यह सब कहगये इसको मैंने कुछभी नहीं सुना, पर प्रथमही जो दो बातें कानमें पडगई हैं उन्हींके

विषयमें मैं आपसे कहती हूं ॥ ८८ ॥ आपने जो यह कहा कि, " उसको कोई भलीभाँतिसे नहीं जानता, और मैं तो जानते बूझते रहने परभी ठगागया " सो बात बहुत ठीक है, क्योंकि उन सदाशिवको कौन जानसकता है ? ॥ ८९ ॥ और आप तो जैसे पहिले ठगेगये इस घडीभी धोखाही खारहे हैं, जो कि उनसे संबन्धकरके फिर ऐसा असंबद्ध प्रलाप (बेतुकी बकवाद) कररहे हैं ॥ ९० ॥ आपने जैसा कहा है यदि शंकरको वैसाही समझते थे कि उनको कोई नहीं जानता तो फिर मुझे उनको क्यों दान करदिया ? ॥ ९१ ॥ अथवा उनके संबन्धके विषयमें आपकी बुद्धि कोई कारण नहीं है, हे तात ! उसका कारण एकमात्र मेरे (पूर्वजन्मके) पुण्यका गौरवही है ॥ ९२ ॥ इस प्रकारसे बहुत कुछ कहनेके उपरांत वह

नसम्यग्वेत्तितंकश्चिज्जानानोपिप्रतारितः ॥ एतत्सम्यक्त्वयाख्यायिकस्तंवेत्तिसदाशिवम् ॥८९॥ त्वंतुप्रतारितःपूर्वमधुनापिप्रतारितः ॥ कृत्वातेनचसंबंधमसंबद्धप्रलापभाक् ॥ ९० ॥ यादृशंवक्षितंशंभुंतादृशंयद्यमन्यथाः ॥ कुतोमामददास्तस्मैयंचकश्चनवेदन ॥ ९१ ॥ अथवातेनसंबंधेनहेतुर्भवतोमतिः ॥ तत्रहेतुरभूत्तातममपुण्यैकगौरवम् ॥ ९२ ॥ अथोक्त्वैवंबहुतरंत्वंजनेतास्य वर्ष्मणः ॥ श्रुतानेनचदेहे नपत्युःपरिविगर्हणा ॥ ९३ ॥ पुरश्चरणमेवैतद्यदस्यैवविसर्जनम् ॥ सुश्लाघ्यजन्मयातावत्प्राणितव्यंसुयोषिता ॥ यावज्जीवितनाथस्याश्र वणीयाविगर्हणा ॥ ९४ ॥ इत्युक्त्वाक्रोधदीप्ताग्नौमहादेवस्वरूपिणि ॥ जुहावदेहसमिधंप्राणरोधविधानतः ॥ ९५ ॥ ततोविवर्णतांप्राप्ताः सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ नाग्निर्जज्वालचतथायथाज्याहुतिभिःपुरा ॥ ९६ ॥

बोलीं, कि मेरे इस शरीरके उत्पादक आपही हैं, और मैंनेभी इसी शरीरसे पतिकी निन्दा सुनी है ॥ ९३ ॥ सो इसका प्रायश्चित्त यही है कि, यह शरीरही त्यागदिया जावे, क्योंकि श्लाघनीयजन्मवाली उत्तमस्त्रीको तभीतक प्राण रखना चाहिए, जबतक प्राणनाथकी कोई निन्दा नहीं सुनलेवे ॥ ९४ ॥ ऐसा कहकर सती देवीने महादेवस्वरूप और क्रोधसे प्रज्वलित अग्निमें प्राणरोधकी विधिसे अपने शरीररूप समिधाको हवन करदिया ॥ चौपाई–" अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयेउ सकल मख हाहाकारा " (तु० रामायण) ॥ ९५ ॥ तब तो इन्द्रादिक समग्र देवतालोग हतश्री होगये ! अग्नि पहिलेसा

आहुति पानेपर प्रज्वलित नहीं होता था ॥९६॥ मन्त्रगण उसी घडी कुंठित सामर्थ्यवाले होगये, "अहो यह परम अनिष्टतर कहांसे आपहुँचा" ॥ ९७ ॥ परस्पर यह कहतेहुए कोई कोई ब्राह्मणलोग चलदेनेकी इच्छा करनेलगे, इसीमें पर्वतोंको हिलादेनेवाली बडी भारी आँधी बहने लगी ॥ ९८ ॥ जिसने क्षणभरमें उस यज्ञभूमीको छादिया, अकस्मात् बिजुरीके गिरनेसे भूडोल होनेलगा ॥९९॥ आकाशसे लुक्क गिरनेलगे, पिशाचोंने नाचना आरंभ किया ऊपर गगनमें गिद्धोंके झुंड सूर्यके नीचे भयंकर मंडल बांधकर चारोंओरसे तोपनेलगे । वहांपर सियारिनें फेंकरने लगीं, मेघलोग रुधिरके बून्दोंसे घोर वृष्टि करने

मंत्राःकुंठितसामर्थ्यास्तत्क्षणादेवचाभवन् ॥ अहोमहानिष्टतरंकिमेतत्समुपस्थितम् ॥ ९७ ॥ केचिदूचुर्द्विजवरामिथःपरियियासवः ॥ महाझंझानिलःप्राप्तःपर्वतांदोलनक्षमः ॥ ९८ ॥ मखमंडपभूस्तेनक्षणतःस्थपुटीकृता ॥ अकांडतडिदापातोजातोभूद्भूप्रकंपनः ॥ ९९ ॥ दिवश्चोल्काःप्रपतिताःपिशाचानृत्यमादधुः ॥ आतापिगृध्रैरुपरिगगनेमंडलायितम् ॥ १०० ॥ रवेरधस्तादशिवंशिवास्तत्राप्यरारिषुः ॥ मेघारुधिरविप्रुड्भिस्तत्रवृष्टिंव्यधुःपराम् ॥ १ ॥ निर्घातनिःस्वनोभूमेरुत्थितोहृत्प्रकंपनः ॥ दिव्यायुधानिचमिथोयुयुध्यंतिस्मातिभीषणम् ॥ २ ॥ हवनीयंमहाद्रव्यंदूषितंक्रोष्टुभिःश्वभिः ॥ चकोराःकरटास्तत्रविचेरुर्यज्ञमंडपे ॥ ३ ॥ श्मशानवाटवज्जातो यज्ञवाटःसवैक्षणात् ॥ यद्यत्रावस्थितंसर्वंतत्तत्रैवपरिष्ठितम् ॥ ४ ॥ चित्रन्यस्तमिवासीच्चवस्तुजातमशोभिच ॥ स्थगिताइवसंवृत्तास्तत्र चक्रधरादयः ॥ ५ ॥

लगे ॥ १०० ॥ १ ॥ हृदयको हिलादेनेवाला भूमिके ठकरानेका शब्द होने लगा । दिव्य आयुधगण आपसे आप लडने लगे, ॥ २ ॥ हवनकी सामग्रीको सियार और कुक्कुरोंने दूषित करदिया, एवं उस यज्ञमण्डपमें चकोर और कौवा इत्यादि पक्षिगण घूमनेलगे ॥ ३ ॥ वह यज्ञभूमी क्षणमात्रमें श्मशानभूमिके समान होगई, जो जहां पडा था वह सब वहींपर (पडा) रहगया ॥ ४ ॥ मानो वह सब चित्रलिखित होगया, और सभी वस्तु शोभाहीन

होगयीं एवं विष्णु इत्यादि देवगणभी वहांपर सन्नाटेमें आगये ॥ ५ ॥ अपने सब लोगोंके साथ दक्षकाभी मुख कुम्हिलागया, (यहसब देखकर) ब्राह्मणलोग फिरसे यज्ञ आरम्भ करनेका उद्योग करने लगे ॥ १०६ ॥ दोहा—होत अनीश्वर कर्म नहिं, यह जानत सब कोय । पै मायाके फाँस परि, होनी होय सो होय ॥१॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥ स्कन्द बोले—हे अगस्त्य ! नारदमुनि देवीके पहिलेही वहां पहुँचगये, और वहांके सब वृत्तान्तको महादेवसे कहनेके लिए फिर चलदिये ॥१॥ नारदने महेश्वरको नन्दीके साथ तर्जनी हिलाकर कुछ बातचीत करतेहुए देखकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ फिर नन्दीके दियेहुए आसनपर उदासीनभावसे बैठगये और क्षणमात्र कुछ नहीं बोले चाले ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ शिवने

दक्षोपिवदनम्लानिमवाप्यसपरिच्छदः ॥ पुनर्यथाकथंचिच्चयज्ञंप्रावर्तयन्द्विजाः ॥१०६॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेसतीदेहविसर्जनंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ पुनःसनारदोऽगस्त्यदेव्याःप्राक्ससमुपागतः ॥ तद्वृत्तांतमशेषंचहरायावेदितुंययौ ॥ १ ॥ दृष्ट्वासनारदःशंभुंनंदिनासहसंकथाम् ॥ कांचित्तर्जनिविन्यासपूर्वंकुर्वंतमानमत् ॥ २ ॥ उपाविशच्चशैलादिविसृष्टासनमुत्तमम् ॥ वैलक्ष्यंनाटयन्किंचित्क्षणंजोषंसमास्थितः ॥ ३ ॥ आकारेणैवसर्वज्ञस्तद्वृत्तांतंविवेदह ॥ अवादीच्चमुनिंशंभुःकुतोमौनावलंबनम् ॥ ४ ॥ शरीरिणांस्थितिरियमुत्पत्तिप्रलयात्मिका ॥ दिव्यान्यपिशरीराणि कालाद्यांत्येवमेवहि ॥ ५ ॥ दृश्यंविनश्वरंसर्वंविशेषाद्यदनीश्वरम् ॥ ततोऽत्राचित्रंकिंब्रह्मन्कंकालःकालयेन्नवै ॥ ६ ॥ अभाविनोहिभावस्य भावःक्वापिनसंभवेत् ॥ भाविनोपिहिनाभावस्ततोमुह्यंतिनोबुधाः ॥ ७ ॥

आकारहीसे उनका वृत्तान्त समझलिया फिर मुनिसे कहा कि " यह मौनावलम्बन क्यों हुआ है ? " ॥ ४ ॥ उत्पन्न होना और मरजाना यह तो शरीरधारियोंकी स्थितिही है, और इसी प्रकारसे दिव्य शरीरभी कालानुसार गत होजाती हैं ॥ ५ ॥ जो कुछ दीखपडता है वह सब विनश्वर है, और जो वस्तु अस्वतन्त्र है वह तो विशेषरूपसे नश्वर होताही है, अतएव हे ब्रह्मन् ! इस विषयमें आश्चर्य क्या है ? भला काल किसे नहीं नाश करता (काल काहि नहिं खाय ? तु० रा०) ॥ ६ ॥ जो भावी नहीं है, उसका होनाभी कदापि संभव नहीं है, और जो नहीं होनेवाला है वह कभी होताभी नहीं

इसलिए पंडितलोग इस विषयमें मोहित नहीं होते। दोहा—जो होनी सो होत है, अनहोनी नहिं होय। पंडित मोहित होत नहिं, अस बिचारि मन सोय॥ (यही बात गीतामें यों कही है) श्लोक—नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ७॥ शम्भु भगवान्का यह कथन सुनकर उस मुनिपुंगवने कहा कि प्रभु जो कहते हैं वह तो ठीकही है॥ ८॥ जो कुछ होनहार था वह तो होचुका इसमें कुछ सन्देह नहीं पर चित्तको मथडालनेवाली एक चिन्ता मुझे बहुतही क्लेश देरही है॥ ९॥ वस्तुतः आपका न तो कुछ घटताहीं है न बढताही क्योंकि अव्यय और पूर्ण होनेके कारण आपके विषयमें हानि और वृद्धि कहांसे होसकती है?॥ १०॥ अहो! यह तुच्छ (बिचारा) संसार अनीश्वर होकर कहां

शंभूदीरितमाकर्ण्यसइत्थंमुनिपुंगवः॥ प्रोक्तवान्सत्यमेवैतद्यद्देवेनप्रभाषितम्॥ ८॥ अवश्यमेवयद्भाव्यंतद्भूतंनात्रसंशयः॥ परंमांबाधतेत्यंतंचिंतैकाचित्तमाथिनी॥ ९॥ नापचीयेततेकिंचिन्नोपचीयेततत्त्वतः॥ अव्ययत्वाच्चपूर्णत्वाद्धानिवृद्धीकुतस्त्वयि॥ १०॥ अहो वराकःसंसारःक्वभविष्यत्यनीश्वरः॥ आरभ्याद्यदिनंनत्वामर्चयिष्यंतिकेपियत्॥ ११॥ यतःप्रजापतिर्दक्षोनत्वामाहूतवान्क्रतौ॥ तेनाद्यरीढितंदृष्ट्वादेवर्षिमनुजाअपि॥ १२॥ तवरीढांकरिष्यंतिकिमैश्वर्येणरीढिनाम्॥ प्राप्तावहेडनालोकेजितकालभयाअपि॥ अथैश्वर्येणसंपन्नाःप्रतिष्ठाभाजनंकिमु॥१३॥ महीयसायुषातेषांवसुभिर्भूरिभिश्चकिम्॥ येऽभिमानधनानेहलब्धरीढाःपदेपदे॥ १४॥ अचेतनाश्चसावज्ञाजीवंतोपिनकीर्तये॥ अभिमानधनाधन्यावरंयोषित्सुसासती॥ १५॥

जायगा? क्योंकि आजसे अब कोईभी आपका पूजन नहीं करेगा॥११॥ कारण यही कि, प्रजापति दक्षने यज्ञमें आपको नहीं बुलाया, फिर आज उसीके द्वारा आपको अपमानित देखकर देवता ऋषि और मनुष्यलोगभी॥ १२॥ आपका अपमान करनेलगेंगे, तब जो अपमानितहीहुआ उसे ऐश्वर्यका कौन काम है? संसारमें जो लोग अपमानित होजाते हैं, वे चाहे कालभयको जीतलेवें अथवा ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहें पर क्या वे प्रतिष्ठाके पात्र होसकते हैं?॥ १३॥ जगत्में जो लोग पद पदपर अपमानित होकर अपने अभिमानूरूप धनकी रक्षा नहीं करसकते वे बहुतबडी आयुष्य अथवा धनसम्पत्तिको लेकर क्या करेंगे?॥१४॥ अचेतन अथवा अपमानित लोग जीते रहनेपरभी कीर्तन करनेके योग्य नहीं होते, बरन् स्त्रियोंमें अभिमान धनवती

॥ २२॥ २४॥ कोई पीछे हुए और कोई

वह सतीदेवीही धन्य है ॥ १५ ॥ जिसने आपकी निन्दा सुनतेही अपने जीवनको तृणके समान त्यागदिया । यह सुनतेही भगवान् महाकाल, सम्पूर्ण रीतिसे सती देवीका शरीरत्याग समझकर ॥ १६ ॥ (बोले कि) "हे मुने ! क्या सचमुच सती देवीने अपने जीवनको तृणवत् परित्याग करदिया अनंतर महाकालके भयसे नारदमुनिके मौन रहजानेपर ॥१७॥ रुद्रदेव बडे कोपाग्निसे प्रज्वलित होकर घोर रुद्रमूर्ति होगये, तदनंतर उनके कोपानलसे बडा द्युति शाली ॥१८॥ प्रत्यक्ष पर्वताकार, कालमृत्युप्रकंपन, विशाल भुशुंडीधारी एक पुरुष प्रकट हो महादेवको प्रणाम करके कहने लगा ॥ १९ ॥ हे पितः ! आज्ञा दीजिए कि, आपके उत्तम दासोचित किस कार्यको मैं करूं,यदि आज्ञाहो तो इस ब्रह्माण्डको एकही कवरमें खाडालूं ॥ २० ॥ अथवा एकही चिल्लूमें सातों

यात्वद्विनिंदाश्रवणात्तृणीचक्रेस्वजीवितम् ॥ इत्याकर्ण्यमहाकालःसम्यग्ज्ञात्वासतीव्ययम् ॥ १६ ॥ सत्यंमुनेसतीदेवीतृणीचक्रेस्वजीवितम् ॥ जोषंस्थितेमुनौतत्रतन्महाकालसाध्वसात् ॥ १७ ॥ रुद्रश्चातीवरुद्रोभूद्बहुकोपाग्निदीपितः॥ ततस्तत्कोपजाद्वह्नेराविरासीन्महाद्युतिः ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षःप्रतिमाकारःकालमृत्युप्रकंपनः ॥ उवाचचप्रणम्येशंभुशुंडींमहतींदधत् ॥ १९ ॥ आज्ञांदेहिपितःकिंतेकरवैदास्यमुत्तमम् ॥ ब्रह्मांडमेककवलंकरवाणित्वदाज्ञया ॥ २० ॥ पिबामिचार्णवान्सप्ताप्येकेनचुलुकेनवै ॥ रसातलंवापातालंपातालंवारसातलम् ॥ २१ ॥ त्वदाज्ञयानयामीशविनिमय्यस्वहेलया ॥ सलोकपालमिंद्रंवाधृत्वाकेशैरिहानये ॥ २२ ॥ अपिवैकुंठनाथश्चेत्तत्साहाय्यंकरिष्यति ॥ तदातंकुंठितास्त्रंचकरिष्यामित्वदाज्ञया ॥ २३ ॥ दनुजादितिजाःकेवैवराकारणदुर्बलाः ॥ तेषुचोत्कटतांकोपिधत्तेतंप्रणिहन्म्यहम् ॥ २४ ॥ कालंबध्नामिवासंख्येमृत्योर्वामृत्युमर्थये ॥ स्थावरेषुचरेष्वत्रमयिक्रुद्धेरणांगणे ॥ २५ ॥

समुद्रोंको पीजाऊं ? हे नाथ ! यदि आपकी आज्ञा पाऊं तो भूतलको पातालमें वा पातालको भूतलके स्थानपर खेलवाडके साथ उठाकर धरदूँ, अथवा लोकपालोंके सहित देवराज इन्द्रकी चुन्दी पकड कर यहां धरलाऊं ? ॥ २१ ॥ २२ ॥ यदि वैकुंठनाथभी उसकी सहायता करनेके लिये आवें तो उनकोभी आपकी आज्ञानुसार कुंठितास्त्र करदूं ? ॥२३॥ फिर ये सब रणदुर्बल तुच्छ दैत्य दानव किस गिनतीमें हैं, यदि उन सबोंमें कोई प्रबल हुआ हो तो उसे मैं अभी मारडालूं ? ॥ २४ ॥ युद्धमें कालकोभी बांधला सकताहूं, किंवा मृत्युकीभी मृत्यु उपस्थित करदे सकताहूं ? हे महेश्वर ! आपके प्रतापसे जब मैं

समरांगणमें क्रुद्ध होजाऊंगा तो चराचरमें कोई भी स्थिर नहीं रहनेपावेगा मेरे लात मारदेनेसे यह भूमंडल ॥ २५ ॥ २६ ॥ रसातलके सहित केलाके पत्तेसा काँपने लगेगा ? इन भुजदण्डोंके टक्करोंसे मैं समस्त कुलाचलोंको चूरचूर कर दे सकताहूं ॥ २७ ॥ (बहुत कहांतक कहूं,) आप आज्ञा देवें तो मेरे लिए कुछभी असाध्य नहीं है, आपके चरणोंका बल पाकर आज अभीष्टकृत्यको सिद्धही समझिये ॥ २८ ॥ महेश्वर उसकी ऐसी प्रतिज्ञा सुन उसे कार्यसाधक समझ वरन् कृतकृत्यसा विचार कर बडेही हर्षसे कहने लगे ॥२९॥ " हे भद्र ! तुम मेरे समस्तगणोंमें महावीरहो, अतएव तुम वीरभद्रनामसे ब

त्वद्बलेनमहेशाननकोपिस्थैर्यमेष्यति ॥ ममपादतलाघातादेतद्वैक्षोणिमंडलम् ॥ २६ ॥ कदलीदलवद्वाताद्वेपतेसरसातलम् ॥ चूर्णीकरोमिदोर्दंडघाताच्चैतान्कुलाचलान् ॥ २७ ॥ किंबहूक्तेनदेह्याज्ञांममासाध्यंनकिंचन ॥ त्वत्पादबलमासाद्यकृतंविद्धयद्यचिंतितम् ॥२८॥ इतिप्रतिज्ञांतस्येशःश्रुत्वाकृतममन्यत ॥ कृतकृत्यमिवात्यंतंतंमुदाप्रत्युवाचच ॥ २९ ॥ महावीरोसिरेभद्रममसर्वगणेष्विह ॥ वीरभद्राख्ययात्वंहिप्रथितिंपरमांव्रज ॥ ३० ॥ कुरुमेसत्वरंकार्यंदक्षयज्ञंक्षयंनय ॥ येत्वांतत्रावमन्यंतेतत्साहाय्यविधायिनः ॥ ३१ ॥ तेत्वयाप्यवमंतव्याव्रजपुत्रशुभोदय ॥ इत्याज्ञांमूर्ध्निचाधायसततःपारमेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ हरंप्रदक्षिणीकृत्यजग्मिवानतिरंहसा ॥ ततस्तदनुगाञ्शंभुः स्वनिःश्वाससमुद्गतान् ॥ ३३ ॥ शतकोटिमितानुग्रान्गणानन्यानवासृजत् ॥ तेगणावीरभद्रंतंयांतंकेचित्पुरोगताः ॥ ३४ ॥ केचित्तदनुगाजाताःकेचित्तत्पार्श्वगाययुः ॥ अंबरंतैःसमाक्रांतंतेजोविजितभास्करैः ॥ ३५ ॥

डे प्रसिद्ध होओ ॥ ३० ॥ हे शुभोदय ! पुत्र ! तुम शीघ्रही मेरा यह काम करो कि, दक्षके यज्ञका विध्वंस करडालो, और जो लोग उसके सहायक होकर तुम्हारा अपमान करनेलगें तुमभी उन सबको तिरस्कृत करदेना, अभी चलेजाओ । " वीरभद्र इस प्रकारसे महादेवकी आज्ञाको माथेपर रखकर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उनकी प्रदक्षिणा करके बडे वेगसे चलदिये, तदनंतर शिवने अपने निःश्वासवायुसे उत्पादित सौकरोड दूसरे बडे उग्रगणोंको वीरभद्रकी अनुचरताके लिए उत्पन्न करदिया, वे सब गणलोग वीरभद्रको जातेहुए देखकर कोई तो उनके आगे चले ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कोई पीछे हुए और कोई

कोई पासमें चलनेलगे । उन सब सूर्याधिक तेजस्वी गणोंसे आकाश भरगया ॥ ३५॥ कितनेही गणोंने पर्वतोंकी चोटियां उखाडलीं, कितनोंने पहाडोंको जडसे लेकर चोटियोंतक हिलादिया ॥ ३६॥ कोई कोई बडे बडे वृक्षोंहीको उखाड कर लिएहुए यज्ञभूमीमें जा पहुँचे, वहांपर कोई तो यज्ञके खम्भोंको उखाडने लगा, कोई कुण्डोंहीको पाटने लगा, ॥ ३७ ॥ कोई क्रोधोन्मत्त होकर मंडपहीको उजाडने लगा, कोई कोई हाथमें त्रिशूल लेकर वेदियोंहीको खोदने लगा, दूसरे गण हविही खानेलगे अन्यलोग दही और घृतको पीनेलगे ॥ ३८ ॥ कोई कोई पर्वताकार अन्नोंकी ढेरोंहीको छितराने लगे, कोई पायसही

शृंगाग्राणिगिरीणांचकैश्चिदुत्पाटितानिवै ॥ आचूडमूलाःकैश्चिच्चविधूतावैशिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥ उत्पाट्यमहतोवृक्षान्केचित्प्राप्तामखांगणम् ॥ कैश्चिदुत्पाटितायूपाःकेचित्कुंडान्यपूपुरन् ॥ ३७ ॥ मंडपंध्वंसयामासुःकेचित्क्रोधोद्धुरागणाः ॥ अचीखनन्वैवेदीश्चकेचिद्वैशूलपाणयः ॥ अभक्षयन्हवींष्यन्येपृषदाज्यंपपुःपरे ॥ ३८ ॥ दध्वंसुरन्नराशींश्चकेचित्पर्वतसन्निभान् ॥ केचिद्वैपायसाहाराःकेचिद्वैक्षीरपायिनः ॥३९ ॥ केचित्पक्वान्नपुष्टांगायज्ञपात्राण्यचूर्णयन् ॥ अमोटयन्स्रुचान्दंडान्केचिद्दोर्दंडशालिनः ॥ ४० ॥ व्यभंजञ्छकटान्केचित्पशून्केचिदजीगिलन् ॥ अग्निंनिर्वापयामासुःकेचिदत्यग्नितेजसः ॥ ४१ ॥ स्वयंपारिदधुश्चान्येदुकूलानिमुदायुताः ॥ जगृहुःकेचनपुरारत्नानांपर्वतंकृतम् ॥ ४२ ॥ एकेनचभगोदेवःपश्यंश्चक्रेविलोचनः ॥ पूष्णोदंतावलीमन्यःपातयामासकोपितः ॥४३॥ यज्ञःपलायितोदृष्टःकेनचिन्मृगरूपधृक् ॥ शिरोविरहितश्चक्रेतेनचक्रेणदूरतः ॥ ४४ ॥

चाभनेलगे, कोई दूधही पीनेलगे ॥ ३९ ॥ किसी किसीने पक्वानोंको खा खाकर यज्ञके पात्रोंहीको फोडना आरंभ करदिया; किसी किसी भुजदंडशालियोंने स्रुवा और दंड इत्यादिको तोरडाला ॥४०॥ कोई तो शकटोंके टुकडे टुकडे करने लगे, कोई पशुओंको निगलनेलगे, कोई अग्निके समान तेजस्वी गण अग्निहीको बुझाने लगे ॥४१॥ दूसरे स्वयं हर्षके साथ वहांके कपडोंको पहिरने लगे, कोई कोई पहिलेके बनेहुए रत्नोंके पर्वतोंहीको लूटनेलगे॥४२॥ एकने भगदेवको ताकतेहुए देखकर उसकी आंखहीको निकाललिया, दूसरेने कोपित होकर पूषादेवके दांतोंहीको उखाड दिया ॥ ४३॥ किसीने यज्ञदेवको

मृगका रूपधर कर भागतेहुए देखलिया, उसने चक्रके द्वारा दूरहीसे उसका शिर काट गिराया ॥ ४४ ॥ एकने सरस्वतीदेवीको जातीहुई देखकर उसे नक्टी बनादिया दूसरेने कोपकरके अदितिके दोनों ओठोंको काटलिया ॥ ४५ ॥ अपर किसीगणने अर्यमादेवके दोनों हाथोंको उखाड लिया, एकने बलपूर्वक अग्निदेवकी जीभही निकाल बाहर करदी ॥ ४६ ॥ दूसरे प्रतापी पारिषदने वायुके अंडकोशोंको काटडाला, एकने यमराजको बांधकर पूछा कि, "धर्म क्याहै ? ॥४७॥ जिस धर्ममें प्रथम महेश्वरकी पूजा नहीं होती वह कौन धर्म है ?" किसी एकने नैर्ऋतकी चुन्दी पकड बारंबार हिलाकर ॥४८॥ कहा कि "तूने अनीश्वर हवि खाया है" यह कहकर लातोंसे मार गिराया । दूसरेने कुबेरका पैर पकडकर ऐसा घुमाया कि ॥ ४९ ॥

एकःसरस्वतींयांतींदृष्ट्वानिर्नासिकांव्यधात् ॥ अदितेरोष्ठपुटकौछिन्नावन्येनकोपिना ॥ ४५ ॥ अर्यम्णोबाहुयुगलंतथोत्पाटितवान्परः ॥ अग्नेरुत्पाटयामासकश्चिज्जिह्वांप्रसह्यच ॥ ४६ ॥ चिच्छेदवायोर्वृषणंपार्षदोन्यःप्रतापवान् ॥ पाशयित्वायमंकश्चित्कोधर्मइतिपृष्टवान् ॥ ॥ ४७ ॥ यत्रधर्मेमहेशोनप्रथमंपरिपूज्यते ॥ नैर्ऋतंसंगृहीत्वान्यःकेशेष्वातोल्यचासकृत् ॥४८॥ अनीश्वरंहविर्भुक्तंत्वयेत्याताडयत्पदा ॥ कुबेरमपरोधृत्वापादयोरधुनोद्बलात् ॥ ४९ ॥ वामयामासबहुशोभक्षिताह्यध्वराहुतीः ॥ एकादशाऽपियेरुद्रालोकपालैकपंक्तयः ॥५०॥ रुद्राख्याधारणवशात्प्रमथैस्तेऽवहेलिताः ॥ वरुणोदरमापीड्यप्रमथोन्योबलेनहि ॥५१॥ बहिरुद्गिरयामासयद्दत्तंचेशवर्जितम् ॥ मायूरीं तनुमासाद्यसहस्राक्षोमहामतिः ॥ ५२ ॥ उड्डीयगिरिमाश्रित्यच्छन्नःकौतुकमैक्षत ॥ ब्राह्मणान्प्रमथानत्वायातयातेतिचाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ प्रमथाःकालयामासुरन्यानपिचयाचकान् ॥ इत्थंप्रमथितेयागेप्रमथैः प्रथमागतैः ॥ वीरभद्रःस्वतःप्राप्तःप्रमथानीकिनीवृतः ॥ ५४ ॥

वह जो बहुतसी यज्ञकी आहुतियां खागयेथे उसे उगिलवा दिया । लोकपालोंकी एकही पंक्तिमें बैठेहुए ग्यारहों रुद्रोंको प्रमथोंने रुद्रका नाम पडजानेसे (विना कुछ कहे सुने) अवज्ञापूर्वक छोडदिया । दूसरे एक गणने बलपूर्वक वरुणका पेट ऐसा दबाया कि शिवभागहीन दक्षकी दीहुई हविको उनसे वमन कराकर तभी छोडा । महामति इन्द्र मयूरका शरीर धर पर्वतपर उडजाकर छिपेहुए वहांका कौतुक देखने लगे । प्रमथोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम करके कहा कि, चले जाओ, चले जाओ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ फिर और सबभी भिक्षुकोंको गणलोगोंने भगादिया, इस प्रकारसे प्रथमही आये हुए प्रमथ

लोगोंके यज्ञ मथडालनेपर प्रमथसेनावृत वीरभद्र स्वतः वहांपर प्राप्त हुए॥५४॥ अनन्तर वीरभद्रने पहिलेही उन सब प्रमथलोगोंकी करतूतसे उस यज्ञस्थानको श्मशानभूमिकी नाईं बडी शोचनीय दशाको प्राप्त हुई देखकर यह कहा कि, ॥ ५५ ॥ हे प्रमथगण ! देखो, ईश्वरसे पराङ्मुख दुराचारी लोगोंके प्रारम्भ कियेहुए कर्मोंकी यही अवस्था होतीहै, नहीं तो महेश्वरमें द्वेष कहां है ?॥ ५६ ॥ जो लोग धर्मकार्यमें प्रवृत्त होनेपरभी सब कर्मोंके एकमात्र साक्षिस्वरूप महादेवसे द्वेष करतेहैं वेही सब इस दशाको प्राप्त होतेहैं ॥ ५७ ॥ प्रमथगण ! वह दुराचारी दक्ष कहांहै ? तथा वे सब यज्ञभोजी देवतागण कहां हैं ? तुमलोग अभी जाओ, और उन सबोंको यहां पकडलाओ ॥ ५८ ॥ इस भाँतिसे वीरभद्रकी आज्ञापाकर प्रमथगण शीघ्रतापूर्वक ज्योंही आगे बढे,

यज्ञवाटंश्मशानाभंदृष्ट्वातैःप्रमथैःपुरा ॥ अतिशोच्यांदशांनीतंवीरभद्रस्ततोजगौ ॥ ५५ ॥ गणाःपश्यतदुर्वृत्तैःप्रारब्धानांचकर्मणाम् ॥ अनीश्वरैरवस्थेयंकुतोद्वेषोमहेश्वरे ॥ ५६ ॥ येद्विषंतिमहादेवंसर्वकर्मैकसाक्षिणम् ॥ धर्मकार्येप्रवृत्तास्तुतेप्राप्स्यंतीदृशींदशाम् ॥ ५७ ॥ क्वसदक्षोदुराचारःक्वचयज्ञभुजःसुराः ॥ धृत्वासर्वानानयतयातद्रुततरंगणाः ॥ ५८ ॥ इत्याज्ञांवीरभद्रस्यप्राप्यतेप्रमथाद्रुतम् ॥ यावद्यांत्यग्रतस्तावद्दृष्टःक्रुद्धोगदाधरः ॥ ५९ ॥ तेनतेप्रमथाःसर्वेमहाबलपराक्रमाः ॥ शुष्कपर्णतृणावस्थांप्रापितावात्ययेवहि ॥ ६० ॥ अथनष्टेषुसर्वेषुप्रमथेषुहरेर्भयात् ॥ चुकोपवीरभद्रःसप्रलयानलसंनिभः ॥ ६१ ॥ ददर्शशार्ङ्गिणंचाग्रेस्वगणैश्चपरिष्टुतम् ॥ चतुर्भुजैरसंख्यातैर्जितदैत्यमहाबलैः ॥ ६२ ॥ चक्रिभिर्गदिभिर्जुष्टंखड्गिभिश्चापिशार्ङ्गिभिः ॥ वीरभद्रस्ततःप्राहदृष्ट्वातंदैत्यसूदनम् ॥ ६३ ॥ त्वंतुयज्ञपुमानत्रमहायज्ञप्रवर्तकः ॥ रक्षितानिजवीर्येणदक्षस्यत्र्यक्षवैरिणः ॥ ६४ ॥

त्योंही क्रोधान्वित गदाधर देखपडे ॥५९॥ उनने उन सब महाबली और बडे पराक्रमी प्रमथोंको भारी आँधीके आगे सूखेपत्तोंकी नाईं उधिरादिया॥६०॥ इसके उपरान्त विष्णुके भयसे उन सब प्रमथोंके भागजानेपर वीरभद्र प्रलयानलके समान बडेही क्रुद्ध हुए ॥६१॥ आगे बढतेही उनने विष्णुको देखा जो महाबली दैत्योंके जीतनेवाले, चक्र—गदा—खड्ग—और शार्ङ्गधनुर्धारी चतुर्भुज युक्त अपने असंख्यगणोंसे परिसेवित थे । तब तो वीरभद्रने दैत्यसूदन विष्णुको देखकर उनसे कहा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ " इस महायज्ञके प्रवर्तक यज्ञपुरुष तुम्हीं हो, और तुम्हीं अपने वीर्यके बलसे त्र्यम्बकके वैरी दक्षके

रक्षकहो ॥६४॥ सो तुम दक्षको लाकर देदो, नहीं तो मेरे साथ युद्धकरो, और जो दक्षकोभी नहीं देना हो तो प्रयत्न पूर्वक उसकी रक्षाही करो॥६५॥ प्रायः समस्तशिवभक्तोंके मध्यमें तुम्हीं अग्रगण्य कहेजातेहो, तुम्हींने पूर्वकालमें शिवके सहस्रकमलके पूजनमें एककी न्यूनता होजानेपर अपना नेत्रकमल (निकालकर) चढादिया था ॥ ६६ ॥ उसीपर संतुष्ट होकर शंकरनेभी तुमको वह सुदर्शनचक्र दिया, जिसकी सहायता पाकर तुम संग्राममें दानवाधिपतियोंको भी जीत लेतेहो" ॥६७॥ इस प्रकारसे वीरभद्रके गर्वित वाक्योंको सुनकर विष्णु वीरभद्रके बल समझनेकी इच्छासे उनसे कहने लगे ॥६८॥ "तुम तो महादेवके पुत्रस्थानापन्न हो, फिर इन सब गणोंके प्रधान नायक हो; तिसपर राजाका आदेश पाकर औरभी बहुत बडे बलवान् होगये हो,

किंवादक्षंसमानीयदेहियुध्यस्ववामया ॥ नदास्यसिचचेद्दक्षंततस्तंरक्षयत्नतः ॥६५॥ प्रायशःशंभुभक्तेषुयतस्त्वंप्रोच्यसेऽग्रणीः ॥ एकोनेऽब्जसहस्रेप्राग्ददौनेत्रांबुजंभवान् ॥ ६६ ॥ तुष्टेनशंभुनादत्तंतुभ्यंचक्रंसुदर्शनम् ॥ यत्साहाय्यमवाप्याजौत्वंजयेर्दनुजाधिपान् ॥ ६७ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यवीरभद्रस्यचोर्जितम् ॥ जिज्ञासुस्तद्बलंविष्णुर्वीरभद्रमुवाचह ॥ ६८ ॥ त्वंशंभोःसुतदेशीयोगणानांप्रवरोस्यहो ॥ राजादेशमनुप्राप्यततोप्यतिबलोमहान् ॥६९॥ योसिसोस्यहमप्यत्रदक्षरक्षणदक्षधीः ॥ पश्यामितवसामर्थ्यंकथंदक्षंहरिष्यसि ॥ ७० ॥ इत्युक्तोवीरभद्रःसतेनवैशार्ङ्गधन्वना ॥ प्रमथान्दृष्टिभंग्यैवप्रेरयामाससंगरे ॥ ७१ ॥ अथतैःप्रमथैर्विष्णोरनुगागदितारणे ॥ आददानास्तृणंवक्रेणापिताःपाशवींदशाम् ॥ ७२ ॥ ततस्तार्क्ष्यरथःक्रुद्धस्त्वेकैकंरणमूर्धनि ॥ सहस्रेणसहस्रेणबाणानांह्यताडयत् ॥ ७३ ॥ तेभिन्नवक्षसःसर्वेगणारुधिरवर्षिणः ॥ वासंतींकिंशुकींशोभांपरिप्रापूरणाजिरे ॥ ७४ ॥

॥ ६९ ॥ अस्तु तुम जो चाहे सो हो, पर मैं तो दक्षकी रक्षा करनेमें दृढबुद्धि होचुकाहूं, अब तुम्हारी सामर्थ्य देखताहूं कि तुम कैसे दक्षको छीन लेजातेहो ॥ ७० ॥ शार्ङ्गधन्वा विष्णुदेवके इस कहनेपर वीरभद्रने प्रमथगणको केवल दृष्टिभंगीहीसे युद्धमें प्रेरित किया ॥ ७१ ॥ फिरतो रणभूमीमें प्रमथगणोंके ललकारनेपर विष्णुके गणलोग मुखमें तिनगा थामकर पशुओंकी दशाको प्राप्त होनेलगे ॥ ७२ ॥ तब तो गरुडध्वज समरांगणमें क्रुद्ध होकर एक एक प्रमथके हृदयमें सहस्र सहस्र बाणोंको मारनेलगे ॥ ७३ ॥ जिससे वे सब प्रमथगण युद्धस्थलमें छातीके फटने और रुधिरके बहचलनेसे वसंतऋतुमें

परासके फूलोंकी शोभाको प्राप्त होनेलगे ॥ ७४ ॥ उस घडी प्रमथगण, मदस्रावी मातंगोंकी नाईं, अथवा गेरु इत्यादि धातुओंके रंगसे मिलेहुए पर्वतोंके झरनेकी नाईं शोभायमान होरहेथे ॥ ७५ ॥ तदनंतर गणप्रधान वीरभद्रने हँसकर वैकुण्ठनायकसे कहा कि हे शार्ङ्गधन्वन् ! मैं तुमको (अच्छीरीतिसे) जानताहूं, तुम समरांगणमें पंडितहो ॥ ७६ ॥ पर तुम दैत्य दानवेन्द्रोंहीके साथ लड़नेवालेहो, स्यात् शिवके पारिषदोंसे कभी नहीं लड़ेहोगे ! यह कहकर वीरभद्रने हाथमें भुशुंडी को उठालिया ॥ ७७ ॥ उधर गदाधरनेभी दैत्येन्द्ररूप पर्वत को धूर करदेनेवाली अपनी गदाको तुरत हाथमें लेलिया, तब तो वीरभद्रने उस भुशुंडीसे गदाधरके ऊपर चोट चलायी ॥७८॥ वह भुशुंडी विष्णुके अंगमें लगते ही सैकड़ों टुकड़े होगई, गदाधरनेभी प्रतापशाली

क्षरंतइवमातंगाःस्रवंतइवपर्वताः ॥ मदेनधातुरागेणमिश्रैःशुशुभिरेगणाः ॥ ७५ ॥ ततःप्रहस्यगणपोऽब्रवीद्वैकुंठनायकम् ॥ हेशार्ङ्गधन्व ञ्जानेत्वांत्वंरणांगणपंडितः ॥ ७६ ॥ परंयुध्यसिदैत्येंद्रैर्दानवेंद्रैर्नपार्षदैः ॥ इत्युक्त्वावीरभद्रेणभुशुंडीकलिताकरे ॥ ७७ ॥ गदिनाऽथगदा तूर्णदैत्येंद्रगिरिरेणुकृत् ॥ ततःप्रहतवान्वीरोभुशुंड्यातंगदाधरम् ॥ ७८ ॥ तदंगसंगमासाद्यविदद्रेशतधातया ॥ कौमोदकीप्रहारेणवी रभद्रंप्रतापिनम् ॥ ७९ ॥ जघानवासुदेवोपितरसाऽज्ञातवेदनम् ॥ ततःखट्वांगमादायगदाहस्तंगदाधरम् ॥ ८० ॥ आताडयसव्यदो र्दंडेगदांभूमावपातयत् ॥ कुपितोयंमधुद्वेषीचक्रेणाताडयद्व्रतम् ॥ ८१ ॥ सचचक्रंसमागच्छद्दृष्ट्वासस्मारशंकरम् ॥ शंकरस्मरणाच्चक्रं मनाग्वक्रत्वमाप्यच ॥ कंठमासाद्यवीरस्यसम्यग्जातंसुदर्शनम् ॥ ८२ ॥ तेनचक्रेणशुशुभेनितरांसगणेश्वरः ॥ वीरलक्ष्म्यावृतइवसमरे विजयस्रजा ॥ ८३ ॥

वीरभद्रको कौमोदकी गदासे ॥ ७९ ॥ बड़े वेगके साथ मारा, पर वीरभद्रको उसकी कुछभी पीड़ा नहीं जान पड़ी, तब फिर वीरभद्रनेभी खट्वांग लेकर गदाधर विष्णुके ॥ ८० ॥ बायें भुजदंडपर ऐसा मारा कि उनकी गदाको भूमिपर गिरादिया, फिरतो मधुसूदननेभी कुपित होकर चक्रके द्वारा वीरभद्रपर आघात किया ॥८१॥ अनंतर जब वह चक्र चला तो उनको देखतेही शंकरको स्मरण करने लगा, फिर शंकरके स्मरण करतेही वह चक्र वक्र (टेढ़ा) होकर वीरभद्रके कंठमें लगतेही पूर्णरीतिसे सुदर्शन होगया ॥ ८२ ॥ वह गणनायक उस चक्रके गलेमें अटक रहनेसे समरमें वीरलक्ष्मीके द्वारा

विजयमाला पहिनायेजानेके ऐसा बहुतही शोभायमान होनेलगा ॥ ८३ ॥ अब विष्णुने अपने सुदर्शनचक्रको उसके कंठका भूषण हुआ देख कुछ चकितसे हो मुसकुराकर नन्दकनामक अपने खड्गको उठालिया ॥ ८४ ॥ तब तो वीरभद्रने आकाशस्थ सिद्धलोगोंके देखतेही देखते मधुसूदनके खड्गयुक्त उठेहुए हाथको हुंकारसे स्तंभित करदिया ॥८५॥ और बडा उज्ज्वल त्रिशूल लेकर बडे वेगसे उनकी ओर दौडकर ज्योंही चाहा कि विष्णुको मारें त्योंही आकाशवाणीने ॥ ८६ ॥ उन गणनायकको निवारण करदिया कि "ऐसा साहस मत करो"। तत्पश्चात् प्रमथप्रधान वीरभद्र तुरत विष्णुको वहींपर छोड ॥ ८७ ॥ सिंहनाद करतेहुए दक्षके पास जापहुँचे, (और कहने लगे कि,) अरे ईश्वरनिन्दक ! दक्ष ! तुझे धिक्कारहै !! जिसके पास ऐसी संपत्तिहो,

ततःसुदर्शनंदृष्ट्वातत्कंठाभरणंहरिः ॥ मनाक्सचकितंस्मित्वाततोजग्राहनंदकम् ॥ ८४ ॥ सनंदकंकरंतस्यप्रोद्यतंमधुविद्विषः ॥ पश्यतां दिविसिद्धानांस्तंभयामासहुंकृता ॥ ८५ ॥ अभ्यधावच्चवेगेनगृहीत्वाशूलमुज्ज्वलम् ॥ यावज्जिघांसतिहरिंतावदाकाशवाचया ॥ ८६ ॥ वारितोगणराजःसमाकार्षीःसाहसंत्विति ॥ ततस्तमपहायाशुवीरभद्रोगणोत्तमः ॥ ८७ ॥ प्राप्यदक्षंविनद्योच्चैर्धिक्त्वामीश्वरनिंदकम् ॥ यस्येदृगस्तिसंपत्तिर्यत्रदेवाःसहायिनः ॥ सकथंसेश्वरंकर्मनकुर्याद्दक्षतांदधत् ॥ ८८ ॥ येनास्येनापवित्रेणभवतानिंदितःशिवः ॥ चूर्णयामितदास्यंतेचपेटाभिःसमंततः ॥ ८९ ॥ इत्युक्त्वातस्यदक्षस्यहरपारुष्यभाषिणः ॥ चिच्छेदवदनंवीरश्चपेटशतघातनैः ॥ ९० ॥ ततस्त्वदितिमुख्यानांमिलितानांमहोत्सवे ॥ त्रोटयामासकर्णादीन्यंगप्रत्यंगकानिच ॥९१॥ वेणीदंडाश्चकासांचित्तेनच्छिन्नामहारुषा ॥ कासांचिच्चकराश्छिन्नाःकासांचित्कर्तितास्तनाः ॥ ९२ ॥

देवतालोग जहांपर सहायकहों, और जो स्वयं सब कामोंमें दक्षहो, वह ईश्वरहीन कर्म क्यों करनेलगा ? ॥ ८८ ॥ जिस अपवित्र मुखसे तुमने शिवकी निन्दा कीहै, मैं चारोंओरसे थप्पड लगा लगाकर उसी तेरे मुखको चकचूर करूंगा ॥ ८९ ॥ बस इतना कहनेके उपरांत उस वीरने शिवनिन्दक दक्षके मुखको सैकडों थप्पड लगाकर चूरचूर कर (धूरमें) गिरा दिया ॥ ९० ॥ फिर उस महोत्सवमें संमिलित अदिति प्रभृति स्त्रियोंकेभी कर्ण इत्यादि अंग प्रत्यंगोंको तोडदिया ॥ ९१ ॥ उस शिवके प्यारे पार्षदने मारे क्रोधके किसी किसीकी चोंटी उखाडली, किसीका हाथ काटदिया, किसीके स्तनोंहीको

उडादिया ॥ ९२ ॥ दूसरीकी नाकही निकालदी एवं किसी किसीकी अंगुरियांही पृथक् करदीं ॥ ९३ ॥ उन्होंने रोषान्वित होकर जिन जिन लोगोंने महादेवकी निन्दाकीथी उनकी जीभ काट ली और जिन जिन लोगोंने निन्दा सुनी थी उनके कान दो टुकडे करदिये ॥ " संत शंभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ अस मरजादा ॥ काटिय तासु जो जीभ बसाई । श्रवन मूँदि न तु चलिय पराई" ॥(तु०रा०) ॥ ९४ ॥ जिन लोगोंने देवदेवके न होनेपरभी महाहवि लेलियाथा वीरभद्रने उन लोगोंको भी उसी यज्ञके खंभेपर दृढ फाँसी लगाकर नीचे मुँह लटका दिया ॥ ९५ ॥ चन्द्र, धर्म, भृगु, और कश्यप इत्यादिको तो उनने बहुतही अपमानित किया ॥९६॥ क्योंकि ये सब उसी दुर्बुद्धि दक्षके जामाताथे, और दक्षभी महेश्वरको त्यागकर इन लोगोंको

नासापुटांस्तथान्यासांपाटयामासपार्षदः ॥ चिच्छेदचांगुलीश्चापितथान्यासांशिवप्रियः ॥ ९३ ॥ येयेनिनिंदुर्देवेशंयेयेचशुश्रुवुस्तदा ॥ तेषांजिह्वाश्रुतीःकोपादच्छिनच्चाकरोद्विधा ॥ ९४ ॥ केचिदुल्लंबितायूपेपाशयित्वादृढंगले ॥ अधोमुखायैर्देवेशंविहायात्तंमहाहविः ॥ ९५ ॥ द्विजराजश्चधर्मश्चभृगुमारीचिमुख्यकाः ॥ अत्यंतमपमानस्यभाजनंतेनकारिताः ॥९६ ॥ एतेजामातरस्तस्ययतोदक्षस्य दुर्धियः ॥ हित्वामहेश्वरममून्सोपश्यदधिकाञ्शिवात् ॥ ९७ ॥ तानिकुंडानितेयूपास्तेस्तंभाःसचमंडपः ॥ तावेद्यस्तानिपात्राणितानिहव्यान्यनेकधा ॥ ९८ ॥ तेचवैयज्ञसंभारास्तेतेयज्ञप्रवर्तकाः ॥ तेरक्षपालास्तेमंत्राविनेशुर्हेलयाऽखिलाः ॥ ९९ ॥ स्तोकेनैवहिकालेनयथर्धिःपरवंचनात् ॥ अर्जितानश्यतिक्षिप्रंदक्षसंपद्गताऽशिवा ॥ १०० ॥ नीतेमहाक्रतौतेनसगणेनेदृशींदशाम् ॥ विधिर्विधिविलोपाच्चहरंविज्ञाप्यचानयत् ॥ १ ॥

उनकी अपेक्षा अधिक देखतेथे ॥ ९७ ॥ वे सब यज्ञके कुण्ड, वे यूप वे खम्भे, वह मण्डप, वे सब बेदियां, वे पात्र, वे अनेकभाँतिके हव्य ॥ ९८ ॥ वे सब यज्ञकी सामग्रियां, वे यज्ञके प्रवर्तक लोग, वे रक्षपालगण, और वे सब मंत्र—अनायासही सबके सब विनष्ट होगये ॥९९॥ जैसे परवंचना करनेसे थोडेही समयमें उपार्जित ऐश्वर्य नष्ट होजाताहै, वैसेही दक्ष(यज्ञ)की संपत्तिभी शिवहीन होनेसे विनष्ट होगई ॥ १०० ॥ गणोंके सहित वीरभद्र जब उस महायज्ञको इस दशामें पहुँचा चुके तब ब्रह्मा विधिके लोप होजानेका कारण दिखाकर, महादेवको वहां लिवालाये, जहांपर शिवहीन वह यज्ञ उस दशाको प्राप्त हुआथा,

अनंतर महादेवके वहां आजानेपर वीरभद्र बहुतही लज्जितहुए ॥ १ ॥ २ ॥ उनने देवदेवको केवल प्रणामही भर किया, पर कुछ कहा नहीं, किन्तु भगवान् स्वयं सब समझगये, फिर ब्रह्माने शिवको प्रसन्न करके कहा कि, ॥ ३ ॥ हे दयामय शंकर ! इस अपराधी दक्षपरभी प्रसाद करना चाहिए, और ये सबलोग जैसे पूर्वमें थे वैसेही फिर करदिये जावें ॥ ४ ॥ जिसमें वैदिक विधि फिरसे प्रचलित होवे, हे शंभो ! वही आज्ञा दीजिए, क्योंकि ईश्वरके सहित रहनेसे तो कर्म सिद्ध होही जाताहै ॥ ५ ॥ पर हे परमेश्वर ! ईश्वरहीन सब क्रियाओंमें ऐसेही ऐसे सहस्रों भाँतिके विघ्न समूह हुआ करतेहैं ॥ ६ ॥

तत्रयत्रमखःसोभूदीद्दक्षःशिववर्जितः ॥ आयातेथमहादेवेवीरभद्रोतिलज्जितः ॥ २ ॥ नत्वानकिंचिदवदद्देवःसर्वमवैत्स्वयम् ॥ प्रसाद्यदेवदेवेशंसुरज्येष्ठोऽब्रवीत्पुनः ॥ ३ ॥ अपराध्यप्ययंदक्षःसंप्रसाद्यःकृपानिधे ॥ यथापूर्वंपुनरमून्सर्वान्कारयशंकर ॥ ४ ॥ यथाविधिःप्रवर्तेतवैदिकःपुनरेवहि ॥ तथाज्ञादीयतांशंभोकर्मसिद्ध्यतिसेश्वरम् ॥ ५ ॥ अनीश्वरासुसर्वासुक्रियासुपरमेश्वर ॥ एवमेवभवंत्येवविघ्नजाताःसहस्रशः ॥ ६ ॥ विचारतोवराकोयंदक्षोभक्ततरस्तव ॥ कुर्वन्योऽनीश्वरंकर्मपरदृष्टांततांगतः ॥ ७ ॥ अन्योपियोमहेशानंहित्वाकर्मकरिष्यति ॥ तस्यतत्कर्मसंसिद्धिर्दक्षस्येवभविष्यति ॥ ८ ॥ अतोनकश्चित्किंचित्क्कचित्कर्मविनाशिवम् ॥ विधास्यतिनिशम्यास्यदक्षस्येद्दक्षचेष्टितम् ॥ ९ ॥ विधीरितमितिश्रुत्वास्मित्वादेवोमहेश्वरः ॥ वीरमाज्ञापयामासयथापूर्वंप्रकल्पय ॥ १० ॥ वीरभद्रोपितत्सर्वंशर्वाज्ञांप्रतिपद्यच ॥ विनादक्षस्यवदनंयथापूर्वमकल्पयत् ॥ ११ ॥ ईश्वरंयेविनिंदंतितेमूकाःपशवोध्रुवम् ॥ ततोमेषमुखंदक्षंवीरभद्रोगणोव्यधात् ॥ १२ ॥

यदि विचारकी दृष्टिसे देखा जावे तो यह दीन (बिचारा) दक्ष आपका बडा भारी भक्तहै, क्योंकि यह अनीश्वर कर्मको करके दूसरे लोगोंके लिए दृष्टांत बनगया ॥ ७ ॥ औरभी जो कोई महेश्वरको त्यागकर कुछ कर्म करेगा, उसके कर्मकी सिद्धिभी दक्षहीकी नाईं होगी ॥ ८ ॥ अतएव इस दक्षकी ऐसी दशाको सुनकर अब कोईभी कहींपर शिवके विना किसी कर्मको नहीं करेगा ॥ ९ ॥ भगवान् मेहश्वरने ब्रह्माकी बातसुन,मुसकुराकर वीरभद्रको आज्ञा दी कि, इन सबको पूर्वहीसा बनादो ॥ १० ॥ वीरभद्रनेभी शिवकी आज्ञानुसार दक्षका मुख छोडकर और सबको पहिले साबनादिया ॥ ११ ॥ जो लोग ईश्वरकी

निन्दा करतेहैं, निस्सन्देह गूँगे पशुहैं, अतएव गणाध्यक्ष वीरभद्रने दक्षको मेषमुख बनादिया ॥ १२ ॥ उधर भगवान् शिवभी गार्हस्थ्य धर्मके नष्ट होजानेसे पारिषदोंके साथ ब्रह्मासे पूछ (विदा ले) कर तपस्या करनेके लिये हिमालयपर वानप्रस्थार्थ चलेगये ॥ १३॥ किसी पुरुषको आश्रमहीन होकर थोडाभी समय व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए; अतएव सदैव आश्रमीही होकर रहना भलाहै ॥ १४ ॥ इसी कारणसे सब तपस्याओंके फलदाता स्वयं महेश्वरभी पारिषदोंके सहित (जाकर) तपस्या करने लगे, तब ब्रह्माने दक्षको यह सिखावन दिया कि ॥ १५ ॥ यदि शिवकी निन्दासे उत्पन्न अत्यंत दुस्त्यज पापपंकको धोडालनेकी इच्छा हो तो वाराणसीपुरीमें जाओ ॥ १६ ॥ महापातक पुंजकी विनाशिनी पवित्र काशीपुरीमें पहुँचकर तुम वहां लिंगकी

देवोब्रह्माणमापृच्छ्यचधर्माद्गार्हस्थ्यतश्च्युतः ॥ सपार्षदोहिमप्रस्थंजगामतपसेततः ॥ १३ ॥ अनाश्रमवतापुंसायतःकालोमनागपि ॥ मुधाकलयितव्योनतस्माच्छ्रेयःसदाश्रमः ॥ १४ ॥ अतःससर्वतपसांफलदातामहेश्वरः ॥ तपश्चचारसगणोब्रह्मादक्षंत्वशिक्षयत् ॥१५॥ हरनिंदासमुद्भूतपापपंकंसुदुस्त्यजम् ॥ यदिक्षालयितुंकांक्षातदावाराणसींव्रज ॥ १६ ॥ प्राप्यवाराणसींपुण्यांमहापापौघहारिणीम् ॥ कुरु लिंगप्रतिष्ठांत्वंतेनशंभुःसतुष्यति ॥ १७ ॥ तुष्टेमहेश्वरेतुष्टंजगदेतच्चराचरम् ॥ नान्यत्रपापंतेगंतृविनावाराणसींपुरीम् ॥१८॥ ब्रह्महत्यादिपापानांप्रायश्चित्तंमनीषिभिः ॥ प्रोक्तंनहरनिंदायास्तत्रकाश्येवकेवलम् ॥ १९ ॥ काश्यांलिंगप्रतिष्ठायैःकृताऽत्रसुकृतात्मभिः ॥ सर्वे धर्माःकृतास्तैस्तुतएवपुरुषार्थिनः ॥ १२० ॥ इत्याकर्ण्यविधेर्वाक्यंदक्षःप्राप्याथसत्वरम् ॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रंततापपरमंतपः ॥ २१ ॥ संस्थाप्यलिंगंविधिवल्लिंगाराधनतत्परः ॥ नवेत्तिलिंगादपरंसकिंचिज्जगतीतले ॥ २२ ॥

स्थापनाकरो, इसीसे शिव प्रसन्न होंगे ॥ १७ ॥ महेश्वरके संतुष्ट होनेपर यह चराचर संसार संतुष्ट होजावेगा, और काशीपुरीको छोड अन्यत्र पर तुम्हारा पाप नहीं छूटसकता ॥ १८ ॥ आचार्योंने ब्रह्महत्या इत्यादि पापोंका तो प्रायश्चित्त कहाहै, पर शिव निन्दाका कोई प्रायश्चित्त नहीं होता अतएव इस पापकी मुक्तिभूमी केवल काशीहीहै ॥ १९ ॥ जिन पुण्यात्माओंने काशीमें शिवलिंगकी प्रतिष्ठाकीहै, वे सब धर्मोंको करचुके और वे ही लोग पुरुषार्थी हैं ॥ २० ॥ दक्ष ब्रह्माके इस कथनको सुन तुरत अविमुक्त महाक्षेत्रमें पहुँचकर घोर तपस्या करने लगे ॥ २१ ॥ वे विधिपूर्वक लिंगकी स्थापनाकर

लिंगहीकी आराधनामें तत्पर होगये, और पृथिवीतलमेंलिंगसे भिन्न दूसरा कुछभी नहीं जानते थे ॥ २२ ॥ सुदक्ष दक्ष प्रजापति रात्रिदिन महेश्वरहीकी स्तुति, पूजा, प्रणाम, ध्यान, और दर्शन करने लगे ॥२३॥ एकाग्रचित्तसे ईश्वरके लिंगका ध्यान करतेहुए दक्षके द्वादश सहस्र वर्ष व्यतीत होगये ॥२४॥ जबतक सतीदेवी हिमाचलकी पतिव्रता पत्नी मनोके गर्भसे प्रकट हो, उमारूपधर, कठोर तपस्याकर महादेवको अपना पति नहीं बनाचुकी ॥ २५ ॥ तबतक दक्षभी तपस्यामें दृढ़ रहकर लिंगहीकी पूजाकरते रहे, तिसके उपरांत गिरीन्द्रनन्दिनी स्वामीके साथ काशीमें आकर ॥ २६ ॥ दक्षको

दिवानिशंमहेशानंपरिष्टौतिसमर्चति ॥ नमतिध्यायतीक्षेतदक्षोदक्षप्रजापतिः ॥ २३ ॥ एकचित्तस्यदक्षस्यध्यायतोलिंगमैश्वरम् ॥ समाःसहस्रमगमन्मितंद्वादशसंख्यया ॥२४॥ मेनांयावत्सतीप्राप्यहिमाचलपतिव्रताम् ॥ उमारूपातितपसापतिंप्रापपिनाकिनम्॥२५॥ तावत्सदक्षस्तपसिनिश्चलोलिंगमार्चयत् ॥ ततःकाशींसमासाद्यसहभर्त्रागिरींद्रजा ॥ २६ ॥ दृष्ट्वातंनिश्चलहृदंशिवलिंगार्चनेरतम् ॥ हरंव्यजिज्ञपद्देवीक्षीणोयंतपसाविभो ॥ २७॥ प्रसादयकृपासिंधोवरेणैनंप्रजापतिम् ॥ इत्युक्तोऽपर्णयाशंभुःप्राहतंदक्षमीशिता ॥ २८ ॥ वरंब्रूहिमहाभागदास्यामिमनसेप्सितम् ॥ इतीशोदितमाकर्ण्यप्रणम्यबहुशोहरम् ॥ २९ ॥ स्तुत्वानानाविधैःस्तोत्रैःप्रसन्नंवीक्ष्यशंकरम् ॥ प्रोवाचेदेवदेवेशंयदिदेयोवरोमम ॥ १३० ॥ तत्त्वदीयपदद्वंद्वेनिर्द्वंद्वाभक्तिरस्तुमे ॥ इदंचतेमहालिंगंयन्मयाऽत्रप्रतिष्ठितम् ॥ अस्मिँल्लिंगे त्वयानाथस्थातव्यंसर्वदैवहि ॥ ३१ ॥

एकाग्रचित्तसे शिव लिंगार्चनमें तत्पर देख महादेवसे प्रार्थना करने लगी कि, विभो ! यह प्रजापति तो तपसे क्षीण होगयाहै ॥ २७ ॥ हे दयासिन्धो ! (अब आप) प्रसन्न होकर इसको वरदान कीजिए, पार्वतीके ऐसा कहनेपर भगवान् शंभुने दक्षसे कहा ॥ २८ ॥ हे महाभाग ! वरमांगो, मैं तुमको मनो वांछित (वर) दूंगा, तबतो दक्ष शिवके इस कथनपर उनको वारंवार प्रणामकर ॥ २९ ॥ एवं नानाप्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुतिगान करके शंकरको प्रसन्नदेख कहने लगे, हे देवदेवेश ! यदि मुझे वरदेनाहै तो यही दीजिए कि ॥ १३० ॥ आपके चरणयुगलमें मेरी निर्द्वन्द्व भक्ति बनीरहे, और हे नाथ, यहांपर

जो मेरास्थापित आपका यह महालिंगहै, इसमें आप सदैव वासकरें ॥ ३१ ॥ हे कृपानिधे ! देवदेव ! मैंने जो कुछ अपराध कियाहै उसे आप क्षमाकरें, बस यही वरदान मिले, और दूसरे उत्तम वरोंका कोई प्रयोजन नहींहै ॥ ३२ ॥ यह सुनकर भगवान् महेश्वर बहुतही प्रसन्नहो कहने लगे कि, तुमने जो कुछ कहा, वह वैसेही होगा कभी अन्यथा नहीं होने पावेगा ॥ ३३ ॥ हे प्रजापते ! अब तुमको जो दूसरा वर देताहूं, उसे सुनो, तुम्हारे स्थापित इस लिंगका दक्षेश्वर नाम पडेगा ॥ ३४॥ और इसके सेवन करनेसे मैं लोगोंके सहस्रों अपराधोंको निस्सन्देह क्षमा करूंगा इसलिये सब लोगोंको इसकी पूजा करनी चाहिए ॥ ३५ ॥ और तुम इस लिंगके पूजन करनेसे सब किसीके माननीय होंगे, और दो परार्ध वर्षके अन्तमें मोक्षको प्राप्त होगे ॥ ३६ ॥

मयापराद्धंयद्देवतत्क्षंतव्यंकृपानिधे ॥ एतएववराःसंतुकिमन्यैरुत्तमैर्वरैः ॥ ३२ ॥ इतिश्रुत्वामहादेवःप्रसन्नोतितरांभवः ॥ प्रोवाचचयदुक्तंते तत्तथास्तुनचान्यथा ॥ ३३ ॥ अन्यच्चतेवरंदद्यांतच्छृणुष्वप्रजापते ॥ यत्त्वयास्थापितंलिंगमेतद्दक्षेश्वराभिधम् ॥३४॥ अस्यसंसेवनात्पुंसामपराधसहस्रकम् ॥ क्षमिष्येहंनसंदेहस्तस्मात्पूज्यमिदंजनैः ॥ ३५ ॥ त्वंतुलिंगार्चनादस्मात्सर्वमान्योभविष्यसि ॥ परार्धद्वितयप्रांतेततोमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिंगेलयंययौ ॥ दक्षोपिगतवान्गेहंपरिप्राप्तमनोरथः ॥ ३७ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इत्यगस्त्यसमाख्यातोदक्षेश्वरसमुद्भवः ॥ यंश्रुत्वामुच्यतेजंतुरपराधशतैरपि ॥ ३८ ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यंदक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥ नरोनंलिप्यतेपापैरपराधालयोपिहि ॥ १३९ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेदक्षेश्वरप्रादुर्भावोनामनवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

यह कहकर देवदेव उसी लिंगमें लीन होगये, और दक्षभी मनोरथ प्राप्त होजानेसे अपने गृहको चले गये ॥ ३७ ॥ स्कन्दने कहा—हे अगस्त्य ! यह तो दक्षेश्वरकी उत्पत्ति मैंने कही, जिसके सुननेसे प्राणी सैकडों अपराधोंसे छूट जाताहै ॥३८॥ दक्षेश्वरकी उत्पत्तिसे युक्त इस पवित्र आख्यानके श्रवण करनेसे मनुष्य अपराधोंका घर होनेपरभी पापपंकसे लिप्त नहीं होने पाता ॥ १३९ ॥ दोहा—चाल मेषमुख दक्षकी, धरि बजाव जो गाल । यहू काल शिव करत तेहि, सब प्रकार सो--भाल ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अगस्त्य मुनि बोले—हे पार्वती हृदयानन्दन ! इसके पूर्वहीमें जो आपने पाप नाशक पार्वतीश्वर लिंगको कहाथा उसके प्रकट होनेका वृत्तांत कहिए ॥ १ ॥ स्कन्दने कहा—अगस्त्यमुने ! श्रवण करो, जब कि हिमाचलकी पतिव्रता पत्नी मेनाने गिरीन्द्र किशोरीसे कहा कि पुत्रि ! इन जामाता महेश्वरका ॥ २ ॥ देश कहांहै ? वस्ती किस स्थानमें है ? अथवा इनके बन्धु-बान्धवभी कोईहैं ? यह सब कुछ जानतीहो ? जान पडताहै, इनका घर इत्यादि कहीं नहीं है, और न इनका कोई स्वजनहीहै ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे माताका वचन सुनकर गिरींद्रनन्दिनी बहुतही लज्जित हुई, फिर अवसर पाकर पार्वतीने प्रणाम करके महादेवसे

॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ पार्वतीहृदयानंदपार्वतीशसमुद्भवम् ॥ कथयेहयदुद्दिष्टंभवताप्रागघापहम् ॥ १ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ शृण्वगस्तेयदामेनाहिमाचलपतिव्रता ॥ गिरींद्रजांसुतामाहपुत्रितेस्यमहेशितुः ॥ २ ॥ किंस्थानंवसतिर्वाकाकोबंधुर्वेत्सिकिंचन ॥ प्रायो गृहंनजामातुरस्यकोपिचकुत्रचित् ॥ ३ ॥ निशम्येतिवचोमातुरतिह्रीणागिरींद्रजा ॥ आसाद्यावसरंशंभुंनत्वागौरीव्यजिज्ञपत् ॥ ४ ॥ मयाश्वश्रूगृहंकांतगम्यमद्यविनिश्चितम् ॥ नाथात्रनैववस्तव्यंनयमांस्वंनिकेतनम् ॥ ५ ॥ गिरींद्रजागिरंश्रुत्वागिरीशइतितत्त्ववित् ॥ हित्वाहिमगिरिंप्राप्तोनिजमानंदकाननम् ॥ ६ ॥ प्राप्यानंदवनंदेवीपरमानंदकारणम् ॥ विस्मृत्यपितृसंवासंजाताचानंदरूपिणी ॥ ७ ॥ अथविज्ञापयांचक्रेगौरीगिरिशमेकदा ॥ अच्छिन्नानंदसंदोहःकुतःक्षेत्रेऽत्रतद्वद ॥ ८ ॥ इतिगौरीरितंश्रुत्वाप्रत्युवाचपिनाकधृक् ॥ पंचक्रोशपरीमाणेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसद्मनि ॥ ९ ॥

निवेदन किया (कि) ॥ ४ ॥ कान्त ! आजतो मैं अवश्यही सासके घर जाऊंगी, क्योंकि यहांका रहना अच्छानहींहै अतएव हे नाथ ! मुझे अब आप अपने घरपर ले चलिए ॥ ५ ॥ तत्त्ववेत्ता भगवान् गिरीश शैलपुत्री देवीकी यह बात सुन, हिमालयको त्यागकर, अपने आनन्दवनमें चले आये ॥ ६ ॥ पार्वतीदेवी परमानन्दके कारण आनन्दवनमें पहुँच, पिताके घरको भूलकर आनंदरूपिणी होगई ॥ ७ ॥ अनंतर एकदिन गौरीने गिरीशसे यह पूछा कि, "इस क्षेत्रमें अविच्छिन्न आनंदसमूह क्योंकर बनारहताहै? इसका कारण बताइये" ॥ ८ ॥ पार्वतीके इस कथनपर पिनाकपाणि शिवने उत्तर दिया कि,

हे देवि ! पंचकोश परिमाण इस मुक्तिमंदिरक्षेत्रके भीतर ॥९॥ लिंगसे रहित एक तिलमात्रभी स्थान कहींपर सूना नहीं है, । हे देवि ! अन्यत्र कहींभी एकएक लिंगके चारोंओर एकएक कोशकी भूमी आनन्दका कारण होजातीहै पर इस परमानन्द जनक आनन्दवनमें तो ॥ १० ॥ ११ ॥ परमानन्दस्वरूप अनेकानेक लिंग विराजमान हैं चौदहों भुवनोंमें जितनेही पुण्यात्मा लोग रहतेहैं ॥ १२ ॥ उन सबने अपने अपने नामसे यहांपर लिंगकी स्थापना करके कृतार्थता प्राप्त कीहै । हे महादेवि ! जिस किसीने यहांपर मेरे लिंगकी प्रतिष्ठा करदीहै ॥ १३ ॥ विशेषज्ञ शेषभी उसके कल्याणकी संख्याको (यथार्थ

तिलांतरंनदेव्यस्तिविनालिंगंहिकुत्रचित् ॥ एकैकंपरितोलिंगंक्रोशंक्रोशंचयावनिः ॥ १० ॥ अन्यत्रापिहिसादेविभवेदानंदकारणम् ॥ अत्रानंदवनेदेविपरमानंदजन्मनि ॥ ११ ॥ परमानंदरूपाणिसंतिलिंगान्यनेकशः ॥ चतुर्दशसुलोकेषुकृतिनोयेवसंतिहि ॥ १२ ॥ तैःस्वनाम्नेहलिंगानिकृत्वाऽपिकृतकृत्यता ॥ अत्रयेनमहादेविलिंगंसंस्थापितंमम ॥ १३ ॥ वेत्तितच्छ्रेयसःसंख्यांशेषोपिनविशेषवित् ॥ १४ ॥ परिच्छेदव्यतीतस्यानंदस्यपरकारणम् ॥ अतस्त्विदंपरंक्षेत्रंलिंगैर्भूयोभिरद्रिजे ॥ १५ ॥ निशम्येतिमहादेवीपुनःपादौप्रणम्यच ॥ देह्यनुज्ञांमहादेवलिंगसंस्थापनायमे ॥ १६ ॥ पत्युराज्ञांसमासाद्ययच्छेच्छ्रेयःपतिव्रता ॥ नतस्याःश्रेयसोहानिःसंवर्तेपिकदाचन ॥ १७ ॥ इतिप्रसाद्यदेवेशमाज्ञांप्राप्यमहेशितुः ॥ लिंगंसंस्थापितंगौर्यामहादेवसमीपतः ॥ १८ ॥ तल्लिंगदर्शनात्पुंसांब्रह्महत्यादिपातकम् ॥ विलीयेतनसंदेहोदेहबंधोपिनोपुनः ॥ १९ ॥

विधिसे) नहीं जानसकते ॥ १४ ॥ हे गिरीन्द्रजे ! बहुतेरे लिंगोंके वर्तमान रहनेहीसे यह उत्तम क्षेत्र निरंतर परमानन्दका कारण होगयाहै ॥ १५ ॥ यह सुनकर पार्वतीदेवीने फिर शंकरके चरणोंको प्रणाम करके कहा कि, हे महादेव ! मुझेभी (यहांपर) लिंग स्थापनाकी आज्ञा दीजिए ॥ १६ ॥ क्योंकि जो पतिव्रता नारी स्वामीकी आज्ञा लेकर कोई मंगलकार्य करतीहै, तो उसके मंगल कार्यकी हानि प्रलयमेंभी कभी नहीं होने पाती ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे भगवान् महादेवको प्रसन्नकर, और उनकी आज्ञा पाकर, पार्वतीदेवीने महादेवनामक लिंगके समीपहीमें लिंगकी स्थापनाकी ॥ १८ ॥ उस लिंगके दर्शन

करनेसे लोगोंका ब्रह्महत्यादिकभी पातक निस्सन्देह बिलायजाताहै, और फिर देहबंधनभी नहीं होता ॥ १९ ॥ हे मुनिवर ! देवदेवने भक्तोंकी हितका मनासे उस लिंगके संबन्धमें जो वरदान कियाहै, उसेभी श्रवण करलो ॥ २० ॥ जो कोई काशीमें पार्वतीश्वर लिंगकी पूजा करेगा शरीरान्त होनेके उपरान्त वह काशीहीमें लिंग स्वरूप होजावेगा॥२१॥एवं जब वह काशीका लिंग बनजायगा तो मुझहीमें प्रवेश कर जावेगा। चैत्रमासकी शुक्लातृतीयाके दिन पार्वतीशके पूजन करनेसे ॥२२॥ इस लोकमें तो सौभाग्य और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त होतीहै। स्त्री हो अथवा पुरुषहो, पार्वतीश्वर लिंगकी आराधना

तत्रलिंगेवरोदत्तोदेवदेवेनयःपुनः ॥ निशामयमुनेतंतुभक्तानांहितकाम्यया ॥ २० ॥ लिंगंयःपार्वतीशाख्यंकाश्यांसंपूजयिष्यति ॥ तद्देहावसितिंप्राप्यकाशीलिंगंभविष्यति ॥ २१ ॥ काशिलिंगत्वमासाद्यमामेवानुप्रवेक्ष्यति ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायांपार्वतीशसमर्चनात् ॥ २२ ॥ इहसौभाग्यमाप्नोतिपरत्रचशुभांगतिम् ॥ पावतीश्वरमाराध्ययोषिद्वापुरुषोपिवा ॥ २३ ॥ नगर्भमाविशेद्भूयोभवेत्सौभाग्यभाजनम् ॥ पार्वतीशस्यलिंगस्यनामापिपरिगृह्णतः ॥ २४ ॥ अपिजन्मसहस्रस्यपापंक्षयतितत्क्षणात् ॥ पार्वतीशस्यमाहात्म्यंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामान्सप्राप्स्यतिमहामतिः ॥ २५ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेपार्वतीशवर्णनंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ पार्वतीशस्यमहिमाकथितस्तेमयानघ ॥ मुनेनिशामयेदानींगंगेश्वरसमुद्भवम् ॥ १ ॥

करनेसे ॥ २३ ॥ (उसे) फिर कभी गर्भमें वास नहीं करना पडता, बरन् वह सौभाग्यका भाजन होजाताहै । पार्वतीश्वर लिंगके नामोच्चारण करनेवालोंके ॥२४॥ सहस्त्रों जन्मकेभी संचित पाप उसी क्षणमें क्षय होजातेहैं जो उत्तमनर पार्वतीश्वरलिंगका माहात्म्यभी सुनलेगा, वह महामति ऐहिक, और पारलौकिक समस्त कामनाओंको प्राप्त करसकेगा ॥ २५ ॥ सोरठा—महिमा अमितअपार, पारवतीश्वर लिंगकी । या भव पारावार, उतरिजाय तेहि देखिकै ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥, स्कन्द बोले--हे अनघ ! मैंने पार्वतीश्वरकी

महिमा तुमसे कही, हे मुने ! अब गंगेश्वरके प्रादुर्भावकी कथा सुनो ॥ १ ॥ इस कथाके कहींपरभी श्रवण करनेसे गंगास्नानका फल प्राप्त होताहै, जब कि गंगा उस दिलीपनन्दन भगीरथके साथ इस आनन्दकाननमें चक्रपुष्करिणी तीर्थपर आपहुँची तब शिवके परिग्रहसे क्षेत्रके अतुल प्रभावको समझ कर ॥ २ ॥ ३ ॥ एवं काशीमें लिंग प्रतिष्ठाका लोकोत्तर फल स्मरणकर विश्वेश्वरके पूर्वभागमें गंगादेवीने एक उत्तम लिंगकी स्थापना की ॥ ४ ॥ काशीपुरीमें उस गंगेश्वरलिंगका दर्शन मिलना बहुतही दुर्लभ है, (पर) जो कोई दशहरा तिथिके दिन गंगेश्वरका पूजन करे ॥ ५ ॥ तो उसके सहस्रों

यंश्रुत्वायत्रकुत्रापिगंगास्नानफलंलभेत् ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंयदागंगासमागता ॥ २ ॥ तेनदैलीपिनासार्धमस्मिन्नानंदकानने ॥ क्षेत्रप्रभावमतुलंज्ञात्वाशंभुपरिग्रहात् ॥ ३ ॥ स्मृत्वालिंगप्रतिष्ठायाःकाश्यांलोकोत्तरंफलम् ॥ गंगयास्थापितंलिंगंविश्वेशात्पूर्वतः शुभम् ॥ ४ ॥ गंगेश्वरस्यलिंगस्यकाश्यांदृष्टिःसुदुर्लभा ॥ तिथौदशहरायांचयोगंगेशंसमर्चयेत् ॥ ५ ॥ तस्यजन्मसहस्रस्यपापंसंक्षीयतेक्षणात् ॥ कलौगंगेश्वरंलिंगंगुप्तप्रायंभविष्यति ॥ ६ ॥ तस्यसंदर्शनंपुंसांजायतेपुण्यहेतवे ॥ दृष्टंगंगेश्वरंलिंगंयेनकाश्यांसुदुर्लभम् ॥ ७ ॥ प्रत्यक्षरूपिणीगंगातेनदृष्टानसंशयः ॥ कलौसुदुर्लभागंगासर्वकल्मषहारिणी ॥ ८ ॥ भविष्यतिनसंदेहोमित्रावरुणनंदन ॥ ततोपितिष्येसंप्राप्तेकाश्यत्यंतंसुदुर्लभा ॥९॥ ततोपिदुर्लभंकाश्यांलिंगंगंगेश्वराभिधम् ॥ यस्यसंदर्शनंपुंसांभवेत्पापक्षयायवै ॥ १० ॥

जन्मके संचित पाप क्षणमात्रमें क्षय होजातेहैं, किन्तु कलियुगमें गंगेश्वरलिंग प्रायः गुप्तही रहेगा ॥ ६ ॥ पुरुषोंके पुण्यहीके कारण उसका दर्शन प्राप्त होसकताहै, जो कोई परम दुर्लभ गंगेश्वरलिंगका दर्शन काशीमें पाजाताहै ॥ ७ ॥ वह प्रत्यक्ष मूर्तिधारिणी गंगाका दर्शन पाचुका इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, हे मित्रावरुणनन्दन ! सर्व कल्मषहारिणी भगवती भागीरथी कलिकालमें निस्सन्देह बड़ीही दुर्लभ होवेगी, तिसपर जब कलियुग व्याप्त होजायगा तब तो काशीपुरी (में गंगा) औरभी परम दुर्लभ होजावेगी ॥ ८ ॥ ९ ॥ तदपेक्षा काशीमें गंगेश्वरनामक लिंग तो बहुतही दुर्लभ होगा, क्योंकि उसका

दर्शन लोगोंके पापका क्षय करनेहीके लिये होसकताहै ॥ १० ॥ गंगेश्वर लिंगका माहात्म्य सुननेसे मनुष्य (कभी) नरकभागी नहीं होता, और पुण्यकी ढेर उसे प्राप्त होतीहै, एवं अपने चिंतित वस्तुको लाभ करताहै ॥ ११ ॥ दोहा—यद्यपि गंगातीरपै, हैं शिवलिंग विशेष। पै काशीमें नहिं कतहुं, गंगेश्वर शिव देख ॥ १ ॥ करत भरथरी योग जह, वहि चुनारमें ख्यात। गंगेश्वर शिव लिंग है, नहिं अन्यत्र दिखात ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ स्कन्द कहनेलगे—मुने ! (अब) मैं तुमसे नर्मदेश्वर लिंगका माहात्म्य वर्णन करताहूं, जिसके केवल स्मरण करनेहीसे महापातकोंकाभी क्षय होजाताहै ॥ १ ॥ इस बाराहकल्पके चढनेहीके समय प्रधान मुनियोंने मार्कण्डेय ऋषिसे यह पूछाथा

श्रुत्वागंगेशमाहात्म्यंननरोनिरयीभवेत् ॥ लभेच्चपुण्यसंभारंचिंतितंचाधिगच्छति ॥ ११ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेगंगेश्वरमहिमाख्यानंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यं कथयामिमुनेतव ॥ यस्यस्मरणमात्रेणमहापातकसंक्षयः ॥ १ ॥ अस्यवाराहकल्पस्यप्रवेशेमुनिपुंगवैः ॥ आपृच्छिकासरिच्छ्रेष्ठावदतां त्वंमृकंडज ॥ २ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ शृणुध्वंमुनयःसर्वेसंतिनद्यःपरंशतम् ॥ सर्वाअप्यघहारिण्यःसर्वाअपिवृषप्रदाः ॥ ३ ॥ सर्वाभ्योपिनदीभ्यश्चश्रेष्ठाःसर्वाःसमुद्रगाः ॥ ततोपिहिमहाश्रेष्ठाःसरित्सुसरिदुत्तमाः ॥ ४ ॥ गंगाचयमुनाचाथनर्मदाचसरस्वती ॥ चतुष्टयमिदंपुण्यंधुनीषुमुनिपुंगवाः ॥ ५ ॥ ऋग्वेदमूर्तिर्गंगास्याद्यमुनाचयजुर्ध्रुवम् ॥ नर्मदासाममूर्तिस्तुस्यादथर्वासरस्वती ॥ ६ ॥ गंगासर्वसरिद्योनिःसमुद्रस्यापिपूरणी ॥ गंगायानलभेत्साम्यंकाचिदत्रसरिद्वरा ॥ ७ ॥

कि, हे मृकण्डनन्दन ! जो सब नदियोंमें श्रेष्ठ हो आप उसे कहें ॥ २ ॥ मार्कण्डेयने कहा मुनिगण ! श्रवण करो, नदियां तो सैकडोंही ऐसी हैं, जो पापहारिणी और पुण्यकारिणी प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥ उन सब नदियोंसे समुद्रगामिनी नदियां श्रेष्ठ हैं, उन सब नदियोंमें उत्तमनदियां परम श्रेष्ठ समझी जाती हैं ॥ ४ ॥ हे मुनिपुंगवगण ! गंगा, यमुना, नर्मदा, और सरस्वती, ये चारों नदियां समस्त नदियोंमें परम पवित्र हैं ॥ ५ ॥ गंगा ऋग्वेदकी मूर्ति, यमुना यजुर्वेदस्वरूपा, नर्मदा सामवेदस्वरूपिणी, और सरस्वती अथर्ववेदकी मूर्ति है यह बात सर्वथा ध्रुव है ॥ ६ ॥ गंगा सब नदियोंकी आदियोनि हैं, और

समुद्रकीभी भरदेनेवाली हैं, अतएव संसारमें कोईभी उत्तमनदी गंगाकी समानता नहीं करसकती ॥७॥ किन्तु हे सत्तम ! पूर्वकालमें नर्मदाने बहुत दिनोंतक तपस्या करके वरदानोन्मुख ब्रह्मासे यह प्रार्थना कीथी ॥ ८ ॥ (कि) प्रभो विधे ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गंगाकी तुल्यता प्रदान कीजिए, तब ब्रह्माने कुछ हँसकर नर्मदासे कहा कि ॥ ९ ॥ यदि कोई महादेवकी समानता पासके तो दूसरी नदीभी गंगाके समान होसकतीहै ॥ १० ॥ यदि कहींपर कोईभी पुरुष पुरुषोत्तमके तुल्य होसके तो अन्य नदीभी गंगाके सदृश होसकतीहै ॥ ११ ॥ यदि इस लोकमें कोईभी नारी गौरीके ऐसी बनसके तो दूसरी

किंतुपूर्वंतपस्तप्त्वाघोरंवयाबह्वनेहसम् ॥ वरदानोन्मुखोधाताप्रार्थितश्चेतिसत्तम ॥८॥ गंगासाम्यंविधेदेहिप्रसन्नोसियदिप्रभो ॥ ब्रह्मणाथततः प्रोक्तानर्मदास्मितपूर्वकम् ॥ ९ ॥ यदित्र्यक्षसमत्वंतुलभ्यतेऽन्येनकेनचित् ॥ तदागंगासमत्वंचलभ्यतेसरितान्यया ॥ १० ॥ पुरुषोत्तमतुल्यःस्यात्पुरुषोन्योयदिक्वचित् ॥ स्रोतस्विनीतदासाम्यंलभतेगंगयापरा ॥११॥ यदिगौरीसमानारीक्वचिदन्याभवेदिह ॥ अन्याधुनीहस्वर्धुन्यास्तदासाम्यमुपैष्यति ॥१२॥ यदिकाशीपुरीतुल्याभवेदन्याक्वचित्पुरी ॥ तदास्वर्गतरंगिण्याःसाम्यमन्यानदीलभेत् ॥१३॥ निशम्येतिविधेर्वाक्यंनर्मदासरिदुत्तमा ॥ धातुर्वरंपरित्यज्यप्राप्तावाराणसींपुरीम् ॥१४॥ सर्वेभ्योपिहिपुण्येभ्यःकाश्यांलिंगप्रतिष्ठितेः ॥ अपरानसमुद्दिष्टाकैश्चिच्छ्रेयस्करीक्रिया ॥ १५ ॥ अथसानर्मदापुण्याविधिपूर्वांप्रतिष्ठितिम् ॥ व्यधात्पिलिपिलातीर्थेत्रिविष्टपसमीपतः ॥१६॥ ततःशंभुःप्रसन्नोभूत्तस्यैनद्यैशुभात्मने ॥ वरंवृणीष्वसुभगेयत्तुभ्यंरोचतेऽनघे ॥ १७ ॥

नदीभी गंगाकी समानता करसकतीहै ॥ १२ ॥ यदि काशीपुरीके समान कोई दूसरी नगरी कहींपर होजावे, तो संभवहै कि स्वर्गतरंगिणी गंगाकी तुल्यता दूसरी नदीकोभी मिलसके ॥१३॥ नदीश्रेष्ठा नर्मदा विधाताके इस वचनको सुन उनके वरदानको त्यागकर काशीधाममें चलीगई ॥ १४ ॥ काशीमें लिंग प्रतिष्ठाही समस्त पुण्योंसे बढकर श्रेयस्करी क्रिया कहीगईहै, उससे भिन्न दूसरा कर्म कोईभी नहीं बतासकता ॥ १५ ॥ इसके अनंतर उस पवित्र नर्मदानदीने पिलपिलातीर्थपर त्रिलोचनके समीपहीमें विधिपूर्वक लिंगकी प्रतिष्ठा की ॥ १६ ॥ तब तो भगवान् शिव उस शुभात्मिका नदीके ऊपर प्रसन्नहो बोले,

हे सुभगे ! वर मांगो, हे अनघे ! जो तुम्हारी रुचिहो वही मांगलो ॥१७॥ सरिद्वरा रेवा (नर्मदा) ने यह सुनकर महेश्वरसे कहा हे देवदेव ! धूर्जटे ! अत्यन्त तुच्छ अन्यवरदानका कौन प्रयोजनहै ? ॥ १८ ॥ हे महेश्वर ! आपके चरणयुगलमें मेरी निर्द्वन्द्व भक्ति बनीरहै, महादेव नर्मदाकी इस उत्तम वाणीको सुन बहुतही सन्तुष्ट हुए ॥ १९ ॥ और कहनेलगे कि, हे सरिद्वरे ! तुमने जो कहा वही होवे, हे पुण्यनिलये ! लो अब मैं (अपनी ओरसे) दूसरा वरदान करताहूं ॥ २० ॥ हे नर्मदे ! तुम्हारे तटमें जितनेही पत्थर होंगे मेरे वरके प्रभावसे वे सब (के सब) लिंगरूप होजावेंगे ॥ २१ ॥ बडी तपस्याओंके द्वारा परमार्थतः परम दुर्लभ औरभी उत्तम वर तुमको देताहूं उसेभी श्रवणकरो ॥२२॥ हे नर्मदे ! गंगा तो (स्नान करनेसे) सद्यः पापको

सरिद्वरानिशम्येतिरेवाप्राहमहेश्वरम् ॥ किंवरेणेहदेवेशभृशंतुच्छेनधूर्जटे ॥ १८ ॥ निर्द्वंद्वात्वत्पदद्वंद्वेभक्तिरस्तुमहेश्वर ॥ श्रुत्वेतिनितरां तुष्टोरेवागिरमनुत्तमाम् ॥ १९ ॥ प्रोवाचचसरिच्छ्रेष्ठेत्वयोक्तंयत्तथास्तुतत् ॥ गृहाणपुण्यनिलयेवितरामिवरांतरम् ॥ २० ॥ यावंत्यो दृषदःसंतितवरोधसिनर्मदे ॥ तावंत्योलिंगरूपिण्योभविष्यंतिवरान्मम ॥ २१ ॥ अन्यंचतेवरंदद्यांतमप्याकर्णयोत्तमम् ॥ दुष्प्रापं यच्चतपसांराशिभिःपरमार्थतः ॥ २२ ॥ सद्यःपापहरागंगासप्ताहेनकलिंदजा ॥ त्र्यहात्सरस्वतीरेवेत्वंतुदर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥ अपरंच वरंदद्यांनर्मदेदर्शनाघहे ॥ भवत्यास्थापितंलिंगंनर्मदेश्वरसंज्ञकम् ॥ २४ ॥ यत्तल्लिंगंमहापुण्यंमुक्तिंदास्यतिशाश्वतीम् ॥ अस्यलिंगस्य येभक्तास्तान्दृष्ट्वासूर्यनंदनः ॥ २५ ॥ प्रणमिष्यतियत्नेनमहाश्रेयोभिवृद्धये ॥ संतिलिंगान्यनेकानिकाश्यांदेविपदेपदे ॥ २६ ॥ परंहि नर्मदेशस्यमहिमाकोपिचाद्भुतः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिंगेलयंययौ ॥ २७ ॥

हरलेती हैं, और यमुना एक सप्ताहमें पाप नाशकरतीहैं, एवं तीन दिनमें सरस्वतीभी पापको दूर करती हैं, पर तुम दर्शन करतेमात्र पापको नष्ट करदोगी ॥ ॥ २३ ॥ हे दर्शनमात्र-पापहारिणी ! नर्मदे ! एक औरभी वर तुमको देताहूं, तुम्हारे स्थापित लिंगका नाम नर्मदेश्वर होगा ॥ २४ ॥ और यह परमपुण्यप्रद लिंग शाश्वत मुक्तिको देगा, जो लोग इस लिंगके भक्त होंगे उनको देखतेही सूर्यनंदन यमराज ॥ २५ ॥ बडे कल्याणकी वृद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करने लगेंगे । हे देवि ! यद्यपि काशीमें पद पदपर अनेक लिंग विद्यमान हैं ॥२६॥ पर नर्मदेश्वर लिंगकी कुछ विचित्रही महिमा होगी।

यह कहकर भगवान् शिव उसी लिंगमें लीन होगये ॥ २७ ॥ नर्मदाभी अद्भुत पवित्रता पाकर बहुतही प्रसन्न हुई, और दर्शनमात्रसे पापहारिणी होकर अपने देशमें चलीगई ॥२८॥ इस प्रकारसे मार्कंडेय मुनिका कथन सुन वे सब मुनीश्वर लोगभी प्रहृष्टचित्त होकर अपना अपना हितसाधन करनेलगे॥२९॥ स्कंदने कहा—मनुष्य भक्तिपूर्वक नर्मदेश्वरका माहात्म्य सुननेसे पापकंचुकको छोडकर उत्तम ज्ञानको प्राप्त करेगा॥३०॥ दोहा—धन्य धुनी वह नर्मदा, जेहि दर्शन अघ जाय। होत आप शिवलिंग जहँ, नर्मदेश कहवाय ॥१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥

नर्मदापिप्रहृष्टासीत्पावित्र्यंप्राप्यचाद्भुतम् ॥ स्वदेशंचपरिप्राप्तादृष्टमात्राघहारिणी ॥ २८ ॥ वाक्यंमृकंडजमुनेस्तेपिश्रुत्वामुनीश्वराः ॥ प्रहृष्टचेतसोजाताश्चक्रुःस्वंस्वंततोहितम् ॥ २९ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुत्वाभक्तियुतोनरः ॥ पापकंचुकमुत्सृज्यप्राप्स्यतिज्ञानमुत्तमम् ॥ ३० ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धे नर्मदेश्वराख्यानंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुतंकल्मषनाशनम् ॥ इदानींकथयस्कंदसतीश्वरसमुद्भवम् ॥ १ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ मित्रावरुणसंभूतकथयामिकथांशृणु ॥ यथासतीश्वरंलिंगंकाश्यामाविर्बभूवह ॥ २ ॥ पुराततापसुमहत्तपःशतधृतिर्मुने ॥ तपसातेनदेवेशःसंतुष्टोवरदोऽभवत् ॥ ३ ॥ उवाचचापिब्रह्माणंनितरांब्राह्मणप्रियः ॥ सर्वज्ञनाथोलोकात्मावरंवरयलोककृत् ॥ ४ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशवरंदास्यसिवांछितम् ॥ तदात्वंमेभवसुतोदेवीदक्षसुताऽस्तुच ॥ ५ ॥

अगस्त्य बोले—हे स्कन्द ! नर्मदेश्वरका कल्मषनाशक माहात्म्य तो मैंने सुना पर अब आप सतीश्वरके प्रकटहोनेकी कथाको कीर्तन कीजिए ॥ १ ॥ स्कन्दने कहा हेमित्रावरुणसंभूत ! काशीमें जैसे सतीश्वर लिंगका प्रादुर्भाव हुआ उस कथाको मैं कहता हूं, तुम श्रवण करो ॥ २ ॥ हे मुने ! पूर्वकालमें ब्रह्माने कठोर तपस्या कीथी, उससे ब्राह्मणप्रिय, सर्वज्ञनाथ, लोकात्मा भगवान् शिव बहुतही संतुष्ट और वर देनेके लिये उद्यत होकर उनसे कहने लगे कि, "हे लोककर्तः ! वर मांगो" ॥ ३ ॥ ४ ॥ ब्रह्मा बोले—हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न होकर वांछित वर देतेहैं, तो आप मेरे पुत्र हों और देवी दक्षकी

कन्या होवें ॥ ५ ॥ सर्वस्वदाता महादेव ब्रह्माका यह वर सुन भगवतीके मुखकी ओर ताक कुछ मुसकुराकर चतुराननसे बोले ॥ ६ ॥ हे पितामह ! ब्रह्मन् ! तुम्हारे लिये क्या अदेय है, अस्तु तुम्हारा वांछित सिद्धहोवे, यह कहकर भगवान् चन्द्रमौलि ब्रह्माके कपालसे (बालकरूपमें) प्रकट होगये ॥७॥ वह बालक उतान सूतकर रोता हुआ ब्रह्माके मुखकी ओर ताकने लगा, तब ब्रह्माभी उस लडकेको रोता हुआ देखकर ॥ ८ ॥ "मुझे पिता पाकरभी तुम क्यों वारंवार रोरहेहो" ऐसा बोले, तब वह बालक ब्रह्माकी बात सुनकर कहने लगा कि ॥९॥ हे सृष्टिकर्तः ! मैं नामके लिए रोरहाहूं, हे पितामह !

इतिश्रुत्वामहादेवःसर्वदोब्रह्मणोवरम् ॥ स्मित्वादेवीमुखंवीक्ष्यप्रोवाचचतुराननम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्त्वद्वांछितंभूयात्किमदेयंपितामह ॥ इत्युक्त्वाब्रह्मणोभालादाविरासीच्छशांकभृत् ॥ ७ ॥ रुदन्सउत्तानशयोब्रह्मणोमुखमैक्षत ॥ ततोब्रह्मापितंबालंरुदंतंप्रविलोक्यच ॥ ८ ॥ किंमांजनकमाप्यापित्वंरोदिषिमुहुर्मुहुः ॥ श्रुत्वेतिपृथुकःप्राहयथोक्तंपरमेष्ठिना ॥ ९ ॥ नाम्नेरोदिमिमेस्रष्टर्नामदेहिपितामह ॥ रोदनाद्रुद्रइत्याख्यांसमायार्डिभकोलभत् ॥ १० ॥ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ अर्भकत्वंगतोपीशःकिंरुरोदषडानन ॥ यदिवेत्सितदाचक्ष्वमहत्कौतूहलंहिमे ॥ ११ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ सर्वज्ञस्यकुमारत्वात्किंचित्किंचिद्वेम्यहम् ॥ रोदनेकारणंवच्मिशृणुकुंभसमुद्भव ॥ ॥ १२ ॥ मनसीतिविचारोभूद्देवस्यपरमात्मनः ॥ बुद्धिवैभवमस्याहोवीक्षितुंपरमेष्ठिनः ॥ १३ ॥ सत्यलोकाधिनाथस्यचतुरास्यस्यवेधसः ॥ इत्यानंदात्समुद्भूतोबाष्पपूरोमहेशितुः ॥ १४ ॥

मेरा नाम रखदीजिए, तब उस मायामय बच्चेका रोनेके कारण रुद्रही नाम धरा गया ॥१०॥ अगस्त्यने पूछा—हे षडानन ! महेश्वर बालक होनेपरभी क्यों रोतेरहे ? यदि इसका कारण आप जानतेहों तो मुझे बतलाइये, क्योंकि (इसके सुननेका) मुझे बडाही कौतूहलहै ॥ ११ ॥ स्कन्दने कहा हे कुंभसंभव ! सर्वज्ञका कुमार होनेसे कुछकुछ मैं समझताहूं, अतएव रोनेका कारण कहताहूं, श्रवणकरो ॥ १२ ॥ परमात्मा देवादिदेवके मनमें यह विचार आया कि, अहो ! सत्यलोकके अधिपति,परमेष्ठी,विधाता,चतुराननका कैसा बुद्धिवैभवहै (जो मुझेही अपना पुत्र बनालिया) इसी आनन्दके मारे महादेवके आंखोंसे वाष्पपूर

बहनेलगा॥ १३॥ १४ ॥ अगस्त्यने फिर पूछा भगवान् शंभुने मनमें विधाताकी कौनसी बुद्धिमत्ता देखी, जिससे बालक होनेपरभी महादेवके (नेत्रोंसे) आनन्दका अश्रुजल बहनेलगाथा ॥ १५ ॥ हे सर्वज्ञानन्दवर्द्धन प्राज्ञ ! इस विषयको स्पष्टरूपसे कहिये । इसभाँतिसे अगस्त्यका कथन सुन तारकासुरके शत्रु स्कन्दने कहा ॥१६॥ हे कुम्भजमुने ! महादेवने मनहीमन यह सोचा कि, अपत्यके विना पिताको कौन उद्धार करनेमें समर्थ होसकता है ? ॥१७॥ (ब्रह्माका) पहिला तो यही मनोरथ रहा, दूसरा यह कि, स्मरणकर्ताकेभी जन्मदुःखहारक इनके अपत्य बनजाने पर ॥ १८ ॥ क्षणक्षणमें दर्शन, प्रतिक्षण अंगस्पर्श, एकशय्या पर शयन, एकट्ठां की बैठकी, और एकत्र आहार (विहार) प्राप्त होगा ॥ १९ ॥ जो कभी वचन और मनकेभी गोचर

॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ किंबुद्धिवैभवंधातुःशंभुनामनसीक्षितम् ॥ येनानंदाश्रुसंभारोबाल्येप्यभवदीशितुः ॥ १५ ॥ एतत्कथयमे प्राज्ञसर्वज्ञानंदवर्धन ॥ श्रुत्वागस्त्युदितंवाक्यंतारकारिरुवाचह ॥ १६ ॥ देवेनमनसिध्यातमितिकुंभजनेमुने ॥ विनापत्यंजनेतारंकउद्धर्तुमिहप्रभुः ॥ १७ ॥ एकोमनोरथश्चायंद्वितीयोयंमुनिश्चितम् ॥ अपत्यत्वंगतेचास्मिन्स्मर्तुरुत्पत्तिहारिणि ॥ १८ ॥ क्षणंक्षणंसमालोक्यमंगस्पर्शंक्षणंक्षणम् ॥ एकशय्यासनाहारंलप्स्येऽनेनक्षणेक्षणे ॥ १९ ॥ योयंनगोचरःक्कापिवाणीमनसयोरपि ॥ समेऽपत्यत्वमासाद्यकिंनदास्यतिचिंतितम् ॥ २० ॥ योऽमुंसकृत्स्पृशेज्जंतुर्योमुंपश्येत्सकृन्मुदा ॥ नसभूयोभिजायेतभवेच्चानंदमेदुरः ॥ २१ ॥ गृहक्रीडनकंमेसौयदिभूयात्कथंचन ॥ तदापरस्यसौख्यस्यनिधानंस्यामसंशयम् ॥ २२ ॥ विधेःसमीहितंचेतिनूनंज्ञात्वासुसर्ववित् ॥ आनंदबाष्पकलितंचक्षुस्त्रयमदीधरत् ॥ २३ ॥ श्रुत्वेत्यगस्तिःस्कंदस्यभाषितंपर्यमूमुदत् ॥ ननामचांघ्रीप्रोवाचजयसर्वज्ञनंदन ॥ २४ ॥

नहीं होते वेही जब मेरे पुत्र होजायँगे तो मुझे क्या नहीं मिलसकता है ? ॥२०॥ जो कोई इनको हर्षपूर्वक एकबारभी देखलेवे अथवा स्पर्श करलेसके, उसे न तो फिर जन्मही लेना पड़ता न वह आनन्दभोगहीसे वंचित रहजा सकता है ॥२१॥ यदि ये किसीप्रकारसे मेरे घरके खेलौने होजावें, तो निस्सन्देह मैं परम सुखका निधान होजाऊंगा ॥ २२ ॥ उस सर्वज्ञ महेश्वरने विधाताकी इसी इच्छाको जानकर, अपने तीनोंही नेत्रोंको आनन्दाश्रुके जलसे भरदिया ॥ २३ ॥ स्कन्ददेवकी इस वाणीको सुनकर अगस्त्यमुनि बडेही आनंदित हुए, और उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहने लगे कि, हे सर्वज्ञ

नन्दन ! आपकी जय हो ॥ २४ ॥ (आपही धन्य हैं) आपने ब्रह्माका चित्त तो जानही लिया पर महादेवकाभी अभिप्राय भलेही समझलिया वास्तवमें आपने ठीकठीक (दोनों जनके) मनको जानलिया, अतएव चिदात्मास्वरूप आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ भगवान् स्कन्दभी श्रोता का आनन्द देखकर बहुतही संतुष्ट हुए (और बोले) हे अगस्त्य ! तुम परम धन्य हो, सुननेकी यथार्थ रीतिभी तुमही जानतेहो ॥२६॥ तुम्हारे आगे कथा कहनेसे मेरा परिश्रम सार्थक हुआ । इसप्रकारसे बातचीत होजानेपर षडानन फिर अगस्त्यसे कहनेलगे ॥ २७ ॥ इसरीतिसे भगवान्के रुद्रहोनेपर भगवतीभी सती नामसे दक्षकी कन्या हुई, फिर उससतीदेवीने वरार्थिनीहो काशीधाममें घोर तपस्या करके ॥ २८ ॥ लिंगस्वरूपमें प्रकटहुए महादेवको अपने आगे देखा,

विधेरपिमनोज्ञातंशंभोरपिमनोगतम् ॥ सम्यक्चित्तंत्वयाज्ञातंनमस्तुभ्यंचिदात्मने ॥ २५ ॥ स्कंदोपिनितरांतुष्टःश्रोतुरानंददर्शनात् ॥ धन्योस्यगस्त्यधन्योसिश्रोतुंजानासितत्त्वतः ॥ २६ ॥ नमेश्रमोवृथाजातोब्रुवतस्तेपुरःकथाम् ॥ इत्यगस्तिसमाभाष्यपुनःप्राहषडाननः ॥ २७ ॥ देवेरुद्रत्वमापन्नेदेवीदक्षसुताभवत् ॥ सापितप्त्वातपस्तीव्रंसतीकाश्यांवरार्थिनी ॥२८॥ ददर्शलिंगरूपेणप्रादुर्भूतंहरंपुरः ॥ अलंतप्त्वामहादेविप्रोक्तवंतमितिस्फुटम् ॥ २९ ॥ इदंसतीश्वरंलिंगंतवनाम्नाभविष्यति ॥ यथामनोरथस्तेऽत्रफलितोदक्षकन्यके ॥३०॥ तथैतल्लिंगमाराध्यान्यस्यापिहिफलिष्यति ॥ कुमारीप्राप्स्यतिपतिंमनसोपिसमुच्छ्रितम् ॥३१॥ एतल्लिंगंसमाराध्यकुमारोपिवरांगनाम् ॥ यस्ययस्यहियःकामस्तस्यतस्यहिसध्रुवम् ॥३२॥ भविष्यतिनसंदेहःसतीश्वरसमर्चनात् ॥ सतीश्वरंसमभ्यर्च्ययोयोयंयंसमीहते ॥३३॥

लिंगरूपी हरने स्पष्टस्वरमें उनसे कहा कि, हे महादेवि ! अब तपस्या करनेका कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २९ ॥ और यह लिंग तुम्हारे नामानुसारसतीश्वर संज्ञक होवेगा, अयि दक्षसुते ! जैसे तुम्हारा मनोरथ इससे सिद्ध हुआ है ॥३०॥ वैसेही इसलिंगकी आराधना करनेसे अन्यलोगोंकीभी सिद्धि होवेगी । इस लिंगकी आराधना करनेसे कुमारी मनसेभी उन्नत पतिको पावेगी । और कुमार पुरुषकोभी उत्तम पत्नी प्राप्तहोगी, इस सतीश्वरलिंगके पूजन करनेसे जिस जिसकी जो जो कामना होगी उस उसकी निस्सन्देह वही कामना पूर्ण होगी । सतीश्वरकी पूजा करके जो कोई जो मनोरथ करेगा उसका वह मनोरथ तुरत

सिद्ध होजावेगा। आजके आठवें दिन तुम्हारे पिता दक्ष प्रजापति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मुझे तुम्हारा कन्यादान करदेवेंगे, जिससे तुम्हारा मनोरथ सफल होजावेगा। इस कहनेके उपरांत महादेव वहींपर अन्तर्धान होगये ॥ ३५ ॥ और वह दक्षसुता सती देवीभी सहर्ष अपने घर चलीगई, फिर पिता दक्षनेभी आठवेंही दिन रुद्रदेवको उस कन्याका दान करदिया ॥ ३६ ॥ स्कन्द बोले—हे मुने! इस रूपसे काशीमें सतीश्वर लिंग प्रकट हुआ, जो केवल स्मरण करनेसेभी सत्त्वगुण देदेताहै ॥ ३७ ॥ रत्नेश्वरके पूर्वभागमें विराजमान उस सतीश्वरलिंगके दर्शन करनेसे मनुष्य उसीघडी पापोंसे मुक्त

तस्यतस्यससक्षिप्रंभविष्यतिमनोरथः ॥ ३४ ॥ इतोष्टमेचदिवसेत्वज्जनेताप्रजापतिः मह्यंदास्यतिकन्यांत्वांसफलस्तेमनोरथः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवांतर्हितोभवत् ॥ ३५ ॥ सापिस्वभवनंयातासतीदाक्षायणीमुदा ॥ पितापितस्मैप्रादात्तांरुद्रायदिवसेष्टमे ॥ ३६ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इत्थंसतीश्वरंलिंगंकाश्यांप्रादुरभून्मुने ॥ स्मरणादपिलिंगंचदद्यात्सत्त्वगुणंपरम् ॥ ३७ ॥ रत्नेशात्पूर्वतोभागेदृष्ट्वा लिंगंसतीश्वरम् ॥ मुच्यतेपातकैःसद्यःक्रमाज्ज्ञानंचाविंदति ॥ ३८ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेसतीश्वरप्रादुर्भावोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ अन्यान्यपिच लिंगानिकथयामिमहामुने ॥ अमृतेशमुखादीनियन्नामाप्यमृतप्रदम् ॥ १ ॥ पुरासनारुनामासीन्मुनिरत्रगृहाश्रमी ॥ ब्रह्मयज्ञरतोनित्यं नित्यंचातिथिदैवतः ॥ २ ॥ लिंगपूजारतोनित्यंनित्यंतीर्थाप्रतिग्रही ॥ तस्यर्षेरभवत्पुत्रःसनारोरुपजंघनिः ॥ ३ ॥

होजाता, और क्रमशः ज्ञानकोभी प्राप्त करताहै ॥ ३८ ॥ दोहा—रत्नेश्वरके पासमें, एक लिंग है जोय। वही सतीश्वरनाम है, देत सतोगुन सोय ॥ १ ॥ इति श्रीस्कंदमहापुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥ स्कन्द बोले—हे महामुने! जिनके नामभी अमृतदायक हैं उन अमृतेश्वर प्रभृतिअन्यान्य लिंगोंकाभी मैं वर्णन करताहूं ॥ १ ॥ पूर्वकालमें सनारुनामा एक गृहस्थ मुनि काशीमें रहतेथे, वे नित्यही ब्रह्मयज्ञमें तत्पर और सदैव अतिथि पूजक थे, ॥ २ ॥ वे सर्वदा लिंगकी पूजा करते और कभी तीर्थमें प्रतिग्रह नहीं लेते थे। उस सनारु ऋषिको उपजंघनि नामक एकही

पुत्र था ॥ ३ ॥ एकबार उस ऋषिकुमारको वनमें सर्पने काटलिया, तदनन्तर उसके समौरिया साथीलोग उसे अपने आश्रममें उठालाये ॥ ४ ॥ सनारु विलाप करके उस उपजंघनिको स्वर्गद्वारके समीप महाश्मशानकी भूमिपर उठालेगये ॥ ५ ॥ वहांपर श्रीफल (सरीफा)के आकारका एक लिंग बडे गुप्तरूपसे वर्तमान था, ऋषि उस मृत बालकको उसीके ऊपर रखकर जबतक यह शोचने लगे कि ॥ ६ ॥ सर्पदष्टका संस्कार कैसे होताहै, तबतक वह उपजंघनि सोये हुएके समान जीता जागता उठ बैठा ॥ ७ ॥ इसके उपरांत वह सनारु ऋषि उस मृत उपजंघनिको प्राणसंपन्न देखकर बहुतही विस्मयापन्न हो गये ॥ ८ ॥

सकदाचिद्गतोरण्यंतत्रदष्टःपृदाकुना ॥ अथतत्सवयोभिश्चसआनीतःस्वमाश्रमम् ॥ ४ ॥ सनारुणासमुच्छ्स्यनीतःसउपजंघनिः ॥ महाश्मशानभूभागंस्वर्गद्वारसमीपतः ॥ ५ ॥ तत्रासीच्छ्रीफलाकारंलिंगमेकंसुगुप्तवत् ॥ निधायतत्रतंयावच्छवंसंचिंतयेत्सुधीः ॥ ६ ॥ सर्पदष्टस्यसंस्कारःकथंभवतिचेतिवै ॥ तावत्सजीवन्नुत्तस्थौसुप्तवच्चोपजंघनिः ॥ ७ ॥ अथतंवीक्ष्यसमुनिःसनारुरुपजंघनिम् ॥ पुनःप्राणितसंपन्नंविस्मयंप्राप्तवान्परम् ॥ ८ ॥ प्राणितव्येऽत्रकोहेतुर्मच्छिशोरुपजंघनेः ॥ क्षेत्राद्वहिरहिर्यंहिदष्टानैषीत्परासुताम् ॥ ९ ॥ इतियावत्ससंधत्तेधियंतज्जीवितैकिकाम् ॥ तावत्पिपीलिकात्वेकामृतंकापिपिपीलिकम् ॥ १० ॥ आनिनायचतत्रैवसोप्यनन्निर्गतस्ततः ॥ अथविज्ञायसमुनिस्तत्त्वंजीवितसूचितम् ॥ ११ ॥ मृदुहस्ततलेनैवयावत्खनतिवैमुनिः ॥ तावच्छ्रीफलमात्रंहिलिंगंतेनसमीक्षितम् ॥ १२ ॥ सनारुणाथतल्लिंगंतेनतत्रसमर्चितम् ॥ चिरकालीनलिंगस्यकृतंनामापिसान्वयम् ॥ १३ ॥

और शोचने लगे कि, यह मेरा पुत्र सर्पके काटनेसे क्षेत्रके बाहरही मरचुकाथा, पर क्योंकर इसमें प्राणका संचार होआया ? ॥ ९ ॥ वे यही विचार करतेथे, इतनेमें एक चींटी कहींसे मरेहुए (किसी) एक पिपीलकको वहांपर उठालाई, (बस भूमिका स्पर्श होतेही) वहभी फिरसे जीवित होकर चलागया, तब तो मुनि वहांपर जीवनसूचक कोई पदार्थ समझकर ॥ १० ॥ ११ ॥ ज्योंही अपने कोमल हस्ततलसे उसे खोदनेलगे, त्योंही श्रीफलके समान एक लिंग उनको दिखाईपडा ॥ १२ ॥ फिर तो सनारु मुनिने वहींपर उसका पूजनकर, उस चिरकालीन लिंगका नामभी सार्थक करदिया ॥ १३ ॥

आनन्दवनमें वह लिंग अमृतेश्वर नामक है, उस लिंगके स्पर्श करनेसे अवश्यही अमृतत्त्व प्राप्त होताहै॥ १४॥ अमृतेश्वरकी पूजा इत्यादि कर वह मुनि अपने जीतेहुए पुत्रके साथ जब अपने स्थानपर पहुँचे, तब लोग बडेही आश्चर्यसे देखनेलगे ॥ १५ ॥ हे मुनीश्वर ! तबीसे वह अमृतेश्वर लिंग काशीमें लोगोंको बडाही सिद्धिदायक है, किन्तु कलियुगमें वह गुप्तही रहताहै ॥ १६॥ अमृतेश्वरके स्पर्शमात्रसे मृतप्राणी फिर जीवित होजातेहैं, पर यदि जीवित व्यक्ति स्पर्श करसके तो उसे अमृतत्व प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ अमृतेश्वरके समान कोईभी लिंग भूतलपर नहीं है, इसीसे भगवान् शंकरने उसे कलिकालमें बडे प्रयत्नसे

अमृतेश्वरनामेदंलिंगमानंदकानने ॥ एतल्लिंगस्यसंस्पर्शादमृतत्वंलभेद्ध्रुवम् ॥ १४ ॥ अमृतेशंसमभ्यर्च्यजीवत्पुत्रःसवैमुनिः ॥ स्वास्पदं समनुप्राप्तोदृष्टआश्चर्यवज्जनैः ॥ १५ ॥ तदाप्रभृतितल्लिंगममृतेशंमुनीश्वर ॥ काश्यांसिद्धिप्रदंनृणांकलौगुप्तंभवेत्पुनः ॥ १६ ॥ अमृतेश्वरसंस्पर्शान्मृताजीवंतितत्क्षणात् ॥ अमृतत्वंभजंतेऽत्रजीवंतःस्पर्शमात्रतः ॥ १७ ॥ अमृतेशसमंलिंगंनास्तिक्वापिमहीतले ॥ तल्लिंगंशंभुनातिष्ये कृतंगुप्तंप्रयत्नतः ॥ १८ ॥ अमृतेश्वरनामापियेकाश्यांपरिगृह्णते ॥ नतेषामुपसर्गोत्थंभयंक्वापिभविष्यति ॥ १९ ॥ मुनेऽन्यच्चमहालिंगंकरुणेश्वरसंज्ञितम् ॥ मोक्षद्वारसमीपेतुमोक्षद्वारेश्वराग्रतः ॥ २० ॥ दर्शनात्तस्यलिंगस्यमहाकारुणिकस्यवै ॥ नक्षेत्रान्निर्गमोजातुबहिर्भवतिकस्यचित् ॥ २१ ॥ स्नातव्यंमणिकर्ण्यांचद्रष्टव्यःकरुणेश्वरः ॥ क्षेत्रोपसर्गजाभीतिर्हातव्यापरयामुदा ॥ २२ ॥ सोमवासरमासाद्यएकभक्तव्रतंचरेत् ॥ यष्टव्यःकरुणापुष्पैर्व्रतिनाकरुणेश्वरः ॥ २३ ॥

गुप्तकर रक्खा है ॥ १८ ॥ जो लोग काशीमें अमृतेश्वरका नामभी लेतेहैं, उनको कभी उपसर्गजनित कोईभी भय नहीं होनेपावेगा ॥ १९ ॥ हे मुनिवर ! मोक्षद्वारके समीपहीमें मोक्षेश्वरके आगे (सामने) करुणेश्वर नामक एक औरभी महालिंग विराजमान है ॥ २० ॥ उस परम करुणामय लिंगके दर्शन करनेसे किसीको कभी अविमुक्त क्षेत्रसे बाहर कहीं नहीं जाना पडता ॥ २१ ॥ मणिकर्णिकामें स्नानकर करुणेश्वरका दर्शन करनेसे क्षेत्रमें उपसर्गजनित भय हर्षके साथ दूर भागजाताहै ॥ २२ ॥ जो कोई सोमवारके दिन एकभक्तव्रती होकर, करनाके पुष्पोंसे भगवान् करुणेश्वरका पूजन करता

है ॥ २३ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होकर करुणासागर करुणेश्वर उसे कभी क्षेत्रसे बाहर नहीं होने देते, अतएव यह व्रत करनेहीके योग्य है ॥ २४ ॥ (पुष्प न मिले तो) करनाके पत्र वा फलोंसे भी करुणेश्वरका पूजन करना चाहिए, यदि किसीको करुणेश्वरकी ठीक पहिचान (पता) न लगे तो ॥२५॥ उसे उचित है कि "देवदेव प्रसन्न हो" यह कहकर करनाके वृक्षहीकी पूजा करे, इस प्रकारसे जो कोई द्विज वर्षभर प्रतिसोमवारको व्रत करता है ॥ २६ ॥ भगवान् करुणेश्वर उसपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषाको परिपूर्ण करदेते हैं । अतएव काशीमें लोगोंको बडा श्रम उठाकरभी करुणेश्वरका दर्शन करना उचित है ॥२७॥ यह मैंने तुमसे करुणेश्वरकी महत्तर महिमा वर्णन कीहै, इसके सुननेसेभी काशीमें कभी किसी उपसर्गका उपद्रव नहीं होने पावेगा॥२८॥

तेनव्रतेनसंतुष्टःकरुणेशःकदाचन ॥ नतंक्षेत्राद्बहिःकुर्यात्तस्मात्कार्यंव्रतंत्विदम् ॥ २४ ॥ तत्पत्रैस्तत्फलैर्वापिसंपूज्यःकरुणेश्वरः ॥ योन जानातितल्लिंगंसम्यग्ज्ञानविवर्जितः ॥ २५ ॥ तेनार्च्यःकरुणावृक्षोदेवेशःप्रीयतामिति ॥ योवर्षंसोमवारस्यव्रतंकुर्यादितिद्विजः ॥ २६ ॥ प्रसन्नःकरुणेशोत्रतस्यदास्यतिवांछितम् ॥ द्रष्टव्यःकरुणेशोत्रकाश्यांयत्नेनमानवैः ॥ २७ ॥ इतितेकरुणेशस्यमहिमोक्तोमहत्तरः ॥ यं श्रुत्वानोपसर्गोत्थंभयंकाश्यांभविष्यति ॥ २८ ॥ मोक्षद्वारेश्वरंचैवस्वर्गद्वारेश्वरंतथा ॥ उभौकाश्यांनरोदृष्ट्वास्वर्गंमोक्षंचविंदति ॥ २९ ॥ ज्योतीरूपेश्वरंलिंगंकाश्यामन्यत्प्रकाशते ॥ तस्यसंपूजनाद्भक्ताज्योतीरूपाभवंतिहि ॥ ३० ॥ चक्रपुष्करिणीतीरेज्योतीरूपेश्वरंपरम् ॥ समभ्यर्च्याप्नुयान्मर्त्योज्योतीरूपंनसंशयः॥३१॥ यदाभागीरथीगंगातत्रप्राप्तासरिद्वरा ॥ तदारभ्यार्चयेन्नित्यंतल्लिंगंस्वर्धुनीमुदा ॥३२॥ पुराविष्णौतपत्यत्रतल्लिंगंस्वयमेवहि ॥ तत्राविरासीत्तेजस्वितेनक्षेत्रमिदंशुभम् ॥ ३३ ॥

मनुष्य काशीधाममें मोक्षद्वारेश्वर और स्वर्गद्वारेश्वर इन दोनों लिंगोंके दर्शन करनेसे मोक्ष और स्वर्गको प्राप्त करताहै॥२९॥ काशीपुरीमें एक ज्योतीरूपेश्वर नामक लिंग प्रकाशमान है, भक्तलोग उसके पूजन करनेसे ज्योतीरूप होजातेहैं ॥३०॥ चक्रपुष्करिणी (मणिकर्णिका) के तीरपर ज्योतीरूपेश्वरकी अर्चना करनेसे मनुष्य निस्सन्देह ज्योतीरूप होजाताहै ॥ ३१ ॥ जबसे नदियोंकी महारानी स्वर्गतरंगिणी भगवती भागीरथी गंगा वहांपर आई तबसे बडे आनन्दके साथ प्रतिदिन उस लिंगका पूजन करती हैं ॥३२॥ पूर्वकालमें जब भगवान् विष्णु वहांपर तपस्या कररहेथे तभी वह तेजोमय लिंग आपसे आप

प्रकट हुआथा और इसीके कारणसे यह क्षेत्र सर्वोत्तम हुआहै ॥ ३३ ॥ यदि कोई दूर देशमेंभी रहकर चक्रपुष्करिणीके तीरपर विराजमान उस ज्योती रूपेश्वर लिंगका ध्यान करे तो उसकी सिद्धि दूर नहीं रहनेपाती ॥ ३४ ॥ जैसे महावीर्यशाली पूर्वोक्त चतुर्दश लिंगहैं, वैसेही कर्मरूप वीजोंके भस्म करदेनेमें दावानलके समान ये आठों लिंगभी हैं ॥ ३५॥ ये आठों दक्षेश्वर इत्यादि लिंग, ओंकारेश्वर प्रभृति चतुर्दश लिंगोंके समान हैं, एवं शैलेश्वरादिक चौदहों लिंगभी इन्हींके ऐसे श्रेष्ठ हैं, यही छत्तीसों लिंग क्षेत्रसिद्धिके कारण हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इन्हीं छत्तीस लिंगोंमें षट्त्रिंशत्तत्वस्वरूप सदाशिव वर्तमान

चक्रपुष्करिणीतीरेज्योतीरूपेश्वरंतदा ॥ दूरस्थोपीहयोध्यायेत्तस्यसिद्धिरदूरतः ॥३४॥ एतेष्वपिचलिंगेषुचतुर्दशसुसत्तम ॥ लिंगाष्टकं महावीर्यंकर्मबीजदवानलम् ॥ ३५ ॥ ओंकारादीनिलिंगानियान्युक्तानिचतुर्दश ॥ तथादक्षेश्वरादीनिलिंगान्यष्टौमहांतिच ॥ ३६ ॥ शैलेशादीनिलिंगानितथायानिचतुर्दश ॥ पुनःषट्त्रिंशदेतानिक्षेत्रसंसिद्धिहेतवे ॥ ३७ ॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपोसौलिंगेष्वेषुसदाशिवः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेवसन्नित्यंतारकंज्ञानमादिशेत् ॥ ३८ ॥ क्षेत्रस्यतत्त्वमेतद्धिषट्त्रिंशल्लिंगरूप्यहो ॥ एतेषांभजनात्पुंसांनभवेद्दुर्गतिः क्वचित् ॥ ३९ ॥ मुनेरहस्यभूतानिलिंगान्येतानिनिश्चितम् ॥ एतल्लिंगप्रभावाच्चमुक्तिरत्रसुनिश्चिता ॥ ४० ॥ मोक्षक्षेत्रमिदंकाशी लिंगैरेतैर्महामते ॥ एतान्यन्यानिसिद्धानिसंभवंतियुगेयुगे ॥ ४१ ॥ आनंदकाननंशंभोःक्षेत्रमेतदनादिमत् ॥ अत्रसंस्थितिमापन्नामुक्ताए वनसंशयः ॥ ४२ ॥ योगसिद्धिरिहास्त्येवतपःसिद्धिरिहैवहि ॥ व्रतसिद्धिर्मंत्रसिद्धिस्तीर्थसिद्धिःसुनिश्चितम् ॥ ४३ ॥

रहकर इस क्षेत्रमें नित्यही तारकब्रह्मका उपदेश करतेहैं ॥ ३८ ॥ काशीक्षेत्रके तत्त्वस्वरूप येही छत्तीस लिंगहैं, इनके भजन करनेसे लोगोंको कभी दुर्गति नहीं भोगनी पडती ॥ ३९॥ हे मुने! येही लिंग (क्षेत्रके) रहस्यरूपहैं, यह बात निश्चितहै और इन्हींके प्रभावसे काशीमें मुक्ति सर्वतोभावसे स्थिरहै ॥४०॥ हे महामते ! इन्हीं लिंगोंके कारणसे काशी मोक्षक्षेत्र हुई है, युगयुगमें ये सब तथा और औरभी सिद्धलिंग प्रकाशमान होते रहतेहैं ॥ ४१ ॥ यह आनन्दवन भगवान् शंभुका अनादिसिद्ध क्षेत्र है, इससे यहांके निवासी लोग निस्सन्देह मुक्तही हैं ॥ ४२ ॥ इस क्षेत्रमें योगसिद्धि, तपःसिद्धि, व्रतसिद्धि,

मंत्रसिद्धि, एवं तीर्थसिद्धि, सभी सुनिश्चितहैं ॥ ४३ ॥ अणिमादिक जो आठ बडीभारी सिद्धियां कहीगई हैं, उन सबकी जन्मभूमि यही महादेवकी आनंदवाटिका है ॥ ४४ ॥ यही आनन्दवन मोक्षलक्ष्मीका भवन है, पुण्यप्रभावसे यदि मिलजावे तो संसारभीरु जनको उसे कभी नहीं छोडना चाहिए ॥ ४५ ॥ यही बडाभारी लाभ है, यही बहुत बडी तपस्या है, एवं यही महापुण्य है जो इस (असार) संसारमें काशी मिलजावे ॥ ४६ ॥ जिसने जन्म पाया है, चाहे जहां हो एक दिन उसकी मृत्यु अवश्यही होगी, फिर कर्मके अनुरूप सद् असद् गतिभी भोगनीही पडेगी ॥ ४७ ॥ सुतरां मृत्युको नियत और गतिको कर्मानुसारिणी समझकर, समस्त कर्मबन्धनको काटदेनेवाली काशीकी सेवा अवश्यमेव करनी चाहिये ॥ ४८ ॥ इस क्षणभंगुर मनुष्य जन्मको पाकर जो

सिद्ध्यष्टकंतुयत्प्रोक्तमणिमादिमहत्तरम् ॥ तज्जन्मभूमिरेषैवशंभोरानंदवाटिका ॥ ४४ ॥ निर्वाणलक्ष्म्याःसदनमेतदानंदकाननम् ॥ एतत्प्राप्यनमोक्तव्यंपुण्यैःसंसारभीरुणा ॥ ४५ ॥ अयमेवमहालाभइदमेवपरंतपः ॥ एतदेवमहत्पुण्यंलब्धावाराणसीहयत् ॥ ४६ ॥ अवश्यंजन्मिनोमृत्युर्यत्रकुत्रभविष्यति ॥ कर्मानुसारिणीलभ्यागतिःपश्चाच्छुभाशुभा ॥ ४७ ॥ मृत्युंविज्ञायनियतंगतिंकर्मानुसारिणीम् ॥ अवश्यंकाशिकासेव्यासर्वकर्मनिवारिणी ॥ ४८ ॥ मानुष्यंप्राप्ययेमूढानिमेषमितजीवितम् ॥ नसेवंतेपुरींकाशींतेमुधा मंदबुद्धयः ॥ ४९ ॥ दुर्लभंजन्ममानुष्यंदुर्लभाकाशिकापुरी ॥ उभयोःसंगमासाद्यमुक्ताएवनसंशयः ॥ ५० ॥ क्वचतादृक्कृतपांसीहक्व तादृग्योगउत्तमः ॥ यादृग्भिःप्राप्यतेमुक्तिःकाश्यांमोक्षोत्तमोत्तमः ॥ ५१ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वंपुनःपुनः ॥ नकाशीसदृशीमुक्त्यै भूमिरन्यामहीतले ॥ ५२ ॥

मूढलोग काशीपुरीको नहीं सेवते वे सब मन्दबुद्धि अवश्यही दैवसे ठगे गये हैं ॥ "जिनकर मन इन सन नहिं राता । ते जन वंचित किये विधाता ॥" (तु०रा०) ॥ ४९ ॥ दुर्लभ मनुष्य जन्म होनेपर यदि परम दुर्लभ काशीपुरीभी प्राप्त होजावे तो, इन दोनोंके संगम होजानेपर फिर मुक्ति कहां जासकती है ? ॥ ५० ॥ भला इस संसारमें वैसी तपस्या अथवा वैसी उत्तम योगक्रिया कहां है ? जिससे मुक्ति मिलजासके पर काशीमें तो उत्तमोत्तम मोक्ष प्राप्त होजाताहै ॥ ५१ ॥ मैं वारंवार (पुकारकर) यह सत्य सत्य कहताहूं कि, इस भूमण्डलमें काशीके समान मुक्तिका स्थान दूसरा कोईभी

नहीं है ॥ ५२ ॥ जहांपर भगवान् विश्वेश्वर स्वयं मुक्तिका दान करते हैं, और जहांपर मुक्तिहीके लिये भगवती भागीरथी उत्तरवाहिनी होगई हैं उसी आनन्द काननमें मुक्ति मिलती है, और दूसरे किसी स्थानमें तो मुक्तिही नहीं है ॥ ५३ ॥ मुक्तिके दाता केवल एक विश्वेश्वरहीहैं, दूसरा तो कोई हुआही नहीं है, सो वेही जीवोंको काशीमें पहुँचाकर मुक्ति देते हैं, तो फिर अन्यसे मुक्ति क्योंकर मिलसकतीहै ? ॥५४॥ केवल काशीहीमें तो सायुज्यमुक्ति होतीहै, पर और स्थानोंमें बडा कठोर क्लेश उठानेपर सान्निध्यादिक मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है, किन्तु काशीमें तो अनायासही सायुज्यमुक्ति पाई जाती है ॥ ॥ ५५ ॥ स्कन्दने कहा--हे महाभाग अगस्त्य ! अब मैं भविष्यकथाको कहताहूं, जिसे कृष्णद्वैपायन वेदव्यास बडी बात कहकर मनमें निश्चय होजानेके

विश्वेशोमुक्तिदोनित्यंमुक्त्यैचोत्तरवाहिनी ॥ आनंदकाननेमुक्तिर्मुक्तिर्नान्यत्रकुत्रचित् ॥ ९३ ॥ एकएवहिविश्वेशोमुक्तिदोनान्यएवहि ॥ सएवकाशींप्रापय्यमुक्तिंयच्छतिनान्यतः ॥ ९४ ॥ सायुज्यमुक्तिरत्रैवसान्निध्यादिरथान्यतः ॥ सुलभासापिनोनूनंकाश्यांमोक्षोस्तिहेलया ॥ ९५ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ शृण्वगस्त्यमहाभागभविष्यंकथयाम्यहम् ॥ कृष्णद्वैपायनोव्यासोऽकथयद्यन्महद्वचः ॥ निश्चिकेतुमनाःपश्चाद्यत्कारिष्यतितच्छृणु ॥ ९६ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेअमृतेशादिलिंगप्रादुर्भावोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ शृणुसूतमहाबुद्धेयथास्कंदेनभाषितम् ॥ भविष्यंममतस्याग्रेकुंभयोनेमहामते ॥ १ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ निशामयमहाभागत्वंमैत्रावरुणेमुने ॥ पाराशर्योमुनिवरोयथामोहमुपैष्यति ॥ २ ॥ व्यस्यवेदान्महाबुद्धिर्नानाशाखाप्रभेदतः ॥ अष्टादशपुराणानिसूतादीन्परिपाठयच ॥ ३ ॥

पछि जैसा करेंगे, उसे तुम श्रवण करो ॥ ५६ ॥ दोहा--करत सबै संहार जो, वह विश्वेश्वर एक । देत मुक्ति सो काशिमें, राखत आपनि टेक ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥ व्यास बोले—हे महाबुद्धे ! सूत ! सर्वज्ञाता स्कन्दने अगस्त्यसे जो कुछ मेरा भविष्य वर्णन कियाथा उसे मैं तुमसे कहताहूं श्रवणकरो॥१॥ स्कन्दने कहा—हे मित्रावरुणनन्दन ! महाभाग ! मुने ! अगस्त्य ! पराशरात्मज महर्षिव्यास जिस भाँतिसे मोह को प्राप्त होंगे, उसेभी तुम श्रवण करलो ॥ २ ॥ उस परमबुद्धिमान् व्यासने चारों वेदोंको नानाशाखाओंके भेदसे विभक्त

कर, सूतादिको अष्टादश पुराणोंको पढाय ॥ ३ ॥ श्रुति स्मृति और पुराणोंके सारसंग्रहस्वरूप, सब लोगोंके मनको हरण करलेनेवाले, महाभारत (नामक एक अपूर्वग्रंथ) को निर्माण किया ॥ ४ ॥ जो कि समस्त पापोंका नाशक, एवं परम शान्तिकारक है और उस महाभारतके श्रवणमात्रसे ब्रह्महत्या दूर भागतीहै ॥ ५ ॥ एकवार वे भूमण्डलमें भ्रमण करतेहुए नैमिषारण्यमें चलेगये, जहांपर उनने अट्ठासी सहस्र शौनक इत्यादि तपोधन मुनीश्वरोंको अवलोकन किया, उस बेला वे लोग भालमें त्रिपुंड्र, गलेमें रुद्राक्षकी माला, एवं सर्वांगमें भस्मको धारण कियेहुए भक्तिपूर्वक, रुद्रसूक्तका जप, लिंगकी आराधना और

श्रुतिस्मृतिपुराणानांरहस्यंयस्त्वचीकरत् ॥ महाभारतसंज्ञंचसर्वलोकमनोहरम् ॥ ४ ॥ सर्वपापप्रशमनंसर्वशांतिकरंपरम् ॥ यस्यश्रवण मात्रेणब्रह्महत्याविनश्यति ॥ ५ ॥ एकदासमुनिःश्रीमान्पर्यटन्पृथिवीतले ॥ संप्राप्तोनैमिषारण्यंयत्रसंतिमुनीश्वराः ॥ ६ ॥ अष्टाशीति सहस्राणिशौनकाद्यास्तपोधनाः ॥ त्रिपुंड्रितमहाभालालसद्रुद्राक्षमालिनः ॥ ७ ॥ विभूतिधारिणोभक्त्यारुद्रसूक्तजपप्रियान् ॥ लिंगाराधनसंसक्ताञ्छिवनामकृतादरान् ॥ ८ ॥ एकएवहिविश्वेशोमुक्तिदोनान्यएवहि ॥ इतिब्रुवाणान्सततंपारिनिश्चितमानसान् ॥ ९ ॥ विलोक्यसमुनिर्व्यासस्तान्सर्वान्गिरिशात्मनः ॥ उत्क्षिप्यतर्जनीमुचैःप्रोवाचेदंवचःपुनः ॥ १० ॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंसुनिश्चित्यास कृद्बहु ॥ इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यःसर्वेश्वरोहरिः ॥ ११ ॥ वेदेरामायणेचैवपुराणेषुचभारते ॥ आदिमध्यावसानेषुहरिरेकोऽत्रनापरः ॥१२॥ सत्यंसत्यंत्रिसत्यंपुनःसत्यंनमृषापुनः ॥ नवेदादपरंशास्त्रंनदेवोच्युततःपरः ॥ १३ ॥

शिवनामका भजन कररहेथे ॥६॥७॥८॥ एकमात्र भगवान् विश्वेश्वरही मुक्तिदाता हैं, और कोई नहीं है वे लोग इसी बातको चित्तमें निश्चित रखकर वारंवार कहरहे थे ॥९॥ महामुनि व्यास उनलोगोंको दृढ (कट्टर) शैवदेख, अपनी तर्जनी अंगुलीको उठाकर उच्चस्वरसे यह बात कहने लगे ॥१०॥ समस्त वाग्जाल (शास्त्रों) को बहुत मथन करके एवं वारंवार यथेष्ट निश्चय करनेसे एक यही बात जानीगई है कि, सबके स्वामी भगवान् हरिही सेवनीय हैं ॥ ११ ॥ वेद, पुराण, रामायण, और महाभारतादिके आदि मध्य और अन्तमें सर्वत्र हरिही व्याप्त हैं दूसरा कोई नहीं है ॥१२॥ मैं तो शपथपूर्वक

सत्यही सत्य कहताहूं कि, वेदसे बढकर कोई शास्त्र नहीं है, और भगवान् विष्णुसे बढकर कोई देवता नहीं हैं ॥ १३ ॥ एकमात्र लक्ष्मीश्वरही सर्वस्वके दाता हैं और वही अपवर्गभी देते हैं, अतएव केवल लक्ष्मीनाथही ध्यान करनेके योग्य हैं, दूसरा कोई नहीं है ॥ १४ ॥ इसलोकमें भोग और मोक्षके देनेवाले भगवान् जनार्दनको छोडकर अन्य कोईभी नहीं है, अतएव सुख चाहनेवालोंको उन्हींकी सेवा करनी चाहिए ॥ १५ ॥ जो मन्दमति लोग केशवदेवको, छोडकर दूसरेकी सेवा करते हैं, वे सब गज्झिन संसारचक्रमें वारंवार पडते रहते हैं ॥१६॥ केवल हृषीकेशही सबसे परे और अखिल लोकके स्वामी हैं निरंतर उन्हींकी सेवा करनेवाला (मनुष्य) त्रैलोक्यभरका सेवनीय होता है ॥ १७ ॥ केवल विष्णुही धर्मके दाता हैं, एकमात्र हरिही बहुतेरे अर्थोंको

लक्ष्मीशःसर्वदोनान्योलक्ष्मीशोप्यपवर्गदः ॥ एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोध्येयोनचापरः॥१४॥ भुक्तेर्मुक्तेरिहान्यत्रनान्योदाताजनार्दनात् ॥ तस्माच्चतुर्भुजोनित्यंसेवनीयःसुखेप्सुभिः ॥ १५ ॥ विहायकेशवादन्यंयेसेवंतेल्पमेधसः ॥ संसारचक्रेगहनेतेविशंतिपुनःपुनः ॥ १६ ॥ एकएवहिसर्वेशोहृषीकेशःपरात्परः ॥ तंसेवमानःसततंसेव्यस्त्रिजगतांभवेत् ॥१७॥ एकोधर्मप्रदोविष्णुस्त्वेकोबह्वर्थदोहरिः॥ एकःकामप्रदश्चक्रीत्वेकोमोक्षप्रदोच्युतः ॥ १८ ॥ शार्ङ्गिणंयेपरित्यज्यदेवमन्यमुपासते ॥ तेसद्भिश्चबहिष्कार्यावेदहीनायथाद्विजाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंव्यासस्यनैमिषारण्यवासिनः ॥ प्रवेपमानहृदयाःपरिप्रोचुरिदंवचः ॥ २० ॥ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ॥ पाराशर्यमुनेमान्यस्त्वमस्माकंमहामते ॥ यतोवेदास्त्वयाव्यस्ताःपुराणान्यपिवेत्सियत् ॥ २१ ॥ यतश्चकर्तात्वमसिमहतोभारतस्यवै ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांविनिश्चयकृतोध्रुवम् ॥ २२ ॥

देते हैं, कामनाओंके पूरण करनेवाले अकेले चक्रपाणिही हैं, एवं एक अच्युतही मोक्षप्रद हैं ॥ १८ ॥ जो लोग भगवान् शार्ङ्गधरको त्यागकर अन्य देवतोंकी उपासना करते हैं, साधुलोगोंको उचितहै कि उनसबको वेदहीन ब्राह्मणकी नाईं (सबकर्मोंसे) बाहर करदेवें ॥ १९ ॥ इसप्रकारसे व्यासके वाक्यको सुनकर नैमिषारण्यके निवासी मुनिलोग कंपमान हृदय हो यह बात कहने लगे ॥ २० ॥ ऋषियोंने कहा—हे महामते ! पाराशर्य ! मुने आपने वेदोंका विभाग कियाहै, पुराणोंके तत्वज्ञाता हैं, एवं जिससे चतुर्वर्गका निश्चय होसकता है उस महाभारतके आपही रचयिता हैं, सुतरां आप हम सबलोगोंके

पूजनीय हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे सत्यवतीनन्दन ! यहांपर आपसे बढ़कर तत्वज्ञाता कोई नहीं है, पर आपने तर्जनी उठाकर शपथ पूर्वक जो प्रतिज्ञा की है ॥ २३ ॥ उसपर यहांके बालकोंका विश्वास नहीं जमता, (हां) आपके प्रतिज्ञात वचनोंपर श्रद्धा तभी होसकतीहै ॥ २४ ॥ जब आप शिवपुरी काशीमेंभी ऐसेही शपथपूर्वक अपनी प्रतिज्ञा कहसकें ॥ २५ ॥ अतएव हे व्यास ! जहांपर भगवान् विश्वेश्वर स्वयं विराज रहेहैं, एवं जहां युगधर्म नहीं व्यापता, और जिसकी भूमी भूलोकसे पृथक् समझी जातीहै, उसी वाराणसीपुरीमें गमन कीजिए ॥ २६ ॥ इसे सुननेपर व्यासमुनि मनमें कुछ क्रुद्धसे

तत्त्वज्ञःकोपरश्चात्रत्वत्तःसत्यवतीसुत ॥ भवतायत्प्रतिज्ञातंनिश्चित्योत्क्षिप्यतर्जनीम् ॥ २३ ॥ अस्मिन्माणवकास्तत्रपरिश्रद्दधतेनहि ॥ प्रतिज्ञातस्यवचसस्तवश्रद्धाभवेत्तदा ॥ २४ ॥ यदाऽऽनंदवनेशंभोःप्रतिजानासिवैवचः ॥ २५ ॥ गच्छवाराणसींव्यासयत्रविश्वेश्वरः स्वयम् ॥ नतत्रयुगधर्मोस्तिनचलग्नावसुंधरा॥ २६ ॥ इतिश्रुत्वामुनिर्व्यासःकिंचित्कुपितवद्धृदि ॥ जगामतूर्णसहितःस्वशिष्यैरयुतोन्मितैः ॥ २७ ॥ प्राप्यवाराणसींव्यासःस्नात्वापंचनदेह्रदे ॥ श्रीमन्माधवमभ्यर्च्ययौपादोदकंततः ॥ २८ ॥ तत्रस्नानादिकंकृत्वादृष्ट्वाचैवादिकेशवम् ॥ पंचरात्रंततःकृत्वावैष्णवैरभिनंदितः ॥२९॥ अग्रतःपृष्ठतःशंखैर्वाद्यमानैःप्रमोदितः ॥ जयविष्णोहृषीकेशगोविंदमधुसूदन ॥ ३० ॥ अच्युतानंतवैकुंठमाधवोपेंद्रकेशव ॥ त्रिविक्रमगदापाणेशार्ङ्गपाणेजनार्दन ॥ ३१ ॥ श्रीवत्सवक्षःश्रीकांतपीतांबरमुरांतक ॥ कैटभारेबलिध्वंसिन्कंसारेकेशिसूदन ॥ ३२ ॥

होकर अपने दशसहस्र शिष्योंके साथ तुरतही वहांसे चलदिये ॥२७॥ फिर काशीमें पहुँचकर पंचनद ह्रद (पंचगंगा) में स्नान, एवं श्रीमान् बिन्दुमाधवका पूजन कर पादोदक तीर्थपर चलेगये ॥ २८ ॥ वहांभी स्नानादिके उपरांत आदिकेशवका दर्शन कर पांच दिनके व्यतीत होनेपर वहांसे आगे और पीछे प्रमोदके साथ शंखध्वनि करते हुए वैष्णव लोगोंसे अभिनंदित होकर (यह कहते हुए चले) जय विष्णो ! हृषीकेश ! गोविन्द ! मधुसूदन ! ॥२९॥ ३०॥ अच्युत ! अनन्त ! वैकुण्ठ ! माधव ! उपेन्द्र ! केशव ! त्रिविक्रम ! गदापाणे ! शार्ङ्गपाणे ! जनार्दन ! ॥ ३१ ॥ श्रीवत्सवक्षः ! श्रीकान्त ! पीताम्बर !

मुरान्तक ! कैटभारे ! वलिध्वंसिन् ! कंसारे ! केशिसूदन ! ॥ ३२ ॥ नारायण ! असुररिपो ! कृष्ण ! शौरे ! चतुर्भुज ! देवकीहृदयानन्द ! यशोदानंदवर्द्धन ! ॥ ३३ ॥ पुंडरीकाक्ष ! दैत्यारे ! दामोदर ! बलप्रिय ! बलारातिस्तुत ! हरे ! वासुदेव ! वसुप्रद ! ॥ ३४ ॥ विष्वक्सेन ! महाबाहो ! वनमालिन् ! नरोत्तम ! अधोक्षज ! क्षमाधार ! पद्मनाभ ! जलेशय ! ॥ ३५ ॥ नृसिंह ! यज्ञवाराह ! गोप ! गोपालवल्लभ ! गोपीपते ! गुणातीत ! गरुडध्वज ! गोत्रभृत् ! ॥ ३६ ॥ चाणूरमर्दन ! आद्यन्तरहित ! त्रैलोक्यरक्षण ! आनन्दस्वरूप ! नीलोत्पलद्युते ! कौस्तुभभूषण ! पूतनाधातुशोषण !

नारायणासुररिपोकृष्णशौरेचतुर्भुज ॥ देवकीहृदयानंदयशोदानंदवर्धन ॥ ३३ ॥ पुंडरीकाक्षदैत्यारेदामोदरबलप्रिय ॥ बलारातिस्तुत हरेवासुदेववसुप्रद ॥ ३४ ॥ विष्वक्चमूस्ताक्ष्यरथवनमालिन्नरोत्तम ॥ अधोक्षजक्षमाधारपद्मनाभजलेशय ॥ ३५ ॥ नृसिंहयज्ञवाराहगोपगोपालवल्लभ ॥ गोपीपतेगुणातीतगरुडध्वजगोत्रभृत् ॥ ३६ ॥ जयचाणूरमथनजयत्रैलोक्यरक्षण ॥ जयानाद्यजयानंदजयनीलोत्पलद्युते ॥ ३७ ॥ कौस्तुभोद्भूषितोरस्कपूतनाधातुशोषण ॥ रक्षरक्षजगद्रक्षामणेनरकहारक ॥ ३८ ॥ सहस्रशीर्षपुरुषपुरुहूतसुखप्रद ॥ यद्भूतंयच्चभाव्यंवैतत्रैकःपुरुषोभवान् ॥ ३९ ॥ इत्यादिनाममालाभिःसंस्तुवन्वनमालिनम् ॥ स्वच्छंदंदलीलयागायन्नृत्यंश्चपरया मुदा ॥ ४० ॥ व्यासोविश्वेशभवनंसमायातःसहृष्टवत् ॥ ज्ञानवापीपुरोभागेमहाभागवतैःसह ॥ ४१ ॥ विराजमानसत्कंठस्तुलसीवरदामभिः ॥ स्वयंतालधरोजातःस्वयंजातःसुनर्तकः ॥ ४२ ॥

आपकी जयहो जयहो जयहो, हे जगद्रक्षामणे ! नरकहारक ! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे सहस्रशीर्ष पुरुष आपही इंद्रकेभी सुखदाताहैं, एवं भूत और भावी जो कुछ है उसके कर्ता एकमात्र आपही (पुराण) पुरुष हैं ॥३९॥ इसप्रकार नाममालासे वनमालीकी स्तुति करतेहुए और स्वेच्छानुसार परमहर्षके साथ नृत्य करते करते ॥ ४० ॥ अत्यन्त प्रसन्नसे होकर वेदव्यास विश्वेश्वरके मंदिरपर जापहुँचे, वहां ज्ञानवापीके आगे (सामने) तुलसीकी मालाको कंठमें धारण कियेहुए परमभागवतोंके सहित स्वयं करताललेकर आपही नाचने लगे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

वे स्वयं बाँसुरी बजाते बजाते श्रुतिधर बनगये इस भाँतिसे नृत्य समाप्त होनेपर सत्यवतीनन्दन व्यास ॥ ४३ ॥ शिष्योंके मध्यमें अपना दहिना हाथ उठाकर वारंवार उच्चस्वरसे गातेहुए फिर उन्हीं श्लोकोंको पढने लगे ॥ ४४ ॥ कि समस्त वाग्जालको मथकर वारंवार यही निश्चय परिज्ञात हुआहै, कि सबके स्वामी हरिही सेवनीयहैं ॥ ४५ ॥ इन सब पूर्वोक्त अपनी प्रतिज्ञाके अवबोधक श्लोकोंको ज्योंही व्यास दहिना हाथ उठाकर कहनेलगे ॥ ४६ ॥ त्योंही नंदीने उनके हाथका स्तम्भन एवं वचनकाभी स्तम्भन करदिया ॥ ४७ ॥ हे मुने ! इसी बीचमें विष्णुनेभी आकर व्याससे कहा हे व्यास ! तुमने

वेणुवादनतत्त्वज्ञःस्वयंश्रुतिधरोभवत् ॥ नृत्यंपरिसमाप्येत्थंव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४३ ॥ पुनरूर्ध्वंभुजंकृत्वादक्षिणंशिष्यमध्यगः ॥ पुनःपपाठतानेवश्लोकान्गायन्निवोच्चकैः ॥४४॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंसुनिश्चित्यासकृद्बहु ॥ इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यःसर्वेश्वरोहरिः ॥४५॥ इत्यादिश्लोकसंघातंस्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ॥ यावत्पठतिसव्यासःसव्यमुत्क्षिप्यवैभुजम् ॥ ४६ ॥ तस्तंभतावत्तद्बाहुंसशैलादिःस्वली लया ॥ वाक्स्तंभश्चापितस्यासीन्मुनेर्व्यासस्यसन्मुनेः ॥ ४७ ॥ ततोगुप्तंसमागम्यविष्णुर्व्यासमभाषत ॥ अपराद्धंमहच्चात्रभवताव्यास निश्चितम् ॥ ४८ ॥ तवैतदपराधेनभीतिर्मेपिमहत्तरा ॥ एकएवहिविश्वेशोद्वितीयोनास्तिकश्चन ॥ ४९ ॥ तत्प्रसादादहंचक्रीलक्ष्मी शस्तत्प्रभावतः ॥ त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यंदत्तंतेनैवशंभुना ॥ ५० ॥ तद्भक्त्यापरमैश्वर्यंमयालब्धंवरात्ततः ॥ इदानींस्तुहितंशंभुंयदिमेशुभ मिच्छसि ॥ ५१ ॥ अन्यदापिनवैकार्याभवताशेमुषीदृशी ॥ पाराशर्यइतिश्रुत्वासंज्ञयाव्याजहारह ॥ ५२ ॥

यह बडाभारी अपराध किया इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ तुम्हारे इस अपराधसे मुझेभी बडाभारी भय होगया, इस विश्वमण्डलमें एकमात्र विश्वनाथही सबकुछ हैं उनसे भिन्न कोईभी नहीं है ॥ ४९ ॥ उन्हींका प्रसादरूप यह चक्र मुझको मिलाहै, और उन्हींके प्रभावसे मैं लक्ष्मीपति हुआहूं, एवं उन्हीं शम्भुने (कृपा करके) त्रैलोक्यके रक्षा करनेकी सामर्थ्य मुझको दी है ॥ ५० ॥ और उन्हींकी भक्तिसे वरदान पाकर मैं परम ऐश्वर्यशाली हुआहूं, इसलिये यदि तुम मेरा कल्याण चाहते हो तो अब उन्हीं महादेवकी स्तुति करो ॥ ५१ ॥ और फिर कभी ऐसी बुद्धि मत करना । इसप्रकारसे

हरिकी बात सुनकर व्यासने इंगित (इशारे) से कहा कि ॥ ५२ ॥ नान्दिने देखतेही मेरा भुजस्तम्भ करदियाथा, फिर उन्हींके भयसे मेरी वाक्शक्तिभी चलीगई, सो आप मेरे कण्ठस्थलको छूदीजिए ॥ ५३ ॥ जिससे मैं भवानीपति भवान्तकभवकी स्तुति करसकूं, तदनंतर भगवान् विष्णु बडे गुप्तरूपसे उनके कंठका स्पर्श करके वहांसे चलेगये ॥ ५४ ॥ तब उदारबुद्धि सत्यवती नन्दन व्यास उसीभाँति भुजस्तंभनहीकी अवस्थामें विश्वेश्वरकी स्तुति करनेलगे ॥ ५५ ॥ व्यासने कहा—एकमात्र भगवान् रुद्रही अद्वितीय हैं क्योंकि वेही एक ब्रह्म हैं, तद्भिन्न इस ब्रह्मांडमें और सब कुछ नहीं है, यदि कहींपर कोई दूसरा होवे तो वह मेरे आगे अपनी शक्तिको प्रकट करे ॥ ५६ ॥ मन्दराचलसे मथेजानेपर क्षीरसमुद्रसे जो ज्वालाकी मालाओंसे

भुजस्तंभःकृतस्तेननंदिनादृष्टिमात्रतः ॥ वाक्स्तंभस्तद्भयाज्जातःस्पृशमेकंठकंदलीम् ॥ ५३ ॥ यथास्तोतुंभवानीशंप्रभवामिभवांतकम्॥ संस्पृश्यविष्णुस्तत्कंठंगुप्तमेवजगामह ॥ ५४ ॥ ततःसत्यवतीसूनुस्तथास्तंभितदोर्लतः ॥ प्रारब्धवान्महेशानंपरिष्टोतुमुदारधीः ॥ ५५ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयोयतस्तद्ब्रह्मैवैकंनेहनानास्तिकिंचित् ॥ यद्यप्यन्यःकोपिवाकुत्रचिद्वाव्याचष्टांतद्यस्यशक्तिर्मदग्रे ॥ ५६ ॥ यःक्षीराब्धेर्मंदराघातजातोज्वालामालीकालकूटोतिभीमः ॥ तंसोढुंवाकोपरोऽभून्महेशाद्यत्कीलाभिःकृष्णतामापविष्णुः ॥५७॥ यद्बाणोभूच्छ्रीपतिर्यस्ययंतालोकेशोयत्स्यंदनंभूःसमस्ता ॥ वाहावेदायस्ययेनेषुपाताद्दग्धाग्रामास्त्रैपुरास्तत्समःकः॥५८॥ यंकंदर्पोवीक्षमाणःसमानंदेवैरन्यैर्भस्मजातःस्वयंहि ॥ पौष्पैर्बाणैःसर्वविश्वैकजेताकोवास्तुत्यःकामजेतुस्ततोन्यः ॥ ५९ ॥

भराहुआ बडा भयंकर कालकूट विष उत्पन्न हुआथा, जिसकी ज्वालाओंसे विष्णुभी कृष्ण होगये थे, उसका सहने (पीजाने) वाला भगवान् महेश्वरको छोडकर दूसरा कौन है ? ॥ ५७ ॥ जिसके बाण विष्णु, सारथि ब्रह्मा, और समस्त भूमिही जिसकी रथ बनी थी, एवं वेद लोग जिसके घोडे हुएथे, अथच जिसके एकही बाणके गिरते त्रिपुरके सब ग्राम जलभुनकर भस्म होगये उस महादेवके समान दूसरा कौन है ? ॥ ५८ ॥ केवल फूलोंके बाणसे त्रैलोक्यको जीतनेवाला कामदेव अन्य देवतोंके समान जिसे देखतेही स्वयं भस्म होगया, उस कंदर्पविजयी शिवसे भिन्न कौन स्तुति करनेके योग्य होसकता

है? ॥ ५९ ॥ जिसे वेद, ब्रह्मा, विष्णु, मन, और वाणीभी नहीं जानसकती, उस देवादिदेव विश्वनाथको भला मुझसा अल्पबुद्धिजन यथार्थरूपसे क्योंकर जानसकता है? ॥ ६० ॥ जो स्वयं विश्वाधार होनेपरभी विश्वभरमें सर्वत्रही सबमें सर्वदा विराजमान रहते हैं, जो आपही संसारके कर्ता, पालयिता और संहारक हैं, जिसका आदि कोई नहीं है, पर स्वयं जो सबलोगोंका अकेला आदि है, जिसका अन्त नहीं है, पर जो सभीका अन्तकारक है, उसी महादेवको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ६१ ॥ जिसका नाम एकबार उच्चारण करनेसे अश्वमेधयज्ञके समान फल मिलता है, फिर एकबारभी जिसे प्रणाम करनेसे इन्द्रकी संपत्तिभी तुच्छ जंचती है, एवं जिसकी स्तुति करनेसे सत्यलोक प्राप्त होताहै, उसी प्रकारसे उनकी पूजाकरनेपर मोक्ष लक्ष्मीभी दूर नहीं

यंवैवेदोवेदनोनैवविष्णुर्नोवावेधानोमनोनैववाणी ॥ तंदेवेशंमादृशःकोल्पमेधायाथात्म्याद्वेत्त्यहोविश्वनाथम् ॥ ६० ॥ यस्मिन्सर्वं यस्तुसर्वत्रसर्वोयोवैकर्तायोऽवितायोऽपहर्ता ॥ नोयस्यादिर्यःसमस्तादिरेकोनोयस्यांतोयोंतकृत्तंनतोस्मि ॥ ६१ ॥ यस्यैकाख्यावा जिमेधेनतुल्यायस्यानत्याचैकयाल्पेंद्रलक्ष्मीः ॥ यस्यस्तुत्यालभ्यतेसत्यलोकोयस्यार्चातोमोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥ ६२ ॥ नान्यंदेवंवेद्मयहं श्रीमहेशान्नान्यंदेवंस्तौमिशंभोर्ऋतेऽहम् ॥ नान्यंदेवंवानमामित्रिनेत्रात्सत्यंसत्यंसत्यमेतन्मृषान ॥ ६३ ॥ इत्थंयावत्स्तौतिशंभुंमहर्षि स्तावन्नंदीशांभवाद्दक्प्रसादात् ॥ तद्दोःस्तंभंत्यक्तवांश्चाबभाषेस्मायंस्मायंब्राह्मणेभ्योनमोवः ॥ ६४ ॥ नंदिकेश्वरउवाच ॥ इदंस्तवं महापुण्यंव्यासतेपारिकीर्तितम् ॥ यःपठिष्यतिमेधावीतस्यतुष्यतिशंकरः ॥ ६५ ॥ व्यासाष्टकमिदंप्रातःपठितव्यंप्रयत्नतः ॥ दुःस्वप्नपाप शमनंशिवसान्निध्यकारकम् ॥ ६६ ॥ मातृहापितृहावापिगोघ्नोबालघ्नएववा ॥ सुरापीस्वर्णहृद्वापिनिष्पापोस्याःस्तुतेर्जपात् ॥ ६७ ॥

रहजाने पाती ॥ ६२ ॥ श्रीमहेशसे भिन्न दूसरे देवताको मैं नहीं जानता, न भगवान् शम्भुको छोडकर दूसरे किसी देवताकी स्तुतिही करताहूं, अथवा त्रिलोचनसे भिन्न अन्यदेवको मैं प्रणामभी नहीं करता, यह सर्वथा सत्यसत्य है, इसमें तनिकभी झूठका लेश नहीं है ॥ ६३ ॥ महर्षि वेदव्यास इसी भाँतिसे महादेवकी स्तुति कररहे थे इतनेमें नन्दी महेश्वरकी दृष्टिचेष्टासे उनके भुजस्तंभनको दूरकर मुसकुराते हुए कहने लगे कि "तुमसब ब्राह्मणोंको नमस्कार है" ॥ ६४ ॥ नन्दिकेश्वर बोले—हे व्यास! तुम्हारे बनाएहुए इस परम पवित्र स्तवका जो बुद्धिमान् पाठ करेगा उसपर भगवान् शंकर प्रसन्न होंगे ॥ ६५ ॥ इस शिवसान्निध्यकारक व्यासाष्टकके प्रातःकाल प्रयत्नपूर्वक पाठ करनेसे समस्त दुःस्वप्नोंकी शान्ति होजावेगी ॥ ६६ ॥ यदि कोई मातृघाती, पितृहन्ता, गोघ्न बालकघ्न,

सुरापी और स्वर्णतस्करभी इस स्तुतिका जप करे तो वहभी पाप रहित होजावेगा ॥६७॥ स्कंदने कहा—तबसे वेदव्यास घंटाकर्ण ह्रदके ऊपरही व्यासेश्वर नामक लिंगकी स्थापना करके बडेभारी शैव होगये ॥ ६८ ॥ वे नित्यही सर्वांगमें भस्म रमाते, रुद्राक्षकी माला पहिनते एवं रुद्रसूक्तको जपतेहुए लिंगपूजनहीमें तत्पर रहनेलगे ॥ ६९ ॥ तभीसे वे मुक्तिदायिनी काशीके तत्त्वको समझकर क्षेत्रसंन्यास लेकर आजतक काशीका परित्याग नहीं करते हैं ॥ ७० ॥ मनुष्य घंटाकर्णके पोखरेमें नहाकर व्यासेश्वरका दर्शन करनेसे चाहे कहींपरभी मरे पर उसे काशीमें मरनेका फल प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ उत्तम जन काशीपुरीमें व्यासेश्वर लिंगका पूजन करनेसे नतो कभी ज्ञानभ्रष्ट होता, और न पापोंके फेरमें पडताहै ॥ ७२ ॥ जो लोग व्यासेश्वरके भक्त हैं

स्कंदउवाच ॥ ॥ पाराशर्यस्तदारभ्यशंभुभक्तिपरोभवत् ॥ लिंगंव्यासेश्वरंस्थाप्यघंटाकर्णह्रदाग्रतः ॥ ६८ ॥ विभूतिभूषणोनित्यं नित्यंरुद्राक्षभूषणः ॥ रुद्रसूक्तपरोनित्यंनित्यंलिंगार्चकोभवत् ॥ ६९ ॥ सकृत्वाक्षेत्रसंन्यासंत्यजेन्नाद्यापिकाशिकाम् ॥ तत्त्वक्षेत्रस्यं विज्ञायनिर्वाणपददायिनः ॥ ७० ॥ घंटाकर्णह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाव्यासेश्वरंनरः ॥ यत्रकुत्रमृतोवापिवाराणस्यांमृतोभवेत् ॥ ७१ ॥ काश्यां व्यासेश्वरंलिंगंपूजयित्वानरोत्तमः ॥ नज्ञानाद्भ्रश्यतेक्वापिपातकैर्नाभिभूयते ॥ ७२ ॥ व्यासेश्वरस्ययेभक्तानतेषांकलिकालतः ॥ नपापतोभयंक्वापिनचक्षेत्रोपसर्गतः ॥ ७३ ॥ व्यासेश्वरःप्रयत्नेनद्रष्टव्यःकाशिवासिभिः ॥ घंटाकर्णकृतस्नानैःक्षेत्रपातकभीरुभिः ॥ ॥ ७४ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशतीसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेव्यासभुजस्तंभोनामपंचनवतितमोऽध्यायः॥९५॥

॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ कृष्णद्वैपायनःस्कंदशंभुभक्तिपरोयदि ॥ यदिक्षेत्ररहस्यज्ञःक्षेत्रसंन्यासकृद्यदि ॥ १ ॥

उनको कलिकाल और पाप, एवं क्षेत्रज उपसर्गोंका भय नहीं होनेपाता ॥ ७३ ॥ काशीवासियोंको क्षेत्रसम्बन्धी पापोंके दूरकरनेकी इच्छासे घंटाकर्णमें स्नान करके प्रयत्नपूर्वक व्यासेश्वरका दर्शन करना चाहिये ॥ ७४ ॥ (संस्कृत)—दोहा—विदितकर्णघंटाह्रदे, व्यासेश्वरो विभाति । तस्य हिदर्शनतः स्वयं, क्लेशो विलयं याति ॥ १ ॥ (हिन्दी)—दोहा—आषाढी गुरु पूर्णिमा, मेला तहँपर होय । छुटै सर्ग उपसर्ग भय, दरस परस करु जोय ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ अगस्त्यने पूछा—हे स्कन्द ! यदि कृष्णद्वैपायन, शिवभक्ति

परायण, क्षेत्रके रहस्यज्ञाता तथा शिवके प्रभाववेत्ता और परमज्ञानी थे तो क्षेत्रसंन्यास लेनेपर सर्वश्रेष्ठा वाराणसीपुरीको क्यों शाप देवेंगे ॥ १ ॥ २ ॥ स्कन्दने कहा—हे महर्षे ! यह तो तुमने बहुतही ठीक पूछा है, अच्छा तो मैं उन वेदव्यासका भविष्य चरित्र तुम्हारे पूछनेपर कहताहूं, श्रवण करो ॥ ३ ॥ हे अगस्त्य मुने ! जबसे नन्दीने उनका भुज स्तम्भन किया तबसे व्यास बडे आदरके साथ महेश्वरकी स्तुति गान करनेलगा ॥ ४ ॥ यद्यपि काशीमें अनेक तीर्थ और बहुतेरे लिंग पडे हैं, तथापि विश्वेश्वरका सेवन और मणिकर्णिकाका स्नान करनेही योग्य है ॥ ५ ॥ लिंगोंमें एकमात्र विश्वेश्वर और तीर्थोंमें मणिकर्णिकाही श्रेष्ठ है यही बात कहते हुए वेदव्यास उन दोनोंको बहुतही अधिक मानने लगे ॥ ६ ॥ वे प्रतिदिन (मणिकर्णिका) स्नानके उपरांत मुक्तिमं

तथाहृष्टप्रभावश्चेत्तथाचेज्ज्ञानिनांवरः ॥ पुरींवाराणसींश्रेष्ठांकथंकिलशपिष्यति ॥२॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ सत्यमेतत्त्वयापृच्छिकथयामिमुनेश्शृणु ॥ तस्यव्यासस्यचरितंभविष्यंत्वयिपृच्छति ॥३॥ यदारभ्यमुनेस्तस्यनंदीस्तंभितवान्भुजम् ॥ तदारभ्यमहेशानंसंस्तौतिपरमादृतः ॥ ४ ॥ काश्यांतीर्थान्येनेकानिकाश्यांलिंगान्यनेकशः ॥ तथापिसेव्योविश्वेशःस्नातव्यामणिकर्णिका ॥५॥ लिंगेष्वेकोहिविश्वेशस्तीर्थेषुमणिकर्णिका ॥ इतिसंव्याहरन्व्यासस्तद्द्वयंबहुमन्यते ॥ ६ ॥ त्यक्त्वासबहुवाग्जालंप्रातःस्नात्वादिनेदिने ॥ निर्वाणमंडपेवक्तिमहिमानंमहेशितुः ॥ ७ ॥ शिष्याणांपुरतोनित्यंक्षेत्रस्यमहिमामहान् ॥ व्याख्यायतेमुदातेनव्यासेनपरमर्षिणा ॥ ८ ॥ अत्रयत्क्रियतेक्षेत्रेशुभंवाऽशुभमेववा ॥ संवर्तेपिनतस्यांतस्तस्माच्छ्रेयःसमाचरेत् ॥ ९ ॥ क्षेत्रसिद्धिंसमीहंतेयेचात्रकृतिनोजनाः ॥ यावज्जीवंनतैस्त्याज्यासुधीभिर्मणिकर्णिका ॥ १० ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थेस्नातव्यंप्रतिवासरम् ॥ पुष्पैःपत्रैःफलैस्तोयैरर्च्योविश्वेश्वरःसदा ॥ ११ ॥

डपमें (बैठ) व्यर्थके वाग्वितंडाको छोडकर केवल महादेवकी महिमा कहने लगे ॥ ७ ॥ वे महर्षि वेदव्यास शिष्योंके सन्मुख बडेहर्षके साथ नित्यही क्षेत्रकी बडी महिमाका यों बखान करते कि ॥ ८ ॥ इस क्षेत्रमें उत्तम अथवा अधम जो कुछ कर्म किया जाताहै, प्रलयकालमेंभी उसका अन्त नहीं होता इसलिए यहांपर अच्छाही काम करना चाहिए ॥ ९ ॥ जो पुण्यात्मा जन इस क्षेत्रमें सिद्धिको चाहते होवें यावज्जीवन उन बुद्धिमानोंको मणिकर्णिका कभी नहीं छोडनी चाहिए॥ १०॥ प्रतिदिन चक्रपुष्करिणी तीर्थमें नहाना और पत्र पुष्प, फल, और जलसे सदैव विश्वनाथका पूजन करना योग्यहै ॥ ११ ॥

अपने वर्ण और आश्रमधर्मके अनुसार रहकर प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक एकबार क्षेत्रका माहात्म्य सुनना उचितहै ॥ १२ ॥ यहांपर यथाशक्ति गुप्तदान करना चाहिए और विघ्नोंके दूर हटानेकी इच्छा हो तो अन्नोंकाभी दान करे ॥ १३ ॥ यहांपर बुद्धिमान् जनको उचितहै कि सर्वदा परायेका उपकारही करे, और पर्वोंपर स्नान और दान इत्यादि क्रियाओंको विशेषरूपसे करे ॥ १४ ॥ एवं बडेभारी उत्सवके साथ विशेष पूजनभी करना चाहिए, और अधिक यात्रा तथा क्षेत्रके देवतोंका पूजनभी अवश्य करणीयहै ॥ १५ ॥ इस क्षेत्रमें परदार, परद्रव्य, और परायेका अपकार त्यागकर कभी किसीके मर्मकी बात

स्ववर्णाश्रमधर्मश्चत्यक्तव्योनमनागपि ॥ प्रत्यहंक्षेत्रमहिमाश्रोतव्यःश्रद्धयासकृत् ॥ १२ ॥ यथाशक्तिचदेयानिदानान्यत्रसुगुप्तवत् ॥ अन्नान्यपिचदेयानिविघ्नान्परिजिहीर्षुणा॥१३॥ परोपकरणंचात्रकर्तव्यंसुधियासदा ॥ पर्वस्वपिविशेषेणस्नानदानादिकाःक्रियाः॥१४॥ विशेषपूजाकर्तव्यासुमहोत्सवपूर्वकम् ॥ कार्यास्तथाधिकायात्राःसमर्च्याःक्षेत्रदेवताः॥१५॥ अत्रमर्मनवक्तव्यंसुधियाकस्यचित्क्वचित् ॥ परदारपरद्रव्यपरापकरणंत्यजेत् ॥ १६ ॥ परापवादोनोवाच्यःपरेर्ष्यांनचकारयेत् ॥ असत्यंनैववक्तव्यंप्राणैःकंठगतैरपि ॥ १७ ॥ अत्रत्यजंतुरक्षार्थमसत्यमपिभाषयेत् ॥ येनकेनप्रकारेणशुभेनाप्यशुभेनवा ॥ १८ ॥ अत्रत्यःप्राणिमात्रोपिरक्षणीयःप्रयत्नतः ॥ एकस्मिन्रक्षितेजंतावत्रकाश्यांप्रयत्नतः ॥ त्रैलोक्यरक्षणात्पुण्यंयत्स्यात्तत्स्यान्नसंशयः॥१९॥ येत्रसंतिसदाकाश्यांक्षेत्रसंन्यासकारिणः॥ तएवरुद्रामंतव्याजीवन्मुक्तानसंशयः ॥ २० ॥

नहीं करनी चाहिए ॥१६॥ कभी किसीका अपवाद नहीं कहना और न किसीसे डाह करना, एवं प्राण जो कंठमेंभी जा रहे तोभी असत्य नहीं बोलना चाहिए ॥ १७ ॥ पर यदि भले वा अनभले किसी प्रकारसे यहांके रहनेवालेकी रक्षाके लिए झूंठभी बोलना पडे तो कोई हानिकी बात नहीं है ॥१८॥ प्रयत्नपूर्वक यहांके प्राणिमात्रकी रक्षा करनीही चाहिए, क्योंकि यदि काशीमें प्रयत्न उठाकर एकभी जन्तु की रक्षा होसके तो निस्सन्देह त्रैलोक्यभरके रक्षणका पुण्य प्राप्त होजाताहै ॥ १९ ॥ जो लोग काशीमें क्षेत्रसंन्यास लेकर बास करते हैं; उन्हीं सबको निस्सन्देह जीवन्मुक्त और रुद्रस्वरूप मानना

उचितहै ॥ २० ॥ उन लोगोंके संतुष्ट होनेसे स्वयं भगवान् विश्वेश्वर संतुष्ट होतेहैं, अतएव उन सबको प्रयत्नपूर्वक पूजा और नमस्कार इत्यादिके द्वारा संतुष्ट करना चाहिए ॥२१॥ दूरदेशवासी सज्जन लोगोंकोभी विश्वनाथकी प्रसन्नताके लिए, काशीमें रहनेवाले मनुष्योंका योगक्षेम करना बहुतही उचित है ॥ २२ ॥ काशीवास करनेवालोंको यहांपर इन्द्रियोंका प्रसार और मनकी चंचलताको प्रयत्नपूर्वक दूर हटादेना चाहिए ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् जन यहां पर मरण अथवा मोक्षकी अभिलाषा नहीं करे और न अपने शरीरके शोषणहीका उपाय ढूंढे ॥ २४ ॥ वरन् व्रत और स्नान इत्यादिकी सिद्धिके लिये शरीरकी स्वस्थता, और महाफलकी समृद्धिके लिये आयुकी दीर्घताहीकी चिन्ता करनी चाहिए ॥ २५ ॥ यहांपर परम कल्याणकी वृद्धिके लिए

तेपूज्यास्तेनमस्कार्यास्तेसंतोष्याःप्रयत्नतः ॥ तेषुवैपरितुष्टेषुतुष्येद्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ २१ ॥ काश्यांवसंतियेमर्त्यादूरस्थैरपिसन्नरैः ॥ योगक्षेमोविधातव्यस्तेषांविश्वेशितुर्मुदे ॥ २२ ॥ प्रसरस्त्विन्द्रियाणांचनिवार्योत्रनिवासिभिः ॥ मनसोपिहिचांचल्यमिहवार्यंप्रयत्नतः॥२३॥ मरणंनाभिकांक्षेद्धिकांक्ष्योमोक्षोऽपिनोपुनः ॥ शरीरशोषणोपायःकर्तव्यःसुधियानहि ॥ २४ ॥ शरीरसौष्ठवंकांक्ष्यंव्रतस्नानादिसिद्धये ॥ आयुर्बह्वत्रवैचिंत्यंमहाफलसमृद्धये ॥ २५ ॥ आत्मरक्षात्रकर्तव्यामहाश्रेयोभिवृद्धये ॥ अत्रात्मत्यजनोपायंमनसापिनचिंतयेत् ॥ २६ ॥ एकस्मिन्नपियच्चाह्निकाश्यांश्रेयोभिलभ्यते ॥ नतुवर्षशतेनापितदन्यत्राप्यतेक्वचित् ॥ २७॥ अन्यत्रयोगाभ्यसनाद्यावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ वाराणस्यांतदेकेनप्राणायामेनलभ्यते ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थावगाहाच्चयावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ तदानंदवनेप्राप्यंमणिकर्ण्येकमज्जनात् ॥ २९ ॥ सर्वलिंगार्चनात्पुण्यंयावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ सकृद्विश्वेशमभ्यर्च्यश्रद्धयातदवाप्यते ॥ ३० ॥

आत्माकी रक्षाही करनी उचितहै, पर काशीमें कभी आत्माके परित्यागका उपाय मनसे नहीं सोचना चाहिए ॥ २६ ॥ क्योंकि काशीमें जो श्रेयस्कर फल एकदिनमें मिलजाता है, वह दूसरे किसी स्थानमें सैकडों वर्ष बीतने परभी नहीं प्राप्त होसकता ॥ २७ ॥ अन्यत्र जन्मभर योगाभ्यास करनेसे जो फल मिलता है, वाराणसीमें केवल एकही प्राणायामसे वह प्राप्त होसकताहै ॥ २८ ॥ इस आनंदवनमें मणिकर्णिकाके एक डुबकीसे जो पुण्य होताहै, जन्मभर समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसेभी वह नहीं मिलसकता ॥ २९ ॥ यावत् जीवन समस्त लिंगोंकी आराधना करनेसे जो पुण्य मिलना कठिन है,

श्रद्धापूर्वक एकबारभी विश्वेश्वरकी पूंजा करनेसे (तुरत) वह मिल जाताहै ॥ ३० ॥ जब सहस्रों जन्मके उपार्जित पुण्य इकट्ठे होते हैं तब उन्हींके परिवर्तनमें विश्वनाथका दर्शन प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ विधानयुक्त करोडों गोदान करनेसे जो फल होताहै भगवान् विश्वेश्वरके दर्शन मिलजानेसेभी वही फल ज्योंका त्यों लाभ होताहै ॥ ३२ ॥ महर्षियोंने षोडश विध महादानोंसे जो पुण्य कहाहै भगवान् विश्वेश्वरपर पुष्प चढा देनेसेभी वही पुण्य होता है ॥ ३३ ॥ अश्वमेध इत्यादि समस्त यज्ञोंके करनेसे जो फल होताहै विश्वनाथको पंचामृतसे स्नान करानेकाभी वही फल है ॥ ३४ ॥ सहस्रों वाजपेययज्ञसे जो पुण्य मिलता है, एकबार विश्वनाथको बहुमूल्य (उत्तम) नैवेद्य, लगानेसे उसका सौगुना फल प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ जो कोई ध्वजा, छत्र, चामर इत्यादिसे

यज्जन्मनांसहस्रेणनिर्मलंपुण्यमर्जितम् ॥ तत्पुण्यपरिवर्तेनभवेद्विश्वेशदर्शनम् ॥ ३१ ॥ गवांकोटिप्रदानेनसम्यग्दत्तेनयत्फलम् ॥ तत्फलं सम्यगाप्येतविश्वेश्वरविलोकनात् ॥ ३२ ॥ यत्षोडशमहादानैःपुण्यंप्रोक्तंमहर्षिभिः ॥ तत्पुण्यंजायतेपुंसांविश्वेशेपुष्पदानतः ॥ ३३ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्यत्फलंप्राप्यतेखिलैः ॥ पंचामृतानांस्नपनाद्विश्वेशेतदवाप्यते ॥ ३४ ॥ वाजपेयसहस्रेणसम्यगिष्टेनयत्फम् ॥ सकृन्महार्हैर्नैवेद्यैर्विश्वेशेतच्छताधिकम् ॥ ३५ ॥ ध्वजातपत्रंचमरंविश्वेशेयःसमर्पयेत् ॥ एकच्छत्रंसवैराज्यंप्राप्नुयाद्वसुधातले ॥ ३६ ॥ महापूजोपकरणंयोर्पयेद्विश्वभर्तरि ॥ नतंसंपत्तिसंभाराविमुंचंतीहकुत्रचित् ॥ ३७ ॥ सर्वर्तुकुसुमाढ्यांचयःकुर्यात्पुष्पवाटिकाम् ॥ तदंगणेकल्पवृक्षाश्छायांकुर्वंतिशीतलाम् ॥ ३८ ॥ यःक्षीरस्नपनार्थंवैविश्वेशेधेनुमर्पयेत् ॥ क्षीरार्णवतटेतस्यनिवसेयुःपितामहाः ॥ ३९ ॥ विश्वेशराजसदनेयःसुधांचित्रमेववा ॥ कारयेत्तस्यभवनंकैलासेचित्रितंभवेत् ॥ ४० ॥

विश्वेश्वरको सुसज्जित करताहै, वह भूमंडलमें एकछत्र राज्यका भोग पाताहै ॥ ३६ ॥ भगवान् विश्वनाथकी महापूजाकी सामग्री जो कोई चढाता है, उसे इस संसारमें कहींपर किसी संपत्तिका अभाव नहीं होने पाता ॥ ३७ ॥ जो कोई सबऋतुओंके पुष्पोंसे परिपूर्ण पुष्पवाटिका बनाताहै, उसके घरके आँगनमें कल्पवृक्षोंकी शीतल छाया बनी रहतीहै ॥ ३८ ॥ एवं जो मनुष्य विश्वनाथके दुग्धस्नानके लिए धेनुको अर्पण करता है, उसके पूर्वपुरुष लोग क्षीरार्णवके तटपर निवास करने लगतेहैं ॥ ३९ ॥ विश्वनाथके राजमन्दिरमें जो कोई चूनासे छुहवावे अथवा चित्रकारी लिखवावे, कैलासमें उसका भवन चित्रोंसे विभूषित

होजाताहै ॥४०॥ इस काशीपुरीमें ब्राह्मणसंन्यासी तथा शिवयोगियोंको श्रद्धापूर्वक भोजन करावे तो प्रत्येक जनका कोटिगुण फल निस्सन्देह प्राप्त होताहै, यहांपर तप, दान स्नान, होम और जपादिके द्वारा भगवान् विश्वेश्वरको संतुष्ट करना चाहिये। अन्यत्र कोटि संख्यक जपकरनेसे जो फल होताहै इस काशीमें केवल अष्टोत्तरशतहीमें मनुष्योंको वह फल मिलजाताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अन्य स्थानोंमें कोटि आहुति देनेसे जो पुण्य होताहै यहांपर केवल अष्टोत्तरशत आहुतियोंमें वह पुण्य मिलताहै ऐसाही पंडितोंका कथन है ॥४४॥ आनंदवनमें विश्वनाथके सन्निहित केवल रुद्रसूक्तहीके पाठकरनेसे समग्र वेदाध्ययनका पुण्य प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ परन्तु अक्षरोंका अर्थ समझकर रुद्रसूक्तका पारायणकरनेवालेको जो फल मिलताहै, उसे मैं भी नहीं

ब्राह्मणान्यतिनोवापितथैवशिवयोगिनः ॥ भोजयेद्योत्रवैकाश्यामेकैकगणनाक्रमात् ॥ ४१ ॥ कोटिभोज्यफलंतस्यश्रद्धयानात्रसंशयः ॥
तपस्त्वत्रप्रकर्तव्यंदानमत्रप्रदापयेत् ॥ ४२ ॥ विश्वेशस्तोषणीयोत्रस्नानहोमजपादिभिः ॥ अन्यत्रकोटिजप्येनयत्फलंप्राप्यतेनरैः ॥
अष्टोत्तरशतंजप्त्वातदत्रसमवाप्यते ॥ ४३ ॥ कोटिहोमेनयत्प्रोक्तंफलमन्यत्रसूरिभिः ॥ अष्टोत्तराहुतिशतात्तदत्रानंदकानने ॥ ४४ ॥
योजपेद्रुद्रसूक्तानिकाश्यांविश्वेशसन्निधौ ॥ पारायणेनवेदानांसर्वेषांफलमाप्यते ॥ ४५ ॥ तस्यपुण्यंनजानामिचिंतितेंचाक्षरेपरे ॥ काश्यां
नित्यंप्रवस्तव्यंसेव्योत्तरवहासदा ॥४६॥ आपद्यपिहिघोरायांकाशीत्याज्यानकुत्रचित् ॥ यतःसर्वापदांहर्तात्राताविश्वपतिःप्रभुः ॥४७॥
अवंध्यंदिवसंकुर्यात्स्नानदानजपादिभिः ॥ यतःकाश्यांकृतंकर्ममहत्त्वायप्रकल्पते ॥ ४८ ॥ कृच्छ्रचांद्रायणादीनिकर्तव्यानिप्रयत्नतः ॥
तथेंद्रियविकाराश्चनबाधंतेत्रकर्हिचित् ॥ ४९ ॥

जानसकता, काशीमें नित्यवास और उत्तरवाहिनी गंगाका सेवन करनाही उचित है ॥ ४६ ॥ विषम विपत्ति पडनेपरभी काशी कभी नहीं छोडनी चाहिए क्यों कि सब आपत्तियोंके निवारक भगवान् विश्वेश्वर (यहांके स्वयं) रक्षक (बने) हैं ॥ " चना चबैनी गंगजल, जो पुरवै करतार। काशी कबहुं न छोडिये, विश्वनाथ दरबार " ॥ ४७ ॥ (प्राचीन) काशीमें अनुष्ठित कर्म बडेही फलदायक होते हैं, इसलिए यहांपर स्नान,दान, और जप इत्यादिके द्वारा दिनको सार्थक करना उचितहै ॥ ४८ ॥ यहांपर प्रयत्नपूर्वक कृच्छ्रचान्द्रायण इत्यादि व्रतोंको (तो) अवश्यही करना चाहिए, जिसमें इन्द्रियोंके

विकारोंकी कोई बाधा कभी नहीं होवे ॥ ४९ ॥ क्योंकि यहांपर जबकि इन्द्रियां मनुष्यको विकार उत्पन्न करदेतीहैं, तब विघ्नोंके मारे काशीवासकी सिद्धि नहीं होने पाती ॥ ५० ॥ अगस्त्यने कहा—हे स्वामिकार्तिकेय ! व्यासदेव जिन कृच्छ्र चांद्रायण प्रभृति व्रतोंको इन्द्रियोंकी शुद्धिके लिये कहेंगे, आप उनका स्वरूप वर्णन करदीजिए ॥ ५१ ॥ स्कन्दने कहा—हे महाबुद्धे ! मैं आपसे कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतोंको कहताहूं, मनुष्य जिनके अनुष्ठानसे यहांपर शरीरकी परमशुद्धिको प्राप्त करसकताहै ॥ ५२ ॥ (प्रथम दिन) एकबार भोजन (दूसरेदिन) रात्रिभोजन, (तीसरेदिन) अयाचित भोजन और (चौथेदिन) उपवास करनेसे पादकृच्छ्रनामक व्रत कहाजाता है ॥ ५३ ॥ बड, गुल्लर, कमल, बिल्वपत्र और कुशोदक, इन सबोंको क्रमसे प्रत्येक

यदींद्रियाणिकुर्वंतिविक्रियामिहदेहिनाम् ॥ तदात्रवाससंसिद्धिर्विघ्नैर्न्योनैवलभ्यते ॥५०॥ ॥अगस्त्यउवाच ॥ ॥ कृच्छ्रचांद्रायणादीनिव्यासोवक्ष्यतियानिवै ॥ तेषांस्वरूपमाख्याहिस्कंदेंद्रियविशुद्धये ॥५१॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ कथयामिमहाबुद्धेकृच्छ्रादीनितवाग्रतः ॥ यानिकृत्वात्रमनुजोदेहशुद्धिंलभेत्पराम् ॥ ५२ ॥ एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनचैकेनपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥ ५३ ॥ वटोदुंबरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकम् ॥ प्रत्येकंप्रत्यहंपीतंपर्णकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥ पिण्याकघृततक्रांबुसक्तूनांप्रतिवासरम् ॥ एकैकमुपवासश्चकृच्छ्रःसौम्यःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ हविषाप्रातरश्नीतहविषासायमेवच ॥ हविषायाचितंत्रींस्तुसोपवासस्त्र्यहंवसेत् ॥ ५६ ॥ एकैकंग्रासमश्नीयादहानित्रीणिपूर्ववत् ॥ त्र्यहंचोपवसेदंत्यमतिकृच्छ्रंचरन्द्विजः ॥५७॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रंपयसादिवसानेकविंशतिः ॥ द्वादशाहोपवासेनपराकःपरिकीर्तितः ॥ ५८ ॥

दिन पान करनेसे पर्णकृच्छ्रव्रत होताहै ॥५४॥ पिण्याक (तिलकी खली) घृत, तक्र जल और सक्तु इन सबोंमें एक एकको प्रतिदिन खाकर एकएक उपवास बीचबीचमें करते जानेसे सौम्यकृच्छ्र नामक व्रत कहाजाता है ॥ ५५ ॥ तीनदिन प्रातःकाल और तीनदिन सायंकाल एवं तीनदिन अयाचित विधिसे घृत भोजनकरे फिर तीन दिन उपवास करके ॥ ५६ ॥ पूर्ववत् तीन दिन एकएक कवर मात्र भोजनकरे फिर पिछले तीन दिनोंमें उपवासही करे तो यह अतिकृच्छ्र नामक व्रत कहाता है ॥ ५७ ॥ एक्कीस दिनतक केवल दूधही पीकर रहजावे तो वह कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होताहै, द्वादशदिन पर्यंत

(लगातार) उपवास करते रहनेसे पराक नामक व्रत होताहै ॥ ५८ ॥ जिस द्विजको प्राजापत्यव्रतका अनुष्ठान करना हो उसे तीनदिन प्रातःकाल, तीनदिन सायंकाल, और तीनदिन अयाचित भोजन करके तीनदिन उपवास करना चाहिये ॥५९॥ गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत, और कुशोदक;—इन सबोंको क्रमसे एक एक दिन पीकर फिर एकरात्रिमें उपवास करनेसे कृच्छ्र सान्तपन व्रत कहलाताहै ॥६०॥ पूर्वोक्त सांतपनव्रतके छओ द्रव्योंका सेवन न करके सातों दिन उपवासही करनेसे कृच्छ्र महासांतपन व्रत होताहै ॥ ६१ ॥ ब्राह्मण यदि तप्तकृच्छ्र व्रतको किया चाहे तो प्रतिदिन एकबार स्नान कर सावधानीसे तीनदिन उष्णजल, दुग्ध, घृत, और वायुको पीवे ॥ ६२ ॥ फिर तीनदिन केवल उष्णजल, तीनदिन उष्ण दुग्ध, तीनदिन उष्णघृत, एवं

त्र्यहंप्रातस्त्र्यहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहंचोपवसेदंत्यंप्राजापत्यंचरन्द्विजः ॥ ५९ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् ॥
एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रःसांतपनःस्मृतः ॥ ६० ॥ पृथक्सांतपनद्रव्यैःषडहःसोपवासकः ॥ सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयंमहासांतपनःस्मृतः ॥६१॥
तप्तकृच्छ्रंचरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् ॥ एतांस्त्र्यहंपिबेदुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः॥६२॥ त्र्यहमुष्णाःपिबेदापस्त्र्यहमुष्णंपयःपिबेत् ॥
त्र्यहमुष्णंघृतंप्राश्यवायुभक्षोदिनत्रयम् ॥ ६३ ॥ पलमेकंपयःपीत्वासर्पिषश्चपलद्वयम् ॥ पलमेकंतुतोयस्यतप्तकृच्छ्रउदाहृतः ॥ ६४ ॥
गोमूत्रेणसमायुक्तंयावकंयःप्रयोजयेत् ॥ कृच्छ्रमेकाह्निकंप्रोक्तंशरीरस्यविशोधनम् ॥ ६५ ॥ हस्तावुत्तानतःकृत्वादिवसंमारुताशनः ॥
रात्रौजलेस्थितोव्युष्टःप्राजापत्येनतत्समम् ॥६६॥ एकैकंह्रासयेद्ग्रासंकृष्णेशुक्लेचवर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चांद्रायणंस्मृतम्॥६७॥

शेष तीनदिनोंमें केवल वायु भक्षण करे ॥६३॥ इस व्रतमें (चार रुपयेभरका) एक पल पानी और दूध, एवं दो पल घृतका परिमाण है, इस प्रकारसे तप्तकृच्छ्र व्रत कहागया है ॥ ६४ ॥ गोमूत्रके साथ जव खायाजावे तो वहभी शरीर शोधक एकाह्निक कृच्छ्र कहाजाताहै ॥ ६५ ॥ दिनभर दोनों हाथोंको उत्तान कियेहुए केवल वायु भोजन करे और रात्रिभर जलमें बैठकर सवेरा करे तो वहभी प्राजापत्यव्रतके समानही समझाजाताहै ॥ ६६ ॥ त्रिकाल स्नान करके कृष्णपक्षमें एकएक ग्रासको घटाता जावे और शुक्लपक्षमें एकएक ग्रासको बढाता जावे तो वही चान्द्रायणव्रतकी विधि कही जाती

है ॥६७॥ अथवा शुक्लपक्षमें एकएक ग्रास बढावे, और कृष्णपक्षमें घटावे एवं अमावास्याको कुछभी नहीं खावे तो वहभी चान्द्रायण व्रत होताहै॥६८॥ यदि ब्राह्मण समाहित होकर चार कवर प्रातःकाल और चारही कवर सूर्यास्तहोनेपर भोजनकरे तो वह ब्रह्मचारियोंका चान्द्रायणव्रत कहलाताहै ॥ ६९ ॥ संयमपूर्वक ठीक मध्याह्नकालमें आठ कवर हविष्यान्नका भोजन करलेवे तो वह यतिचान्द्रायण कहाताहै ॥ ७० ॥ समाहित होकर, यदि एकमास भरमें किसीरीतिसे दोसौ चालीस कवर हविष्यके भोजन करे, तो वह चन्द्रलोकका अधिकारी अवश्यही होजाताहै ॥ ७१ ॥ शरीरकी शुद्धि जलसे, मनकी

एकैकंवर्धयेद्ग्रासंशुक्लेकृष्णेचह्रासयेत् ॥ भुंजीतदर्शेनोकिंचिदेषचांद्रायणोविधिः ॥ ६८ ॥ चतुरःप्रातरश्नीयात्पिंडान्विप्रःसमाहितः ॥ चतुरोस्तमितेसूर्येशिशुचांद्रायणंस्मृतम् ॥ ६९ ॥ अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिंडान्मध्यंदिनेस्थिते ॥ नियतात्माहविष्यस्ययतिचांद्रायणं स्मृतम् ॥ ७० ॥ यथाकथंचित्पिंडानांतिस्रोशीतीःसमाहितः ॥ मासेनाश्नन्हविष्यस्यचंद्रस्यैतिसलोकताम् ॥ ७१ ॥ अद्भिर्गात्राणिशुध्यंतिमनःसत्येनशुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यांभूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेनशुद्ध्यति ॥ ७२ ॥ तच्चज्ञानंभवेत्पुंसांसम्यक्काशीनिषेवणात् ॥ काशीनिषेवणेनस्याद्विश्वेशकरुणोदयः ॥ ७३ ॥ ततोमहोदयावाप्तिःकर्मनिर्मूलनक्षमा॥ अतःकाश्यांप्रयत्नेनस्नानंदानंतपोजपः ॥७४॥ व्रतंपुराणश्रवणंस्मृत्युक्ताध्वनिषेवणम् ॥ प्रतिक्षणंप्रतिदिनंविश्वेशपदचिंतनम् ॥ ७५ ॥ लिंगार्चनंत्रिकालंचलिंगस्यापिप्रतिष्ठितिः ॥ साधुभिः सहसंलापोजल्पःशिवशिवेतिच॥७६॥ अतिथेश्चापिसत्कारोमैत्रीतीर्थनिवासिभिः ॥ आस्तिक्यबुद्धिर्विनयोमानामानसमानधीः॥७७॥

शुद्धि सत्यसे भूतात्माकी शुद्धि विद्या और तपस्यासे एवं बुद्धिकी शुद्धि ज्ञानसे होतीहै ॥ ७२ ॥ पर वह ज्ञान लोगोंको यथार्थरीतिसे काशीके सेवन करनेहीसे होसकताहै, क्योंकि काशीहीके सेवनसे विश्वेश्वरकी दयाका उदय होताहै ॥७३॥ तभी कर्मके निर्मूलन करनेमें समर्थ महोदयकी प्राप्ति होतीहै। अतएव इस काशीपुरीमें प्रयत्न उठाकर स्नान, दान, तप, जप ॥७४॥ व्रत, पुराण श्रवण, धर्मशास्त्रोक्त मार्ग सेवन, प्रतिदिन प्रतिक्षण विश्वनाथके चरणोंका ध्यान ॥ ७५ ॥ त्रिकाल लिंगपूजन, लिंगकी स्थापना साधुओंके संग वार्तालाप, बारंबार "शिवशिव" का कथन ॥७६॥ अतिथि सत्कार तीर्थवासियोंसे

मैत्री, आस्तिक्यबुद्धि, नम्रता, मान और अपमानमें समानबुद्धि, ॥७७॥ निष्कामता, अनुद्धत स्वभाव, रागहीनता, अहिंसा, अप्रतिग्रह वृत्ति, दयार्द्रचित्तता, ॥ ७८ ॥ दंभशून्यता, निर्मत्सरता, अप्रार्थित धनागम, अलोभिता, अनालसता, अपरुषता, और अदीनता ॥ ७९ ॥ इत्यादि सत्प्रवृत्तियोंको क्षेत्रवासी होकर अवश्यही करना चाहिए, इस प्रकारसे वे अपने शिष्यलोगोंको प्रतिदिन उपदेश देवेंगे ॥ ८० ॥ व्यासजी नित्यही त्रिकालस्नान, और लिंगपूजनमें तत्पर होकर केवल भिक्षाहीसे भोजनादिका निर्वाह करतेहुए काशीमें वास करने लगेंगे ॥ ८१ ॥ तदनंतर एकबार महादेवने व्यासकी परीक्षा लेनेके लिये पार्वतीदेवीसे कहा कि, हे सुन्दरि ! आज उस परमधार्मिक व्यासको भिक्षार्थ सर्वत्र पर्यटन करनेपरभी कहींसे कुछभी भिक्षा मतपानेदो, भवानीनेभी भवनाशक

अकामितात्वनौद्धत्यमरागित्वमहिंसनम् ॥ अप्रतिग्रहवृत्तिश्चमतिश्चानुग्रहात्मिका ॥ ७८ ॥ अदंभितात्वमात्सर्यमप्रार्थितधनागमः ॥ अलोभित्वमनालस्यमपारुष्यमदीनता ॥७९॥ इत्यादिसत्प्रवृत्तिश्चकर्तव्याक्षेत्रवासिना ॥ प्रत्यहंचेतिशिष्येभ्यःसधर्ममुपदेक्ष्यति॥८०॥ नित्यंत्रिषवणस्नायीनित्यंभिक्षाकृताशनः ॥ लिंगपूजार्चकोनित्यमित्थंव्यासोवसत्पुरा ॥ ८१ ॥ एकदातस्यजिज्ञासांकर्तुंदेवींहरोवदत् ॥ अद्यभिक्षाटनंप्राप्तेव्यासेपरमधार्मिके ॥ ८२ ॥ अपिसर्वगतेक्कापिभिक्षांमायच्छसुंदरि ॥ तथेत्युक्त्वाभवानीसाभवंभवनिवारणम् ॥८३॥ नमस्कृत्यप्रतिगृहंतस्यभिक्षांन्यषेधयत् ॥ सम्रुनिःसहितःशिष्यैर्भिक्षामप्राप्यदूनवत् ॥ ८४ ॥ वेलातिक्रममालोक्यपुनर्बभ्रामतांपुरीम् ॥ गृहेगृहेपरिप्राप्ताभिक्षान्यैःसर्वभिक्षुकैः ॥ ८५ ॥ तदह्निनालभद्भिक्षांसशिष्यःसमुनिःक्कचित् ॥ अथसायंतनंकर्मकृत्वाछात्रैःसमन्वितः ॥ ८६ ॥ उपोषणपरोभूत्वातथैवासीदहर्निशम् ॥ अथान्येद्युर्मुनिर्व्यासःकृत्वामाध्याह्निकंविधिम् ॥ ८७ ॥

(भगवान् भवनाथ) भवकी आज्ञाको प्रणामपूर्वक स्वीकार कर घर घरसे उनकी भिक्षाका निषेध करदिया। इससे वे मुनिवर व्यास भिक्षाके नहीं पानेसे अपने शिष्योंके सहित बडेही खिन्नहुए ॥८२॥८३॥८४॥ और वेलाको बीततीहुई देखकर फिर नगरमें घूमनेलगे, इधर समस्त भिक्षुकोंने घर घरमें भिक्षापाई ॥ ८५ ॥ पर शिष्योंके सहित व्यासमुनिको उस दिन कहींभी भिक्षा नहीं मिली। फिर तो वे अपने शिष्योंके साथ सन्ध्योपासन इत्यादि कर्मको कर ॥ ८६ ॥ रात्रिदिन वैसेही (कोरा) उपवासही करते रहगये । फिर दूसरेदिन व्यासजी माध्याह्निक विधियोंके करनेपर ॥ ८७ ॥

शिष्योंके साथ नगरमें चारोंओर भिक्षा पानेके लिये घूमते रहे, यहांतक कि बारंबार प्रत्येक धनी गृहस्थोंके घरपर फेरा लगाते रहे॥८८॥ पर जैसे भाग्यहीन पुरुषको धन नहीं मिलता वैसेही उनको भिक्षा नहीं मिली । तब तो व्यासजी घूमते घूमते थककर यह सोचनेलगे ॥ ८९ ॥ कि क्या कारणहै जो सुरक्षित होनेपरभी भिक्षा नहीं मिलतीहै, ? फिर अपने सब शिष्योंको बुलाकर पूछने लगे कि ॥९०॥ जान पडताहै, तुम लोगोंकोभी भिक्षा नहीं मिली ? अच्छा तो मेरे कहनेसे दो तीन जन जाकर देखो तो (सही) कि इस नगरमें क्या हुआ जो ॥९१॥ बडे प्रयास उठानेपर दूसरे दिनभी कुछ भिक्षा नहीं मिली, संभवहै कि, यहांपर कोई बडाभारी अनिष्ट गिरा चाहता है ॥९२॥ क्या इस विशाल काशीपुरीमें एकबारही क्षणभरमें सर्वत्र अन्नका क्षय होगया ? किंवा समस्त

ययौभिक्षाटनंकर्तुंसशिष्यःपारितःपुरीम् ॥ सर्वत्रसपरिश्रांतःप्रतिसौधंमुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ नक्वापिलब्धवान्भिक्षांभाग्यहीनोधनंयथा ॥ अथाचिंतितवान्व्यासःपरिश्रांतःपरिभ्रमन् ॥ ८९ ॥ कोहेतुर्यन्नलभ्येतभिक्षायत्नेनरक्षिता ॥ अंतेवासिनआहूयव्यासःपप्रच्छचाखिलान् ॥ ९० ॥ भवद्भिरपिनोभिक्षापरिप्राप्तेतिगम्यते ॥ किमत्रपुरिसंवृत्तंद्वित्रायातममाज्ञया ॥ ९१ ॥ द्वितीयेह्न्यपियद्भिक्षानलभ्येतातियनतः ॥ अनिष्टंकिंचिदत्रासीन्महागुरुनिपातजम् ॥ ९२ ॥ अन्नक्षयोवासर्वस्यांनगर्यामभवत्क्षणात् ॥ राजदंडोथयुगपज्जातःसर्वपुरौकसाम् ॥ ९३ ॥ अथवावारिताभिक्षाकेनाप्यस्मासुचेर्ष्यया ॥ पुरौकसोभवन्दुस्थास्तूपसर्गेणकेनचित् ॥ ९४ ॥ किमेतदखिलंज्ञात्वासमागच्छतसत्वरम् ॥ द्वित्राः पवित्रचरणात्प्राप्यानुज्ञांगुरोरथ ॥ समाचख्युःसमागम्यदृष्ट्वर्धिंतत्पुरौकसाम् ॥ ९५ ॥ ॥ शिष्याऊचुः ॥ शृण्वंत्वाराध्यचरणानोपसर्गोत्रकश्चन ॥ नान्नक्षयोवासर्वस्यांनगर्यामिहकुत्रचित् ॥ ९६ ॥

पुरवासी लोग एक साथही राजदण्डमें फँसगये हैं ॥ ९३ ॥ अथवा हमलोगोंसे डाह रखकर किसीके कहनेसे भिक्षा देना रोकदियाहै, किंवा नगरवासियोंमें कोई ऐसा उपद्रव मच गयाहै जिससे वे लोग अस्वस्थ होगयेहैं ॥ ९४ ॥ इसका ठीक अनुसंधान (पता) लगाकर तुम लोग अभी चले आओ, इस प्रकारसे पूज्यपाद गुरुकी आज्ञा पाकर उस शिष्य मंडलीसे दो तीन जन वहांसे जाकर उस पुरके निवासी लोगोंकी संपत्ति देखआनेपर उनसे कहनेलगे॥९५॥ शिष्योंने कहा आराध्यचरण ! आप श्रवण करें, यहांपर न तो कोई उपसर्गही हुआहै, न समस्त नगर एकबार अन्नहीनही होगयाहै ॥ ९६ ॥

भला जहांपर साक्षात् भगवान् विश्वेश्वर विराजमानहैं, जहां स्वयं स्वर्गतरंगिणी गंगा बहरही हैं, और आपसरीखे महर्षिगण वास करतेहैं, वहांपर उपसर्गजनित भय कहांसे होसकताहै ॥९७॥ इस विश्वनाथकी पुरीमें सामान्य गृहस्थलोगोंकी जैसी संपत्ति है, वैसी तो अलका इत्यादिको कौनकहे (स्वयं) वैकुंठमेंभी नहीं है ॥९८॥ हे महामुने! यहांपर शिव निर्माल्य भोजियों (पंडों)के घरमें जितने रत्न पडे हैं, स्वयं रत्नाकर समुद्रमेंभी उतने नहीं होसकते ॥९९॥ इस नगरके घर घरमें जितनी अन्नोंकी राशियां पडी हैं, उतनी तो कल्पवृक्षनेभी इन्द्रकी पुरीमें कभी नहीं दीं होंगी ॥ १०० ॥ भला जिस नगरीमें स्वयं

यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्राऽमरधुनीस्वयम् ॥ त्वादृशायत्रमुनयःक्कभीस्तत्रोपसर्गजा ॥ ९७ ॥ समृद्धिर्यागृहस्थानामिहविश्वेशितुःपुरि ॥
नसर्धिरस्तिवैकुंठेत्वल्पास्ताअलकादयः ॥ ९८ ॥ रत्नाकरेषुरत्नानिनतावंतिमहामुने ॥ यावंतिसंतिविश्वेशनिर्माल्योपभुजांगृहे ॥ ९९ ॥
गृहेगृहेत्रधान्यानांराशयोयादृशःपुनः ॥ नतादृशःकल्पवृक्षदत्ताऐंद्रेपुरेक्कचित् ॥ १०० ॥ यत्रसाक्षाद्विशालाक्षीसुविस्तारफलप्रदा ॥
नतत्रपुरिसर्वस्यांनरोवैनिर्धनःक्कचित् ॥१॥ निर्वाणलक्ष्म्याःसदनेत्वस्मिन्नानंदकानने ॥ मोक्षोपियत्रसुलभःकिमन्यत्तत्रदुर्लभम् ॥ २ ॥
सीमंतिन्यःस्त्रियःसर्वाःपतिव्रतपरायणाः ॥ सर्वाभवानीरूपिण्योविश्वेशार्पितसत्क्रियाः ॥ ३ ॥ यावंतःपुरुषाःकाश्यांसर्वएवगणाधिपाः ॥
सर्वएवकुमारावैसर्वेतारकदृष्टयः ॥ ४ ॥ त्रिपुंड्रांकितभालायेतेसर्वेचंद्रमौलयः ॥ उपसर्गसहस्रैश्चपीड्यमानाअपीहये ॥ ५ ॥

विशालाक्षी देवी विशाल फलोंको देरही हैं, वहांके निवासियोंमें एकमनुष्यभी कभी निर्धन होसकता है ? ॥ १ ॥ मोक्षलक्ष्मीके विलास मंदिररूप इस आनन्दवनमें जब कि मुक्तिही सुलभ होगई है तब अन्य कौनसा वस्तु दुर्लभ होसकताहै ॥२॥ यहां समस्त स्त्रियां पतिव्रतमें तत्पर होनेसे साक्षात् भवानीकी मूर्ति होकर अपने समस्त उत्तम कर्मोंको शिवार्पण करदेती हैं ॥३॥ फिर इस काशीमें जितनेही पुरुष हैं वे सबके सब गणाधिपति, अथवा तारकदृष्टि कुमारके समान हैं॥४॥ यहांपर जो लोग माथेपर त्रिपुंड्र लगाये रहते हैं वे तो मानो साक्षात् चन्द्रशेखर ही हैं एवं, जो लोग सहस्रों उपसर्गोंसे पीडित होनेपरभी॥५॥

काशीको कभी नहीं छोडते वेही सब सर्वज्ञ हैं ! यहां तो बच्चेभी घरघरमें ब्रह्मवादहीका विवाद करते हैं ॥ ६ ॥ यहां गंगास्नानहीसे निष्पाप होकर सभी चतुरानन होगये हैं, और सभी क्षेत्रसंन्यासी मोक्षलक्ष्मीके पति बने हैं ॥ ७ ॥ सभी कोई हृषीकेश (गोस्वामी) पुरुषोत्तम, और अच्युतही जानपडते हैं, क्योंकि वे लोग इस क्षेत्रके परिग्राही होचुके हैं ॥ ८ ॥ स्त्रियां हों अथवा पुरुषहों सभीलोग यहांपर त्रिलोचन, चतुर्भुज ॥ ९ ॥ श्रीकंठ, और मृत्युंजय बनगये हैं इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । योंही मोक्षलक्ष्मीको अपने शरीरमें धारण करनेसे सभीकोई अर्द्धनारीश्वर होगये हैं ॥ ११० ॥

नत्यजंतिसदाकाशींसर्वज्ञाएवतेखिलाः ॥ गृहेगृहेपिबटवोब्रह्मवादविवादिनः ॥६॥ स्वर्धुनीधूतकलुषाःसंतीहचतुराननाः ॥ निर्वाणलक्ष्मीपतयःक्षेत्रसंन्यासकारिणः ॥ ७ ॥ सर्वएवहृषीकेशाःसर्वेवैपुरुषोत्तमाः ॥ अच्युताएवविज्ञेयाएतत्क्षेत्रपरिग्रहाः ॥ ८ ॥ स्त्रियोवापुरुषावापिसर्वएवनसंशयः ॥ सर्वएवत्रिनयनाःसर्वएवचतुर्भुजाः ॥ ९ ॥ श्रीकंठाःसर्वएवात्रसर्वेमृत्युंजयाध्रुवम् ॥ मोक्षश्रीश्रितवर्ष्माणस्त्वर्धनारीश्वरायतः ॥ ११० ॥ धर्मराशिःपरश्चात्रमहांतोऽत्रार्थराशयः ॥ सर्वेकामाःफलंत्यत्रकैवल्यंचात्रनिर्मलम् ॥ ११ ॥ नगर्भवाससंसर्गःकाशीसंस्थितिकारिणाम् ॥ नकलिश्चात्रबाधेतकालोनैवप्रबाधते ॥ १२ ॥ एनांसिनात्रबाधंतेविश्वेशशरणार्थिनः ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षान्नादबिंदुकलात्मकः ॥ १३ ॥ ध्वनिरूपीहितत्रास्तिप्रणवोमंत्रविग्रहः ॥ अतोविग्रहवंतोत्रसंतिवेदाविनिश्चितम् ॥ १४ ॥ सरस्वतीसरिद्रूपाद्यतःशास्त्रनिकेतनम् ॥ आनंदकाननंसर्वधर्मशास्त्रकृतालयम् ॥ १५ ॥

इस काशीमें धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षकी बडी भारीभारी ढेरें पडी हैं ॥ ११ ॥ यहांपर कलि और काल कोई बाधा नहीं पहुँचा सकते इसी कारणसे काशीमें वासकरनेवालोंको गर्भवासका क्लेश नहीं झेलना पडता ॥ १२ ॥ यहां तो विश्वनाथके शरणार्थियोंको पापोंका कुछ भय रहताही नहीं है । इस नगरीमें साक्षात् विश्वनाथकही नादविन्दु—कलात्मक होकर विराजमान रहते हैं ॥ १३ ॥ इसीसे यहांपर मंत्र स्वरूप प्रणव ध्वनिरूपी बनारहता है, फिर इसी कारणसे काशीमें चारोंवेद मूर्तिमान् होकर वास करते हैं यह बात सर्वथा निश्चितहै ॥ १४ ॥ इस स्थानमें साक्षात् वाग्देवी सरस्वती नदीरूप धरकर

वहतीहैं, इसीसे यह शास्त्र मंदिर आनन्दवन समस्त धर्मशास्त्रोंका प्रधान स्थान (अड्डा) कहाजाताहै ॥ १५ ॥ जितने देवते स्वर्गमें रहते हैं वे सब यहांपर वर्तमान हैं इसमें कुछ झूठ नहीं है। सदैव रात्रिके समय नागलोग रसातलसे काशीमें आकर अपने फणामणिके दीपोंसे भगवान् विश्वेश्वरकी आरती करतेहैं। कामधेनुओंके साथ सभी समुद्र यहांपर विश्वनाथको सदैव पंचामृतकी धाराओंसे नहवातेहैं। मन्दार, पारिजात, सन्तान,हरिचन्दन, और कल्पवृक्ष, समस्त वृक्षोंके साथ यहांपर सदैव वास करतेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ यहांपर समग्रदेवते, अशेष महर्षिगण, समस्त योगीलोग, सभी कोई

यावंतोदिविवैदेवास्तावंतोत्रमृषानहि ॥ नीराजयंतिविश्वेशंरात्रौरात्रौसदाऽहयः ॥ १६ ॥ स्वफणामणिदीपैश्चप्राप्यकाशींरसातलात् ॥ समुद्राःसर्वएवात्रकामधेनुव्रजान्विताः ॥१७॥ पंचपीयूषधाराभिर्विश्वेशंस्नपयंतिहि ॥ मंदारःपारिजातश्चसंतानोहरिचंदनः ॥ १८ ॥ कल्पद्रुमश्चपंचैतेतरुभिःसहसर्वदा ॥ १९ ॥ सर्वेसुरनिकायाश्चसर्वएवमहर्षयः ॥ योगिनःसर्वएवात्रकाशीनाथमुपासते ॥ १२० ॥ विद्यानांसदनंकाशीकाशीलक्ष्म्याःपरालयः ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदंकाशीकाशीसर्वात्रयीमयी ॥ २१ ॥ इतिश्रुत्वामुनिवरःपाराशर्योमहातपाः ॥ एवंबभाषेताञ्शिष्यान्पुनःश्लोकंपठंस्त्वमुम् ॥ २२ ॥ ॥ शिष्याऊचुः ॥ ॥ विद्यानांचाश्रयःकाशीकाशीलक्ष्म्याःपरालयः ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदंकाशीकाशीसर्वात्रयीमयी ॥ २३ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ निशम्येतितदाव्यासःक्रोधांधीकृतलोचनः ॥ क्षुत्कृशानुज्वलन्मूर्तिःकाशींशप्स्यतिकुंभज ॥ २४ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ माभूत्त्रैपूरुषीविद्यामाभूत्त्रैपूरुषंधनम् ॥ माभूत्त्रैपूरुषीमुक्तिःकाशीं व्यासःशपन्निति ॥ २५ ॥

काशीनाथकी उपासना करतेहैं ॥ १२० ॥ काशी समस्त विद्याओंकी जन्मभूमी, लक्ष्मीका उत्तम निवासस्थान, एवं त्रिगुणात्मिका यह समस्त काशीही मुक्तिक्षेत्र है ॥ २१ ॥ यह सुनतेही महातपस्वी मुनिवर पराशरात्मजने अपने शिष्योंसे यों कहा कि इस श्लोकको फिरसे तो पढो ॥ २२ ॥ शिष्योंने कहा—सब विद्याकी खानिहै, है कमलाको गेह। त्रयीमयी यह काशिका, प्रकट मुक्तिकी देह ॥ २३ ॥ स्कन्द बोले—हे कुम्भज ! यह सुनतेही व्यास क्रोधसे अन्धलोचन, और क्षुधाग्निसे प्रज्वलित मूर्ति होकर काशीको शापदेनेलगे ॥ २४ ॥ व्यासने कहा—काशीमें तीन पुरुषलों विद्या न होवे,

और तीनपुरुषतक धन नहीं रहे, एवं तीन पुरुष पर्यंत मुक्ति न मिले इस प्रकारसे व्यासने काशीको शाप दिया ॥ २५ ॥ कारण यह कि यहांके रहनेवाले विद्वान् लोग विद्याके अहंकारसे, धनी लोग धनके दर्पसे, एवं कृती लोग मुक्तिके गर्वसे (भिक्षुकोंको) भिक्षा नहीं देतेहैं ॥२६॥ यही समझकर व्यासने उस घडी काशीको शाप दिया, पर क्रोधित होकर शाप देनेपरभी वे मुनि भिक्षाके लिये फिर चले ॥ २७ ॥ आकाशकी ओर ताकतेहुए वे बडी शीघ्रतासे प्रत्येक घरोंमें घूमे, यहांतक कि समस्त नगरीका चक्कर लगा डालनेपरभी कहींसे भिक्षा नहीं पा सके ॥ २८ ॥ अन्ततो गत्वा सूर्यको अस्तोन्मुख होतेहुए देख भिक्षाके पात्रको फेंककर अपने आश्रमकी ओर चले ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त जब जानेलगे तब गृहके द्वारपर बैठीहुई साधारण गृहस्थकी स्त्रीका

गर्वःपरोत्रविद्यानांधनगर्वोत्रवैमहान् ॥ मुक्तिगर्वेणनोभिक्षांप्रयच्छंत्यत्रवासिनः ॥ २६ ॥ इतिकृत्वामतिंव्यासःकाश्यांशापमदात्तदा ॥ दत्त्वापिशापंसमुनिर्भिक्षितुंकोधवान्ययौ ॥ २७ ॥ प्रतिगेहंत्वरायुक्तःप्रविशन्व्योमदत्तदृक् ॥ बभ्रामनगरींसर्वांक्वापिभैक्षंनलब्धवान्॥ २८॥ अंशुमालिनमावीक्ष्यमनाग्लोहितमंडलम् ॥ भिक्षापात्रंपरिक्षिप्यनिर्ययावाश्रमंप्रति ॥ २९ ॥ अथगच्छन्महादेव्यागृहद्वारिनिषण्णया ॥ प्राकृतस्त्रीस्वरूपिण्याभिक्षायैप्रार्थितोतिथिः ॥ १३० ॥ ॥ गृहिण्युवाच ॥ ॥ भगवन्भिक्षुकास्तावद्यदृष्टानकुत्रचित् ॥ असत्कृत्यातिथिंनाथोनमेभोक्ष्यतिकर्हिचित् ॥ ३१ ॥ वैश्वदेवादिकंकर्मकृत्वागृहपतिर्मम ॥ प्रतीक्षेतातिथिपथंतस्मात्त्वमतिथिर्भव ॥ ३२ ॥ विनातिथिंगृहस्थोयस्त्वन्नमेकोनिषेवते ॥ निषेवतेऽघंसपरंसहितःस्वपितामहैः ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वरितमायाहिकुरुमेपत्युरीहितम् ॥ गार्हस्थ्यंसफलंकर्तुमिच्छतोतिथिपूजनात् ॥ ३४ ॥

स्वरूप धरकर महादेवी (भगवती अन्नपूर्णा) ने उनसे अतिथि होनेकी प्रार्थना की ॥१३०॥ गृहिणी बोलीं--भगवन् ! आज तो कहीं कोईभी भिक्षुक नहीं दीखपडता, और अतिथिको विना जिमाये मेरे स्वामी कभी भोजनही नहीं करते ॥३१॥ वे बहुत विलम्बसे वैश्वदेवादिक सब कर्म करके अतिथिका मार्ग जोहरहे हैं, सो आज आप अतिथि होजाइये ॥ ३२ ॥ क्योंकि जो गृहस्थ अतिथिको विना जिमाये आपही खालेताहै, वह अपने पितरोंके सहित केवल पापही भोजन करताहै ॥ ३३ ॥ अतएव आप तुरंत चलकर अतिथि पूजनसे अपने गृहस्थधर्मको सफल करनेकी इच्छा रखनेवाले मेरे स्वामीका

मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥ ३४ ॥ यह सुनतेही निष्क्रोध और आश्चर्ययुक्त होकर व्यासने उस स्त्रीसे कहा; व्यास बोले—हे भद्रे! तुम कौन हो? और यहां कहांसे आगई? पहिले तो मैंने तुमको कहीं नहीं देखाथा ॥ ३५ ॥ मेरी समझमें तो तुम कोई शुद्धहृदया धर्ममयी मूर्ति हो? क्योंकि तुम्हारे दर्शनहीसे मेरी समस्त इन्द्रियां बहुतही प्रसन्न होरहीहैं ॥ ३६ ॥ हे सर्वांगसुन्दरि! तुम अवश्यही सुधाहो, (स्यात्) मन्दराचलके आघातभयसे भीत होकर क्षीरसमुद्रको छोड यहां चलीआई हो ॥ ३७ ॥ किंवा तुम सुधाकर (चन्द्र) की कलाहो, जो अमावास्यामें राहुके भयसे घबडाकर स्त्रीका रूपधर इस

इतिश्रुत्वागतामर्षोव्यासस्तामाहविस्मितः ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ भद्रेकात्वंकुतःप्राप्तापूर्वंदृष्टानकुत्रचित् ॥ ३५ ॥ मन्येधर्ममयी मूर्तिः कापित्वंशुचिमानसा ॥ त्वद्दर्शनात्परांप्रीतिंसंप्राप्तानींद्रियाणिमे ॥ ३६ ॥ त्वंसुधैवभवेत्प्रायःसर्वावयवसुंदरि ॥ मंदराघातसंत्रासात्यक्तक्षीरार्णवस्थितिः ॥ ३७ ॥ कलासुधाकरस्याथकुहूराहुभयार्दिता ॥ सीमंतिनीस्वरूपेणतिष्ठेःकाश्यामनिर्भया ॥ ३८ ॥ अथवाकमलासित्वंविहायकमलालयम् ॥ निशिसंकोचिनंकाश्यांविकाशिन्यांवसेःसदा ॥ ३९ ॥ किंवानुकरुणामूर्तिरिहकाशिनिवासिनाम् ॥ सर्वदुःखौघहरिणीपरानंदप्रदायिनी ॥ १४० ॥ वाराणस्याःकिमथवाऽधिष्ठात्रीदेवतात्वमु ॥ किंवानिर्वाणलक्ष्मीस्त्वंयाकाश्यां परिगीयते ॥ ४१ ॥ श्वपाकंयायजूकंवाप्रांतेऽलंकुर्वतीसमम् ॥ मद्भाग्यंवापरिणतमेतद्योषित्स्वरूपतः ॥ ४२ ॥ अथवासाभवेन्नूनंयाक्षेत्रे परिगीयते ॥ भक्तपोतप्रदाभक्त्याभवानीभवनाशिनी ॥ ४३ ॥

काशीमें निश्शंक वास करतीहो ॥ ३८ ॥ अथवा तुम साक्षात् लक्ष्मी हो जो अपने वासालय कमलको रात्रिमें सकुचतेहुए देखकर सर्वदा खिली रहनेवाली काशीपुरीमें निवास करने लगीहो ॥ ३९ ॥ अथवा काशीवासियोंके सर्वदुःखौघकी हरण करनेवाली परमानन्ददात्री तुमहीं दयाकी मूर्ति हो ॥ १४० ॥ नहींतो तुम इस वाराणसी नगरीकी अधिष्ठात्री देवता होगी, अथवा काशीमें जो मुक्ति लक्ष्मी रहतीहैं तुम वहतो नहींहो ॥ ४१ ॥ जो चाण्डाल और वाजपेयी (ब्राह्मण) परभी अन्त समयमें समान दृष्टि रखतीहैं। किंवा मेरा भाग्यही तो नहीं इस स्त्रीका रूपधरकर परिणत हुआहै ॥४२॥ हो न हो तुम

भक्तोंको पार उतारनेवाली वह भवानी (अन्नपूर्णा) तो नहींहो जिसका माहात्म्य इस क्षेत्रमें गायाजाताहै ।।४३।। तुम अवश्यही न तो स्त्रीहो, न असुरीहो, न किन्नरीहो, न विद्याधरीहो, न नागिनहो, न गंधर्वीहो; न यक्षिणीही हो ।।४४।। वास्तवमें तुम मेरे मोहकी दूरकरनेवाली इष्टदेवताही हो अस्तु हे सुन्दरि ! तुम जो चाहो सोहो, इस चिन्ताका तो मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।।४५।। पर इसघडी तुम्हारे दर्शनहीसे मैं पराधीन होगयाहूं, मैं जो कुछ तुम आज्ञा दोगी उसे अवश्यही करूंगा।।४६।। हे शुभलोचने ! एक तपस्याके व्ययको छोडकर शेष जो कर्मकरनेकी तुम्हारी अनुमति मिलेगी उसेही मैं करडालूंगा।।४७।। तुम्हारे ऐसी साध्वी स्त्रियोंकी बात साधुओंकी बडाईको कभी नहीं बिगाड सकती, परन्तु हे सुभगे ! तुम कौनहो ? यह बात मुझसे सच सच कहदो।।४८।।

सर्वथैवननारीत्वंनासुरीनैवकिन्नरी ।। विद्याधरीननोनागीनोगंधर्वीनयक्षिणी ॥ ४४ ॥ त्वमिष्टदेवतैवासिकाचिन्मेमोहहारिणी ॥ केयंचिंताथवामेत्रकाचित्त्वंभवसुंदरि ॥ ४५ ॥ परवानस्म्यहंजातस्तवदर्शनतोऽधुना ॥ अवश्यमेवकर्तास्मितवादेश्यंतदादिश ॥ ४६ ॥ एकंतपोव्ययंहित्वाकारयिष्यसियत्पुनः ॥ तदेवाहंकरिष्यामिविधेयःशुभलोचने ॥ ४७ ॥ नवचस्त्वादृशीनांहिमहत्त्वंहापयेत्सताम् ॥ परंत्वंकासिसुभगेसत्यंब्रूहिममाग्रतः ॥ ४८ ॥ अथवातवदेहेस्मिन्कासत्यंनिर्मलेक्षणे ॥ इतिपृष्टाहमुनिनासाविश्वाथुर्घटोद्भव ॥ ४९ ॥ अत्रत्यस्यैवहिमुनेगृहिणीगृहमेधिनः ॥ नित्यंवीक्ष्येचरंतंत्वांभिक्षांशिष्यगणैर्वृतम् ॥ १५० ॥ त्वमेवमांनोजानीषेजानेत्वामहमेवहि ॥ तपस्विन्किंबहूक्तेनयावन्नास्तंव्रजेद्रविः ॥ ५१ ॥ प्राणनाथस्यमेतावदातिथ्यंसफलीकुरु ॥ तच्छ्रुत्वासमुनिःप्राहविनयानतकंधरः ॥ ५२ ॥

अथवा हे निर्मलेक्षणे ! तुम्हारे इस पवित्र शरीरमें असत्यका लेश कहां है ? हे घटोद्भव ! तब तो विश्वजननी व्यासकी इन सब बातोंको सुनकर कहने लगीं कि॥४९॥ हे मुने ! यहांहीके एक गृहस्थकी मैं कुटुम्बिनी हूं, और आपको अपने शिष्योंके सहित भिक्षाके लिए जातेहुए नित्यही देखतीहूं॥१५०॥ आप मुझे नहीं जानते पर मैं आपको भलीभाँतिसे पहिचानती हूं, हे तपस्विन् ! बहुत बात करनेका अवसर नहीं है, जबतक सूर्यनारायण अस्त नहीं होजाते ॥ ५१ ॥ उसके भीतरही मेरे स्वामीके आतिथ्यको आप सफल कीजिए, यह सुनकर व्यासऋषिने बडी नम्रताके साथ कहा ॥ ५२ ॥

(व्यास बोले)—हे सुभगे ! मेरा एक नियम है, जहांपर उसका प्रतिपालन होताहै, वहींपर मैं भिक्षा करताहूं नहीं तो नहीं करसकता ॥ ५३ ॥ इस भाँतिसे व्यासका कथन सुनकर भगवतीने कहा कि, हे मतिमन् ! आपका जो कुछ नियम हो उसे आप निःशंक होकर कहिए ॥ ५४ ॥ क्योंकि मेरे स्वामीकी कृपासे यहांपर किसी वस्तुकी न्यूनता नहीं है, यह सुनतेही बडे प्रसन्नचित्तसे व्यास बोले॥५५॥ मैं अपने दशसहस्र शिष्योंको अपनेही साथ खिलाताहूं। और सूर्यके रहतेही खालेताहूं, नहीं तो फिर भोजन नहीं करता ॥ ५६ ॥ यह सुनतेही प्रसन्नमुखसे उस स्त्रीने कहा कि, हे मुने ! तो फिर आप विलम्ब

॥ व्यासउवाच ॥ ॥ अस्तिमेनियमःकश्चित्ससिद्धिंचेद्व्रजेच्छुभे ॥ एकभिक्षांतदाहंतुकरिष्येनान्यथापुनः ॥ ५३ ॥ तपस्व्युदीरितंश्रुत्वासाप्रोवाचवचस्ततः ॥ अविशंकंवदमुनेकस्तोऽस्तिनियमःसुधीः ॥ ५४ ॥ ममभर्तुःप्रसादेनकिंचिन्न्यूनंयतोऽत्रन ॥ इति श्रुत्वाप्रहृष्टात्मासतामाहतपोधनः ॥ ५५ ॥ अयुतंममशिष्यायेतैःसपक्तिमहंवृणे ॥ अस्तंयावन्नयात्यर्कस्तावद्भोक्ष्येन्यथानहि ॥ ५६ ॥ निशम्येतिप्रहृष्टास्यासाप्रोवाचमुनिंततः ॥ किंविलंबेनतद्याहिसर्वांश्शिष्यान्समाह्वय ॥ ५७ ॥ पुनःप्राहसतांसाध्वित्वेतावत्सिद्धिरस्ति ते ॥ येनतृप्तिंगमिष्यंतिमच्छिष्याःसर्वएवते ॥ ५८ ॥ स्मित्वाथसाब्रवीत्तंतुमुनेभर्तुरनुग्रहात् ॥ सिद्धमेवसदैवास्तेसर्वंतावन्ममालये ॥ ५९ ॥ यावतार्थिजनस्तृप्तिमेतिसर्वोपिसर्वशः ॥ वयंनताहङ्महिलाभर्तृसंदेहकारिकाः ॥ १६० ॥ आयातोर्थीयदागेहेसिद्धंकार्यंतदैवहि ॥ परिपूर्णादिशःसर्वाःपरिपूर्णामनोरथाः ॥ ६१ ॥

क्यों करतेहैं ? अपने सब शिष्योंकोभी बुलालीजिये ॥ ५७ ॥ फिर व्यासने उस स्त्रीसे कहा कि हे साध्वि ! क्या तुम्हारी सिद्धि ऐसी है ? जिससे मेरे सब शिष्योंकी तृप्ति होजावेगी ? ॥ ५८ ॥ इस पर उस स्त्रीने कुछ हँसकर कहा, हे महर्षे ! पतिदेवके अनुग्रहसे मेरे घरमें उतनी सामग्री सदैव सिद्धही रहतीहै ॥ ५९ ॥ जितनेमें समस्त अर्थिजन सब प्रकारसे सन्तुष्ट होजासकें, हमलोग ऐसी महिला नहीं हैं, जो पतिको सन्देहमें डालदेवें ॥ १६० ॥ कि जब अतिथि घरमें आजावें तब सामग्री सिद्ध करनेलगें । स्वामीके चरणोंकी कृपासे मेरेलिए सबदिशायें भरपूर और सभी मनोरथ परिपूर्ण एवं गृहमें

समस्तवस्तु सुसज्जितही रहते हैं। सो आप अभी जाइये और चाहे जितने अन्नार्थियोंका साथ लिवालाइये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ क्योंकि अतिथिप्रिय मेरेपति बहुतही बूढे हैं, वे (अब) बहुत विलम्ब नहीं सहसकते, इसलिये आप शीघ्रही जाकर उनके आतिथ्य सत्कारके लिए सूर्यास्तके पहिलेही आजाइये। तब तो बडी प्रसन्नतासे अपने सब शिष्योंको चारों ओरसे बुलाकर ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तुरत लौट आये और उसे अपना मार्ग जोहते देखकर कहनेलगे। हे मातः! (हम) सब लोग आगये अब तुरंत भोजन दो ॥ ६५ ॥ अब तो सूर्यनारायणभी अस्ताचलपर जायाही चाहतेहैं। ऐसा कहनेके उपरान्त वे सब तपस्वी लोग मंदिरके भीतर चलेगये ॥ ६६ ॥ भीतर पहुँचतेही वहांकी मणियोंके किरणराशिसे सूर्यकी शोभाको पाकर वे सब तपस्विगण

परिपूर्णगृहंसर्वपत्युःपादप्रसादतः ॥ याहितूर्णसमायाहियात्रद्न्नार्थिभिःसह ॥ ६२ ॥ पतिर्मेबहुकालीनःकालंनसहतेचिरम् ॥ प्रियातिथिःप्रियतमस्तदातिथ्यसमृद्धये ॥ ६३ ॥ आशुगत्वासमागच्छयावन्नास्तमितोरविः ॥ इतिप्रहृष्टस्त्वरितःशिष्यानाहूयसर्वतः ॥ ६४ ॥ आगत्यतांपुनःप्राहदृष्ट्वातन्मार्गलोचनान् ॥ मातःसर्वेसमायातास्त्वरितंदेहिभोजनम् ॥६५॥ अस्ताचलांइसमयासमियादेषभास्करः ॥ इत्युक्त्वामंदिरस्यांतर्विविशुस्तेतपोधनाः ॥ ६६ ॥ तन्मंडपमणिज्योतिस्तत्याहितदिनश्रियः ॥ यावद्गच्छंतितत्सौधमध्यमाशुतपस्विनः ॥ ६७ ॥ पादौप्रक्षाल्यतावत्तैकैश्चित्कैश्चित्समर्च्यच ॥ कतिचित्परिविष्टान्नाभोक्तुमेवोपवेशिताः ॥ ६८ ॥ तद्दिव्यपाकसंभारान्दृष्ट्वातदृष्ट यःक्षणात् ॥ परांतृप्तिमुपागच्छन्घ्राणन्यामोदराजिभिः ॥ ६९ ॥ अतितृप्तिंसमापन्नास्तेतदन्ननिषेवणात् ॥ आचांताश्चंदनैःस्रग्भिरंबरैःपरिभूषिताः ॥ १७० ॥ अथसांध्यंविधिंकृत्वाप्रोपविश्यतदग्रतः ॥ अभिनंद्यमहाशीर्भिर्यावद्गंतुंप्रचक्रमुः ॥ ७१ ॥

ज्योंही आँगनमें पहुँचे ॥ ६७ ॥ त्योंही कोई तो उनलोगोंके पैर धोनेलगे, कोई पूजा करनेलगे और कोई समस्त पकवानोंको परोसकर भोजनही करानेके लिए बैठानेलगे ॥६८॥ वे सब लोग उन सब उत्तमोत्तम व्यंजनोंको देख, तथा उनके दिव्यसुगन्धोंको सूँघतेही क्षणमात्रमें संतुष्ट होगये ॥६९॥ फिर उन पकवानोंके भोजन करनेसे तो असीम तृप्तिको प्राप्त हुए। तदनन्तर हाथ मुँह धोकर चन्दन, माला, वस्त्र इत्यादिसे भूषित होनेपर ॥ १७० ॥ सायंकालकी सन्ध्या इत्यादि करके गृहस्वामीके सन्मुख बैठकर बहुतेरे आशीर्वादोंसे अभिवन्दन करतेहुए ज्योंही जानेका उपक्रम करनेलगे ॥ ७१ ॥

त्योंही वृद्ध गृहस्थने गृहिणीकी ओर ताककर उसका दिया, तब उस वृद्धाने पूछा कि, तीर्थमें वास करनेवालोंका मुख्य धर्म क्या है ? ॥ ७२ ॥ कि हमलोग उसीके अनुसार इस तीर्थमें वर्ताव करें । धर्मज्ञश्रेष्ठ वेदव्यास गृहिणीके प्रश्नको सुनकर ॥ ७३ ॥ एवं उसके अपूर्व सादर आतिथ्यसत्कारसे संतुष्ट होनेके कारण प्रसन्नतापूर्वक कुछ हँसकर उस परमसर्वज्ञा गृहिणीसे कहनेलगे ॥ ७४ ॥ व्यासने कहा—हे स्वच्छहृदये ! मातः ! तुमने हमलोगोंको परमोत्तम मिष्टान्न खिलाकर बडा सत्कार कियाहै, हे देवि ! जो कुछ कार्य तुम करतीहो वही धर्म है उससे भिन्न कोई दूसरा धर्म नहींहै ॥ ७५ ॥ पतिदेवकी सेवामें तत्पर रहनेसे धर्मका मर्म तुम्हीं समझतीहो, पर यदि सचमुच मुझसे पूछती ही हो तो जो बनपडेगा मैंभी तुमसे कहताहूं ॥ ७६ ॥

तावद्वृद्धगृहस्थेनगृहिणीसाकटाक्षिता ॥ पप्रच्छतीर्थेवसतांकोधर्मोमुख्यएवहि ॥ ७२ ॥ तथातदनुसारेणतीर्थेवर्तामहेवयम् ॥ सर्वधर्मविदांश्रेष्ठःश्रुत्वातद्गृहिणीवचः ॥ ७३ ॥ तदादरसुधाक्लिन्नमहान्नस्वादतर्पितः ॥ प्रत्युवाचमुनिर्व्यासःस्मित्वातांसर्ववित्तमाम् ॥ ७४ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ स्वच्छांतःकरणेमातर्महामिष्टान्नमानदे ॥ सएषधर्मोनान्योस्तियत्त्वयापरिचर्यते ॥ ७५ ॥ त्वमेवधर्मंजानासिपतिशुश्रूषणेरता ॥ यदिपृच्छसिमांसत्यंतदाकिंचनवच्मिते ॥ ७६ ॥ वक्तव्यमेवपृष्टेनमनागपिविजानता ॥ सएवधर्मःसुभगेनान्योधर्मोस्तिकश्चन ॥ ७७ ॥ येनैषतोषमायातितवभर्ताचिरंतनः ॥ ॥ गृहिण्युवाच ॥ ॥ अयंधर्मोभवेन्नूनंक्रियतेचस्वशक्तितः ॥ ७८ ॥ साधारणानिधर्माणिसंपृच्छेतानिमेवद ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ अनुद्वेगकरंवाक्यंपरोत्कर्षसहिष्णुता ॥ ७९ ॥ विचार्यकारितानित्यंस्वधिष्ण्योदयचिंतनम् ॥ गृहस्थउवाच ॥ ॥ एषुधर्मेषुभोविद्वंस्त्वयिकोस्तीहतद्वद ॥ १८० ॥

क्योंकि पूछनेपर यदि कुछभी जानता रहे तो उसे कहनाही उचितहै । हे सुभगे ! जिसमें आपके ये बूढेपति सन्तुष्ट रहें वही एकमात्र धर्महै, तद्भिन्न कोई दूसरा धर्म नहींहै । गृहिणीने कहा—हे मुने ! यह तो धर्म निश्चय ठीकहींहै और यथा शक्ति कियाभी जाताहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ परन्तु मैं आपसे साधारण धर्मोंको पूछती हूं आप उनको मुझसे कहें ! व्यासबोले—ऐसी बात कहना जिसमें किसीको कुछ क्लेश न हो, दूसरेकी उन्नति देखकर उसपर ईर्ष्या न करना, सर्वदा सबकामोंको भलीभाँति विचारपूर्वक करना, और अपनेगृहकी उन्नतिका सोचना, (येही साधारण धर्म हैं) ॥ ७९ ॥ दोहा—मधुर वचन नित

बोलिए, कभू करिय मत डाह। सदा विचारिय काज सब, निजगृह उन्नति चाह ॥ (इसी बीचमें बूढे) गृहस्थ (बाबा)ने कहा—हे विद्वन् ! इन सब धर्मोंमें कौनसा धर्म आपमें है, उसे तो यहां (पर) कह सुनाइये ! ॥ १८० ॥ तबतो व्यासजीको ठकमुरींसी लगगई, और कुछभी उत्तर नहीं देसके। अनंतर (वृद्ध) गृहस्थने फिर उस तपोधन (व्यास) से कहा ॥ ८१ ॥ यदि तुम इन्हीं सबको धर्म मानते हो जिनको अभी कहाहै, तबतो शापका उत्तम दान देकर तुमने अपनी दांतताको भलेही (स्पष्टकर) दिखादिया ! ॥ ८२ ॥ दया और धीरताकी पराकाष्ठा तुम्हींमें है, फिर काम और क्रोधको बांधरखना तुम्हाराही कामहै, ॥ ८३ ॥ और उद्वेगरहित बात बोलनेका ढंग तो तुम्हीं जानतेहो, हां, दूसरेकी बढती देखकर प्रसन्न होनेकी (निराली)

ततःस्थगितवद्व्यासस्तस्थौकिंचिन्नचोक्तवान् ॥ ततःपुनर्गृहस्थेनसहिप्रोक्तस्तपोधनः ॥ ८१ ॥ यद्येतएववैधर्मास्त्वयायेप्रतिपादिताः ॥ तद्दांततातवैवेक्षिदानंशापस्यचोत्तमम् ॥ ८२ ॥ त्वय्येवहिदयासम्यग्धैर्यंत्वय्येवचोत्तमम् ॥ त्वयिसंभावनास्त्येवकामक्रोधविनिग्रहे ॥ ८३ ॥ त्वमेवसम्यग्जानीषेवक्तुंचोद्वेगवर्जितम् ॥ त्वय्येवसम्यग्दृश्येतपरोत्कर्षसहिष्णुता ॥ ८४ ॥ विचार्यकारितायाश्चत्वमेवनिलयोमहान् ॥ स्वस्यधिष्ण्यस्यचभवांश्चिंतयेदुदयंध्रुवम् ॥ ८५ ॥ ममैकंब्रूहिभोविद्वन्शापंदद्याच्चयःक्रुधा ॥ अलभन्स्वार्थसंसिद्धिमभाग्यात्तस्यकस्यसः ॥ ८६ ॥ ॥ व्यासउवाच ॥ ॥ यःस्वार्थसिद्धिमलभन्नभाग्याच्छपतिक्रुधा ॥ सशापःप्रत्युतभवेच्छप्तुरेवाविवेकिनः ॥ ८७ ॥ ॥ गृहस्थउवाच ॥ ॥ भवताभ्रमताविप्रनाप्ताभिक्षायदाप्यहो ॥ तदापराद्धांकिमिहवराकैःक्षेत्रवासिभिः ॥ ८८ ॥

छटाभी तुम्हींमें दिखाई देतीहै ॥ ८४ ॥ फिर विचार कारिताके तो एकमात्र तुम्हीं कोशागार हो, (रहा) अपने गृहके उदयका चिंतन सो तो मानो आपहीके बांटे पडा है ॥ ८५ ॥ अच्छा, हे विद्वन् ! मेरी एकबातका तो उत्तर कहो कि यदि कोई अभाग्यवश स्वार्थकी सिद्धिके नहीं पानेपर क्रोधकरके शाप देदेवे, तो वह शाप किसपर पडताहै ? ॥ ८६ ॥ व्यासने कहा—जो कोई दुरदृष्टवश अपने कार्यके सिद्ध नहीं होनेसे क्रोधकरके शाप देबैठताहै, वह शाप उस अविवेकी दाताहीपर पडताहै ॥ ८७ ॥ गृहस्थ बोले अहोविप्र ! यदि (बहुत) घूमने फिरनेपरभी आपको भिक्षा नहीं मिली तो भला इसमें

विचारे क्षेत्रवासियोंने आपका क्या अपराध किया ? ॥ ८८ ॥ हे तपोधन ! मेरी बात सुनो, जो कोई मेरी इस राजधानीमें दूसरेकी संपत्तिको नहीं देख सकता वह तो स्वयं शापग्रस्तहै ॥ ८९ ॥ हे कोपनमुने ! शापशून्य ! मेरे इस क्षेत्रमें आजसे तुम मतरहो, क्योंकि यहां वसनेकी तुम्हारी योग्यता नहीं है ? ॥ ९० ॥ तुम अभी इस क्षेत्रसे बाहर चलेजाओ, तुम्हारे ऐसे लोगोंके रहनेयोग्य मोक्षसाधक मेरा यह क्षेत्र (कभी) नहीं होसकता ॥ ९१ ॥ मेरे इस क्षेत्रके निवासियोंसे जो कोई थोडीसीभी दुष्टता करताहै उस अत्याचारके फलसे उसे रुद्रपिशाचही होना पडता है ॥ ९२ ॥ इस वचनके सुनतेही व्यासजीका तालु और ओठ चटकनेलगा, वे बिचारे थरथर काँपतेहुए भगवतीके शरणागत होकर उनके चरणोंके आगे लोटनेलगे ॥ ९३ ॥ और बहुतही

तपस्विञ्शृणुमेवाक्यंराजधान्यांममेहयः ॥ ऋद्धिंद्रष्टुंनशक्नोतिपरिशप्तःसएवहि ॥ ८९ ॥ अद्यप्रभृतिनक्षेत्रेमदीयेशापवर्जिते ॥
आवसक्रोधनमुनेनवासेयोग्यतात्रते ॥ १९० ॥ इदानीमेवनिर्गच्छबहिःक्षेत्रादितोभव ॥ त्वद्विधानांनयोग्यंमेक्षेत्रंमोक्षैकसाधनम् ॥९१॥
अत्राल्पमपियद्दौष्ट्यंकृतंमत्क्षेत्रवासिनाम् ॥ तद्दौष्ट्यस्यपरीपाकोरुद्रपैशाच्यमेवहि ॥ ९२ ॥ तच्छ्रुत्वावेपमानःसपरिशुष्कौष्ठतालुकः ॥
जगामशरणंगौरींलुठंस्तच्चरणाग्रतः ॥९३॥ उवाचचवचोमातस्त्राहित्राहिभृशंरुदन् ॥ अनाथस्त्वत्सनाथोहंबालिशस्तवबालकः ॥ ९४ ॥
शरणागतंचसंत्राहिरक्षमांशरणागतम् ॥ बहूनामागसांगेहमस्माकंदुष्टमानसम् ॥ ९५ ॥ शंभुशापोऽन्यथाकर्तुंभवत्यापिनशक्यते ॥
अहंचशरणायातस्तदेकंक्रियतांशिवे ॥ ९६ ॥ प्रत्यष्टमिसदाक्षेत्रेप्रतिभूतंचपार्वति ॥ दिशप्रवेशनादेशंनेशस्त्वद्वाक्यलंघकः ॥ ९७ ॥
इत्युक्तातेनमुनिनाभवानीकरुणाजनिः ॥ मुखंमहेशितुर्वीक्ष्यतथेत्याहदतदाज्ञया ॥ ९८ ॥

रोरोकर यह कहनेलगे कि हे मातः ! मुझ अनाथ और अज्ञान बालकको सनाथ करके रक्षाकरो और बँचालो ॥ ९४ ॥ हे जननि ! हमलोगोंका दुष्ट हृदय बहुतेरे अपराधोंका भवन है, अतएव मुझ शरणागतकी रक्षाकरो मैं आज आपका शरणागत हूं मुझपर दयाकरो ॥ ९५ ॥ हे शिवे ! यद्यपि महादेवके शापको अन्यथा करदेनेकी शक्ति किसीमेंभी नहीं पर मैं आपका शरणागतहूं, अतएव इस दासपर दयाकरके ऐसा करदो ॥ ९६ ॥ जिसमें प्रतिअष्टमी और चतुर्दशीको मैं सदैव इस क्षेत्रमें प्रवेश करसकूं, हे पार्वति ! भगवान् शंकरभी आपकी बात नहीं टालेंगे ॥९७॥ व्यासकी विनती सुनकर करुणामयी अन्नपूर्णा

देवीने विश्वनाथ स्वामीके मुखकी ओर ताककर उनकी आज्ञानुसार व्याससे "तथास्तु" कहदिया ॥ ९८ ॥ तदनन्तर वे दोनोंही क्षेत्रके मंगलकारक महादेव और पार्वती अन्तर्धान होगये, और व्यासभी अपनेही अपराधको कहतेहुए क्षेत्रके बाहर निकलगये ॥ ९९ ॥ वे तबसे दृष्टिके दौडहीमें रात्रि दिन क्षेत्रका दर्शन करतेहुए अष्टमी और चतुर्दशी आनेपर क्षेत्रके भीतर सदैव प्रवेश करतेहैं ॥ २०० ॥ लोलार्कसे अग्निकोणमें गंगाके पूर्वतटपर बैठे रहकर वे आजतक (सदैव) काशीके मंदिरराजिकी शोभाको देखते रहतेहैं ॥ १ ॥ स्कन्द बोले—हे कुम्भजमुने ! इस प्रकारसे महर्षिवेदव्यास उस क्षेत्रमें शापदेवेंगे,

अथांतर्हितवंतौतौशिवौक्षेत्रशिवंकरौ ॥ व्यासोपिनिर्ययौक्षेत्रात्स्वापराधवशंवदन् ॥ ९९ ॥ अहोरात्रंसपश्यन्वैक्षेत्रंदृष्टेरदूरगम् ॥ प्राप्याष्टमींचभूतांचमध्येक्षेत्रंसदाविशेत् ॥ २०० ॥ लोलार्कादग्निदिग्भागेस्वर्धुनीपूर्वरोधसि ॥ स्थितोद्यापिपश्येत्सकाशीप्रासादराजिकाम् ॥ १ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इत्थंकुंभजसव्यासःक्षेत्रेशापंप्रदास्यति ॥ क्षेत्रशापप्रदानाच्चबहिर्यास्यतितत्क्षणात् ॥ २ ॥ अतएवाविमुक्तस्यक्षेत्रस्यशुभशंसिनः ॥ भविष्यतिशुभंनित्यमन्यथात्वन्यथैवहि ॥ ३ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंव्यासशापविमोक्षणम् ॥ महादुर्गोपसर्गेभ्योभयंतस्यनकुत्रचित् ॥ २०४ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडेउत्तरार्धेव्यासशापविमोक्षणंनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ॥ छ ॥

और उसी कारणसे तुरत आप क्षेत्रसे बाहर होजावेंगे ॥ २ ॥ इसलिये जो कोई अविमुक्तक्षेत्रका भला चाहेगा, उसकाभी सदैव भलाही होगा, इसके विरुद्ध करनेसे विपरीतही फल मिलेगा ॥३॥ जिसके कर्णकुहरमें यह व्यास–शाप–विमोक्षणनामक पवित्र अध्याय प्रवेश करेगा उसे कभी बडेसे बडे उपसर्गोंका भी भय नहीं होने पावेगा ॥२०४॥ सोरठा—रामनगर एक ठाम, पुरते गंगापारमें । तहाँ व्यासको धाम, काशिराजके दुर्गमें ॥ १ ॥ तँह मेला विख्यात, होत माघके मासभर । व्यास दरस हित जात, काशीवासी नारिनर॥२॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणे चतुर्थे काशीखण्डे उत्तरार्धे भाषाटीकायां षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

अगस्त्य बोले—हे शिवनन्दन ! वेदव्यासकी इस भविष्य घटनाके सुननेसे मैं बडाही आश्चर्यान्वित हुआ, हे षडानन ! अब आप आनन्दकाननमें जिन जिन स्थानोंपर जो जो लिंगस्वरूप तीर्थहैं, उनको (भी) मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥ स्कन्दने कहा—हे कुम्भयोने ! भगवतीके पूछनेपर भगवान्ने इस विषयमें जो कहाथा उसे ज्योंका त्यों कहताहूं, श्रवणकरो ॥ ३ ॥ देवीने कहाथा (कि) हे प्रभो ! महेश्वर ! इस काशीधाममें जहां जहांपर जो जो तीर्थहैं, आप उन सबको यथास्थान मुझसे कीर्तन कीजिये ॥ ४ ॥ (तब) देवदेवने उत्तर दिया था कि हे विशालाक्षि ! (तुमने जो पूछा है, उसे मैं कहताहूं) सुनो, हे देवि ! सभी लिंग तीर्थ कहे जाते हैं, और इन्हीं मूर्तियोंहीके संबन्धसे जलाशयभी तीर्थके नामसे कहेगयेहैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा, विष्णु,

॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ एतद्भविष्यंश्रुत्वाहंव्यासस्यशिवनंदन ॥ आश्चर्यभाजनंजातस्तीर्थानिकथयाधुना ॥१॥ आनंदकाननेयानि यत्रसंतिषडानन ॥ तानिलिंगस्वरूपाणिसमाचक्ष्वममाग्रतः ॥२॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ अयमेवहिवैप्रश्नोदेव्यैदेवेनभोतदा ॥ यादृशःक थितोवच्मितादृशंशृणुकुंभज ॥३॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ यानियानिहितीर्थानियत्रयत्रमहेश्वर ॥ तानितानीहमेकाश्यांतत्रतत्रवदप्रभो ॥४॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ शृणुदेविविशालाक्षितीर्थंलिंगमुदाहृतम् ॥ जलाशयेपितीर्थाख्याजातामूर्तिपरिग्रहात् ॥ ५ ॥ मूर्तयोब्रह्मविष्ण्वर्क शिवविघ्नेश्वरादिकाः ॥ लिंगैंशैवमितिख्यातंयत्रैतत्तीर्थमेवतत् ॥ ६ ॥ वाराणस्यांमहादेवःप्रथमंतीर्थमुच्यते ॥ तदुत्तरेमहाकूपःसारस्वतप दप्रदः ॥७॥ क्षेत्रपूर्वोत्तरेभागेतद्दृष्टंपशुपाशहृत् ॥ तत्पश्चाद्विग्रहवतीपूज्यावाराणसीनरैः ॥ ८ ॥ सापूजिताप्रयत्नेनसुखवस्तिप्रदासदा ॥ महादेवस्यपूर्वेणगोप्रेक्षंलिंगमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्सम्यग्गोदानजनितंफलम् ॥ गोलोकात्प्रेषितागावःपूर्वंयच्छंभुनास्वयम् ॥१०॥

सूर्य, शिव, और गणेशादिक देवतोंकी तो मूर्तियां होतीहैं, पर शिवका लिंगही प्रसिद्ध है, फिर ये सब जहां रहतेहैं वही तीर्थ कहाताहै ॥ ६ ॥ इस वाराणसीपुरीमें प्रथमतीर्थ तो महादेवही हैं, उनके उत्तरओर सारस्वतपदका देनेवाला एक बडाभारी कूप है ॥ ७ ॥ क्षेत्रके पूर्वोत्तरभागमें अवस्थित उस कूपका दर्शन करनेसे मनुष्य पशुपाशसे मुक्त होजाताहै, उसके पिछवाडे मूर्तिमती वाराणसी देवी विराजमानहैं, ॥ ८ ॥ वह लोगोंसे पूजित होनेपर सुखपूर्वक सदा निवासका दान करतीं हैं । महादेवके पूर्व गोप्रेक्षनामक उत्तम लिंग अवस्थितहै ॥ ९ ॥ उसके दर्शन करनेसे गोदानका संपूर्णफल होताहै,

पूर्वकालमें भगवान् शंकरने स्वयं गोलोकसे गायोंको भेजाथा ॥ १० ॥ और वे सब काशीमें आई अतएव उस लिंगका नाम गोप्रेक्षपडा है गोप्रेक्षके दक्षिणभागमें दधीचीश्वरनामक लिंगहै ॥ ११ ॥ उसके दर्शनसे लोगोंको यज्ञ करनेका फल होताहै । उसकेभी पूर्व मधु कैटभके पूजित अत्रीश्वर सुशोभित हैं ॥ १२ ॥ प्रयत्नपूर्वक उस लिंगके अवलोकनसे विष्णुलोककी प्राप्ति होतीहै; गोप्रेक्षके पूर्वभागमें विज्वरनामक लिंग है ॥ १३ ॥ उसके पूजन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें ज्वरसे रहित होजाताहै । उससे भी पूर्व चारों वेदोंके फलदाता वेदेश्वर विराजितहैं ॥ १४ ॥ पूर्वोक्त वेदेश्वरसे उत्तर क्षेत्रज्ञाता आदिकेशवहैं,

वाराणसींसमायातागोप्रेक्षंतत्ततःस्मृतम् ॥ गोप्रेक्षाद्दक्षिणेभागेदधीचीश्वरसंज्ञितम् ॥ ११ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्पुंसांफलंयज्ञसमुद्भवम् ॥ अत्रीश्वरंतुतत्प्राच्यांमधुकैटभपूजितम् ॥ १२ ॥ लिंगंदृष्ट्वाप्रयत्नेनवैष्णवंपदमृच्छति ॥ गोप्रेक्षात्पूर्वदिग्भागेलिंगंवैविज्वरंस्मृतम् ॥ १३ ॥ तस्यसंपूजनान्मर्त्योविज्वरोजायतेक्षणात् ॥ प्राच्यांवेदेश्वरस्तस्यचतुर्वेदफलप्रदः ॥ १४ ॥ वेदेश्वरादुदीच्यांतुक्षेत्रज्ञश्चादिकेशवः ॥ दृष्टंत्रिभुवनंसर्वंतस्यसंदर्शनाद्ध्रुवम् ॥ १५ ॥ संगमेश्वरमालोक्यतत्प्राच्यांजायतेनघः ॥ चतुर्मुखेनविधिनातत्पूर्वेणचतुर्मुखम् ॥ १६ ॥ प्रयागसंज्ञकंलिंगमर्चितंब्रह्मलोकदम् ॥ तत्रशांतिकरीगौरीपूजिताशांतिकृद्भवेत् ॥ १७ ॥ वरणायास्तटेपूर्वेपूज्यंकुंतीश्वरंनृभिः ॥ तत्पूजनात्प्रजायंतेपुत्रानिजकुलोज्वलाः ॥ १८ ॥ कुंतीश्वरादुत्तरतस्तीर्थंवैकापिलोह्रदः ॥ तत्रवैस्नानमात्रेणवृषभध्वजपूजनात् ॥ १९ ॥ राजसूयस्ययज्ञस्यफलंत्वविकलंभवेत् ॥ रौरवादिषुयेकेचित्पितरःकोटिसंमिताः ॥ २० ॥

उनके दर्शनसे त्रैलोक्यमात्रके दर्शनका पुण्य अवश्य होताहै ॥ १५ ॥ उनसे पूर्वकी ओर संगमेश्वर लिंगके दर्शनसे निष्पापता होती है, उसकेभी पूर्व चतुर्मुख ब्रह्माका स्थापित चतुर्मुख ॥ १६ ॥ प्रयागनामक लिंग है, उसकी पूजा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होताहै । वहींपर शांतिकरी गौरीभी हैं जो पूजनहीसे शांति करदेती हैं ॥ १७ ॥ वरुणाके पूर्वतटपर कुन्तीश्वरहैं, जो पूजन करनेसे कुलके उज्ज्वल करनेवाले पुत्रोंको (उत्पन्नकर) देतेहैं ॥ १८ ॥ कुन्तीश्वरसे उत्तर कपिलधारानामक एक बडातीर्थहै, वहांपर स्नान करके वृषभध्वजकी अर्चना करनेहीसे ॥ १९ ॥ राजसूय यज्ञ करनेका पूरा पूरा फल मिलजाता

है, और वहांपर श्राद्ध करनेसे तो रौरवादिक नरकोंमें पडेहुए करोडों पितर पितृलोकमें चलेजातेहैं ॥ २० ॥ हे मुने ! गोप्रेक्षहीके उत्तरभागमें अनुसूयेश्वर लिंगभी है ॥ २१ ॥ उसके दर्शनसे स्त्रियोंको निस्सन्देह पातिव्रत्यका फल लाभ होताहै । उस लिंगके पूर्वभागमें सिद्धिविनायकका पूजन करना चाहिये ॥ २२ ॥ उनके प्रणामही करनेसे जो कोई जिस सिद्धिको चाहे उसे वही प्राप्त होती है । उन गणेशसे पश्चिमकी ओर हिरण्यकशिपुका स्थापित एक लिंगहै ॥ २३ ॥ और वहींपर एक हिरण्यकूपभीहै, जो हिरण्य और अश्वोंकी सम्पत्तिको देताहै ॥ २४ ॥ उसके भी पाश्चिम सिद्धिप्रद मुंडासुरेश्वर नामक लिंगहै एवं गोप्रेक्षसे नैर्ऋत्यकोणपर अभीष्टदायक वृषभेश्वर लिंगभी (विराजितहै)॥ २५ ॥ हे मुनिनायक ! महादेवके पश्चिम (मेरास्थापित

तत्रश्राद्धेकृतेपुत्रैःपितृलोकंप्रयांतिते ॥ आनुसूयेश्वरंलिंगंगोप्रेक्षादुत्तरेमुने॥ २१ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्स्त्रीणांपातिव्रत्यफलंस्फुटम् ॥ तल्लिंगपूर्वदिग्भागेपूज्यःसिद्धिविनायकः ॥ २२ ॥ यांसिद्धिंयःसमीहेतसतामाप्नोतितन्नतेः ॥ हिरण्यकशिपोर्लिंगंगणेशात्पश्चिमेततः ॥ २३ ॥ हिरण्यकूपस्तत्रास्तिहिरण्याश्वसमृद्धिकृत्॥२४॥ मुंडासुरेश्वरंलिंगंतत्प्रतीच्यांचसिद्धिदम् ॥ अभीष्टदंतुनैर्ऋत्यांगोप्रेक्षाद्वृषभेश्वरम् ॥२५॥ मुनेस्कंदेश्वरंलिंगंमहादेवस्यपश्चिमे ॥ तल्लिंगपूजनान्नृणांभवेन्ममसलोकता ॥ २६ ॥ तत्पार्श्वतोहिशाखेशोविशाखेशश्चतत्रवै ॥ नैगमेयेश्वरस्तत्रयेन्येनंद्यादयोगणाः ॥ २७ ॥ तेषामपिहिलिंगानितत्रसंतिसहस्रशः ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्पुंसांतत्तद्गणसलोकता ॥ २८ ॥ नंदीश्वरात्प्रतीच्यांचशिलादेशःकुधीहरः ॥ महाबलप्रदस्तत्रहिरण्याक्षेश्वरःशुभः ॥ २९ ॥ तद्दक्षिणेट्टहासाख्यंलिंगंसर्वसुखप्रदम् ॥ प्रसन्नवदनेशाख्यंलिंगंतस्योत्तरेशुभम् ॥ ३० ॥

कियाहुआ) स्कन्देश्वरनामक लिंगहै, उस लिंगके पूजन करनेसे लोगोंको मेरे लोकमें वास मिलताहै ॥ २६ ॥ उसके पासहीमें वहींपर शाखेश्वर और विशाखेश्वरनामक तथा नैगमेयेश्वर लिंगभी है, एवं जो नन्दी इत्यादि शिवके गणलोगहैं, ॥ २७ ॥ उन सबके स्थापित सहस्रों और भी लिंग वहांपर शोभितहैं, उन सबके दर्शनसे उनहीं उनहीं गणोंके लोकोंकी प्राप्ति होतीहै ॥२८॥ नन्दीश्वरके पश्चिम कुबुद्धिनाशक शिलादेश्वरहैं और वहींपर महाबलप्रद शुभमय हिरण्याक्षेश्वरभी हैं ॥२९॥ उससे दक्षिणकी ओर सब सुखोंका देनेवाला अट्टहाससंज्ञक लिंगहै, और उसके उत्तर शुभप्रद प्रसन्नवदनेश्वरनामक

लिंगहै ॥ ३० ॥ जो भक्त उसका दर्शनकरे वह सदैव प्रसन्नवदनही रहताहै, फिर उसीके उत्तर ओर प्रसन्नोद (क) नामक लोगोंको निर्मलता देनेवाला एक कुण्डहै ॥ ३१ ॥ उक्त अट्टहास लिंगके पश्चिम मित्रावरुणनामक महापातकहारी दो लिंग विराजितहैं, उनके पूजन करनेसे उन्हींके लोकोंमें वास मिलताहै ॥ ३२ ॥ फिर अट्टहासके नैर्ऋत्यकोणपरवृद्धवासिष्ठसंज्ञक लिंगहै, उसकी पूजा करनेसे लोगोंको बडाभारी ज्ञान उत्पन्न होजाताहै ॥ ३३ ॥ वसिष्ठेश्वरके समीपहीमें विष्णुलोकके दाता कृष्णेश्वर और उनके दक्षिण ब्रह्मतेजके बर्द्धक याज्ञवल्क्येश्वरहैं ॥ ३४ ॥ उसके पीछेकी ओर भक्तिवर्धन प्रह्लादेश्वर लिंगहै, जहांपर भगवान् शिव भक्तोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे स्वयं लीन हुएहैं ॥ ३५ ॥ अतएव प्रह्लादेश्वरसे पूर्व स्वलीननामक लिंग प्रयत्नपूर्वक

प्रसन्नवदनस्तिष्ठेद्भक्तस्तद्दर्शनाच्छुभात् ॥ तदुत्तरेप्रसन्नोदंकुंडंनैर्मल्यदंनृणाम् ॥३१॥ प्रतीच्यामट्टहासस्यमित्रावरुणनामनी ॥ लिंगेतल्लोकदेपूज्येमहापातकहारिणी ॥३२॥ नैर्ऋत्यांचाट्टहासस्यवृद्धवासिष्ठसंज्ञकम् ॥ लिंगंतत्पूजनात्पुंसांज्ञानमुत्पद्यतेमहत् ॥३३॥ वसिष्ठेशसमीपस्थःकृष्णेशोविष्णुलोकदः ॥ तद्याम्यांयाज्ञवल्क्येशोब्रह्मतेजोविवर्धनः ॥ ३४ ॥ प्रह्लादेश्वरमभ्यर्च्यतत्पश्चाद्भक्तिवर्धनम् ॥ स्वयंलीनःशिवोयत्रभक्तानुग्रहकाम्यया ॥ ३५ ॥ अतःस्वलीनंतत्पूर्वेलिंगंपूज्यंप्रयत्नतः ॥ सदैवज्ञाननिष्ठानांपरमानंदमिच्छताम् ॥ यागतिर्विहितातेषांस्वलीनेसातनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥ वैरोचनेश्वरंलिंगंस्वलीनात्पुरतःस्थितम् ॥ तदुत्तरेबलीशंचमहाबलविवर्धनम् ॥ ३७ ॥ तत्रैवलिंगंबाणेशंपूजितंसर्वकामदम् ॥ चंद्रेश्वरस्यपूर्वेणलिंगंविद्येश्वराभिधम् ॥ ३८ ॥ सर्वाविद्याःप्रसन्नाःस्युस्तस्यलिंगस्यसेवनात् ॥ तद्दक्षिणेतुवीरेशोमहासिद्धिविधायकः ॥ ३९ ॥ तत्रैवविकटादेवीसर्वदुःखौघमोचनी ॥ पंचमुद्रंमहापीठंतज्ज्ञेयंसर्वसिद्धिदम् ॥ ४० ॥

पूजनहीके योग्यहै, क्योंकि परमानन्दके चाहनेवाले ज्ञाननिष्ठ लोगोंकी जो गति होतीहै, स्वलीनके समीपमें शरीर त्यागनेवालेकोभी सदैव वही गति मिलतीहै ॥ ३६ ॥ स्वलीनलिंगके सन्मुखही वैरोचनेश्वर लिंग स्थितहै, और उसके उत्तरभागमें महाबलवर्धक बलीश्वर लिंगहै ॥ ३७ ॥ एवं वहींपर पूजकलोगोंको वांछितफल देनेवाला बाणेश्वर लिंगभी विराजमानहै चन्द्रेश्वरसे पूर्वओर एक विद्येश्वरनामक लिंगहै ॥ ३८ ॥ उस लिंगके सेवन करनेसे सब विद्यायें प्रसन्न रहतीहैं, उसके दक्षिणभागमें महासिद्धि विनायक वीरेश्वर लिंगहै ॥ ३९ ॥ वहींपर समस्त दुःखमोचनी विकटादेवीभी हैं, वह स्थान

सर्वसिद्धिदायक पंचमुद्रनामक महापीठहै ॥ ४० ॥ वहांपर कैसेही बडे मंत्रोंको जपे, वे बहुतही शीघ्र सिद्ध होजातेहैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, उस स्थानके वायुकोणपर सगरेश्वरनामक लिंग परम पूजनीयहै ॥ ४१ ॥ उसके पूजन करनेसे अश्वमेध यज्ञका पूरापूरा फल प्राप्त होताहै, उससे ईशानकोणपर तिर्यग्योनि निवारक वालीश्वर लिंगहै ॥ ४२ ॥ उसके उत्तरभागमें महापापराशियोंका संहारक सुग्रीवेश्वर लिंग, और वहीं पर ब्रह्मचर्यका फल देनेवाला हनूमदीश्वर लिंगभी शोभितहै ॥ ४३ ॥ उसी स्थानपर महाबुद्धिप्रद जाम्बवती (दी) श्वरभी हैं, तदनंतर गंगाके पश्चिम तटपर (अश्विनी कुमारोंके प्रतिष्ठित) आश्विनेयेश्वरनामक दोनों लिंगोंकी पूजा करनी चाहिये ॥४४॥ फिर उनके उत्तरभागमें गैयोंके क्षीरसे भराहुआ भद्रह्रदनामक एक

तत्रजप्तामहामंत्राःक्षिप्रंसिध्यंतिनान्यथा ॥ तत्पीठेवायुकोणेतुसंपूज्यःसगरेश्वरः ॥ ४१ ॥ तदर्चनादश्वमेधफलंत्वविकलंभवेत् ॥ तदीशानेचवालीशस्तिर्यग्योनिनिवारकः ॥ ४२ ॥ महापापौघविध्वंसीसुग्रीवेशस्तदुत्तरे ॥ हनूमदीश्वरस्तत्रब्रह्मचर्यफलप्रदः ॥ ४३ ॥महाबुद्धिप्रदस्तत्रपूज्योजांबवतीश्वरः ॥ आश्विनेयेश्वरौपूज्यौगंगायाःपश्चिमेतटे ॥ ४४ ॥ तदुत्तरेभद्रह्रदोगवांक्षीरेणपूरितः ॥ कपिलानांसहस्रेणसम्यक्दत्तेनयत्फलम् ॥ ४५ ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यःस्नातोभद्रह्रदेध्रुवम् ॥ पूर्वाभाद्रपदायुक्तापौर्णमासीयदाभवेत् ॥ ४६ ॥ तदापुण्यतमःकालोवाजिमेधफलप्रदः ॥ ह्रदपश्चिमतीरेतुभद्रेश्वरविलोकनात् ॥ ४७ ॥ गोलोकंप्राप्नुयात्तस्मात्पुण्यान्नैवात्रसंशयः ॥ भद्रेश्वराद्यातुधान्यामुपशांतशिवोमुने ॥४८॥ तस्यलिंगस्यसंस्पर्शात्परांशांतिंसमृच्छति ॥ उपशांतशिवंलिंगंदृष्ट्वाजन्मशतार्जितम् ॥ ४९ ॥

कुंडहै, विधिपूर्वक सहस्रकपिला गोदान करनेसे जो फल होता है ॥४५॥ इस भद्रह्रदमें स्नान करनेसेभी मनुष्य निस्सन्देह उसी फलको पाताहै, जब कभी पूर्वभाद्रपदनक्षत्र युक्त पौर्णमासी होवे ॥ ४६ ॥ तभी वहांका परम पुण्यकाल होताहै, उस घडी उसमें नहालेनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलजाताहै । उस ह्रदके पश्चिम तीरपर भद्रेश्वरका दर्शन करनेसे ॥ ४७ ॥ मनुष्य निश्चयही गोलोकवासी होताहै, कारण दर्शनहीका पुण्यवल होजाताहै । हे मुने ! भद्रेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणपर उपशांतशिव विराजित हैं ॥ ४८ ॥ उस लिंगके स्पर्श करतेही परमशांति आजाती है, एवं उस उपशान्तनामक शिवलिंगके

दर्शन करनेसे सैकडों जन्मोंके बटोरे हुये ॥ ४९ ॥ पापपुंजको त्यागकर मंगलराशिको प्राप्त करता है, उसके उत्तरभागमें योनिचक्रका निवारण करनेवाला चक्रेश्वरनामक लिंग है ॥ ५० ॥ जिसके उत्तरकी ओर महापुण्य वर्धक एक चक्रह्रद भी है, मनुष्य उस चक्रह्रदमें स्नानकर शुद्धहृदयसे चक्रेश्वरका पूजन करनेसे शिवलोकमें गमनकरता है, उसने नैर्ऋत्य कोणपर प्रयत्न उठाकर शूलेश्वरका दर्शन करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ हे वरवर्णिनि ! पूर्वकालमें मैंने स्नान करनेके लिये वहींपर अपना त्रिशूल गाडदिया था, जिससे शूलेश्वरके आगे यह बडाभारी पोखरा होगया है ॥ ५३ ॥ उस ह्रदमें नहाकर भगवान् शूलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य संसाररूप गह्वरको त्यागकर रुद्रलोकको चलेजाते हैं ॥ ५४ ॥ उसके पूर्वभागमें देवर्षिनारदने घोर तपस्या की

त्यजेदश्रेयसोराशिंश्रेयोराशिंचविंदति ॥ तदुत्तरेचचक्रेशोयोनिचक्रनिवारकः ॥ ५० ॥ तदुत्तरेचक्रह्रदोमहापुण्यविवर्धनः ॥ स्नात्वाचक्रह्रदेमर्त्यश्चक्रेशंपरिपूज्यच ॥ ५१ ॥ शिवलोकमवाप्नोतिभावितेनांतरात्मना ॥ तन्नैर्ऋतेचशूलेशोद्रष्टव्यश्चप्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ शूलंतत्रपुरान्यस्तंस्नानार्थंवरवर्णिनि ॥ ह्रदस्तत्रसमुत्पन्नःशूलेशस्याग्रतोमहान् ॥ ५३ ॥ स्नानंकृत्वाह्रदेतत्रदृष्ट्वाशूलेश्वरंविभुम् ॥ रुद्रलोकंनरायांतित्यक्त्वासंसारगह्वरम् ॥ ५४ ॥ तत्पूर्वतोनारदेनतपस्तप्तंमहत्तरम् ॥ लिंगंचस्थापितंश्रेष्ठंकुंडंचापिशुभंकृतम् ॥ ५५ ॥ तत्रकुंडेनरःस्नात्वादृष्ट्वैवनारदेश्वरम् ॥ संसाराब्धिंमहाघोरंसंतरेन्नात्रसंजयः ॥ ५६ ॥ नारदेश्वरपूर्वेणदृष्ट्वाऽवभ्रातकेश्वरम् ॥ निर्मलांगतिमाप्नोतिपापौघंचविमुंचति ॥ ५७ ॥ तदग्रेताम्रकुंडंचतत्रस्नातोनगर्भभाक् ॥ विघ्नहर्तागणाध्यक्षस्तद्वायव्येसुविघ्नहृत् ॥ ५८ ॥ तत्रविघ्नहरंकुंडंतत्रस्नातोनविघ्नभाक् ॥ अनारकेश्वरंलिंगंतदुदग्दिशिचोत्तमम् ॥ ५९ ॥

थी और एक उत्तम कुंड बनाकर वहींपर शिवलिंगकी भी स्थापना करदी थी ॥ ५५ ॥ जो कोई उस कुंडमें स्नान करके नारदेश्वरका दर्शन करता है, वह महाघोरसंसारसागरके पार उतरजाता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ नारदेश्वरसे पूर्वभागमें स्थित अवभ्रातकेश्वरका दर्शन करनेसे (मनुष्य) समस्त पातकोंको दूरभगाकर निर्मलगतिको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ उसके आगे ताम्रकुंड है, जिसमें स्नान करलेनेसे फिर कभी गर्भका दुःख नहीं झेलना पडता, उससे वायव्यकोणपर समस्त विघ्नोंके विध्वंसक विघ्नहर्तानामक गणेश हैं ॥ ५८ ॥ एवं विघ्नहरनामक एक कुंडभी वहींपर है, जिसमें

नहानेवालेको विघ्नभागी नहीं होना पडता, उसके उत्तरभागमें एक अनारकेश्वरनामक उत्तम लिंग शोभायमान है ॥ ५९ ॥ और अनारकनामक एक कुंडभी है, जिसके स्नानसे नरक नहीं भोगना पडता, उसके भी उत्तर वरणा (नदी) के रमणीय तीरपर वरणेश्वर लिंग है ॥ ६० ॥ हे महामुने ! इसीकी आराधनासे अक्षपादनामा एक परम शैवजन इसी स्थूलशरीरसे शाश्वती सिद्धिको प्राप्त होगये थे ॥ ६१ ॥ उसके पश्चिम परमनिर्वाणदाता शैलेश्वर हैं, उनसे दक्षिणकी ओर शाश्वत–सिद्धिप्रद कोटीश्वर लिंग है ॥ ६२ ॥ वहांपर कोटितीर्थनामक ह्रदमें नहाकर कोटीश्वरका पूजन करनेसे मनुष्य कोटिगोदान करनेका फल पाता है ॥६३॥ कोटीश्वरसे अग्निकोणपर महाश्मशानका स्तंभ गडा है उस खम्भेमें उमादेवीके सहित महारुद्र सदैव वास करते हैं ॥६४॥

कुंडंचानारकाख्यंवैतत्रस्नातोननारकी ॥ वरणायास्तटेरम्येवरणेशस्तदुत्तरे ॥६० ॥ तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्वक्षपादोमहामुने ॥ अनेनैवश रीरेणशाश्वतींसिद्धिमागतः ॥ ६१ ॥ तत्पश्चिमेचशैलेशःपरनिर्वाणकामदः ॥ कोटीश्वरंतुतद्याम्यांलिंगंशाश्वतसिद्धिदम् ॥ ६२ ॥ कोटितीर्थह्रदेस्नात्वाकोटीशंपरिपूज्यच ॥ गवांकोटिप्रदानस्यफलमाप्नोतिमानवः ॥ ६३ ॥ महाश्मशानस्तंभोस्तिकोटीशाद्वह्निदिक्स्थितः ॥ तस्मिन्स्तंभेमहारुद्रस्तिष्ठतेचोमयासह ॥ ६४ ॥ तंस्तंभंसमलंकृत्यनरस्तत्पदमाप्नुयात् ॥ तत्रैवतीर्थंपरमंकपालेशसमीपतः ॥ ६५ ॥ कपालमोचनंनामतत्रस्नातोऽश्वमेधभाक् ॥ ऋणमोचनतीर्थंतुतदुदग्दिशिशोभनम् ॥ ६६ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वामुक्तो भवतिचर्णतः ॥ तत्रैवांगारकंतीर्थंकुंडंचांगारनिर्मलम् ॥ ६७ ॥ स्नात्वांगारकतीर्थेतुभवेद्भूयोनगर्भभाक् ॥ अंगारवारयुक्तायांचतुर्थ्यां स्नातियोनरः ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेतनचदुःखीकदाचन ॥ ६८ ॥

उस स्तम्भके विभूषित करनेसे मनुष्य रुद्रपदका भागी होताहै, वहींपर कपालेश्वरके समीपहीमें एक बहुत बडा ॥ ६५ ॥ कपालमोचननामक तीर्थ है, जिसमें स्नान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलताहै, और उसके उत्तर शोभन ऋणमोचन तीर्थ शोभितहै ॥ ६६ ॥ यदि कोई उस तीर्थमें नहालेवे तो ऋणबंधनसे छूट जाताहै, उसी स्थानपर अंगारक तीर्थभी है, जो अंगारहीके समान उज्ज्वल रहताहै, ॥ ६७ ॥ उस अंगारक तीर्थमें स्नान करनेसे फिर गर्भवासी नहीं होना पडता । जो कोई मंगलवारकी चतुर्थीको उस तीर्थमें नहाताहै उसे किसी प्रकारकी व्याधियां अथवा दुःख कभी नहीं सतासकते॥६८॥

उसके उत्तरभागमें ज्ञानप्रद विश्वकर्मेश्वर लिंगहै, और उससे दक्षिणकी ओर एक उत्तम महामुंडेश्वरलिंग है ॥ ६९ ॥ एवं शुभोदकनामक स्नान योग्य एक कूपभी है, वहींपर मैंने अपनी सुन्दरमुंडमाला उतारकर रखदी थी ॥७०॥ जिससे वहांपर महामुंडा नाम्नी पातकहारिणी एक देवी प्रकट होगई हैं, एवं जिस स्थल पर मैंने अपना खट्वांग रक्खाथा वहांपर खट्वांगेश्वर होगये हैं ॥ ७१ ॥ उस लिंगके दर्शन करनेसे मनुष्य पापरहित होजाताहै, उसके दक्षिणभागमें भुवनेश्वरनामक लिंग और कुंडभी वर्तमानहै ॥७२॥ उस भुवनेश्वरकुंडमें नहानेसे मनुष्य भुवनेश्वरही होताहै, उसके दक्षिणकी ओर विमले

विश्वकर्मेश्वरंलिंगंज्ञानदंचतदुत्तरे ॥ महामुंडेश्वरंलिंगंतस्यदक्षिणतःशुभम् ॥ ६९ ॥ कूपःशुभोदनामापिस्नातव्यंतत्रनिश्चितम् ॥
तत्रमुंडमयीमालामयाक्षिप्तातिशोभना ॥ ७० ॥ महामुंडाततोदेवीसमुत्पन्नाघहारिणी ॥ खट्वांगंचधृतंतत्रखट्वांगेशस्ततोभवत् ॥ ७१ ॥
निष्पापोजायतेमर्त्यःखट्वांगेशविलोकनात् ॥ भुवनेशस्ततोयाम्यांकुंडंचभुवनेश्वरम् ॥ ७२ ॥ तत्रकुंडेनरःस्नातोभुवनेशोभवेन्नरः ॥
तद्याम्यांविमलेशश्चकुंडंचविमलोदकम् ॥७३॥ तत्रस्नात्वाविलोक्येशंविमलोजायतेनरः ॥ तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्र्यंबकोनामनामतः॥७४॥
अनेनैवशरीरेणरुद्रलोकमवाप्तवान् ॥ भृगोरायतनंतस्यपश्चिमेऽतीवपुण्यदम् ॥ ७५ ॥ विधिपूर्वंतदभ्यर्च्यप्राप्नुयाच्छिवमंदिरम् ॥ शुभे
श्वरश्चतद्याम्यांमहाशुभफलप्रदः ॥ ७६ ॥ तत्रसिद्धःपाशुपतःकपिलर्षिर्महातपाः ॥ तत्रास्तिहिगुहारम्याकपिलेश्वरसंनिधौ ॥ ७७ ॥
तांगुहांप्रविशेद्योवैनसगर्भेविशेत्क्वचित् ॥ तत्रयज्ञोदकूपोस्तिवाजिमेधफलप्रदः ॥ ७८ ॥

श्वर लिंग और विमलोदक कुण्डहै, ॥७३॥ उसमेंभी स्नान करके विमलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य विमल होजाताहै, वहांपर त्र्यंबकनामक एक शैव सिद्ध होगया था ॥ ७४ ॥ उसने इसी शरीरसे रुद्रलोकको प्राप्त किया था, उसके पश्चिम परमपुण्यप्रद भृगुमुनिका आश्रम है ॥ ७५ ॥ विधिपूर्वक उसका पूजन करनेसे मनुष्य शिवलोकमें चलाजाताहै, उसके दक्षिण महाशुभदायक शुभेश्वरनामक लिंगहै ॥ ७६ ॥ इसी लिंगके प्रतापसे महातपस्वी कपिलऋषिनामक शैव सिद्ध होचुके हैं, वहांपर कपिलेश्वरके पासहीमें एक रमणीय गुहाहै ॥ ७७ ॥ उस गुफामें जो कोई घुसताहै, उसे फिर कभी गर्भमें

प्रवेश नहीं करना पडता, वहींपर यज्ञोदक कूपभीहै, जो अश्वमेधयज्ञका फल देताहै ॥ ७८ ॥ यही (कपिलेश्वर) आदि वर्णमयात्मक ओंकारहै, पर मत्स्योदरीके उत्तरतटपर जो नादेश्वरहै, वह तो मैंही हूं ॥ ७९ ॥ नादेश्वरही परमब्रह्म, और परमगति, एवं दुःखमय संसारसे मोचन करदेनेका प्रधान स्थान कहा जाताहै ॥ ८० ॥ जब कभी भगवान् नादेश्वरके दर्शनको भगवती जह्नुनन्दिनी गंगा वहां जातीहैं, तब वह मत्स्योदरी कहीजातीहै, उस घडी वहांका स्नान बडे पुण्यसे मिलताहै ॥ ८१ ॥ हे महादेवि ! जब कपिलेश्वरके पूर्वकी ओर मत्स्योदरी (तीर्थ) में गंगा (कीसोती) आजातीहै, तब वह संगमयोग बहुतही दुर्लभहै ॥८२॥ कपिलेश्वरसे उत्तर उद्दालकेश्वर लिंगहै, उसके दर्शन करनेहीसे सब किसीको परमसिद्धि लाभहोताहै॥८३॥

ओंकारएषएवासावादिवर्णमयात्मकः ॥ मत्स्योदर्युत्तरेकूलेनादेशस्त्वहमेवच ॥ ७९ ॥ नादेशःपरंब्रह्मनादेशःपरमागतिः ॥ नादेशः परमंस्थानंदुःखसंसारमोचनम् ॥ ८० ॥ कदाचित्तस्यदेवस्यदर्शनेयातिजाह्नवी ॥ मत्स्योदरीसाकथितास्नानंपुण्यैरवाप्यते ॥ ८१ ॥ मत्स्योदरीयदागंगापश्चिमेकपिलेश्वरम् ॥ समायातिमहादेवितदायोगःसुदुर्लभः ॥ ८२ ॥ उद्दालकेश्वरंलिंगमुदीच्यांकपिलेश्वरात् ॥ तद्दर्शनेनसंसिद्धिःपरासर्वैरवाप्यते ॥८३॥ तदुत्तरेबाष्कुलीशंलिंगंसर्वार्थसिद्धिदम् ॥ बाष्कुलीशाद्दक्षिणतोलिंगंवैकौस्तुभेश्वरम्॥८४॥ तस्यार्चनेनरत्नौघैर्नवियुज्येतकर्हिचित् ॥ शंकुकर्णेश्वरंलिंगंकौस्तुभेश्वरदक्षिणे ॥ ८५ ॥ संसेव्यपरमंज्ञानंलभेद्द्यापिसाधकः ॥ अघोरे शोगुहाद्वारिकूपस्तस्योत्तरेशुभः ॥ ८६ ॥ अघोरोदइतिख्यातोवाजिमेधफलप्रदः ॥ गर्गेशोदमनेशश्चतत्रलिंगद्वयंशुभम् ॥ ८७ ॥ अनेनैवेहदेहेनयत्रतौसिद्धिमापतुः ॥ तल्लिंगयोःसमर्चातःसिद्धिर्भवतिवांछिता॥ ८८ ॥

उसके भी उत्तर सर्वार्थ सिद्धिदायक बाष्कुलीश्वर लिंगहै, और उसके दक्षिण एक कौस्तुभेश्वरसंज्ञक लिंगहै ॥ ८४ ॥ उसकी पूजा करनेसे मनुष्य रत्नसमूहोंसे कभी शून्य नहीं होने पाता, कौस्तुभेश्वरके दक्षिण शंकुकर्णेश्वरहै ॥८५॥ उस लिंगकी आराधनासे आजभी साधक परमज्ञानको प्राप्त करताहै, कपिलेश्वरके समीप जो गुफाहै, उसके द्वारहीपर शुभमय अघोरेश्वरहै, और उनके उत्तरभागमें अश्वमेध फलप्रद अघोरोद (क) नामा कूप (भी) है । वहींपर गर्गेश्वर और दमनेश्वरनामक दो लिंग और भी विराजमानहैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जहांपर गर्ग और दमनमुनिने इसी शरीरसे सिद्धि पाई थी,

इन दोनों लिंगोंकी पूजासे वांछितकार्यसिद्ध होजाताहै ॥८८॥ उसके दक्षिणभागमें रुद्रावासनामक महाकुंडहै, वहांपर रुद्रेश्वरके पूजन करनेसे कोटिरुद्रका फल प्राप्त होताहै ॥ ८९ ॥ हे अपर्णे! जब चतुर्दशी (तिथि) में रुद्र (आर्द्रा) नक्षत्र मिले, तब उस रुद्रकुंडका महाफलदायक सर्वोत्तम पुण्यकाल होताहै ॥९०॥ उस वेला जो कोई रुद्रकुंडमें स्नानकर भगवान् रुद्रेश्वरका दर्शन करताहै, वह चाहे कहींभी मरे पर रुद्रलोकमें चलाही जाताहै ॥ ९१ ॥ उसके नैर्ऋत्यकोणपर महालयेश्वर लिंगहै, जिसके आगे पितरोंका परम निवासस्थान पितृकूप वर्तमानहै ॥ ९२ ॥ जो मनुष्य वहांपर श्राद्धकरके पिंडोंको उसी कूपमें फेंकदेताहै, वह श्राद्धकर्ता अपने एक्कीस कुलोंके सहित रुद्रलोकका भागी होताहै ॥ ९३ ॥ हे देवि ! उसी स्थानपर पश्चिम मुखकी वैतरणी

तद्दक्षिणेमहाकुंडंरुद्रावासइतिस्मृतम् ॥ तत्ररुद्रेशमभ्यर्च्यकोटिरुद्रफलंलभेत् ॥ ८९ ॥ चतुर्दशीयदापर्णेरुद्रनक्षत्रसंयुता ॥ तदा पुण्यतमःकालस्तस्मिन्कुंडेमहाफलः ॥ ९० ॥ रुद्रकुंडेनरःस्नात्वादृष्ट्वारुद्रेश्वरंविभुम् ॥ यत्रतत्रमृतोवापिरुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ९१ ॥ रुद्रस्यनैर्ऋतेभागेलिंगंतत्रमहालयम् ॥ तदग्रेपितृकूपोस्तिपितॄणामालयःपरः ॥ ९२ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वापिंडान्कूपेपरिक्षिपेत् ॥ एकविंशकुलोपेतःश्राद्धकृद्रुद्रलोकभाक् ॥ ९३ ॥ तत्रवैतरणीनामदीर्घिकापश्चिमानना ॥ तस्यांस्नातोनरोदेविनरकंनैवगच्छति ॥ ९४ ॥ बृहस्पतीश्वरंलिंगंरुद्रकुंडाच्चपश्चिमे ॥ गुरुपुष्यसमायोगेदृष्ट्वादिव्यांलभेद्गिरम् ॥ ९५ ॥ रुद्रावासाद्दक्षिणतःकामेशंलिंगमुत्तमम् ॥ तद्दक्षिणेमहाकुंडंस्नानाच्चिंतितकामदम् ॥ ९६ ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यांतत्रयात्राचकामदा ॥ नलकूबरलिंगंचप्राच्यांकामेश्वराच्छुभम् ॥ ९७ ॥ तदग्रेपावनःकूपोधनधान्यसमृद्धिदः ॥ नलकूबरपूर्वेणसूर्याचंद्रमसेश्वरौ ॥ ९८ ॥

(नाम) बावली है, उसमें स्नान करनेसे मनुष्य नरकमें नहीं पडता ॥ ९४ ॥ रुद्रकुंडसे पश्चिम बृहस्पतीश्वर लिंगहै पुष्यनक्षत्रसे युक्त गुरुवारको उनके दर्शनसे दिव्यवाणी मिलतीहै ॥ ९५ ॥ रुद्रावासके दक्षिण सर्वोत्तम कामेश्वरलिंगहै, जिसके दक्षिणभागमें एक महा (काम) कुण्डहै जो स्नानमात्रसे चिंतित कामनाओंको देताहै ॥ ९६ ॥ चैत्रशुक्ल त्रयोदशीको वहांकी यात्रा करनेसे मनोवांछित फल मिलताहै । कामेश्वरसे पूर्वकी ओर नलकूबरलिंगहै ॥ ९७ ॥ जिसके आगेही धन धान्यकी समृद्धि करनेवाला पावनकूपहै,उस नलकूबर लिंगके पूर्व सूर्याचन्द्रमसेश्वरनामके दो लिंग एकत्रही विराजमान हैं ॥ ९८ ॥

उन दोनोंकी पूजा करनेसे अज्ञानान्धकार दूर होजाताहै, उनके दक्षिण अध्वकेश्वरनामक लिंगहै, जो दर्शनहीसे मोहका नाश करडालताहै ॥ ९९ ॥ वहींपर परम सिद्धिदायक सिद्धीश्वर लिंगभी है, जिसके पासहीमें मंडलेशका पद देनेवाला मंडलेश्वरलिंग विद्यमानहै ॥ १०० ॥ कामकुण्डके पूर्व सर्व संपत्तिदायक च्यवनेश्वर हैं, और राजसूययज्ञके फलदाता सनकेश्वरभी वहीं हैं ॥ १ ॥ जिसके पिछवाडे योगसिद्धिका करनेवाला सनत्कुमारलिंगहै, और उससे उत्तरकी ओर बडाज्ञानसमर्थक सनन्देश्वरनामक लिंगसुशोभितहै ॥ २ ॥ उसके दक्षिणभागमें आहुतीश्वरलिंगहै जिसके देखनेहीसे होम करनेका

अज्ञानध्वांतपटलींहरतस्तौसमर्चितौ ॥ तद्दक्षिणेध्वकेशश्चदृष्टोमोहविनाशनः ॥ ९९ ॥ तत्रसिद्धीश्वरंलिंगमहासिद्धिसमर्पकम् ॥ तत्रैवमंडलेशश्चमंडलेशपदप्रदः ॥ १०० ॥ कामकुंडस्यपूर्वेणच्यवनेशःसमृद्धिदः ॥ तत्रैवसनकेशश्चराजसूयफलप्रदः ॥ १ ॥ सनत्कुमारलिंगंचतत्पश्चाद्योगसिद्धिकृत् ॥ तदुत्तरेसनंदेशोमहाज्ञानसमर्थकः ॥ २ ॥ तद्याम्यामाहुतीशश्चदृष्टोहोमफलप्रदः ॥ तद्याम्यांपुण्यजनकंलिंगंपंचशिखेश्वरम् ॥ ३ ॥ मार्कंडेयह्रदस्तस्यपश्चिमेपुण्यवर्धनः ॥ तस्मिन्ह्रदेनरःस्नात्वाकिंभूयःपरिशोचति ॥ ४ ॥ तत्रस्नानंचदानंचभवेदक्षयपुण्यदम् ॥ तदुत्तरेचकुंडेशःसर्वसिद्धैर्नमस्कृतः ॥ ५ ॥ दीक्षांपाशुपतींलब्ध्वाद्वादशाब्देनयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेविप्रमर्त्यःकुंडेशदर्शनात् ॥ ६ ॥ मार्कंडेयह्रदात्पूर्वशांडिल्येशःसुपुण्यदः ॥ तत्पश्चिमेचचंडेशश्चंडांशुग्रहणाघहृत् ॥ ७ ॥ दक्षिणेचकपालेशात्कुंडंश्रीकंठसंज्ञितम् ॥ तत्रकुंडेनरःस्नात्वादातास्याच्छ्रीप्रभावतः ॥ ८ ॥

फल मिलजाताहै, उससेभी दक्षिण पुण्यजनक पंचशिखेश्वर लिंगहै ॥ ३ ॥ जिसके पश्चिमओर पुण्यवर्धक मार्कंडेय ह्रदहै, मनुष्य उस ह्रदमें स्नानकरके कभी शोकभागी नहीं होनेपाता ॥४॥ वहांका स्नान और दान अक्षयपुण्यप्रद होजाता है, उसके उत्तर समस्त सिद्धोंसे नमस्कृत कुण्डेश्वरनामक लिंगहै ॥५॥ हे विप्रवर ! पाशुपत मन्त्रकी दीक्षा लेकर द्वादशवर्षपर्यंत तपोनुष्ठान करनेसे जो फल होताहै, इस कुण्डेश्वरलिंगके दर्शनसेभी वही फल मिलजाताहै, ॥६॥ मार्कंडेयह्रदसे पूर्व परमपुण्यप्रद भगवान् शांडिल्येश्वर विराजते हैं, उनसे पश्चिम सूर्यग्रहणके समान पापनाशक चंडेश्वर लिंगहै ॥ ७ ॥ कपालेश्वरके

दक्षिणओर श्रीकण्ठसंज्ञक एक कुंडहै, उस कुंडमें स्नान करनेसे मनुष्य लक्ष्मीदेवीके प्रभाववश (बडाभारी) दाता होजाताहै ॥ ८ ॥ उसी कुंडके समीपमें महालक्ष्मीश्वर लिंगभी है, उक्त कुंडमें नहाकर महालक्ष्मीका पूजन करनेसे मनुष्य ॥९॥ दिव्यास्त्रियोंके द्वारा चामरसे बीजित होताहै । स्वर्गवासी देवतालोग स्त्रियोंके सहित स्वर्गलोकसे उक्त मत्स्योदरीतीर्थके लिये चलतेहैं तो उसी मार्गसे आतेजातेहैं ॥ ११० ॥ हे मुनिसत्तम ! इसी कारणसे उस स्थानका नाम स्वर्गद्वार प्रसिद्धहै । उस कुण्डके दक्षिणभागमें ब्रह्मपदप्रद एक लिंगहै ॥११॥ उसी स्थलपर गायत्रीश्वर और सावित्रीश्वरनामक दो लिंगोंकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये, फिर मत्स्योदरीके रमणीय तटपर सत्यवतीश्वर लिंगहै ॥ १२ ॥ गायत्रीश्वर सावित्रीश्वरके पूर्व तपःश्रीवर्द्धन लिंगहै, लक्ष्मीश्वरके पूर्व

महालक्ष्मीश्वरंलिंगंतस्यकुंडस्यसन्निधौ ॥ महालक्ष्मींसमभ्यर्च्यस्नातस्तत्कुंडवारिषु ॥९॥ चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्चवीज्यते ॥ यदामत्स्योदरींयांतिस्वर्गलोकाद्दिवौकसः ॥ तदातेनैवमार्गेणयांतिस्त्रीभिर्वृताःसुखम् ॥११०॥ स्वर्गद्वारमतःख्यातंतत्स्थानंमुनिसत्तम ॥ तत्कुंडदक्षिणेभागेलिंगंब्रह्मपदप्रदम् ॥ ११ ॥ गायत्रीश्वरसावित्रीश्वरौपूज्यौप्रयत्नतः ॥ मत्स्योदर्यास्तटेरम्येलिंगंसत्यवतीश्वरम् ॥१२॥ तयोःपूर्वेणसंपूज्यंतपःश्रीपरिवर्धनम् ॥ उग्रेश्वरंमहालिंगंलक्ष्मीशात्पूर्वदिक्स्थितम्॥१३॥ जातिस्मरोभवेन्मर्त्यस्तल्लिंगस्यसमर्चनात् ॥ तद्दक्षिणेचोग्रकुंडंस्नानात्कनखलाधिकम् ॥ १४ ॥ करवीरेश्वरंलिंगंतस्यकुंडस्यपश्चिमे ॥ तस्यदर्शनतःपुंसांजायतेरोगसंक्षयः ॥ १५ ॥ तद्वायव्येमरीचीशंकुंडंचाघौघनाशनम् ॥ तत्पश्चाच्चेंद्रकुंडंचलिंगंचेंद्रेश्वरंमुने ॥ १६ ॥ इंद्रेशाद्दक्षिणेभागेशुभाकर्कोटवापिका ॥ तत्रवापीजलेस्नात्वादृष्ट्वाकर्कोटकेश्वरम् ॥ १७ ॥ नागानामाधिपत्यंतुजायतेनात्रसंशयः ॥ तत्पश्चाद्दमिचंडेशोब्रह्महत्याहरोहरः ॥ १८ ॥

उग्रेश्वरनामक एक महालिंग है ॥ १३ ॥ मनुष्य उस लिंगकी अर्चना करनेसे जातिस्मर्ता होजाताहै, और उसके दक्षिणभागमें उग्रकुंडभी है जो स्नानके लिये कनखल (तीर्थ) सेभी अधिक (फलदायक) है ॥ १४ ॥ उस कुंडके पश्चिम करवीरेश्वर लिंगहै, उसके दर्शनसे लोगोंके सब रोगोंका नाश होजाता है ॥१५॥ उससे बायव्यकोणपर पापनाशकमरीचिकुंड और मरीचीश्वर लिंगहै । उसके पीछेकी ओर इन्द्रकुंड एवं इन्द्रेश्वरनामक लिंग वर्तमानहैं ॥१६॥ इन्द्रेश्वरके दक्षिणभागमें कर्कोटकवापीहै, उसमें स्नानकर कर्कोटकेश्वरका दर्शन करनेसे ॥ १७ ॥ मनुष्य निस्सन्देह नागलोगोंका अधिपति होताहै ।

उसके पीछे ब्रह्महत्याके छुडानेवाले दमिचण्डेश्वर शिवहैं ॥ १८ ॥ जिसके दक्षिण रुद्रलोकमें पहुँचानेवाला एक बडाभारी कुंड विद्यमानहै। उससे पश्चिम अग्नीश्वरनामक प्रसिद्ध लिंगहै ॥ १९ ॥ अग्नीश्वरसे पूर्व अग्निलोकका फलदायक आग्नेयकुंडहै, उसके दक्षिण एक औरभी उत्तम कुण्ड है ॥ १२० ॥ उसमें नहानेसे मनुष्य अपने पूर्वपुरुषोंके साथ स्वर्गमें वास पाताहै। उससे पूर्व चन्द्रलोककी गति देनेवाला बालचन्द्रेश्वर लिंगहै ॥२१॥ बालचन्द्रेश्वरके चारोंओर कितनेही गणोंके स्थापित अनेक लिंग विराजितहैं, उन सब लिंगोंके दर्शनसे गणाध्यक्षका पद प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ बालचन्द्रके समीपहीमें पितरोंका बडा प्यारा एक कूपभी है, उसमें श्राद्ध करनेसे सात पुरुषोंका उद्धार होजाता है ॥ २३ ॥ उस कूपसे पूर्व एक विश्वेश्वरनामक पवित्र लिंग है,

तद्दक्षिणेमहाकुंडंरुद्रलोकफलप्रदम् ॥ तत्पश्चिमेमहालिंगमग्नीशइतिविश्रुतम् ॥ १९ ॥ आग्नेयंनामकुंडंचतत्पूर्वेग्निसलोकदम् ॥ आग्नेयेश्वरतःप्राच्यांकुंडंतद्दक्षिणेशुभम् ॥ १२० ॥ तत्रकुंडेनरःस्नात्वास्वर्गेवसतिपूर्वजैः ॥ तत्प्राच्यांबालचंद्रेशश्चंद्रलोकगतिप्रदः ॥ २१ ॥ परितोबालचंद्रेशंगणलिंगान्यनेकशः ॥ विलोक्यतानिलिंगानिगाणपत्यंपदंलभेत् ॥ २२ ॥ बालचंद्रसमीपेतुकूपःपितृगणप्रियः ॥ तत्रश्राद्धप्रदःस्नात्वापितॄन्सप्तात्रतारयेत् ॥ २३ ॥ तदंघोःपूर्वतोलिंगंपुण्यंविश्वेश्वराह्वयम् ॥ विश्वेश्वरस्यपूर्वेणवृद्धकालेश्वरोहरः ॥ २४ ॥ कालोदोनामकूपोस्तितदग्रेसर्वरोगहृत् ॥ यैस्तुतत्रोदकंपीतंस्त्रीभिःपुंभिःस्वकर्मभिः ॥ २५ ॥ नतेषांपरिवर्तोत्रकल्पकोटिशतैरपि ॥ तत्पीत्वाजन्मबंधोत्थाद्भयान्मुच्येतमानवः ॥२६॥ तत्रकूपेतुयद्दत्तंदानंशिवरतात्मनाम् ॥ संवर्तेपिनतस्यास्तिनाशःकलशसंभव ॥२७॥ खंडस्फुटितसंस्कारंतत्रकुर्वंतियेनराः ॥ तेरुद्रलोकमासाद्यमोदंतेसुखिनःसदा ॥ २८ ॥

जिसके पूर्वकी ओर वृद्धकालेश्वर महादेव हैं ॥ २४ ॥ उनके सन्मुखही कालोद (क) नामक कूपहै, जो सब रोगोंको दूर करदेताहै, जो स्त्री अथवा पुरुष उस कूपका जल पीते हैं ॥ २५ ॥ शतकोटि कल्प बीतजानेपरभी उनका परिवर्तन नहीं होने पाता, मनुष्य उसका जल पीकर जन्मबंधनके भयसे निर्मुक्त होजाताहै ॥ २६ ॥ उस कूपपर शैवलोगोंको जो कुछ दान दियाजाता है, हे घटज ! प्रलयकालमेंभी उसका नाश नहीं होसकता ॥ २७ ॥ जो लोग वहांपर टूटे फूटेको बनवा (जीर्णोद्धारकरा) देते हैं, वे सब लोग रुद्रलोकमें जाकर सदैव सुखपूर्वक आमोद प्रमोद करते हैं ॥ २८ ॥

(वृद्ध) कालेश्वरसे दक्षिण अपमृत्युनाशक मृत्य्वीश (मृत्युंजय) नामक लिंग है, और उस कूपके उत्तरकी ओर दक्षेश्वर लिंगहै ॥२९॥ जिसके समर्चनसे सहस्रोंही अपराध विनष्ट होजाते हैं ॥ १३० ॥ दक्षेश्वरसे पूर्व बडाभारी महाकालेश्वर लिंग है, जो कोई महाकालकुंडमें नहाकर महाकालका पूजन करता है ॥ ३१ ॥ उसे सचराचर जगत्भरकी पूजाका फल होता है । उससे दक्षिण अन्तकेश्वरके दर्शन करनेसे यमराजका कुछ भय नहीं रहजाता ॥३२॥ हे मुने! उस लिंगसेभी दक्षिण हस्तिपालेश्वर लिंग है, उसके पूजनसे हस्तिदानका पुण्यलाभ होताहै ॥३३॥ वहींपर ऐरावत कुंड और ऐरावतेश्वर लिंगभी

कालेशाद्दक्षिणेभागेमृत्त्य्वीशस्त्वपमृत्युहृत् ॥ लिंगंदक्षेश्वराह्वंचततःकूपादुदग्दिशि ॥ २९ ॥ अपराधसहस्रंतुनश्येत्तस्यसमर्चनात् ॥ ॥ १३० ॥ महाकालेशलिंगंचदक्षेशात्पूर्वतोमहत् ॥ महाकुंडेनरःस्नात्वामहाकालंतुयोर्चयेत् ॥३१॥ अर्चितंतेनवैतत्रजगदेतच्चराचरम् ॥ अंतकेश्वरमालोक्यतद्याम्यांनांतकस्यभीः ॥३२॥ हस्तिपालेश्वरंलिंगंतस्यदक्षिणतोमुने ॥ तस्यपूजनतोयातिपुण्यंवैहस्तिदानजम्॥३३॥ तत्रैरावतकुंडंचलिंगमैरावतेश्वरम् ॥ तल्लिंगमर्चयन्मर्त्योधनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ ३४ ॥ तद्दक्षिणेश्रेयसेचलिंगंस्यान्मालतीश्वरम् ॥ हस्तीश्वरादुत्तरेतुजयंतेशोजयप्रदः ॥ ३५ ॥ बंदीश्वरोमहाकालकुंडादुत्तरतःशुभः ॥ बंदिकुंडंचविख्यातंवाराणस्यांमहाघहृत् ॥ ३६ ॥ तत्रस्नानेनदानेनश्राद्धेनाक्षयमश्नुते॥ धन्वंतरीश्वरंलिंगंकुंडंतन्नामचैवहि ॥ ३७ ॥ तस्यलिंगस्यनामान्यत्कुंडनामान्यदेवहि ॥ तुंगेश्वरं लिंगनामकुंडंवैद्येश्वराभिधम् ॥ ३८ ॥ सुधामय्योमहौषध्यःक्षिप्तास्तत्रमहाधियः ॥ तत्कुंडस्नानतस्तस्मात्तल्लिंगपरिवीक्षणात् ॥ नश्यंतिव्याधयःसर्वेसहपापैःसुदारुणैः ॥ ३९ ॥

है, जिसके पूजनसे मनुष्य धन धान्यसे समृद्धिशाली होता है ॥ ३४ ॥ उसके दक्षिणांशमें कल्याणकर मालतीश्वर लिंगहै, और हस्तिपालेश्वरके उत्तर जयप्रद जयन्तेश्वर लिंग है ॥ ३५ ॥ महाकाल कुंडसे उत्तर शुभदायक बन्दीश्वर लिंग है। इसी स्थानपर काशीपुरीका विख्यात पापनाशक बन्दीकुंड है ॥ ३६ ॥ वहांपर स्नान दान और श्राद्ध करनेसे अक्षय फल होताहै, धन्वन्तरीश्वर लिंग और उसी नामका कुंडभी है ॥ ३७ ॥ (पर) इस लिंगका नाम दूसरा है और कुंडका नाम अन्यही (प्रसिद्ध) है, लिंगका नाम तो तुंगेश्वर है, पर कुंड वैद्येश्वर कहाता है ॥३८॥ उस कुंडमें(धन्वन्तरीने)

आरोग्यकर, अमृतस्वरूप, (मृतसंजीवनी इत्यादि) बडीबडी औषधियां डालदीं हैं, (अतएव) उस कुंडमें स्नान तथा उक्त लिंगके दर्शनसे बडे कठोर पापोंके साथ समस्त व्याधियां नष्ट होजातीहैं ॥ ३९ ॥ उसके उत्तरभागमें हलीशेश्वर लिंगहै, वहभी सब रोगोंका विनाशकही है, फिर तुंगेश्वरनामक लिंगसे दक्षिण शुभकारक शिवेश्वर लिंगहै ॥ १४० ॥ उसकेभी दक्षिण जमदग्नीश्वर लिंग है, उसके पश्चिम भैरवेश्वर हैं, जिनके उत्तर ओर उत्तम (भैरव) कूप है ॥ ४१ ॥ उसके जलका केवल स्पर्श करनेहीसे समस्त यज्ञोंका फल मिलजाता है, उस कूपके पश्चिम योगसिद्धियोंका दाता सुकेश (सुकेश्वर) लिंग अवस्थित है ॥४२॥ उससे नैर्ऋत्यकोणमें निर्मलजल (वाला) व्यासकूप है, एवं वहींपर व्यासेश्वर लिंगभी है, मनुष्य उस कूपोदकसे नहानेके उपरांत देवता

तदुत्तरेहलीशेशःसर्वव्याधिनिषूदनः ॥ शिवेश्वरःशिवकरस्तुंगनाम्नश्चदक्षिणे ॥ १४० ॥ जमदग्नीश्वरंलिंगंशिवेशाद्दक्षिणेशुभम् ॥
तत्पश्चिमेभैरवेशःकूपस्तस्योत्तरेशुभः ॥ ४१ ॥ तदुदस्पर्शमात्रेणसर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ तत्कूपपश्चिमेभागेसुकेशोयोगसिद्धिदः ॥ ४२ ॥
तन्नैर्ऋत्यांचव्यासेशःकूपश्चविमलोदकः ॥ व्यासकूपेनरःस्नात्वातर्पयित्वासुरान्पितॄन् ॥४३॥ अक्षयंलभतेलोकंयत्रकुत्राभिकांक्षितम् ॥
व्यासतीर्थात्पश्चिमतोघंटाकर्णोह्रदोमहान् ॥ ४४ ॥ घंटाकर्णह्रदेस्नात्वाव्यासेशपरिदर्शनात् ॥ यत्रतत्रमृतोवापिवाराणस्यांमृतोभवेत् ॥
॥४५॥ घंटाकर्णसमीपेतुपंचचूडाप्सरःसरः ॥ पंचचूडाजलेस्नात्वादृष्ट्वादेवंतमीश्वरम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गलोकंनरोयातिपंचचूडाप्रियोभवेत् ॥
गौरीकूपस्ततोवाच्यांसर्वजाड्यविनाशनः॥४७॥ पंचचूडोत्तरेभागेतीर्थंचाशोकसंज्ञितम् ॥ मंदाकिनीमहातीर्थंतदुदीच्यांमहाघहृत्॥४८॥

और पितरोंका तर्पण करनेसे ॥४३॥ मनोवांछित चाहे जिस लोकको अक्षय रूपसे प्राप्त करसकताहै, उस व्यासतीर्थके पश्चिम बहुत बडा घंटाकर्ण ह्रद (जो कर्णघंटानामसे प्रसिद्धहै) ॥४४॥ घंटाकर्णनामक ह्रदमें स्नानकर व्यासेश्वरका दर्शन करनेसे प्राणी चाहे कहींपर मरे पर उसे काशीहीमें मरनेका फल प्राप्त होता है ॥४५॥ घंटाकर्णसे सटाहीहुआ पंचचूडानामकी अप्सराका एक सरोवरहै, उसमें स्नानकर पंचचूडेश्वरके अवलोकनसे ॥ ४६ ॥ मनुष्य स्वर्गमें जाता और पंचचूडाका बडा प्रिय होता है । उसके दक्षिण सबभाँतिकी जडताका धोडालनेवाला गौरीकूप है ॥ ४७ ॥ और उसी पंचचूडा (सरोवर) के उत्त

रकी ओर अशोक नामक तीर्थ है, जिसके उत्तर महापापपहारी मन्दाकिनी (नामक) महातीर्थ है ॥ ४८ ॥ हे मुने ! जो मन्दाकिनी स्वर्गमेंभी परम पवित्र मानीजातीहै, फिर इस मर्त्यलोकमें उसकी कौन बात है ? उसके उत्तर प्रांतमें मध्यमेश्वर शिवहैं, जो (अविमुक्त) क्षेत्रके मध्यभागमें (सुखसे) शयन कररहेहैं ॥ ४९ ॥ चैत्रमासकी अशोकाष्टमीको जो कोई उस स्थानपर जागरण करताहै, वह कभी शोकभागी नहीं होता वरन् सदैव आनन्दस्वरूप बनारहताहै ॥१५०॥ इसी परमपुण्यप्रद मध्यमेश्वर लिंगसे लेकर एक एक कोस चारोंओर मुक्तिक्षेत्रका प्रमाण (समझागया) है ॥ ५१ ॥ पितरलोग यह बात सदैव कहाकरते हैं कि "हमारे वंशमें ऐसा कोई एक जनभी उत्पन्न होता जो चित्तसंयमपूर्वक मन्दाकिनीके जलमें स्नानकर ब्राह्मण,

स्वर्गलोकेपिसापुण्याकिंपुनर्मानवेमुने ॥ तदुत्तरेमध्यमेशोमध्येक्षेत्रंस्वपित्यहो ॥ ४९ ॥ तत्रजागरणंकृत्वाऽशोकाष्टम्यांमधौनरः ॥ नजातुशोकंलभतेसदानंदमयोभवेत् ॥१५०॥ मुक्तिक्षेत्रप्रमाणंचक्रोशंक्रोशंचसर्वतः ॥ आरभ्यलिंगादस्माच्चपुण्यदान्मध्यमेश्वरात् ॥ ५१ ॥ एतदेवसदाप्राहुःसर्वेवैप्रपितामहाः ॥ कश्चिदस्मत्कुलेजातोमंदाकिन्याजलाप्लुतः ॥ ५२ ॥ भोजयेत्प्रयतोविप्रान्यतीन्पाशुपतानपि ॥ मंदाकिन्यांनरःस्नात्वादृष्ट्वावैमध्यमेश्वरम् ॥५३॥ एकविंशत्कुलोपेतोरुद्रलोकेवसेच्चिरम् ॥ मध्यमेशादवाच्यांचविश्वेदेवेश्वरःशुभः॥५४॥ तदर्चनादर्चिताःस्युर्विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ तत्पूर्वेवीरभद्रेशोमहावीरपदप्रदः ॥ ५५ ॥ भद्रदाभद्रकालीचतस्यदक्षिणतःशुभा ॥ भद्राकालह्रदोनामतत्रातिशुभप्रदः ॥ ५६ ॥ आपस्तंबेश्वरंलिंगंतत्प्राच्यांज्ञानदंपरम् ॥ तदुत्तरेपुण्यकूपस्तत्पश्चाच्छौनकोह्रदः ॥ ५७ ॥

संन्यासी और शिवभक्तोंको भोजन करादेता"। मनुष्य मन्दाकिनीमें स्नानकर मध्यमेश्वरका दर्शन करनेसे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ एक्कीस पीढियोंके साथ रुद्रलोकमें बहुत दिनोंतक निवास करताहै । मध्यमेश्वरसे दक्षिण विश्वदेवेश्वरनामक एक पवित्र लिंगहै ॥ ५४ ॥ अकेले उसी लिंगके पूजन करनेसे तेरहों विश्वेदेवोंके पूजन करनेका फल होताहै । उससे पूर्व महावीर पदके दाता वीरभद्रेश्वर हैं ॥५५॥ उनके दक्षिण भद्रकारिणी भगवती भद्रकाली विराजमानहैं, और वहींपर महामंगलदायक भद्रकालनामक ह्रदभी है ॥ ५६ ॥ जिससे पूर्व परम ज्ञानप्रद आपस्तम्बेश्वर लिंगहै, पर उसके उत्तरकी ओर पुण्यकूप

और पिछवाडेही शौनकह्रदहै ॥ ५७ ॥ उस ह्रदके पश्चिम सुबुद्धिवर्धक शौनकेश्वर लिंगभी है, यदि कोई उस ह्रदमें नहाकर शौनकेश्वरका दर्शन करलेवे तो ॥ ५८ ॥ उसे वह दिव्यज्ञान होजाताहै जिससे वह मृत्युको पार करदेसक्ताहै, उसके दक्षिण जम्बुकेश्वरहैं, जो तिर्यग्योनिके दुःखको छुडा देतेहैं ॥५९॥ उससे उत्तर गानविद्याका प्रबोधक मतंगेश्वर लिंग है । मतंगेश्वरसे वायव्यकोणपर चारोंओर मुनियोंके स्थापित बहुतेरे सिद्धिप्रद शिवलिंग विराजमान हैं, परब्रह्मरातेश्वर लिंग मतंगेश्वरसे दक्षिण भागमें अवस्थित है ॥१६०॥६१॥ उसके दर्शनसे कभी अकालमृत्यु नहीं होने पाती । वहींपर पितरोंके प्रतिष्ठित अनेक लिंग हैं, एवं एक प्रसिद्ध आज्यपेश्वर लिंग है, उन सब लिंगोंके सेवनसे पितर लोग बडे सन्तुष्ट होजाते हैं ॥ ६२ ॥ उससेभी

ह्रदपश्चिमतोलिंगंशौनकेशंसुधीप्रदम् ॥ ह्रदेतत्रनरःस्नात्वाहष्ट्वावैशौनकेश्वरम् ॥५८॥ ज्ञानंतत्संलभेद्दिव्यंयेनमृत्युंतरत्यसौ ॥ तद्दक्षिणे जंबुकेशस्तिर्यग्योनिनिवारकः ॥५९॥ तदुत्तरेमतंगेशोगानविद्याप्रबोधकः ॥ मतंगेशस्यवायव्येनानालिंगानिसर्वतः ॥१६०॥ मुनिभिः स्थापितानीहसर्वसिद्धिप्रदानिच ॥ ब्रह्मरातेश्वरंलिंगंमतंगेशाच्चदक्षिणे ॥६१॥ तल्लिंगदर्शनादायुर्नांतराच्छिद्यतेक्वचित् ॥ तत्राज्यपेश्वरंलिंगंपितृलिंगान्यनेकशः ॥ तल्लिंगसेवयासर्वेतुष्यंतिप्रपितामहाः ॥ ६२ ॥ तद्दक्षिणेसिद्धकूपःसिद्धाःसंतिसहस्रशः ॥ वायुरूपास्तुयेसिद्धा येसिद्धाभानुरश्मिगाः ॥ ६३ ॥ तैःस्थापितंतुयल्लिंगंतत्सिद्धेश्वरमीरितम् ॥ तस्यसंदर्शनादेवसर्वाःस्युःसिद्धयोऽमलाः ॥ ६४ ॥ तत्पश्चिमेसिद्धवापीपीतास्नाताचसिद्धिदा ॥ प्राच्यांचसिद्धकूपाद्वैलिंगंव्याघ्रेश्वराभिधम् ॥ ६५ ॥ तल्लिंगदर्शनान्नृणांनभयंव्याघ्रचोरजम् ॥ ज्येष्ठेश्वरंचतद्याम्यांज्येष्ठस्थानेतिसिद्धिदम् ॥६६॥ तद्दक्षिणेमुदांधामलिंगंप्रहसितेश्वरम् ॥ तदुत्तरेनिवासेशःकाशीवासफलप्रदः ॥६७॥

दक्षिण एक सिद्धकूप है, जहांपर सहस्रों सिद्धलोग रहते हैं, वायुस्वरूप अथवा सूर्यकिरणमें रहनेवाले बहुतेरे सिद्धोंके स्थापित कियेहुए एक सिद्धेश्वर वहांपर विराजमान हैं, उनके दर्शनहीसे सब सिद्धियां प्राप्त होजाती हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उसके पश्चिमओर एक सिद्धवापीभी है जो स्नान और पान करनेसे सिद्धिको देती है, फिर उक्त सिद्धकूपके पूर्व व्याघ्रेश्वरनामक लिंग है ॥ ६५ ॥ उसके दर्शनसे व्याघ्र अथवा चोर (डांकू) का कुछ डर नहीं रहने पाता, उससे दक्षिण ज्येष्ठ स्थानमें परमसिद्धिप्रद ज्येष्ठेश्वर लिंग विराजरहा है ॥ ६६ ॥ उसके दक्षिण आनन्दधाम प्रहसितेश्वर लिंग है, जिसके उत्तर

भागमें काशीवासके फलदाता निवासेश्वर हैं ॥ ६७ ॥ वहींपर चतुःसमुद्रनामक कूप है जिसमें स्नान करनेसे समुद्रके स्नानका फल मिलता है। और वहांही पर जेष्ठा देवीभी हैं, जो प्रणाममात्रसे ज्येष्ठता देदेती हैं ॥ ६८ ॥ व्याघ्रेश्वरसे दक्षिण चण्डीश्वरनामक लिंग है, उसके उत्तरांशमें पितरोंको हर्षदायक दण्डखात सरोवर है ॥ ६९ ॥ ग्रहणके अनंतर देवखातनामक पोखरेमें स्नान करनेका बडा माहात्म्य है, वहींपर जैगीषव्यमुनिकी गुहा और जैगीषव्येश्वर लिंगभी सुशोभित है ॥ १७० ॥ वहांपर यदि त्रिरात्र उपवास करे तो निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है, उसके पीछेकी ओर महापुण्यदायक देवलेश्वर हैं ॥ ७१ ॥ उससे लगाहुआ पासहीमें शतकालनामक लिंग है हे-कुम्भसम्भव ! भगवान् उमापतिने इस लिंगके प्रकट करनेकेलिये शतवर्षपर्यंत

चतुःसमुद्रकूपोस्तितत्राब्धिस्नानपुण्यदः ॥ ज्येष्ठादेवीतुतत्रास्तिनताज्येष्ठपदप्रदा ॥ ६८ ॥ अत्राच्यांव्याघ्रलिंगाच्चलिंगंचंडीश्वराभिधम् ॥ तदुत्तरेदंडखातंसरःपितृमुदावहम् ॥ ६९ ॥ ग्रहणानंतरेस्नानंदंडखातेतिपुण्यदम् ॥ जैगीषव्यगुहातत्रतत्रलिंगंतदाह्वयम् ॥१७०॥ त्रिरात्रोपोषितस्तत्रज्ञानंलभ्येतनिर्मलम् ॥ महापुण्यप्रदंलिंगंतत्पश्चाद्देवलेश्वरम् ॥ ७१ ॥ शतकालस्तत्समीपेशतंकालानुमापतिः ॥ तल्लिंगाविर्भवेकाश्यांकालयामासकुंभज ॥ ७२ ॥ तल्लिंगदर्शनादायुःशतवर्षाण्यखंडितम् ॥ शातातपेशस्तद्याम्यांमहाजपफलप्रदः ॥ ७३ ॥ तत्पश्चिमेहेतुकेशोहेतुभूतोमहाफले ॥ तद्दक्षिणेक्षपादेशोमहाज्ञानप्रवर्तकः ॥ ७४ ॥ तदग्रेचकणादेशस्तत्रपुण्योदकःप्रहिः ॥ स्नात्वाकाणादकूपेयःकणादेशंसमर्चयेत् ॥ ७५ ॥ नधनेननधान्येनत्यज्यतेसकदाचन ॥ तस्यदक्षिणतोदृश्योभूतीशोभूतिकृत्सताम् ॥ ७६ ॥ तत्पश्चिमेऽघसंहर्तृआषाढीश्वरसंज्ञितम् ॥ दुर्वासेशश्चतत्पूर्वेसर्वकामसमृद्धिकृत् ॥ ७७ ॥

काशीमें कालयापन किया था ॥ ७२ ॥ उस लिंगके दर्शनसे सौवर्षकी आयु अखंडित (पूरी) होती है, उसके दक्षिण महाजपके फलदाता शातातपेश्वर हैं ॥ ७३ ॥ जिनके पश्चिमकी ओर महाफलके हेतुभूत हेतुकेश्वर हैं, उनके दक्षिण महाज्ञानप्रवर्तक अक्षपादेश्वर हैं ॥ ७४ ॥ उनसे आगे (बढकर) कणादेश्वर हैं, और वहींपर पुण्योदक कूपभी है, उस कणादकूपमें नहाकर कणादेश्वरका पूजन करनेसे ॥ ७५ ॥ कभी धन और धान्यकी न्यूनता नहीं होती । उसके दक्षिण सज्जनोंके भूतिकर्ता भूतीश्वरभी दर्शनहीके योग्य हैं ॥ ७६ ॥ उनसे पश्चिम अघनाशक आषाढीश्वर हैं जिनके पूर्व सब कामोंकी

संपत्ति देनेवाले दुर्वासेश्वर विराजितहैं ॥ ७७ ॥ उनके दक्षिण पापभारापहारक भारभूतेश्वर हैं, और पूर्वोक्त व्यासेश्वरके पूर्वांशमें महाज्ञानदायक शंखेश्वर और लिखितेश्वरनामक दो लिंग वर्तमान हैं, काशीमें प्रयत्नपूर्वक उन दोनों लिंगोंका दर्शन करना चाहिए ॥ ७८ ॥ पाशुपत व्रतको पूर्णकरके उद्यापन करनेसे जो पुण्य होता है, एकबार क्षणमात्र विश्वेश्वरके दर्शन सेभी वही फल मिलता है ॥ ७९ ॥ उनके ईशानकोणपर योगज्ञानका प्रवर्तक अवधूतेश्वर लिंग और सर्वकल्मषनाशक अवधूतेश्वर तीर्थभी स्थित है ॥ १८० ॥ जिसके सेवनसे लोगोंका पशुपाश छूटजाता है; वह पशुपतीश्वर लिंग अवधूतेश्वरके पूर्वभागमें प्रकाशमान है ॥ ८१ ॥ उसके दक्षिण अभिलषित वर देनेवाला गोभिलेश्वर लिंग है, जिसके पिछवाडे जीमूतवाहनेश्वरनामक उत्तम लिंग

तद्याम्यांभारभूतेशःपापभारापहारकः ॥ व्यासेश्वरस्यपूर्वेणद्वौशंखलिखितेश्वरौ ॥ तौदृश्यौयत्नतःकाश्यांमहाज्ञानप्रवर्तकौ ॥ ७८ ॥
यत्समाप्याऽप्यतेपुण्यंनिष्ठापाशुपतव्रतम् ॥ तदाप्यतेत्रविश्वेशसकृदीक्षणतःक्षणात् ॥ ७९ ॥ तदीशानेवधूतेशोयोगज्ञानप्रवर्तकः ॥
तीर्थंचैवावधूतेशंसर्वकल्मषनाशकृत् ॥ १८० ॥ अवधूतेश्वरात्पूर्वेलिंगंपशुपतीश्वरम् ॥ तल्लिंगसेवयापुंसांपशुपाशविमोक्षणम् ॥८१॥
तद्दक्षिणेगोभिलेशोमहाभिलषितप्रदः॥ जीमूतवाहनेशश्चतत्पश्चाल्लिंगमुत्तमम् ॥८२॥ विद्याधरपदप्राप्तिस्तल्लिंगपरिसेवनात् ॥ मयूखार्कः
पंचनदेगभस्तीशश्चतत्रवै ॥ ८३ ॥ दधिकल्पह्रदोनामतदुदीच्यांमहाप्रहिः ॥ दुर्लभंतत्प्रहिस्नानंदुर्लभंचतदीक्षणम् ॥ ८४ ॥ गभस्ती
शोत्तरेभागेदधिकल्पेश्वरोहरः ॥ नरस्तमाशुसंवीक्ष्यकल्पंत्र्यक्षपुरेवसेत् ॥ ८५ ॥ गभस्तीशाद्दक्षिणेतुमंगलांमंगलालयाम् ॥ उद्दिश्यमं
गलांगौरींभोजयेद्द्विजदंपती ॥ ८६ ॥ अलंकृत्ययथाशक्तितत्पुण्यांतोनकर्हिचित् ॥ क्षितिप्रदक्षिणफलामंगलैकाप्रदक्षिणा ॥ ८७ ॥

है ॥ ८२ ॥ उस लिंगकी सेवासे मनुष्य विद्याधर होता है, पंचनद (तीर्थ) पर मयूखादित्य हैं, और वहींपर गभस्तीश्वरभी हैं ॥ ८३ ॥ उनसे उत्तरकी ओर दधिकल्प ह्रदनामा एक बडाभारी कूप है, उस कूपका स्नान और (गभस्तीश्वरका) दर्शन मिलना, बहुतही कठिन समस्या है ॥८४॥ गभस्तीश्वरसे उत्तर दधिकल्पेश्वर लिंग है मनुष्य उस लिंगके दर्शन करनेसे कल्पभर शिवलोकमें वास करता है ॥८५॥ गभस्तीश्वरसे दक्षिण मंगलालया जो मंगलागौरी हैं, उनके उद्देशसे यदि द्विज दम्पतीको ॥ ८६ ॥ यथाशक्ति विभूषित करके भोजन करायाजावे तो असीम पुण्य होता है, मंगलागौरीकी एक प्रदक्षिणा

करनेसे समस्त पृथिवीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है ॥ ८७ ॥ मंगलागौरीके पासहीमें मुखप्रेक्षेश्वरके उत्तर सर्वसिद्धि करी वदनप्रेक्षणानामकी देवी सुशोभित हैं ॥ ८८ ॥ मुखप्रेक्षेश्वरके उत्तरही ओर त्वष्ट्रीश्वर और वृत्तेश्वरनामक दो लिंगहैं, उनके दर्शनसे ससुवर्ण भूमिदान करनेका फल होता है ॥ ८९ ॥ उनकेभी उत्तर शुभदर्शना चर्चिका देवी हैं, जिनके आगे (बढतेही) शांतिकर रेवतेश्वरनामक लिंग अवस्थितहै ॥ १९० ॥ उसके आगे महाशुभप्रद पंचनदेश्वर लिंग है, और वहींपर मंगलागौरीके पश्चिम मंगलोदकनामा एक बडाभारी कूप है ॥ ९१ ॥ और उसी ओर उपमन्युका स्थापित एक महा लिंग है । उसके पीछे व्याघ्रका भय हरनेवाला व्याघ्रपादेश्वर लिंग है ॥ ९२ ॥ गभस्तीश्वरसे नैर्ऋत्यकोणपर अघसमूहके नाशक शशांकेश्वर

वदनप्रेक्षणादेवीमुखप्रेक्षेश्वरोत्तरे ॥ मंगलायाःसमीपेतुसर्वसिद्धिकरीशिवा ॥ ८८ ॥ लिंगेत्वष्ट्रीशवृत्तेशोमुखप्रेक्षोत्तरेशुभे ॥ सहेमभूमिदानस्यफलंदर्शनतस्तयोः ॥ ८९ ॥ तदुत्तरेचर्चिकायादेव्याःसंदर्शनंशुभम् ॥ रेवतेश्वरलिंगंचचर्चिकाग्रेणशांतिकृत् ॥ १९० ॥ महाशुभायतस्याग्रेलिंगंपंचनदेश्वरम् ॥ मंगलोदोमहाकूपोमंगलापश्चिमेशुभः ॥ ९१ ॥ उपमन्योर्महालिंगंमंगलापश्चिमेशुभम् ॥ व्याघ्रपादेश्वरंलिंगंतत्पश्चाद्व्याघ्रभीतिहृत् ॥ ९२ ॥ नैर्ऋत्यांचगभस्तीशाच्छशांकेशोघसंघहृत् ॥ तत्पश्चिमेचैत्ररथंलिंगंदिव्यगतिप्रदम् ॥ ९३ ॥ रेवतेशात्पश्चिमतोजैमिनीशोमहाघहृत् ॥ तत्रलिंगान्यनेकानिऋषीणामृषिसत्तम ॥ ९४ ॥ जैमिनीशाच्चवायव्येलिंगंवैरावणेश्वरम् ॥ नतद्दर्शनतःपुंसांराक्षसानांमहाभयम् ॥ ९५ ॥ तद्दक्षिणेवराहेशोमांडव्येशस्ततोयमे ॥ तद्दक्षिणेप्रचंडेशोयोगेशोदक्षिणेततः ॥ ९६ ॥ तद्दक्षिणेचधातेशःसोमेशश्चतदग्रतः ॥ तन्नैर्ऋत्यांकनकेशोमहाकनकदःसताम् ॥ ९७ ॥

वर्तमान हैं, जिनके पश्चिमभागमें दिव्यगतिके दाता चैत्ररथेश्वर स्थित हैं ॥ ९३ ॥ रेवतेश्वरके पश्चिम महापातकहारी जैमिनीश्वर हैं, हे ऋषिसत्तम ! वहांपर अनेक ऋषियोंके स्थापित लिंग हैं ॥ ९४ ॥ जैमिनीश्वरसे वायव्यकोणपर रावणेश्वर लिंग है, उसके दर्शनसे लोगोंको राक्षसोंका कुछभी भय नहीं होनेपाता ॥ ९५ ॥ उसके दक्षिण वराहेश्वर हैं, जिनके दक्षिणभागमें मांडव्येश हैं, उनके दक्षिण प्रचण्डेश्वर हैं, फिर उनके दक्षिण योगेश्वर हैं ॥ ९६ ॥ उनकेभी दक्षिण धातेश्वर हैं, उनकेभी आगे बढतेही सोमेश्वर लिंग मिलता है, जिसके नैर्ऋत्यकोणमें सज्जनोंको कनक देनेवाला कनकेश्वर

लिंग है ॥ ९७ ॥ फिर उसके उत्तर हर्षकारक पाँचोंपांडवोंके स्थापित पांच लिंग हैं, जिनके आगे संवर्तेश्वर और पश्चिमकी ओर श्वेतेश्वरलिंग है॥९८॥ एवं पिछवाडेही कालसे अभय करदेनेवाला कलशेश्वर लिंग है, जो कि श्वेतकेतुके कालफाँसमें पडजानेपर अमृतके घडेसे निकला था ॥९९॥ उसकेभी उत्तर अघनाशक चित्रगुप्तेश्वर लिंग है, जिसके पीछे महाफलदायक दृढेश्वर विद्यमान हैं ॥ २०० ॥ कलशेश्वरके दक्षिण ग्रहेश्वरनामक एक उत्तम लिंग है, उसके दर्शनसे सब ग्रहोंकी बाधाका शमन होजाता है ॥१॥ चित्रगुप्तेश्वरके पश्चाद्भागमें जो यदृच्छेश्वरलिंग है, वहभी बडाही फलप्रद है; फिर ग्रहेश्वरके

तदुत्तरेपांडवानांपंचलिंगानिसन्मुदे ॥ संवर्तेशस्तदग्रेच श्वेतेशस्तस्यपश्चिमे ॥९८॥ तत्पश्चात्कलशेशश्चलिंगंकालाभयप्रदम् ॥ कालेनपाशितेश्वेतेमुनेकुंभात्समुत्थितम् ॥९९॥ चित्रगुप्तेश्वरंलिंगंतदुदीच्यामघापहम् ॥ चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्योदृढेशोमहाफलः ॥ २०० ॥ कलशेशादवाच्यांचग्रहेशोलिंगमुत्तमम् ॥ ग्रहबाधांशमयतितल्लिंगपरिलोकनम्॥१॥ चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्यदृच्छेशोमहाफलः ॥ उतथ्यवामदेवेशंलिंगंयाम्यांग्रहेश्वरात् ॥२॥ कंबलाश्वतरेशौचतस्यदक्षिणतःशुभे ॥ तत्रैवनिर्मलंलिंगंनलकूबरपूजितम् ॥३॥ तद्याम्यांमणिकर्णीशंतदुदक्पलितेश्वरम् ॥ जराहरंचतत्रैवतत्पश्चात्पापनाशनम् ॥४॥ तत्पश्चिमेनिर्जरेशस्तन्नैर्ऋत्यांपितामहः ॥ पितामहस्रोतिकाचतत्रश्राद्धंमहाफलम् ॥ ५ ॥ तद्याम्यांवरुणेशश्चबाणेशस्तस्यदक्षिणे ॥ पितामहस्रोतिकायांकूश्माण्डेशस्तुसिद्धिकृत् ॥ ६ ॥

दक्षिण उतथ्यवामदेवेश्वर लिंगहै ॥ २ ॥ जिसके दक्षिण कंबलाश्वतरेश्वरनामक शुभप्रद दो लिंग विराजमान हैं, और वहींपर नलकूबरका पूजित एक निर्मल लिंगभी अवस्थित है ॥३॥ उसके दक्षिण मणिकर्णिकेश्वर हैं, जिनसे उत्तरदिशामें पलितेश्वर और जराहरेश्वर लिंग है; और उसके पीछेकी ओर पापनाशन लिंगभी है ॥४॥ उसके पश्चिम निर्जरेश्वर हैं, जिनसे नैर्ऋत्यकोणपर पितामहेश्वर हैं, और वहींपर पितामहस्रोतीनामक तीर्थभी है, जहांपर श्राद्ध करनेसे बडा फल होता है ॥५॥ उससे दक्षिण वरुणेश्वर हैं, जिनके दक्षिणभागमें बाणेश्वर विराजमान हैं, फिर पितामहस्रोतिकापर सिद्धिकारक कूश्माण्डेश्वर लिंग

है ॥ ६ ॥ जिसके पूर्वभागमें राक्षसेश्वर और दक्षिण ओर गंगेश्वर हैं, पर उत्तरप्रान्तमें तो बहुतसे निम्नगेश्वर वर्तमान हैं ॥७॥ वहींपर वैवस्वतेश्वरभी हैं, जिनके दर्शनसे यमलोकमें नहीं जानापडता, उसके पीछे अदितीश्वर और आगेकी ओर चक्रेश्वर हैं ॥ ८ ॥ उनके आगे बढतेही देखतेमात्र विश्वास उपजानेवाले कालकेश्वर हैं; वहांपर उनकी छाया दिखाई देती है, उनके दर्शनसे प्राणी निष्पाप होजाता है ॥ ९ ॥ उनके आगे तारकेश्वर हैं, जिनके सन्मुखही स्वर्णभारदेश्वर विराजित हैं, उनसे उत्तरमरुत्तेश्वर हैं, जिनके आगे शक्रेश्वर हैं ॥ २१० ॥ उनसे दक्षिण रम्भेश्वर, और (वहींपर) शशी श्वरभी हैं । जिनके उत्तरकी ओर सभी लोकपालोंके स्थापित अनेक लिंग वर्तमान हैं, ॥ ११ ॥ और वहींपर नाग, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, अप्सरा, देवता

तत्पूर्वतोराक्षसेशोगंगेशस्तस्यदक्षिणे ॥ तदुत्तरेनिम्नगेशाःसंतिलिंगान्यनेकशः ॥ ७ ॥ वैवस्वतेश्वरस्तत्रयमलोकनिवारकः ॥ तत्पश्चाद दितीशश्चचक्रेशस्तस्यचाग्रतः ॥ ८ ॥ तदग्रेकालकेशाख्योदृष्टप्रत्ययकृत्परः ॥ छायासंदृश्यतेतत्रनिष्पापस्तदवेक्षणात् ॥ ९ ॥ तदग्रेतारकेशश्चतदग्रेस्वर्णभारदः ॥ तदुत्तरेमरुत्तेशःशक्रेशश्चतदग्रतः ॥ २१० ॥ तद्दक्षिणेचरंभेशस्तत्रैवचशशीश्वरः ॥ तदुत्तरेलोकपे शास्तत्रलिंगान्यनेकशः ॥ ११ ॥ नागगंधर्वयक्षाणांकिन्नराप्सरसामपि ॥ देवर्षिगणवृंदानांनानासिद्धिकराण्यपि ॥ १२ ॥ शक्रेशा द्दक्षिणेभागेफाल्गुनेशोमहाघहृत् ॥ महापाशुपतेशश्चतद्याम्यांशुभकृत्परः ॥ १३ ॥ तत्पश्चिमेसमुद्रेशईशानेशस्तदुत्तरे ॥ तत्पूर्वेलां गलीशश्चसर्वसिद्धिसमर्पकः ॥ १४ ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ताःसिद्धिंयांतिचपूजकाः ॥ तेषांमोक्षोमयाख्यातोनतुतेदेविमानवाः ॥ १५ ॥ मधुपिंगश्वेतकेतूलांगलीशेतपस्विनौ ॥ अनेनैवशरीरेणजग्मतुःसिद्धिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥

और ऋषिगणके प्रतिष्ठित बहुतेरे सिद्धिकर लिंग सुशोभित हैं ॥ १२ ॥ शक्रेश्वरके दक्षिण महापापापहारी फाल्गुनेश्वर हैं, जिनके दक्षिणभागमें परम शुभकर्ता महापाशुपतेश्वर स्थित हैं ॥ १३ ॥ उनके पश्चिम समुद्रेश्वर, और उत्तरमें ईशानेश्वर, एवं पूर्वकी ओर सर्वसिद्धिप्रद लांगलीश्वर लिंग है ॥१४॥ हे देवि ! जो लोग राग द्वेषको छोडकर (उस लिंगका) पूजन करते हैं वे सिद्धिको प्राप्त होते हैं, उन लोगोंको मोक्ष मिलता है, अतएव उनको मनुष्य नहीं कहना चाहिए ॥ १५ ॥ इसी लांगलीश्वरपर मधुपिंग और श्वेतकेतुनामके दो तपस्वियोंने इसी शरीरसे परमसिद्धिको लाभ किया था ॥ १६ ॥

वहींपर नकुलीश्वर और कपिलेश्वरभी हैं, मेरे व्रतधारियोंको ये दोनोंही (लिंग) परम रहस्यरूप हैं ॥ १७ ॥ उनके पासहीमें मेरे प्रीति वर्द्धक प्रीतिकेश्वर हैं, हे देवि ! वहांपर एक उपवास करनेसेभी सैकडोंवर्ष व्रत करनेका उत्तम फल प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जो कोई मेरे शिवरात्र इत्यादि पर्वपर व्रतमें रहकर प्रीतिकेश्वरके समीप एकभी जागरण करता है, वह अवश्यमेव मेरा गण होजाता है ॥ १९ ॥ उस लिंगके दक्षिणभागमें एक शुभोदका बावलीभी है, उसका जलपीनेसे लोगोंको पुनर्जन्मका दुःख नहीं भोगनापडता ॥ २२० ॥ उस बावलीके पश्चिमभागमें दण्डपाणि, पूर्व—तारकेश्वर, दक्षिण—कालेश्वर, और उत्तरमें नन्दिकेश्वर सदैव रक्षा करते रहते हैं ॥ २१ ॥ उसका जल यदि श्रद्धापूर्वक पीयाजावे तो पीनेवालेके हृदयारविन्दमें ये पूर्वोक्त तीनोंही लिंग

तत्रैवनकुलीशश्चकपिलेशश्चतत्रवै ॥ रहस्यंपरमंचोभौममव्रतनिषेविणौ ॥ १७ ॥ तत्सन्निधौप्रीतिकेशस्तत्रप्रीतिर्ममप्रिये ॥ तत्रोपवासा देकस्मात्फलमब्दशताधिकम् ॥ १८ ॥ एकंजागरणंकृत्वाप्रीतिकेशउपोषितः ॥ गणत्वपदवीतस्यनिश्चितामम पर्वणि ॥ १९ ॥ देवस्यदक्षिणेभागेतत्रवापीशुभोदकः ॥ तदंबुप्राशनंनॄणामपुनर्भवहेतवे ॥ २२० ॥ तज्जलात्पश्चिमेभागेदंडपाणिःसदावति ॥ तत्प्राच्य वाच्युत्तरस्यांतारःकालःशिलादजः ॥ २१ ॥ लिंगत्रयंहृदज्ञेयच्छ्रद्धयापीतमर्पयेत् ॥ यैस्तत्रतज्जलंपीतंकृतार्थास्तेनरोत्तमाः ॥ २२ ॥ अविमुक्तसमीपेच्यर्योमोक्षेशोमोक्षबुद्धिदः ॥ करुणेशोदयाधामतदुदीच्यांसमर्चयेत् ॥२३॥ स्वर्णाक्षेशस्तुतत्प्राच्यांज्ञानदस्तस्यचोत्तरे ॥ सौभाग्यगौरींसंपूज्याबहुसौभाग्यसंपदे ॥२४॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेनिकुंभेशःप्रयत्नतः ॥ क्षेत्रक्षेमकरःपूज्यस्तत्पश्चाद्विघ्ननायकः ॥२५॥ सर्वविघ्नच्छिदभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यांतुविशेषतः ॥ विरूपाक्षोनिकुंभेशाद्दक्षौपूज्यःसुसिद्धिदः ॥ २६ ॥

वास करते हैं, (जैसेही हो) उस बावलीके जल पीनेवाले उत्तम जन सर्वथा कृतार्थ होजाते हैं ॥ २२ ॥ अविमुक्तेश्वरसे सटेहुए मोक्षबुद्धिके दाता मोक्षेश्वर पूजनीय हैं, उनके उत्तर दयाधाम करुणेश्वरकी पूजा करनी चाहिए ॥ २३ ॥ उनके पूर्व स्वर्णाक्षेश्वर लिंग है, जिसके उत्तर ज्ञानदेश्वर हैं, और वहींपर बडी सौभाग्य संपत्तिके लिए सौभाग्य गौरीकाभी पूजनकरना उचित है ॥ २४ ॥ विश्वेश्वरके दक्षिणभागमें क्षेत्रके क्षेमकर्ता निकुम्भेश्वरको प्रयत्नपूर्वक पूजना चाहिए, जिनके पीछेकी ओर सर्वविघ्नविदारक विघ्न (वि) नायक विराजते हैं, विशेषरूपसे चतुर्थीके दिन उनकी अर्चना करनी चाहिए,

फिर निकुंभेश्वरसे अग्निकोणपर सुसिद्धिप्रद विरूपाक्षेश्वर लिंग परमपूजनीय है ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसके दक्षिण शुक्रेश्वर हैं जो पुत्र पौत्रादिकी वृद्धि करते हैं, उनके उत्तरभागमें देवयानीश्वरनामक एक महालिंग अवस्थित है ॥ २७ ॥ शुक्रेश्वरके अग्रभागमें पूजनीय कचेश्वर हैं वहींपर शुक्रकूपभी है जिसके जलके छूनेहीसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ शुक्रेश्वरके पश्चिम अपने भक्तोंके सदैव पार उतारनेवाले शुभप्रद भवानी–शंकरको प्रणाम करना चाहिए ॥ २९ ॥ शुक्रेश्वरसे पूर्वदिशामें स्थित अलकेश्वर और मदालसेश्वरका पूजन करना उचित है, उनके पूर्व सर्वविघ्नविध्वं

तद्दक्षिणेचशुक्रेशःपुत्रपौत्रप्रवर्धनः ॥ तदुदीच्यांमहालिंगंदेवयानीश्वराभिधम् ॥ २७ ॥ शुक्रेशादग्रतःपूज्यःकचेशइतिसंज्ञितः ॥ शुक्रकूपस्तुपस्पृष्ट्यहयमेधफलंलभेत् ॥ २८ ॥ भवानीशौनमस्यौचशुक्रेशात्पश्चिमेशुभौ ॥ भक्तपोतप्रदौतौतुनिजभक्तस्यसर्वदा ॥ २९ ॥ अलकेशःसमभ्यर्च्यःशुक्रेशात्पूर्वदिक्स्थितः ॥ मदालसेश्वरस्तत्रतत्पूर्वेसर्वविघ्नहृत् ॥ १३० ॥ गणेश्वरेश्वरंलिंगंसर्वसिद्धिकरंपरम् ॥ हत्वालंकेश्वरंविप्ररघुनाथप्रतिष्ठितम् ॥३१॥ तल्लिंगस्पर्शनाद्दाशुब्रह्महापिविशुध्यति ॥ महापुण्यप्रदंचान्यत्तत्रार्च्यंत्रिपुरांतकम् ॥३२॥ दत्तात्रेयेश्वरंलिंगंतस्यपश्चिमतःशुभम् ॥ तद्याम्यांहरिकेशेशोगोकर्णेशस्ततःपरम् ॥ ३३ ॥ सरस्तदग्रेपापघ्नंतत्पश्चाद्ध्रुवेश्वरः ॥ तदग्रेध्रुवकुंडंचपितृप्रीतिकरंपरम् ॥ ३४ ॥ तदुत्तरेपिशाचेशःपैशाच्यपदहारकः ॥ पित्रीशस्तद्यमदिशिपितृकुंडंतदग्रतः ॥ ३५ ॥

सक ॥ २३० ॥ तथा समस्त सिद्धियोंके दाता गणेश्वर विराजरहेहैं हे मुने ! लंकेश्वरको मारकर रघुनाथके स्थापित उस (रघुनाथेश्वर) लिंगके स्पर्श करनेसे ब्रह्मघाती मनुष्यभी तुरतही शुद्ध होजाता है । फिर वहींपर महापुण्यप्रद त्रिपुरान्तकेश्वरनामक एक औरभी लिंग है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उसके पश्चिम शुभमय दत्तात्रेयेश्वर हैं, जिनके दक्षिण हरिकेशेश्वर हैं तदनंतर गोकर्णेश्वर लिंग है ॥ ३३ ॥ जिसके आगे (गोकर्ण) सरोवर है, जो पापोंका नाशक है, उसके पीछे ध्रुवेश्वर हैं, जिनके आगे पितरोंका परमप्रीतिकर ध्रुवकुण्ड है ॥३४॥ फिर उसके उत्तर पिशाचताके दूरकरनेवाले पिशाचेश्वर हैं, जिनके

दक्षिण पितृकुंड है और वहींपर पित्रीश्वर लिंगभी विराजित है ॥ ३५ ॥ वहांपर श्राद्ध करनेवालोंके पितरलोग बहुतही संतुष्ट होते हैं, ध्रुवेश्वरके आगे तारेश्वर हैं, जो वैद्यनाथ कहेजाते हैं ॥ ३६ ॥ उनसे नैर्ऋत्यकोणपर परमवंशवृद्धिकर मनुका स्थापित लिंग है, और जो वैद्यनाथके सामनेही शिवलिंग है वह तो प्रियव्रतेश्वर हैं ॥३७॥ जिनके दक्षिण मुचुकुन्देश्वर और पासहीमें गौतमेश्वर हैं, फिर पश्चिमकी ओर भद्रेश्वर हैं, जिनके दक्षिण ऋष्यशृङ्गीश्वर हैं ॥ ३८ ॥ उनके आगेही ब्रह्मेश्वर हैं, और ईशानकोणपर पर्जन्येश्वर वर्तमानहैं, उनके पूर्व नहुषेश्वर हैं, और उनके आगे विशालाक्षी देवीहैं ॥ ३९ ॥ वहींपर क्षेत्रमें वास देनेवाला विशालाक्षीश्वर लिंगभी है, जिसके दक्षिण ज्वरनाशक जरासंधेश्वरहैं ॥ २४० ॥ उसके आगे हिरण्यप्रद हिरण्याक्षेश्वर लिंग

तत्रश्राद्धकृतांपुंसांतुष्येयुःप्रपितामहाः ॥ अग्रेध्रुवेशात्तारेशोवैद्यनाथःसएवहि ॥ ३६ ॥ तन्नैर्ऋत्यांमनोर्लिंगंवंशवृद्धिकरंपरम् ॥ प्रियव्रतेश्वरंलिंगंवैद्यनाथपुरोगतम् ॥ ३७ ॥ तद्याम्यांमुचुकुंदेशस्तत्पार्श्वेगौतमेश्वरः ॥ तत्पश्चिमेनभद्रेशस्तद्याम्यामृष्यशृंगिणः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मेशस्तत्पुरस्ताच्चपर्जन्येशस्तदीशगः ॥ तत्प्राच्यांनहुषेशश्चविशालाक्षीचतत्पुरः ॥ ३९ ॥ विशालाक्षीश्वरंलिंगंतत्रैवक्षेत्रवस्तिदम् ॥ जरासंधेश्वरंलिंगंतद्याम्यांज्वरनाशनम् ॥ २४० ॥ तत्पुरस्ताद्धिरण्याक्षलिंगंपूज्यंहिरण्यदम् ॥ तत्पश्चिमेगयाधीशस्तत्प्रतीच्यांभगीरथः ॥ ४१ ॥ तदग्रेचदिलीपेशोब्रह्मेशात्पश्चिमेमुने ॥ तत्रलिंगंसकुंडंचस्नातुरिष्टफलप्रदम् ॥ ४२ ॥ तत्रविश्वावसोर्लिंगंमुंडेशस्तत्रपूर्वतः ॥ तद्दक्षिणेविधीशश्चतद्याम्यांवाजिमेधकः ॥ ४३ ॥ दशाश्वमेधिकेस्नात्वादृष्ट्वातल्लिंगमुत्तमम् ॥ दशानामश्वमेधानांफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ४४ ॥ तदुत्तरेमातृतीर्थंस्नातुर्जन्मभयापहृत् ॥ तत्रस्नानंतुयःकुर्यान्नारीवापुरुषोपिवा ॥ ४५ ॥

है, उसकेभी पश्चिम गयाधीश्वर हैं, जिनके पश्चिम भगीरथेश्वर हैं ॥ ४१ ॥ हे अगस्त्यमुने ! उसके आगे ब्रह्मेश्वरसे पश्चिम दिलीपेश्वर हैं, वहांपर एक कुण्डभी है जो नहानेवालेके इष्ट फलको देताहै ॥४२॥ वहींपर विश्वावसुका स्थापित लिंगभीहै, जिसके पूर्व मुण्डेश्वर हैं उनके दक्षिण विधीश्वरहैं, जिनके दक्षिण वाजिमेधेश्वर लिंगहै ॥४३॥ दशाश्वमेधपर स्नान करके उस लिंगका दर्शन करनेसे मनुष्य दश अश्वमेध करनेका फलभागी होताहै ॥४४॥ उसके उत्तर भागमें मातृतीर्थ है, जो स्नान करनेवालेके जन्मभयको दूर भगादेता है, वहांपर स्त्री हो अथवा पुरुष हो जो कोई नहाता है ॥ ४५ ॥

वह मातृकाओंके प्रसादसे ईप्सितफलको पाता है। तुम्हारे अगस्त्य कुण्डके दक्षिण प्रसिद्ध पुष्पदन्तेश्वर हैं ॥४६॥ उनसे अग्निकोणपर देवता और ऋषिगणके स्थापित बहुतेरे लिंग विराजमान हैं, उक्त पुष्पदन्तेश्वरसे दक्षिण परम सिद्धिप्रद सिद्धीश्वर हैं ॥ ४७ ॥ यदि कोई उनकी पंचोपचारसे पूजा करे तो उसे वे स्वप्नमें परमसिद्धिको जतादेते हैं। हरिश्चन्द्रेश्वरके सेवनसे लोगोंको राज्यका लाभ होता है ॥ ४८ ॥ उनके पश्चिम नैर्ऋतेश्वर हैं, जिनके दक्षिण अंगिरसेश्वर हैं, फिर उनके दक्षिण क्षेमेश्वर, और उनसेभी दक्षिण चित्राङ्गेश्वर लिंग अवस्थित है ॥ ४९ ॥ उसके दक्षिण (प्रसिद्ध) केदारेश्वर लिंग है, जो लोगोंको महादेवका अनुचर बनादेता है, केदारेश्वरसे दक्षिणापथमें चंद्रवंशीय और सूर्यवंशीय राजाओंके ॥ २५० ॥ स्थापित कियेहुए सैकडों

ईप्सितंफलमाप्नोतिमातॄणांचप्रसादतः ॥ दक्षिणेतवकुंडाच्चपुष्पदंतेश्वरःपरः ॥ ४६ ॥ तदग्निदिशिदेवर्षिगणलिंगान्यनेकशः ॥
पुष्पदंताद्दक्षिणतःसिद्धीशःपरसिद्धिदः ॥ ४७ ॥ पंचोपचारपूजातःस्वप्नेसिद्धिंपरांदिशेत् ॥ राज्यप्राप्तिर्भवेत्पुंसांहरिश्चंद्रेशसेवया ॥४८॥
तत्पश्चिमेनैर्ऋतेशोंगिरसेशस्ततोयमे ॥ तद्दक्षिणेचक्षेमेशश्चित्रांगेशस्ततोयमे ॥ ४९ ॥ तद्दक्षिणेचकेदारोरुद्रानुचरताप्रदः ॥ चंद्रसूर्यान्वयैर्भूपैःकेदाराद्दक्षिणापथे ॥ २५० ॥ प्रतिष्ठितानिलिंगानिशतशोथसहस्रशः ॥ लोलार्कांद्दक्षिणाशायांसर्वाशापूरकोर्चितः ॥ ५१ ॥
करंधमेश्वरंलिंगंतत्प्रतीच्यांमहाफलम् ॥ तत्पश्चिमेमहादुर्गामहादुर्गप्रभंजनी ॥ ५२ ॥ शुष्केश्वरंचतद्याम्यांशुष्कयासरितार्चितम् ॥
जनकेशस्तत्प्रतीच्यांशंकुकर्णस्तदुत्तरे ॥ ५३ ॥ महासिद्धीश्वरंलिंगंतत्प्राच्यांसर्वसिद्धिदम् ॥ सिद्धकुंडेनरःस्नात्वादृष्ट्वासिद्धेश्वरं
महत् ॥ ५४ ॥ सर्वासामेवसिद्धीनांपारंगच्छतिमानवः ॥ शंकुकर्णेशवायव्येलिंगंवाडव्यसंज्ञितम् ॥ ५५ ॥

सहस्रों लिंग विद्यमान हैं। लोलार्कसे दक्षिण अर्कविनायक हैं, जो पूजन करनेसे सब किसीकी आशाओंको परिपूर्ण करदेते हैं ॥ ५१ ॥ उनके पश्चिम महाफलप्रद करंधमेश्वर लिंग है, उसके पश्चिम (दुर्गाकुंडपर) महादुर्गा विराजतीहैं जो भक्तोंकी दुर्गतिको दूर भगादेती हैं ॥ ५२ ॥ उनके दक्षिण शुष्का (असी) नदीके पूजित शुष्केश्वर हैं उनसे पश्चिम जनकेश्वर हैं, जिनके उत्तर शंकुकर्णेश्वर हैं ॥ ५३ ॥ उनके पूर्व समग्र सिद्धियोंका दाता महा सिद्धीश्वर लिंग है, जो मनुष्य सिद्धकुंडमें नहाकर महासिद्धीश्वरका दर्शन करता है ॥ ५४ ॥ वह समस्त सिद्धियोंके पार होजाता है शंकुकर्णेश्वरके

वायव्यकोणपर वायव्येश्वरनामक लिंगहै ॥ ५५ ॥ उसके आगे विभांडेश्वर हैं, जिनके उत्तरभागमें कहोलेश्वर लिंगहै, वहांपर द्वारेश्वर लिंग और द्वारेश्वरी देवी विराजमान हैं ॥ ५६ ॥ उनकी आराधना करनेसे आनन्दवनकी वाससिद्धि होती है, हे मुने ! उस स्थानपर आयुध लेकर विविधरूपधारी गणलोग काशीपुरीकी रक्षा करते रहते हैं ॥ ५७ ॥ वहींपर हरिदीश्वर, और कात्यायनेश्वर लिंगभी है, जिसके पासहीमें जांगलेश्वर, और पीछेकी ओर मुकुटेश्वर लिंग वर्तमान है ॥ ५८ ॥ जो कोई सर्वयात्रा फलप्रद निर्मल मुकुटकुण्डमें स्नान कर भगवान् मुकुटेश्वरका दर्शन करताहै ॥ ५९ ॥ उसे समस्त लिंगोंकी यात्राका फल मिलजाताहै, वह भूमीही योगाभ्यास अथवा तपस्याकी परम सिद्धिदात्री है ॥ २६० ॥ क्योंकि (हे मुने !) वहांपर सिद्धिहीके

तदग्रेचविभांडेशःकहोलेशस्तदुत्तरे ॥ तत्रद्वारेश्वरंलिंगंदेवीद्वारेश्वरीशुभा ॥ ५६ ॥ तत्पूजनाद्भवेत्सिद्धिरानंदारण्यवस्तिदा ॥ रक्षकाश्च गणास्तत्रनानारूपायुधामुने ॥ ५७ ॥ तत्रैवहरिदीशंचलिंगंकात्यायनंततः ॥ तत्पार्श्वेजांगलेशश्चतत्पश्चान्मुकुटेश्वरः ॥ ५८ ॥ तत्रै वकुंडंविमलंसर्वयात्राफलप्रदम् ॥ स्नात्वामुकुटकुंडेचदृष्ट्वावैमुकुटेश्वरम् ॥ ५९ ॥ यात्रयासर्वलिंगानांयत्फलंतदवाप्यते ॥ तपसश्चा पियोगस्यसिद्धिदासाऽवनीपरा ॥ २६० ॥ मुनेशतंसहस्राणितत्रलिंगानिसिद्धये ॥ एकादिगुत्तरादेविवाराणस्यांप्रियामम ॥ ६१ ॥ तत्रापिपंचायतनेरतिर्मेनितरांप्रिये ॥ उत्पत्तिस्थितिकालेपितत्राहंसर्वदास्थितः ॥ ६२ ॥ एवंयस्तुविजानातिनसपापैःप्रलिप्यते ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंत्रिसत्यंनान्यतःप्रिये ॥ ६३ ॥ शीघ्रंतत्रैवगंतव्यंयदिच्छेन्मामकंपदम् ॥ उद्देशमात्रंलिंगानिकथितानिमयामुने ॥ ॥ ६४ ॥ द्विस्त्रिःकृत्वःस्थापितानिभक्त्यालिंगानिकानिचित् ॥ नतानिपुनरुक्तानिश्रद्धयार्च्यानिसर्वतः ॥ ६५ ॥

लिये सैकडों वरन् सहस्रों लिंग सुशोभित हैं। परन्तु हे देवि ! वाराणसीमें एक उत्तर दिशाही मुझे बडी प्यारी है ॥ ६१ ॥ उसमेंभी पंचायतन (अर्थात् ओंकारेश्वरका स्थान) तो बहुतही प्रसन्न पडगया है वहांपर तो मैं सृष्टि स्थिति और प्रलयकालमेंभी सदैव बैठाही रहता हूं ॥६२॥ हे प्रिये ! जो कोई इस मर्मको जानजाताहै वह फिर पापोंमें कभी लिप्त नहीं होसकता, यह मैं सर्वथा सत्य कहता हूं ॥ ६३ ॥ जो कोई मेरे लोकमें पहुँचाचाहे उसे तुरत वहांहीपर चलाजाना चाहिए। हे मुनिवर ! मैंने तुमसे संक्षेपहीसे इन लिंगोंको कहदिया है ॥ ६४ ॥ इनमें बहुतेरे लिंग भक्तिके मारे दोदो,

तीनतीन स्थापित किये गये हैं, किन्तु उनका वर्णन मैं नहीं करसका पर श्रद्धापूर्वक उन सबकाभी पूजन सर्वथा करनाही चाहिए ॥६५॥ इन सब (पूर्वोक्त) लिंग, कुंड, कूप और बावली इत्यादिपर बुद्धिमान् लोगोंको सदैव श्रद्धा करनी चाहिए ॥ ६६ ॥ इन सबके दर्शन और स्नानसे उत्तरोत्तर अधिक फल होताहै, काशीके लिंग, कूप, सरोवर, ॥ ६७ ॥ वापी, और देवमूर्तियोंकी संख्या कौन करसकता है ? (क्योंकि) अन्यत्रके देवतों सेभी आनन्दकाननके तृण बहुत अच्छे हैं, कारण यही है कि इनको फिर जन्मलेना नहीं पडेगा। अगणित लिंगमयी काशीही समस्त तीर्थोंकी जन्मभूमि है ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ यह दर्शनसे स्वर्ग और अन्तसेवनसे मोक्ष देदेती है, हे देवि ! तुम तो अपनी तपस्याके बलसे मेरी प्रियतमा हुई हो ॥२७०॥

एतानियानिलिंगानियानिकुंडानियेंऽधवः॥ यावाप्यस्तानिसर्वाणिश्रद्धेयानिमनीषिभिः६६॥ एतेषांदर्शनात्स्नानात्फलमत्रोत्तरोत्तरम् ॥ अत्रत्यानांचलिंगानांकूपानांसरसामपि ॥६७॥ वापीनांचापिमूर्तीनांकःसंख्यातुंप्रभुर्भवेत् ॥ आनंदकाननस्थानितृणान्यपिपरंवरम् ॥ ॥६८॥ दिवौकसोपिनान्यत्रयत्पुनर्जन्मभाजनम् ॥ सर्वलिंगमयीकाशीसर्वतीर्थैकजन्मभूः॥६९॥ स्वर्गापवर्गयोर्दात्रीदृष्टादेहांतसेविता ॥ ममप्रियतमादेवित्वमेवतपसोबलात् ॥ २७० ॥ स्वभावतस्त्वियंकाशीसुखविश्राममभूर्मम ॥ येकाश्यानामगृह्णंतियेनुमोदंतएवहि ॥ ७१ ॥ तेमेशाखविशाखाभाःस्कंदनंदिगजास्यवत् ॥ तएवभक्तामेदेवितएवममसेवकाः ॥७२॥ मुमुक्षवस्तएवात्रयेचानंदवनौकसः ॥ तपस्ततंम इत्तैस्तुकृतंतैस्तुमहाव्रतम् ॥ ७३ ॥ तैश्चदत्तंमहादानंयेचानंदवनौकसः ॥ तेस्नातसर्वतीर्थावैतेखिलाध्वरदीक्षिताः ॥ ७४ ॥ तेचीर्णसर्व धर्माहियेचानंदवनौकसः ॥ सुरासुरोरगनराभूमिभारायतेऽखिलाः ॥ ७५ ॥

पर यह काशी स्वभावहीसे मेरे सुख और विश्रामकी भूमी है, जो लोग काशीका नामभी लेतेहैं, अथवा उसका अनुमोदन करते हैं ॥ ७१ ॥ हे देवि ! वेही लोग शाख, विशाख, नन्दी, स्कन्द और गणेशके समान हैं, और वेही भक्तगण मेरे (सच्चे) सेवक हैं ॥ ७२ ॥ काशीवासीही मोक्षके अधिकारी हैं, (क्योंकि) कठोर तपस्या, बडेसे बडे व्रत ॥ ७३ ॥ एवं बहुतेरे महादानोंके करनेवालोंहीको काशीमें वास मिलता है। जो लोग आनन्दवनमें वास करते हैं, उनको समस्त तीर्थोंमें स्नान, समग्र यज्ञोंकी दीक्षा ॥ ७४ ॥ और सब धर्मोंके परिपूर्ण करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। सुर, असुर,

नाग और नर जो लोग अन्त अवस्थामेंभी काशीमें वास नहीं करते उन सबको भूमिका भारही समझना चाहिए। अन्यत्रके वैदिक ब्राह्मणसेभी काशीस्थ चाण्डालही श्रेष्ठहै, क्योंकि चाण्डाल तो भवसागरके पार होजाता है, पर ब्राह्मण उससेभी अधोगतिमें पडा सडा करता है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ सर्वथा वही मनुष्य सर्वज्ञ अथवा दूरदर्शी होसकता है, जो काशीमें मट्टीका शरीर त्यागकर सुधामय दिव्यस्वरूप होजाता है ॥ ७७ ॥ मनुष्य समस्त तीर्थोंके रहस्यसे भरेहुए इस पवित्र अध्यायके सुननेसे अवश्यही काशीदर्शनका पुण्य प्राप्त करता है ॥ ७८ ॥ प्रतिदिन प्रातःकाल इस अध्यायके पाठ करनेसे उक्त समस्त तीर्थोंके दर्शनका फल होताहै इसमें कुछभी अन्यथा नहीं है ॥ ७९ ॥ जो बुद्धिमान् जन नित्यही इस समग्र लिंगात्मक

वयस्यपीहचरमेयेनानंदवनौकसः ॥ अंत्यजोपिवरःकाश्यांनान्यत्रश्रुतिपारगः ॥ संसारपारगःपूर्वस्त्वंत्यश्चांत्यजतोप्यधः ॥ ७६ ॥ सएवनूनंसर्वज्ञःसएवह्यधिकेक्षणः ॥ यःपार्थिवींतनुंहित्वाकाश्यांधत्तेसुधामयीम् ॥७७॥ श्रुत्वाध्यायमिदंपुण्यंसर्वतीर्थरहस्यवत् ॥ काशीदर्शनजंपुण्यंप्राप्नोतिनियतंनरः ॥ ७८ ॥ यःपठेदिममध्यायंप्रातःप्रातर्दिनेदिने ॥ दृष्टानितेनसर्वाणितीर्थान्येतानिनान्यथा ॥ ७९ ॥ सर्वलिंगमयाध्यायंयोऽमुंनित्यंजपेत्सुधीः ॥ नतंयमोनतंदूतानैनमंहोपिबाधते ॥ ८० ॥ ब्रह्मयज्ञफलंतस्यजायतेसुकृतात्मनः ॥ योजपेदमुमध्यायंशुचिस्तद्गतमानसः ॥ ८१ ॥ सस्नातःसर्वकुंडेषुसर्ववाप्यंबुपःसच ॥ सर्वलिंगार्चकःसोत्रयोऽमुमध्यायमाजपेत् ॥ ८२ ॥ किमन्यैर्बहुभिःस्तोत्रैरतिस्तोकफलप्रदैः ॥ मत्प्रेमवद्भिरध्यायोजप्तव्योयंमहाफलः ॥८३॥ महादानेषुदत्तेषुयत्फलंप्राप्यतेऽत्रवै ॥ सकृज्जपान्महाध्यायादमुष्मात्तत्समाप्यते ॥८४॥

अध्यायको जपता है, उसे क्या यम, क्या यमदूत, अथवा पापोंहीका कुछ भय नहीं रहने पाता ॥ ८० ॥ जो सुकृती पुरुष पवित्रतापूर्वक मन लगाकर इस अध्यायका पाठ करताहै, उसे ब्रह्मयज्ञका फल मिलताहै ॥ ८१ ॥ जो कोई इस अध्यायका पारायण करजावे उसे समस्त कुण्डोंमें स्नान, समग्र वापियोंके जलपान, और सब लिंगोंके दर्शनका फल प्राप्त होताहै ॥८२॥ बहुतेरे छोटे फल देनेवाले अन्यान्य स्तोत्रोंसे कौन फल है ? मुझसे प्रेम रखनेवालोंको इसी महाफलदायक अध्यायका जप करना उचित है ॥ ८३ ॥ इस अध्यायके केवल एकहीवार पढ़डालनेसे जो फल होता है, इस संसारमें बहुतेरे

महादानोंके करनेपरभी वह फल पायाजाता है कि नहीं ? इसमें सन्देहही है ॥८४॥ समस्त तीर्थोंमें स्नानकर, समग्र लिंगोंके दर्शन करनेसे जो फल होता है, इसके पाठ करनेमेंभी अवश्य वही फल प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ हे मुने ! यही उग्र तपस्या और बड़ाभारी जप है, जो इस काशी लिंगावलीनामक अध्यायका अध्ययन बनपड़े ॥८६॥ मेरे विरोधी (शिवद्रोही) नास्तिक और वेदनिन्दक व्यक्तिको यह परम जप्य अध्याय कभी नहीं देना चाहिए।॥८७॥ ब्रह्महत्या, अगम्यागमन, अभक्ष्यभक्षण, गुरुदाराभिचार, सुवर्णस्तेय, माता और पिताकी हत्या, गोहत्या, बालघात, इत्यादि, मन, वचन, कर्मके द्वारा

स्नात्वासर्वाणितीर्थानिदृष्ट्वालिंगान्यनेकशः ॥ यत्फलंलभ्यतेमर्त्यैस्तदेतज्जपनाद्ध्रुवम् ॥८५॥ इदमेवतपोत्युग्रमयमेवजपोमहान् ॥ काशी लिंगावलीनामाध्यायोजप्येतयन्मुने ॥ ८६ ॥ ममद्रुहेनास्तिकायवेदनिंदारतायच ॥ नदातव्योनदातव्योनदातव्योजपस्त्वयम् ॥८७॥ अध्यायस्यास्यजपनात्पापंब्रह्मवधोद्भवम् ॥ अगम्यागमनंचापितथाभक्ष्यस्यभक्षणम् ॥ ८८ ॥ गुरुदाराभिचारोत्थंहेमस्तेयसमुद्भवम् ॥ मातापितृवधाज्जातंगोभ्रूणहननोद्भवम् ॥ ८९ ॥ महापापानिपापानिज्ञाताज्ञातानिभूरिशः ॥ उपपापानिपापानिमनोवाक्कायजान्यपि ॥९०॥ विलयंयांत्यशेषाणिनिःसंदेहंममाज्ञया ॥ पुत्रान्पौत्रान्धनंधान्यंकलत्रंक्षेत्रमेवच ॥९१॥ मनःसमीहितंसर्वंस्वर्गंमोक्षंसुखान्यपि ॥ जप्त्वाध्यायमिमंविद्वान्प्राप्स्यत्येवनसंशयः ॥ ९२ ॥ इतियावत्समाख्यातिदेवोदेवीपुरःकथाम् ॥ तावन्नंदीसमागत्यप्रणम्येतिव्य जिज्ञपत् ॥ ९३ ॥ जातापरिसमाप्तिश्चमहाप्रासादनिर्मितेः ॥ सज्जीकृतोरथश्चायंब्रह्माद्यामिलिताःसुराः ॥ ९४ ॥

ज्ञानसे अथवा अज्ञानतासे कियेहुए, पातक—उपपातक, महापातक आदि सब इस अध्यायके पाठ करनेसे विलायजाते हैं, मेरी आज्ञानुसार इसमें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिए पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, कलत्र, क्षेत्र ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ सुख, स्वर्ग और मोक्ष इत्यादि सब कुछ मनोवांछित वस्तुको इस अध्यायके पाठसे विज्ञजन प्राप्त करसकता है यह बात सर्वथा निश्चित है ॥ ९२ ॥ जिस समय भगवान् शिव जगदम्बासे येही बातें कररहे थे उसी घड़ी नन्दीने आकर प्रणाम किया, और वे यह निवेदन करनेलगे (कि) ॥ ९३ ॥ (नाथ !) विशाल राज—मंदिरका निर्माण समाप्त

होचुका, और रथभी सुसज्जित है, एवं ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवतालोगभी एकट्ठे होगये हैं ॥ ९४ ॥ स्वयं भगवान् पुण्डरीकाक्षभी गरुडपर चढ़ेहुए अपने अनुचरवर्गके साथ, मुनीश्वरोंको आगे करके द्वारपर खड़े होकर आपके चलनेकी प्रतीक्षा कररहे हैं ॥ ९५ ॥ चौदहों भुवनके समस्त सुव्रतलोग प्रावेशिक महोत्सवका समाचार सुन आज यहांपर आकर बटुरेहुएहैं ॥ ९६ ॥ स्कन्दने कहा—नन्दीकी इस बातको सुनतेही भगवान् शंकर पार्वती देवीके सहित दिव्य रथपर चढ़कर त्रिविष्टप (त्रिलोचन) नामक स्थानसे चलपड़े ॥२९७॥ दोहा—गुप्त, लुप्त, औ प्रकट हैं, लिंग तीर्थ बहुतेक । कारि प्रयत्न ढूंढे मिलै, एहि लगि धरिये टेक ॥ १ ॥. सवैया—जहँ पूरव कुंड अनेक रहे, तहँ पै अब लोगनकी बसती, । जब बावलि कूप हेराय चले, तब, लिंगनकी

ताक्ष्र्यगःपुंडरीकाक्षोद्वारितिष्ठतिसानुगः ॥ प्रतीक्षमाणोऽवसरंपुरस्कृत्यमुनीश्वरान् ॥ ९५ ॥ चतुर्दशसुलोकेषुयेयेतिष्ठंतिसुव्रताः ॥ तेनि शम्याद्यमिलिताःप्रावेशिकमहोत्सवम् ॥ ९६ ॥ ॥ स्कंदउवाच ॥ ॥ इतिनंदिवचःश्रुत्वादेवोदेवीसमायुतः ॥ दिव्यंरथंसमारुह्यनिर्ज गामत्रिविष्टपात् ॥ २९७ ॥ ॥ इतिश्रीस्कांदेमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थेकाशीखंडउत्तरार्धेक्षेत्रतीर्थवर्णनंनामसप्तनव तितमोऽध्यायः ॥ ९७॥ ॥ व्यास उवाच ॥ ॥ शृणुसूतमहाभागयथास्कंदेनभाषितः ॥ महामहोत्सवःशंभोःपृच्छतेकुंभसंभवे ॥१॥ ॥स्कंदउवाच॥ ॥ निशामयमहाप्राज्ञशंभुप्रावेशिकींकथाम् ॥ त्रैलोक्यानंदजननींमहापातककृंतनीम् ॥२॥ मंदरादागतःशंभुश्चैत्रेदमन पर्वणि ॥ प्राप्याप्यानंदगहनमितश्चेतश्चचारह ॥३॥ मोक्षलक्ष्मीविलासेथप्रासादेसिद्धिमागते ॥ देवोविरजसःपीठादंतर्गेहंविवेशह ॥४॥

कहँलों गनती ॥ अब ढूँढहु पै मिलते नहिं ये सब तीरथ हैं जिनकी भनती । अजहूँ कितनेहि प्रसिद्ध लखात जथारुचि दर्शनकी विनती ॥ २ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे चतुर्थे काशीखंडे उत्तरार्धे भाषाटीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥ व्यासदेवने कहा—हे महाभाग सूत ! भगवान् कार्तिकेयने अगस्त्य मुनिके पूछनेपर महादेवके महामहोत्सवको वर्णन किया था उसे श्रवण करो ॥ १ ॥ स्कन्दने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अगस्त्य ! त्रैलोक्यभरमें आनन्द उपजानेवाली एवं महापातकनाशिनी विश्वेश्वरके प्रवेशकी कथाको श्रवण करो ॥ २ ॥ चैत्र मासकी शुक्ला त्रयोदशीको दमन पर्वपर भगवान् शंकर मन्दराचलसे वाराणसीपुरीमें आकर इधर उधर विचरण करने लगे ॥ ३ ॥ तदनंतर जब मोक्षलक्ष्मी विलासनामक राजप्रासाद बन गया तब कार्तिक

शुक्ल प्रतिपदा, बुधवार, अनुराधा नक्षत्र, सप्तमराशिस्थ चन्द्र और अन्य समस्त ग्रहोंके उच्चराशियोंपर अवस्थित होनेपर भगवान् विश्वेश्वर त्रिलोचन पीठसे अन्तर्गृहमें प्रविष्ट हुए ॥ ४ ॥ ५ ॥ उस बेला बाजे बजनेलगे, समस्त दिशायें सोहावनी लगतीं थीं, ब्राह्मणलोगोंकी वेदध्वनिके आगे दूसरी कोईभी बातही नहीं सुनाई पड़ती थी ॥६॥ यहांतक कोलाहल होने लगा कि भूर्लोकके प्रतिध्वनिसे भुवर्लोकके मध्यका मार्ग भरगया; (कहांलों कहें) शंकरके प्रासादप्रवेशके महोत्सवमें सभीलोग प्रमुदित होगये थे ॥७॥ गन्धर्वगण मंगलगीतोंको गानेलगे, अप्सरालोग नृत्य करनेलगीं, सिद्ध चारण मनोहर स्तुति करने लगे, और देवतोंके तो हर्षका ठिकानाही नहीं रहगया ॥८॥ उस घड़ी चारोंओरसे सुगन्धित वायु बहने लगे, घनमंडली पुष्पोंकी

ऊर्जशुक्लप्रतिपदिबुधराधासमायुजि ॥ चंद्रेसप्तमराशिस्थेशेषेषूच्चग्रहेषुच ॥ ५ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषुप्रसन्नासुहरित्सुच ॥ ब्राह्मणानांश्रुतिरवन्यकृतान्यरवांतरे ॥ ६ ॥ प्रतिशब्दितभूर्लोकभुवर्लोकांतराध्वनि ॥ सर्वप्रमुदितंचासीच्छंभोःप्रावेशिकोत्सवे ॥ ७ ॥ जगुर्गंधर्वनिकराननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ चारणास्तुस्तुतिंकुर्युर्जहृषुर्देवतागणाः ॥ ८ ॥ ववुर्गंधवहावाताववृषुःकुसुमैर्घनाः ॥ सर्वेमंगलनेपथ्याः सर्वेमंगलभाषिणः ॥ ९ ॥ स्थावराजंगमाःसर्वेजाताआनंदमेदुराः ॥ सुरासुरेषुसर्वेषुगंधर्वेषूरगेषुच ॥ १० ॥ विद्याधरेषुसाध्येषुकिन्नरेषुनरेषुच ॥ स्त्रीपुंजातेषुसर्वेषुरेजुश्चत्वारएवच ॥ ११ ॥ निष्प्रत्यूहंचनितरांपुरुषार्थाःपदेपदे ॥ धूपधूमभरैर्व्योमयद्रक्तंतुतदामुने ॥ १२ ॥ नाद्यापिनीलिमानंतंपरित्यजतिकर्हिचित् ॥ नीराजनाययेदीपास्तदासर्वेप्रबोधिताः ॥ १३ ॥ तेषांज्योतींषिखेद्यापिराजंतेतारकाच्छलात् ॥ प्रतिसौधंपताकाश्चनानाकाराविचित्रिताः ॥ १४ ॥

वृष्टि करनेलगी, सबी लोग मंगलवेषसे सुसज्जित और मांगलिकवार्तालापमें तत्पर होगये थे ॥ ९ ॥ क्या स्थावर क्या जंगम सभी जीवजन्तु आनन्दमय बनगये थे। (उस समय) देव, दानव, गन्धर्व, नाग ॥१०॥ विद्याधर, साध्य, किन्नर, नर, एवं समस्त स्त्री पुरुषोंपर निर्विघ्नरूपसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही पदार्थ पद पदपर झलक रहे थे। हे मुने ! उस घड़ी धूप (बत्ती) के धूमोंसे जो गगनमंडल रंग उठा ॥११॥१२॥ सो किसी प्रकारसे आजतक नीलिमाको नहीं छोडता। एवं आरती करनेके लिए जो दीपक बालेगये ॥ १३ ॥ उन्हींकी ज्योतियां आजतक आकाशमें ताराओंके

छलसे चमकरही हैं। प्रत्येक अटारियोंके ऊपर नाना प्रकारकी विचित्र पताकायें फहरा रहींथीं ॥ १४ ॥ प्रति शिवालयोंमें रमणीय ध्वजायें उड़रहीं थीं। कहींपर गवैयालोग बैठकर गीतोंको अलाप रहेथे, कहींपर नचनियां लोग नाचरहे थे ॥१५॥ कहीं कहींपर चतुर्विध बाजे (रोशन चौकी आदि) बजाये जाते थे, प्रत्येक मार्गोंमें चन्दनरसके छिडकावसे भूमि बिच्छिलहल होरही थी ॥ १६ ॥ प्रत्येक गृहोंके आँगनोंमें हरे, श्वेत, काले, नीले, पीले इत्यादि बहुतेरे प्रकारके उत्तम रंगोंकी सजावटें चमक रहीं थीं ॥ १७ ॥ गृहोंकी डेवढ़ियोंके सामने रत्नकी जड़ाऊ भूमियोंके भाग झलक रहे थे; एवं चूनाकी छुहाइयोंसे अटारियोंका नाम तभीसे सौध पड़गया ॥ १८ ॥ हे घटोद्भव ! उस घड़ी जितनेही अचेतन वस्तुहैं वे सब सचेतनकी नाईं

रम्यध्वजप्रभाधौतारेजुःप्रतिशिवालयम् ॥ क्वचिद्गायंतिगीतज्ञाःक्वचिन्नृत्यंतिनर्तकाः ॥ १५ ॥ चतुर्विधानिवाद्यानिवाद्यंतेचक्वचित्क्वचित् ॥ प्रत्यध्वंचंदनरसच्छटापिच्छिलभूमयः ॥ १६ ॥ हरितश्वेतमांजिष्ठनीलपीतबहुप्रभाः ॥ प्रत्यंगणंशुभाकाररंगमालाश्चकाशिरे ॥ १७ ॥ रत्नकुट्टिमभूभागागोपुराग्रेषुरेजिरे ॥ सुधोज्ज्वलाहर्म्यमालाःसौधनामप्रपेदिरे ॥ १८ ॥ अचेतनान्यपितदाचेतनानीवसंबभुः ॥ यानिकानीहकीत्यतेमंगलानिघटोद्भव ॥ १९ ॥ तेषामेवहिसर्वेषांतत्तुजन्मदिवाभवत् ॥ आगत्यदेवदेवोथमुक्तिमंडपमाविशत् ॥ २० ॥ अथाभिषिक्तश्चतुराननेनमहर्षिवृंदैःसहदेवदेवः ॥ शुभासनस्थःसहितोभवान्याकुमारवृंदैःपरितोवृतश्च ॥ २१ ॥ रत्नैरसंख्यैर्बहुभिर्दुकूलैर्माल्यैर्विचित्रैर्लसदिष्टगंधैः ॥ अपूपुजन्देवगणामहेशंतदामुदातेचमहोरगेंद्राः ॥ २२ ॥

जनाई पडते थे और संसारमें जो जो मंगल कहेजाते हैं ॥ १९ ॥ मानों उन सबोंका वही जन्मदिन नियत हुआ था। इस प्रकारके महा समारोहके साथ भगवान् विश्वेश्वरने आकर मुक्तिमंडपमें प्रवेश किया ॥२०॥ इसके अनंतर भगवान् महेश्वर कुमारवृन्दोंसे वेष्टित होकर भगवती भवानी देवीके साथ उत्कृष्ट सिंहासन पर जा विराजे तब स्वयं चतुरानन ब्रह्मदेव महर्षि मंडलके सहित उनका अभिषेक करनेलगे ॥ २१ ॥ फिर तो देवगण, नागगण, समुद्रगण, गिरीन्द्रगण, एवं और सब पवित्र बुद्धिके लोग, असंख्यरत्न, बहुतेरे वस्त्र, विचित्रमाला और अपूर्व सुगंधी द्रव्योंके द्वारा बडे हर्षसे महेश्वरकी पूजा करने लगे, हे कुम्भज!

उसी घडी मातृकाओंनेभी भगवान्‌की (मंगल) आरती उतारी ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके उपरांत समस्त सुरवृन्द वन्दित भगवान् विश्वनाथ प्रथम सब मुंनीन्द्रोंको उनके हृदयस्थित चिराभिलाषोंसे संतुष्टकर, ब्रह्मासे कुछ बतियाय फिर विष्णुसे सादर कहने लगे ॥ २४ ॥ आओ इधर बैठो, क्योंकि मेरी समस्त प्रभुताके हेतु तो तुम्हीं हो, दूर रहनेपरभी तुम मेरे निकटहीमें वर्तमान हो, और तुमसे बढकर दूसरा कोईभी मेरा कार्यकर्ता नहीं है ॥ २५ ॥ तुम्हींने राजा दिवोदासको ऐसा उत्तम उपदेश दिया कि वह नृपाल परम सिद्धिको प्राप्त होगया और मेराभी समस्त अभिलषित सिद्ध हुआ ॥ २६ ॥

रत्नाकरैश्चापिगिरींद्रवर्यैर्यथास्वमन्यैरपिपुण्यधीभिः ॥ सपूजितःकुंभजतत्रशंभुर्नीराजितोमातृगणैरथेशः ॥ २३ ॥ संतोष्यसर्वान्प्रथमं मुनींद्रान्स्वैःस्वैर्हृदिस्थैश्चचिराभिलाषैः ॥ ब्रह्माणमाभाष्यशिवोथविष्णुंजगादसर्वामरवृंदवंद्यः ॥ २४ ॥ इतोनिषीदेतिसमानपूर्वंत्वंमे समस्तप्रभुतैकहेतुः ॥ दूरेपितिष्ठन्निकटस्त्वमेवत्वत्तोनकश्चिन्ममकार्यकर्ता ॥ २५ ॥ त्वयादिवोदासनरेंद्रवर्यःसदूपदेशैश्चतथोपदिष्टः ॥ यथाससिद्धिंपरमामवापसमीहितंमेनिखिलंचसिद्धम् ॥ २६ ॥ विष्णोवरंब्रूहियईप्सितस्तेनादेयमत्रास्तिकिमप्यहोते ॥ इदंमयाऽऽनंदवनं यदाप्तंहेतुस्तुतत्रत्वमसौगणेशः ॥ २७ ॥ नमेप्रियंकिंचनविष्टपत्रयेतथायथेयंपरसौख्यभूमिः ॥ वाराणसीब्रह्मरसानयस्यखनिर्जनियंत्रनदीर्घशायिनाम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंजगदीशितुश्चप्रोवाचविष्णुर्वरदंमहेशम् ॥ यदिप्रसन्नोसिपिनाकपाणेतदापदाद्दूरमहंनतेस्याम् ॥ २९ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंमधुसूदनस्यजगादतुष्टोनितरांपुरारिः ॥ सदामुरारेममसन्निधौत्वंतिष्ठस्वनिर्वाणरमाश्रयेत्र ॥ ३० ॥

हे विष्णो ! तुम मनमाने वरदान मांगो, क्योंकि यहांपर तुम्हारे लिए कुछभी अदेय नहीं है, यह जो मैं इस आनन्दकाननमें पहुँचसका, इसके मुख्य कारण तुम और यह गणेशहैं ॥ २७ ॥ (हे हरे !) त्रैलोक्यमात्रमें जैसी मुक्तिदायिनी, ब्रह्मरसायनकी खानि, परम सौख्यकी भूमि यह वाराणसीपुरी मेरी प्यारी है, वैसा दूसरा कुछभी नहीं है ॥ २८ ॥ भगवान् विश्वेश्वरकी इन बातोंको सुनकर विष्णुदेवने बरदानोन्मुख शंकरसे कहा, कि हे पिनाकपाणे ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिए कि मैं कभी आपके चरणारविन्दसे दूर न होने पाऊं ॥ २९ ॥ मधुसूदनकी बात सुनतेही परम संतुष्ट होकर

भगवान् त्रिपुरारिने कहा, हे मुरारे ! तुम सदैव इस मोक्षलक्ष्मी विलासमें मेरे पासही रहाकरो ॥ ३० ॥ हे चक्रपाणे ! जो कोई मेरा अनन्य भक्त होनेपरभी प्रथम तुम्हारी आराधना किये विना मेरी पूजा करेगा उसके मनोरथकी सिद्धि कभी मुझसे नहीं होसकेगी ॥ ३१ ॥ इस मुक्तिमंडपमें चाहे कहींपर रहनापडे पर यहां जो सौख्य मुझको होता है, वह निर्मल कैलासपर्वतपर अथवा दृढभक्ति निजसेवकके हृदयमेंभी नहीं मिलता ॥ ३२ ॥ जो कोई स्थिरचित्त वृत्ति होकर निमेष भरभी मेरे इस दक्षिणमंडपमें बैठजाते हैं, वे गाढभक्तिसे पूर्ण अनन्यचित्त लोग फिर कभी गर्भदशाके उपासक नहीं होने पाते ॥ ३३ ॥ समस्त तीर्थोंके मुकुटमणि चक्रपुष्करिणी तीर्थमें स्नानकर जो लोग संयतचित्तसे इस मुक्तिमंडपमें प्रवेश करते हैं, वे निष्पाप तो होहीजाते हैं पर अन्तमें मेरे

आदावनाराध्यभवंतमत्रयोमांभजिष्यत्यपिभक्तियुक्तः ॥ समीहितंतस्यनसेत्स्यतिध्रुवंपरात्परान्मेंबुजचक्रपाणे ॥ ३१ ॥ सर्वत्रसौख्यं ममयुक्तिमंडपेसंतिष्ठमानस्यभवेदिहाच्युत ॥ नतत्तकैलासगिरौसुनिर्मलेनंभक्तचेतस्यपिनिश्चलश्रियि ॥ ३२ ॥ निमेषमात्रंस्थिरचित्तवृत्तयस्तिष्ठंतियेदक्षिणमंडपेत्रमे ॥ अनन्यभावाअपिगाढमानसानतेपुनर्गर्भदशामुपासते ॥ ३३ ॥ संस्नाययेचक्रसरस्यगाधेसमस्ततीर्थैकशिरोविभूषणे ॥ क्षणंविशंतीहनिरीहमानसानिरेनसस्तेममपार्षदाहि ॥ ३४ ॥ स्मरतियेमामपवर्गमंडपेकिंचिद्यथाशक्तिददत्यपिस्वम् ॥ शृण्वंतिपुण्याश्चकथाः क्षणंस्थिरास्तेकोटिगोदानफलंभजंति ॥ ३५ ॥ उपेंद्रतप्तानितपांसितैश्चिरंस्नाताहितेचाखिलतीर्थसार्थकैः ॥ स्नात्वेहयेवैमणिकर्णिकाह्रदेसमासतेमुक्तिजनाश्रयेक्षणम् ॥ ३६ ॥ तीर्थानिसंतीहपदेपदेह्हरेतुलाकृतेषांमणिकर्णिकायाः ॥ कतीहनोसंतिशुभाश्चमंडपाःपरंपरोमुक्तिरमाश्रयोयम् ॥ ३७ ॥

पारिषद बनादिये जाते हैं ॥ ३४ ॥ जो लोग इस मुक्तिमंडपमें क्षणमात्रभी बैठकर मेरा स्मरण, यथाशक्ति कुछ धनका दान, एवं पवित्र कथाओंका श्रवण करतेहैं, उनको करोड़ों गोदानका पुण्य मिलताहै ॥ ३५ ॥ हे उपेन्द्र ! जो लोग मणिकर्णिकामें स्नानकर क्षणभरभी इस मुक्तिमंडपमें मेरा स्मरण करते हैं उनको समस्त कठोर तपस्याओंके करने और अशेष तीर्थस्थानोंमें नहानेका संपूर्णफल लाभहोता है ॥ ३६ ॥ हे नारायण ! यद्यपि इस काशीमें पद पदपर तीर्थ पड़ेहुए हैं पर उन सबोंके साथ भला कभी मणिकर्णिकाकी तुलना होसकती है ? योंही यहांपर बहुतसे उत्तम मंडपके रहते भी यह मुक्तिमंडपही

सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥ हे विष्णो ! भविष्य द्वापरयुगमें इस मुक्तिमंडपका नाम लोकमें कुक्कुटमंडपके नामसे प्रसिद्ध होवेगा ॥३८॥ विष्णुने पूछा (कि)– हे प्रभो भालनेत्र ! जैसी कि आप कहरहे हैं वैसी इस मुक्तिमंडपकी प्रसिद्धि क्योंकर होगी ? आप उसे वर्णन करें ॥ ३९ ॥ देवदेवने कहा–हे चतुर्भुज ! यहांपर होनेवाले द्वापरयुगमें एक महानन्द नामक ब्राह्मणहोवेगा, वह ऋग्वेदपाठी सदाचार तत्पर, तीर्थ प्रतिग्रहसे पराङ्मुख ॥ ४० ॥ दम्भ रहित, सरल चित्त, एवं सदैव अतिथियोंका सेवक होगा । फिर वह जवान होतेही अपने पिताके मरजाने पर ॥ ४१ ॥ कामदेवके चोखे बाणोंसे बिध कर कुमार्गमें

कैवल्यमंडपस्यास्यभविष्येद्वापरेहरे ॥ लोकेख्यातिर्भवित्रीयमेषकुक्कुटमंडपः ॥ ३८ ॥ ॥ हरिरुवाच ॥ ॥ भालनेत्रसमाख्या हिकथंनिर्वाणमंडपः ॥ तथाख्यातिमसौगंतायथादेवेनभाषितम् ॥ ३९ ॥ ॥ देवदेवउवाच ॥ ॥ महानंदोद्विजोनामभविष्यो त्रचतुर्भुज ॥ अग्रवेदीसमाचारस्त्यक्ततीर्थप्रतिग्रहः ॥ ४० ॥ अदांभिकोऽक्रूरमनाःसदैवातिथिवल्लभः ॥ अथयौवनमासाद्यपितर्युपरते सहि ॥ ४१ ॥ विषमेषुशरैस्तीव्रैःकारितस्त्वपदेपदम् ॥ जहारकस्यचिद्भार्यांमैत्रींकृत्वातुतेनवै ॥ ४२ ॥ तयाचप्रेरितोऽपेयंपपौचापि विमोहितः ॥ अभक्ष्यभक्षणरुचिरभून्मदनमोहितः ॥ ४३ ॥ वैष्णवान्धनिनोदृष्ट्वाक्षणंवैष्णववेषभृत् ॥ शैवान्निंदतिमूढात्मानरकत्राण कारणम् ॥ ४४ ॥ शिवभक्तान्समालोक्यकिंचिच्चपरिदित्सुकान् ॥ गर्हयेद्वैष्णवान्सर्वाञ्शैवलिंगोपजीवकः ॥ ४५ ॥ इतिपाखं डधर्मज्ञःसंध्यास्नानपराङ्मुखः ॥ विशालतिलकःस्रग्वीशुद्धधौतांबरोज्ज्वलः ॥ ४६ ॥

उतारू होनेलगेगा, वह किसीसे मैत्री बढ़ाकर उसकी स्त्रीको उठाय लावेगा ॥ ४२ ॥ (फिर) उस कुलटाके जालमें फँसकर कामातुरतासे अपेयपान और अभोज्य वस्तुओंके भोजनमें प्रवृत्त होचलेगा ॥ ४३ ॥ (इस प्रकारके कुत्सित आचारोंसे अपनी संपत्तिको नाश करके) वह मूढात्मा धनी वैष्णवोंको देखते ही वैष्णवोंका वेषधर शैवलोगोंकी निन्दा ॥ ४४ ॥ और दानशील शैवोंके समाजमें पहुँच स्वयं परम पाशुपत बनकर वैष्णव लोगोंकी निन्दा करनेमें अगुवा बन जावेगा ॥ ४५ ॥ इस भाँतिके पाखण्ड धर्म रचनेमें निपुण होकर, यद्यपि स्नान संध्या इत्यादिको नहीं करेगा,पर लंबातिलक विशालमाला और

टटकी धोईहुई बढ़िया धोती धारण कर ॥ ४६ ॥ (बहुत भारी) चुन्दी झुलता हुआ सब किसीसे अधमदान लेनेमें पहिलेही अपना हाथ बढावेगा तब उस कुमार्गीको दो संतान उत्पन्न होंगे ॥ ४७ ॥ जब उसकी यह चाल पक्की होजावेगी तब कोई धनी पुरुष तीर्थयात्रा करनेके लिये पर्वतदेशसे यहां आवेगा ॥ ॥ ४८ ॥ वह धनी यात्री मणिकर्णिका पर नहाकर यह कहेगा कि, "मैं जातिका उत्तम चाण्डालहूं और धनभीहूं सो मेरी इच्छा कुछ दान करनेकी है ॥ ४९ ॥ क्या यहां कोई ऐसा दानलेनेवाला है जिसे मैं अपना धन संकल्प करदेसकूं" । उस चाण्डालकी बात सुनकर कोई एक मनुष्य अंगुरीसे ॥ ॥ ५० ॥ यह बात बतादेवेगा कि "यह जो बैठाहुआ ध्यानकी मुद्राकरके जप कररहा है यही तेरा दान लेवेगा दूसरा कोई नहीं लेसकता" ॥ ५१ ॥

शिखीचोपग्रहकरःसर्वेभ्योऽसत्प्रतिग्रही ॥ तस्यापत्यद्वयंजातमुन्मत्तपथवर्तिनः ॥ ४७ ॥ एवंतस्यप्रवृत्तस्यकश्चित्पर्वतदेशतः ॥ समागमिष्यतिधनीतीर्थयात्रार्थसिद्धये ॥ ४८ ॥ स्नात्वासचक्रसरसिकथयिष्यतिचेतिवै ॥ अहमस्तिधनोदित्सुर्जात्याचांडालसत्तमः ॥ ४९ ॥ अस्तिकश्चित्प्रतिग्राहीयस्मैदद्यामहंधनम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाकोऽश्चिचांगुलिसंज्ञया ॥ ५० ॥ उद्दिष्टउपविष्टोसौ योजपेद्ध्यानमुद्रया ॥ एषप्रतिग्रहंत्वत्तोग्रहीष्यतिनचेतरः ॥ ५१ ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वासगत्वातत्समीपतः ॥ दंडवत्प्रणिपत्याथतंबभाषेतदांत्यजः ॥ ५२ ॥ मामुद्धरमहाविप्रतीर्थंमेसफलीकुरु ॥ किंचिद्वस्त्वस्तिमेतत्त्वंगृहाणानुग्रहंकुरु ॥ ५३ ॥ अथाक्षमालिकांकर्णेकृत्वाध्यानंविसृज्यच ॥ कियद्धनंतवास्तीहपप्रच्छकरसंज्ञया ॥ ५४ ॥ तत्संज्ञांसवैबुध्वाप्रोवाचातिप्रहृष्टवत् ॥ संतृप्तिर्यावतातेस्यात्तावद्दास्यामिनान्यथा ॥ ५५ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वात्यक्त्वामौनमुवाचह ॥ सानंदःसमहानंदोनिःस्पृहोस्मिप्रतिग्रहे ॥ ५६ ॥

इस पर वह चाण्डाल सदानन्दके पासजाय दण्डवत्प्रणाम करके उससे यह कहने लगेगा ॥ ५२ ॥ "हे महाब्राह्मण ! मेरे पास कुछ धन है, उसे आप अनुग्रह करके स्वीकार करलेवें, और मेरी तीर्थयात्राको सफल करके मेरा उद्धार करदेवें" ॥ ५३ ॥ तब तो वह अपनी सुमिरिनीको कानपर रख और ध्यान छोडकर हाथके संकेतसे पूछेगा, कि तुम्हारे पास कितना धनहै ? ॥ ५४ ॥ फिर तो वह चाण्डाल उसके संकेतको समझकर बडी प्रसन्नतापूर्वक कहेगा कि, "जितना धन पानेसे आप संतुष्ट होंगे मैं उतनाहीं आपको देसकता हूं, इसमें कोई अन्तर (फर्क) नहीं पडने पावेगा" ॥ ५५ ॥ (बस फिर क्या) उसके मुँहसे इतना सुनतेही शठ महानन्द अपनी मौनमुद्राको त्यागकर बडे आनन्दके साथ कहने लगेगा कि, यद्यपि मुझे प्रतिग्रह लेनेकी तनिकभी इच्छा

नहीं है ॥ ५६ ॥ (पर तुम्हारी प्रार्थनाके संकोचसे) तुमपर अनुग्रह करके मैं तुम्हारा दानलेनेके लिये प्रस्तुत हूं, परन्तु हे उत्तमोत्तम ! यदि तुम मेरा कहना मानोगे तब मैं दान लेसकताहूं ॥ ५७ ॥ तुम्हारेपास जितना धनहै, उसमें (से) कुछ थोडासाभी दूसरे किसीको न देकर सब हमीको दोगे तब तो (दान) लेसकताहूं, नहीं तो मैं न लूंगा ॥ ५८ ॥ (तब वह) चाण्डाल कहेगा हे विप्र ! मैं जो कुछ धन विश्वेश्वरकी प्रसन्नताके लिये लायाहूं, वह सब आपहीको संकल्प करूंगा, क्योंकि मेरे विश्वनाथ तो आपही हैं ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस विश्वनाथकी राजधानीमें जो लोग रहते हैं वे चाहे, नीचसे नीच हों, अथवा ऊँचसे ऊँचहों, पर वे सबके सब विश्वेश्वरहीके अंशस्वरूपहैं ॥ ६० ॥ जो लोग परायेका उद्धार करनेवाले हैं, और दूसरोंकी

परंतेऽनुग्रहार्थंतुकरिष्यामिप्रतिग्रहम् ॥ किंचमेवचनंत्वंचेत्करिष्यस्युत्तमोत्तम ॥५७॥ यावदस्त्यखिलंवित्तंतन्मध्येन्यस्यकस्यचित् ॥ नस्तोकमपिदातव्यंतदाऽऽदास्यामिनान्यथा ॥ ५८ ॥ ॥ चांडालउवाच ॥ ॥ यावदस्तिमयानीतंविश्वेशप्रीतयेवसु ॥ तावत्तुभ्यं प्रदास्यामिविश्वेशस्त्वंयतोमम ॥ ५९ ॥ येवसंतीहविश्वेशराजधान्यांद्विजोत्तम ॥ क्षुद्राक्षुद्राजंतुमात्राविश्वेशांशास्तएवहि ॥ ६० ॥ परोद्धरणशीलायेयेपरेच्छाप्रपूरकाः ॥ परोपकृतिशीलायेविश्वेशांशास्तएवहि ॥ ६१ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाप्रहृष्टेंद्रियमानसः ॥ उवाचपार्वतीयंतंसोऽग्रजन्मांत्यजंतदा ॥ ६२ ॥ आयाहिदर्भानादेहिकुरूत्सर्गंत्वरान्वितः ॥ तथेतिसचकाराशुपार्वतीयोमहामनाः ॥ ६३ ॥ विश्वेशःप्रीयतांचेतिप्रोच्चययातोयथागतः ॥ सचद्विजोद्विजैरन्यैर्धिक्कृतोपिवसन्निह ॥ ६४ ॥ बहिर्निर्गतमात्रस्तुबहुभिःपरिभूयते ॥ चांडालब्राह्मणश्चैषचांडालात्तधनस्त्वसौ ॥ ६५ ॥

इच्छाको पूर्ण कर देते हैं, एवं जिनका स्वभावही परके उपकार करनेकाहै, वेही लोग विश्वनाथके अंशहैं ॥ चौपाई—पर उद्धार करै जो कोई । जो पर इच्छा पूरक होई ॥ पर उपकार सदा जेहि भावै । सो विश्वेश्वर अंश कहावै ॥ ६१ ॥ सदानन्द इस प्रकारसे उसके विनीत वचनको सुनकर परम प्रसन्नतापूर्वक उस पर्वतवासी अन्त्यजसे कहेगा ॥ ६२ ॥ तो फिर आओ कुश लो झटपट संकल्प करदो, (क्योंकि) ("तुरंतदान महा कल्यान" ।) इसपर वह उदार पर्वतवासी "बहुत अच्छा" कहकर तुरत "विश्वनाथ प्रसन्नहों" कहताहुआ धनको संकल्प करदेगा और अपने देशको चलाजावेगा । और वह महानन्द दूसरे ब्राह्मणोंके धिक्कारनेपरभी यहींपर रहने लगेगा ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ पर जब वह बाहर निकलेगा तब बहुतेरे लोग निन्दाकरतेहुए उसे

यह कहेंगे कि "चाण्डालका दान लेनेसे यह चाण्डाल ब्राह्मण होगयाहै ॥ ६५ ॥ सब लोगोंने इसे छोडदियाहै, यह तो चाण्डाल स्वरूपही है" हे हरे ! इस प्रकारसे लोग उसके पीछे पीछे थूथूकरतेहुए घूमने लगेंगे ॥ ६६ ॥ तब वह काकसे डरतेहुए उल्लूकी नाईं पुरवासियोंके डरसे कभी घरसे बाहर नहीं निकलेगा और उसका शिर लज्जाके मारे सदैव नीचेहीको झुँकारहेगा ॥ ६७ ॥ अनंतर वह अपनी उपपत्नीसे संमति करके बाराणसीपुरीको छोडकर (गयाकी ओर) कीकटदेशमें जाने लगेगा ॥ ६८ ॥ पर मार्गहीमें उसे सुवर्णादिकसे पूर्ण देखकर बहुतेरे गोसाइयोंके बीचमें रहने परभी ठगलोग घेरलेवेंगे ॥ ६९ ॥ फिर महानन्दको उसके कुटुम्बके साथ पकड़कर वे सब डांकू घोरगज्झिन जंगलके भीतर ले जाकर उसका सब धन लूटलेनेपर परस्पर

असावेवहिचांडालःसर्वलोकबहिष्कृतः ॥ इत्थंतमनुधावंतिथूत्कुर्वंतःपरितोहरे ॥ ६६ ॥ सचतद्भयतोगेहात्काकभीतदिवांधवत् ॥ ननिः सरेत्क्वचिदपिलज्जाकृतिनतास्यकः ॥ ६७ ॥ सएकदासंप्रधार्यगृहिण्यालोकदूषितः॥ जगामकीकटान्देशांस्त्यक्त्वावाराणसींपुरीम्॥ ६८॥ मध्येमार्गंसगच्छन्वैलक्षितस्तुसकांचनः ॥ अपिकार्पटिकांतस्थःसरुद्धोमार्गरोधिभिः॥६९॥ नीत्वातेतंमरण्यानींतस्कराःसपरिच्छदम् ॥ उल्लुंठ्यधनमादायसमालोच्यपरस्परम् ॥ ७० ॥ प्रोचुर्भूरिधनंचैतज्जीर्यत्यस्मिन्नजीवति ॥ असौधनीप्रयत्नेनवध्यःसपरिचारकः ॥७१॥ संप्रधार्येतितेप्राहुःस्मर्तव्यंस्मरपांथिक ॥ त्वांवयंघातयिष्यामोनिश्चितंसपरिच्छदम् ॥ ७२ ॥ निशम्येतिमनस्येवकथयामाससद्द्विजः ॥ अहोप्रतिगृहीतंमेयदर्थंवसुभूरिशः ॥ ७३ ॥ कुटुंबमपितन्नष्टंनष्टश्चापिप्रतिग्रहः ॥ जीवितंचापिमेनष्टंनष्टाकाशीपुरीस्थितिः ॥ ७४ ॥

यह विचार करेंगे ॥७०॥ और कहेंगे कि यह माल तो बहुत अधिकहै, पर इस धनीके जीतेजी इसका बचालेना सहज काम नहीं है अतएव इस यात्रीको परिचारकोंके सहित मारडालना चाहिये ॥ ७१ ॥ वे सब लुटेरे यही स्थिर करके उससे कहेंगे कि "हे पथिक ! जो तुम्हारी इच्छाहो उसे स्मरण करलो, क्योंकि हमलोग निस्सन्देह सकुटुम्ब तुमको मारडालेंगे" ॥ ७२ ॥ इसपर वह ब्राह्मण अपने मनही मन कहने लगेगा "कि, हाय ! मैंने जिनके लिये उस चाण्डालसे बहुत अधिक धन दान लिया ॥ ७३ ॥ वे सब कुटुम्बके लोग मारे गये, और दानका लेनाभी वृथा होगया, फिर मेराभी जीवन

विनष्ट हुआ और काशीपुरीका वासभी छूटगया ॥ ७४ ॥ हाय ! मेरीही दुर्बुद्धिसे एकसाथ सब कुछ बिगडगया, हाय ! उसी नीच दानलेनेके कारणसे मुझे काशीमें मृत्युभी नहीं मिलसकी " ॥ ७५ ॥ अन्तसमयमें कुटुम्बके तथा काशीके स्मरणसे वह ब्राह्मण लुटेरोंके हाथसे मारेजानेपरभी कीकटदेशमें कुक्कुट होवेगा ॥ ७६ ॥ और उसकी स्त्री कुक्कुटी एवं दोनों लड़के भी कुक्कुटही के बच्चे होंगे, पर अन्तमें काशीके स्मरण पड़जानेहीसे उन सबोंको जातिका स्मरण बनारहेगा ॥ ७७ ॥ इस प्रकारसे बहुतदिन बीतजाने पर (उसके संगी यात्री) गोसाँई लोग उसी मार्गसे आवेंगे जहां वे चारों कुक्कुट होकर घूमते रहेंगे ॥ ७८ ॥ वे लोग परस्पर ऊँची बोलीमें वाराणासीके विषयमें बातचीत करते जावेंगे, तब वे सब कुक्कुट उन लोगोंके मुखसे काशीकी कथा सुनकर

युगपत्सर्वमेवाशुनष्टंदुर्बुद्धिचेष्टया ॥ नकाश्यांमरणंप्राप्तंतस्माद्दुष्टप्रतिग्रहात् ॥ ७५ ॥ प्रांतेकुटुंबस्मरणात्तथाकाशीस्मृतेरपि ॥ चोरैर्हतोपिसतदाकीकटेकुक्कुटोऽभवत् ॥ ७६ ॥ साकुक्कुटीसुतौतौतुताम्रचूडत्वमापतुः ॥ प्रांतेकाशीस्मरणतोजाताजातिस्मृतिःपरा ॥ ७७ ॥ इत्थंबहुतिथेकालेगतेकार्पटिकोत्तमाः ॥ तस्मिन्नेवाध्वनिप्राप्ताश्चत्वारोयत्रकुक्कुटाः ॥ ७८ ॥ वाराणस्याःकथांप्रोच्चैःकुर्वंतोऽन्योन्यमेवहि ॥ काशीकथांसमाकर्ण्यतदातेचरणायुधाः ॥ ७९ ॥ जातिस्मृतिप्रभावेणतत्संगेनतुनिर्गताः ॥ तैश्चकार्पटिकश्रेष्ठैःपथिदृष्ट्वाकृपालुभिः ॥ ८० ॥ तंडुलादिपरिक्षेपैःप्रापिताःक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तेतुक्षेत्रंसमासाद्यचत्वारश्चरणायुधाः ॥ ८१ ॥ चरिष्यंतोऽत्रपरितोमुक्तिमंडपमुत्तमम् ॥ जिताहारान्सनियमान्कामक्रोधपराङ्मुखान् ॥ ८२ ॥ प्रहासान्मत्कथालापाँल्लोभमोहविवर्जितान् ॥ स्वर्धुनीस्नानसंक्लिन्नसुनिर्मलशिरोरुहान् ॥ ८३ ॥ मन्नामोच्चारणपरान्मत्कथार्पितसुश्रुतीन् ॥ मद्दत्तचित्तसद्वृत्तीन्दृष्ट्वाक्षेत्रनिवासिनः ॥ ८४ ॥

॥ ७९ ॥ पूर्वजन्मकी जातिके स्मरण रहनेसे उन्हींलोगोंके साथसाथ वहांसे चलदेवेंगे, इसके पीछे वे सब कृपाशील कार्पटिकलोग मार्गमें उन सबोंको कुछ चावल इत्यादि फेंकते देतेहुए काशीक्षेत्रतक लिवालावेंगे । फिर वे चारों कुक्कुट काशी क्षेत्रमें पहुँचकर ॥ ८० ॥ ८१ ॥ इस परम पवित्र मुक्तिमंडपके चारोंओर विचरण करने लगेंगे । तदनंतर वे सब (कुक्कुट) जिताहार, नियम शील, काम क्रोध पराङ्मुख, ॥ ८२ ॥ प्रसन्नवदन, मेरीही कथाके इच्छुक, लोभमोहसे रहित, गंगास्नान से आर्द्र और निर्मल केश, ॥ ८३ ॥ मदीय नामोच्चारणमें तत्पर, मेरी कथाके श्रवणमें लीन मद्गत चित्तवृत्ति

विक्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्तसूची–(पुराणग्रंथाः।)

नाम.	की. रु. आं.
श्रीमद्भागवत–नवीन सुबोधिनीटीका समेत पढनेवालों व सप्ताह बाँचनेवालोंको परमोपयोगी है. इसमें प्रत्येक श्लोकके अन्वय और अन्वयानुसार पर्यायशब्द होनेसे यह ग्रंथ नवीने साधारण विद्यार्थियोंसे वृद्ध महापंडितोंतक सर्व सज्जन विद्वज्जनोंको परमादरणीय हुआ है. श्रीभगवद्भक्तोंको सरल सुबोधव्याख्या सहित श्रीमद्भागवत संग्रह करनेकी इच्छा केवल इस सुबोधिनीटीकासमेत श्रीमद्भागवतसेही पूर्ण हो सकती है. अवश्य इस ग्रंथको संग्रह करके विद्यार्थियोंको पढाओ. सप्ताह बाँचो और तत्त्वज्ञानको संपादन करके अनायाससे मुक्तिफलका लाभ लेओ. इससे सरल और सुबोधव्याख्या अन्यत्र कहीं हुई नहीं है. मूल्य बहुतही अल्प	१२–०
श्रीमद्भागवत–भाषाटीका माहात्म्य और शंकासमाधानसह अत्युत्तम जिसमें ५०० दृष्टांत कथाके सिवाय हैं, नई छपी है	१२–०
श्रीमद्भागवत–मूलश्लोक और आनन्दाम्बुनिधि पद्यात्मकभाषाटीकासमेत (रीवाँधीश महाराज रघुराजसिंहदेवजूकृत)	१९–०
श्रीमद्भागवत–पद्यात्मक आनंदाम्बुनिधि भाषानुवाद जिल्दबँधी हुई (रीवाँधीश महाराज रघुराजसिंहदेवजूकृत)	७–०

नाम.	की. रु. आ.
श्रीमद्भागवत–दशमस्कंधमात्र भाषाटीका दृष्टान्त सहित....	४–०
शिवपुराण–पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासमेत	१९–०
मार्कंडेयपुराण–पं० कन्हैयालालमिश्रकृत भाषाटीकासमेत	६–०
वामनपुराण–पं० श्यामसुंदरलाल त्रिपाठीकृत भाषाटीकासहित। जिसमें कपालमोचन आख्यान दक्षयज्ञविनाश महादेवका कालरूपधारण कामदेव दहन प्रह्लादनारायणयुद्ध और देवासुरसंग्रामादि कथाहै	५–०
आदिपुराण भाषाटीका सहित–सम्पूर्ण पुराणोंका सार यह पुराण श्रीव्यास देवने २९ अध्यायोंमें वर्णन कियाहै। इसमें सूतशौनकके समागममें शौनकने सन्ध्याकालका तथा कलियुगके दोषोंका ऐसा विचित्र वर्णन कियाहै कि–अच्छे २ कवियोंका भी मन मुग्ध होजाताहै। कृष्णभगवान्के जन्म और उनकी अनेकलीला रामावतार आदिकी पवित्रकथा संक्षेपसे इसमें लिखी हुई हैं। मुरादाबाद निवासि पण्डित श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठीकी भाषाटीकासे यह ग्रन्थ अत्यन्त सरलहोगयाहै ...	२–०

नाम.	की. रु. आ.
श्रीमद्देवीभागवत–पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासमेत इसमें मुख्य देवीजीके पाठादिकका विस्तार सर्वप्रकारकी शक्तियोंका कथन और उनके अवतार मंत्र यंत्र तंत्र कवचादि गायत्री आदिका स्तोत्रादि अपूर्व विषय शाक्तोपयोगीहै	१२–०
कल्किपुराण–पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासहित इसमें कल्किमहाराज कलियुगांतमें अवतार ले संहार करेंगे उनका पूर्ण वृत्तांतहै	२–०
शुकसागर–मध्यम अक्षर लालाशालिग्रामजीकृत सर्वालंकारों समेत ग्लेज कागज	८–०
" तथा उपरोक्त विषयों सहित रफ कागज	७–०
शुकसागर–उपरोक्त समस्त अलंकारोंसमेत छोटा अक्षर, ग्लेज छपताहै	९–०
" " तथा रफ कागज	४–०
शिवपुराण–भाषा वार्त्तिक पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत जिल्दवँधा शिवभक्तोंको अवश्य लेना चाहिये छपता है...	
शिवमहापुराणसंदेहभेदिका–भाषा	०–१॥
मार्कंडेयपुराण–भाषा जिल्दवँधा	३–०
वामनपुराण–भाषा जिल्दवँधा	३–०

नाम.	की. रु. आ.
देवीभागवत–भाषा जिल्दवँधा देवीभक्तोंको अवश्य लेना चाहिये ...	६–०
आनंदाम्बुनिधि–भाषा भागवत छन्दबद्ध महाराजारघुराजसिंहजी कृत ... ग्लेज ७) रु० तथा रफ	६–०
भागवतसार–भाषा भागवतकी संक्षिप्त सरल कथा....	०–१
पुराणोंकी संरक्षा–पुराणोंका संपूर्ण वृत्तांत लिखा गयाहै...	०–२
अष्टादशपुराणदर्पण–पं० ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा निर्मित अर्थात् अठारहों पुराणोंका दर्पणकी समान वर्णन इसमें वेदसे पुराण विषयका वर्णन सब पुराणोंके अध्याय और उनकी कथा पुराणोंपर विचार तथा शंका समाधान सहित लिखी है सबको पास रखना चाहिये	२–०
आदिपुराण भाषावार्तिक–केवल हिन्दीरसिकोंके लिये समस्त आदिपुराण सरल सुथरी देवनागरीभाषामें अनुवाद किया गया है। भारतवर्षके सभी हिन्दी रसिक नरनारी इससे भगवत्कथा रसका आस्वाद स्वयं कर सकते हैं। लिखीपढी कुलवधू इसको पढ अपनी अनपढ भगिनियोंको पुराणके, हिन्दूधर्मके तथा भगवद्भक्तिके अपूर्व विषय समझा सकती हैं। ...	१–४

संपूर्ण पुस्तकोंका "बडासूचीपत्र" अलग है देखनाहो तो मँगालीजिये.

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाड़ी–बंबई.

क्रय्यपुस्तकानि-(पुराणग्रन्थाः ।)

पद्मपुराण-सम्पूर्ण ५५००० ग्रंथ छः खंडोंमें शुद्धतापूर्वक, सांगोपांग वर्णनहै यह ग्रंथ वैष्णवोंके अत्यन्त उपयोगी है	१५-०
श्रीमद्भागवत-श्रीधरीटीका और टिप्पणीसह, ग्लेज कागज	१०-०
श्रीमद्भागवत-भावार्थदीपिकाप्रकाश टीका-यह टीका श्रीधरीटीकापर बहुतही उत्तम लगाती है। ग्रंथ संख्या १२५००० सवा लक्ष है.	२५-०
श्रीमद्भागवत-सचूर्णिका मोटेअक्षर उत्तम कागज़ सप्ताह वांचनेवालोंको परमोयोगीहै ... . ग्लेज ७-० तथा देशी कागज ...	६-०
श्रीमद्भागवत-अन्वयार्थप्रकाशिकाटीकासमेत पं० गंगासहायजीकृत्	१५-०
श्रीमद्भागवत-नवीन सुबोधिनीटीका समेत पढनेवालों व सप्ताह वाँचनेवालोंको परमोपयोगी है. इसमें प्रत्येक श्लोकके अन्वय और अन्वयानुसार पर्यायशब्द होनेसे यह ग्रंथ नवीन साधारण विद्यार्थियोंसे वृद्ध महापंडितोंतक सर्व सज्जन विद्वज्जनोंको परमादरणीय हुआ है.	१२-०
श्रीमद्भागवत-विजयध्वजी टीका समेत (माध्वसांप्रदायिक)	१०-०
श्रीमद्भागवत-मूल (गुटका) रेशमी जिल्द बँधी हुई नित्यपाठकरनेयोग्य ...	१-८
श्रीमद्भागवत-भाषाटीका माहात्म्य और शंकासमाधानसह अत्युत्तम जिसमें ९०० दृष्टांत कथाके सिवायहैं, नई छपी है	१२-०
तथा देशी कागज	११-०
श्रीमद्भागवत-मूलश्लोक और आनन्दाम्बुनिधि पद्यभाषाटीकासमेत .... (रीवांधीस महाराज रघुराजसिंहदेवजूकृत)	१५-०
श्रीमद्भागवत-पद्यात्मक आनंदाम्बुनिधि भाषानुवाद जिल्दबँधी हुई ... ... (रीवाँधीश महाराज रघुराजसिंहदेवजूकृत)ग्लेज कागज	७-०
तथा रफ कागज	६-०
श्रीमद्भागवत-दशमस्कंधमात्र भाषाटीका दृष्टान्त सहित	४-०
श्रीमद्भागवताद्यपद्यव्याख्याशतक-(जन्माद्यस्य श्लोकके सौअर्थ)	२-०

॥ इति श्रीकाशीखण्डं भाषाटीकासहितं समाप्तम् ॥